1/84

ऋग्वेद

(२)

PRESENTED

LIBRARY
No. 1/34
Sri Shri Ma Anandamayee Ashram
BANARAS

1/34

PRESENTED
by
a German Devotee
7.1.45

LIBRARY
No.......1/34
Shri Shri Ma Anandamayee Ashram
BANARAS.

PRESENTED
by a German Devotee
of Mā

ऋग्वेद

(द्वितीय खंड)

(सायण भाष्यावलम्बी सरल हिन्दी भावार्थ सहित)

LIBRARY
No. 1/34
Shri Shri Ma Anandamayee Ashram
BANARAS.

सम्पादक:

वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चार वेद, १०८ उपनिषद, षट्दर्शन, २० स्मृतियां,
१८ पुराणों के प्रसिद्ध भाष्यकार और लगभग
१५० हिन्दी ग्रन्थों के रचियता

*

प्रकाशक:

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब (वेद नगर) बरेली (उ०प्र०)

प्रकाशक :
डा० चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान
ख्वाजा कुतुब
बरेली (उ० प्र०)

⁂

सम्पादक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

⁂

मुद्रक :
दाऊदयाल गुप्त,
सस्ता साहित्य प्रेस, मथुरा

⁂

संशोधित जनोपयोगी संस्करण
१९७२

⁂

सर्वाधिकार सुरक्षित

मू० आठ रुपये

1/34

by a German Devote
of Mā

सूक्त २०

(ऋषि—कौशिको गाथी । देवता——विश्वेदेवाः । छन्द-अनुष्टुप्)

अग्निमुषसमश्विना दधिक्रां व्युष्टिषु हवते वह्निरुक्थैः ।
सुज्योतिषो नः श्रृण्वन्तु देवाः सजोषसो अध्वरं वावशानाः ॥१
अग्ने त्री ते वाजिना त्री षधस्था तिस्रस्ते जिह्वा ऋतजात पूर्वीः ।
तिस्र उ ते तन्वो देववतास्ताभिर्नः पाहि गिरो अप्रयुच्छन् ॥२
अग्ने भूरीणि तव जातवेदो देव स्वधावोऽमृतस्य नाम ।
याश्च माया मायिनां विश्वमिन्व त्वे पूर्वीः सन्दधुः पृष्टवन्धो ॥३
अग्निर्नेता भग इव क्षितीनां दैवीनां देव ऋतुषा ऋतापा ।
स वृत्रहा सनहा विश्ववेदाः पषद्विशवति दुरता गृणन्तम् ॥४
दधिक्रातग्निमुषसं च देवीं बृहस्पतिं सवितारं च देवम् ।
अश्विना मित्रावरुणा भगं च वसूनुद्राँ आदित्याँ इह हुवे ॥५

वे हविवाहक अग्निदेव उषाकाल में, अन्धकार को दूर करते हुए उषा अश्विद्वय और दधिका नामक देवों को ऋचाओं से आहुत करते हैं। देवगण हमारे यज्ञ में आने की कामना करते हुए उन ऋचाओं को श्रवण करें॥१॥हे अग्ने ! तुम्हारा तीन प्रकार का अन्न तथा तीन प्रकार का ही वास-स्थान है। तुम यज्ञ का सम्पादन करने वाले हो। देवताओं को तृप्त करने वाली तीन जिह्वाओं से युक्त हो। तुम्हारे शरीर के तीन रूप हैं,जिनकी देवता कामना किया करते हैं।तुम आलस्य से रहित हुए अपने तीनों रूपों से हमारे स्तोत्र के रक्षक बनो ॥२॥ हे अग्ने ! तुम प्रकट होते ही ज्ञानी, प्रकाशवान्, अमर और अन्न यूक्त हो। देवताओं ने तुमको तेज प्रदान किया हैं। तुम विश्व को तृप्त करने वाले,अभीष्ट फल देने वाले हो। देवताओं ने तुमको जिन शक्तियोंसे युक्त किया है,से शक्तियाँ सदा तुमसे विद्यमान रहती है ॥३॥ऋतुओं को प्रकट करने वाले आदित्य के समान विश्व के नियंता. सत्य कर्मों में प्रवृत्त.वृत्र-संहारक,पुरातन, सर्वज्ञाता और प्रकाशवान् अग्नि-

देव, स्तुति करने वाले को सब पापों से पार करें ॥४॥ दधिका, अग्नि, उषा, वृहस्पति, तेजस्वी सूर्य, दोनों अश्विनी कुमार, भग, वसु, रुद्र और सभी आदित्यों का इस यज्ञानुष्ठान में आह्वान करता हूं ॥५॥ [२०]

सूक्त २१

(ऋषि-कौशिको गाथी । देवता—अग्निः । छन्द-त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् बृहती)

इम नो यज्ञममृतेषु धेहीमा हव्या जातवेदो जुषस्व ।
स्तोकानामग्ने मेदसो घृतस्य होतः प्राशान प्रथमो निषद्य ॥१
घृतवन्तः पावक ते स्तोकाः श्चोतन्ति मेदसः ।
स्वधर्मन्देववीतये श्रेष्ठं नो धेहि वार्यम् ॥२
तुभ्यं स्तोका घृतश्चुतोऽग्ने विप्राय सन्त्य ।
ऋषि श्रेष्ठः समिध्यसे यज्ञस्य प्राविता भव ॥३
तुभ्यं श्चोतन्त्यध्रिगो शचीवः स्तोकासो अग्ने मेदसो घृतस्य ।
कविशस्तो बृहता भानुनागा हव्या जुषस्व मेधिर ॥४
ओजिष्ठं ते मध्यतो मेद उद्भृतं प्र ते वयं ददामहे ।
श्चोतन्ति ते वसो स्तोका अधि त्वचि प्रति तान्देवशो विहि ॥५।२१

हे अग्ने ! हमारे इस यज्ञ को देवों के प्रति पहुंचाओ । हमारी हवियों का भक्षण करो । तुम होता रूप हो । तुम हमारे यज्ञ में बैठ कर प्राणवान् घृत का भक्षण करो ॥१॥ हे अग्ने ! तुम पवित्र हो । इस यज्ञ में तुम्हारे तथा देवताओं के पान निमित्त घृत की बूँदें टपक रही हैं । तुम हमको वरण करने योग्य उत्तम धन प्रदान करो ॥२॥ हे अग्ने ! तुम मेधावी और यजन योग्य हो । घृत की टपकती हुई सभी बूँदे तुम्हारे लिए हैं । तुम ऋषियों में श्रेष्ठ हो । तुम स्वयं प्रदीप्त होते हो । हमारे यज्ञ की रक्षा करो ॥३॥ हे अग्निदेव ! तुम सदा गतिमान् रहने वाले सर्वशक्ति सम्पन्न हो । स्नेह रूप हवि की बूँदें तुमको सींचती हैं । मेधावीजन तुम्हारा स्तवन करते हैं । तुम महान् तेजस्वी एवं प्रज्ञानवान् हो । हमारी हवियों को ग्रहण करो ॥४॥ हे अग्ने ! हम अत्यन्त साररूप स्नेह तुम्हें प्रदान करेंगे । हे निवासदाता

अग्निदेव ! हवि की जो बूंदें तुम्हारे लिये गिरती हैं, उनमें से बाँटकर देवताओं को पहुंचाओ ॥५॥ [२१]

सूक्त २२

(ऋषि—कौशिको गाथी । देवता—पुरीष्यः अग्न्यः । छन्द—त्रिष्टुप्,
पंक्तिः, अनुष्टुप्)

अयं सो अग्निर्यस्मिन्त्सोममिन्द्रः सुतं दधे जठरे वावशान ।
सहस्रिणं वाजमत्यं न सप्ति ससवान्त्सन्त्स्तूयमे जातवेदः ॥१
अग्ने यत्ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वा यजत्र ।
येनान्तरिक्षमुर्वाततन्यः त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः ॥२
अग्ने दिवो अर्णमच्छा जिगास्यच्छा देवाँ ऊचिषे धिष्ण्या य ।
या रोचने परस्तात्सूर्यस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्त आपः ॥३
पुरीष्यासो अग्नयः प्रावणेभिः सजोषसः ।
जुषन्तां यज्ञमद्रुहोऽनमीवा इषो महीः ॥४
इलामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाया साध ।
स्यान्नः सूनुस्तोन यो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥५। २२

सोम की कामना करने वाले इन्द्र ने निचोड़े हुए सोम को जिस अग्नि रूप उदर में रखा था. वह यह अग्नि ही हैं । हे अग्निदेव ! तुम सर्वज्ञ हो । तुम उस अश्व के समान वेगवती हवि का सेवन करो। विश्व के सब प्राणी तुम्हारा स्तवन करते हैं ॥१॥ हे अग्ने ! तुम यजन योग्य हो । तुम्हारा जो प्रकाश, पृथिवी, औषधि और जल में व्याप्त है तथा तुम्हारे जिस तेज के द्वारा अन्तरिक्ष भी व्याप्त हुआ है, वह तेज समुद्र के समान गम्भीर,सूर्य के समान प्रकाशित एवं मनुष्यों के लिए अद्भुत है ॥२॥ हे अग्ने ! तुम आकाशीय जल के समान प्रवाहमान हो । प्राण भूत देवगण को संगठित करने वाले हो । सूर्य के ऊपर के लोक में अथवा अन्तरिक्ष में जो जल है, उसे प्रेरित करने वाले हो ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! युद्ध क्षेत्र में हथियारों की संगति करते हुए रणस्थल को प्राप्त होओ ! तुम ऐसा अन्न हमें दो जिसके बल से

हम शत्रुओं को दबाने वाले बनें तथा निरोग रह सकें ॥५॥ हे अग्ने ! स्तुति करने वालों को कर्मों की प्रेरक और गवादि धन से युक्त भूमि तुम देते हो। हमारे वंश को बढ़ाने वाला, संतानोत्पादन में समर्थ पुत्र हमको दो यह अनुग्रह हमारे प्रति होना चाहिए ॥६॥

सूक्त २३

(ऋषि—देवश्रवा देवताश्च भारतौ। देवता—अग्निः। छन्द—त्रिष्टुप्)

निर्मथितः सुधित आ सधस्ये युवा कविरध्वरस्य प्रणेता।
जुर्यत्स्वग्निरजरो वनेष्वत्रा दधे अमृत जातवेदाः ॥१
अमन्थिष्टां भारता रेवदग्नि देवश्रवा देववातः सुदक्षम्।
अग्ने वि पश्य बृहताभि रायेषां नो नेता भवतादनु द्यून् ॥२
दश क्षिपः पूर्व्यं सोमजीजनन्त्सुतातं मातृषु प्रियम्।
अग्नि स्तुहि दैववातं देवश्रवा यो जनानामसद्वशी ॥३
नि त्वा दथे वर आ पृथिव्या इलायास्पदे सुदिनत्वे अह्नाम्।
दृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि ॥४
इलामग्ने पुरुदस सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानय साध।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥५ २३

घर्षण से उत्पन्न, यजमान के गृह में स्थापित, सर्वज्ञाता, यज्ञ कर्म के सम्पन्नकर्त्ता स्वयं प्रज्ञावान्, घोर वन का विनाश करने वाले अग्निदेव जरारहित हैं। वे इस यज्ञ में अमृत धारण करने वाले हैं ॥१॥ भारत के पुत्रों ने इन धन-सम्पन्न अग्निदेव को अरणि-मंथन द्वारा प्रकट किया। हे अग्ने ! बहुत से धन सहित तुम हमारी ओर देखो और हमको नित्यप्रति अन्न प्राप्त कराओ ॥२॥ यह प्राचीन, रमणीय अग्निदेव दशों अंगुलियों द्वारा उत्पन्न होते हैं। हे देवश्रवा ! अरणि से उत्पन्न दिव्य वायु से प्रकट हुए अग्निदेव का स्तवन करो। वे अग्नि स्तुति करने वालों के ही वशीभूत होते हैं ॥३॥ हे अग्ने ! श्रेष्ठ दिन की प्राप्ति के निमित्त हम इस पृथिवी के पवित्र स्थान में तुम्हें प्रतिष्ठित करते हैं। तुम दृषद्वती, आपया और सरस्वती इन तीनों नदियों के निकट वास करने वालों

के घरों में धन सहित प्रदीप्त होओ ॥४॥ हे अग्ने ! तुम स्तुति करने वालों को कर्मयुक्त तथा गवादियुक्त पृथिवी दो। हमारे वंश का बढ़ाने वाला, सन्तानोत्पादन में समर्थ पुत्र हमको दो। यह अनुग्रह हम पर अवश्य करो ॥५॥ [२३]

सूक्त २४

(ऋषि—विश्वामित्रः। देवता—अग्निः। छन्द—अनुष्टुप् गायत्री।)

अग्ने सहस्व पृतना अभिमातीरपास्य।
दुष्टरस्तरन्नरातीर्वर्चो धा यज्ञवाहसे ॥१
अग्न इला समिध्यसे वीतिहोत्रो अमर्त्यः।
जुषस्व सूनो अध्वरम् ॥२॥
अग्ने द्युम्नेन जागृवे सहसः सूनवाहुत। एदं बर्हिः सदो मम ॥३
अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्देवेभिर्महया गिरः। यज्ञेषु य उ चायवः ॥४
अग्ने दा दाशुषे रयिं वीरवन्तं परीणसम्।
शिशीहि नः सूनुमतः ॥५। २४

हे अग्निदेव ! इस शत्रु नेता को हराओ। विघ्न कराने वालों को भगा दो। तुम्हें कोई पराजित नहीं कर सकता। तुम शत्रुओं को हराकर अपने यजमान को अन्न प्रदान करो ॥ १॥ हे अग्ने ! तुम यज्ञ में प्रीति रखते हो। तुम मरण रहित हो। तुम उत्तर वेदी पर प्रज्वलित होते हो। तुम हमारे यज्ञ को भले-प्रकार से सम्पादन करो ॥२॥ हे अग्ने ! तुम अपने तेज से चैतन्य होते हो। तुम बल के पुत्र का मैं आह्वान करता हूँ। मेरे कुश पर विराजमान होओ ॥३॥ हे अग्ने ! तुम अपनी पूजा करने वालों के यज्ञ में सभी प्रदीप्त अग्नियों के सहित स्तुतियों की मर्यादा को सुरक्षित करो ॥४॥ हे अग्ने ! तुम हवि देने वाले को पौरुषयुक्त धन प्रदान करो। हम सन्तानयुक्त हैं हमारी वृद्धि करो ॥५॥ [२४]

सूक्त २५

(ऋषि-विश्वामित्रः । देवता—अग्निः, इन्द्राग्नी । छन्द—अनुष्टुप् त्रिष्टुप्)

अग्ने दिवः सूनुरसि प्रचेतास्तना पृथिव्या उत विश्ववेदाः ।
ऋधग्देवाँ इह यजा चिकित्वः ॥१
अग्निः सनोति वीर्याणि विद्वान्त्सनोति वाजममृताया भूषन् ।
स नो देवाँ एहा वहा पुरुक्षो ॥२
अग्निर्द्यावः पृथिवीं विश्वजन्ये आ भाति देवी अमृते अमूरः ।
क्षयन्वाजैः पुरुश्चन्द्रो नमोभिः ॥३
अग्न इन्द्रश्च दाशुषो दुरोण सुतावतो यज्ञमिहोप यातम् ।
अमर्धन्ता सोमपेपाय देवा ॥४
अग्ने अपाँ समिध्यसे दुरोणे नित्य नित्यः सूनो सहसो जातवेद ।
सधस्थानि महयमान ऊती ॥५। २५

हे अग्ने ! तुम अद्भुत, सर्वज्ञाता, आकाश-पृथिवी के पुत्र तथा चैतन्यतायुक्त हो। तुम इस देव-यज्ञ में पृथक् पृथक् यजन कर्म करो ॥१॥ अग्नि मेधावी हैं, सामर्थ्यदाता है और स्वयं सुसज्जित होकर देवताओं को हवि पहुंचाते हैं। उनका अन्न विविध प्रकार का है। हे अग्ने ! देवगण को हमारे इस यज्ञ में ले आओ ॥२॥ सर्वज्ञानी संसार के स्वामी प्रदीप्तवान् शक्ति और अन्न से सम्पन्न अग्निदेव, विश्व-माता तेजस्विनी मरण-रहित आकाश पृथिवी को प्रकाशवान् बनाते हैं ॥३॥ हे अग्ने ! तुम इन्द्र सहित यज्ञ की रक्षा करते हुए सोम छानकर अर्पण करने वाले के इस घर में सोम पीने के निमित्त पधारो॥४॥ हे बलोत्पन्न अग्निदेव! तुम सर्वज्ञानी और नित्य हो। तुम अपने आश्रय में प्राणियों को सुशोभित करते हुए जल के आश्रय स्थान अन्तरिक्ष में प्रतिष्ठित होते हो ॥५॥

सूक्त २६

(ऋषि—विश्वामित्रः, आत्मा। देवता—वैश्वानरः, मरुत आदि।
छन्द–जगती, त्रिष्टुप्)

वैश्वानरं मनसाग्निं निचाय्या हविष्मतो अनुषत्य स्वर्विदम् ।
सुदानुं देवं रथिरं वसूतवो गीर्भी रण्वं कुसिकासो हवामहे ॥१
तं शुभ्रमग्निमवसे हवामहे वैश्वानरं मातरिश्वानमुक्थ्यम् ।
बृहस्पतिं मनुषो देवतातये विप्रं श्रोतारमतिथिं रघुष्यदम् ॥२
अश्वो न क्रन्दञ्जनिभिः समिध्यते वैश्वानरः कुशिकेभिर्युगेयुगे ।
स नो अग्निः सुवीर्यं स्वश्व्यं दधातु रत्नममृतेषु जागृविः ॥३
प्र यन्तु वाजास्तविषीभिरग्नयः शुभे सम्मिश्लाः पृषतीरयुक्षत ।
बृहदुक्षो मरुतो विश्ववेदसः प्र वेपयन्ति पर्वताँ अदाभ्याः ॥४
अग्निश्रियो मरुतो विश्वकृष्टय आ त्वेषमुग्रमव ईमहे वयम् ।
ते स्वानिनो रुद्रिया वर्षनिर्णिजः सिंहा न हेषक्रतवः सुदानवः ॥५।२६

हम कौशिक जन गमन की इच्छा से हवि एकत्रित करते हुए वैश्वानर अग्नि का आह्वान करते हैं। वे सत्यपथगामी स्वर्ग के सम्बन्ध में जानने वाले हैं। यज्ञ का फल देने वाले हैं। वे अपने रथ से यज्ञ स्थान को प्राप्त होते हैं ॥१॥ उन उज्ज्वल वर्ण वाले वैश्वानर, विद्युतरूप, यज्ञ के स्वामी, प्रज्ञावान्, अतिथि, शीघ्र कार्यकारी अग्निदेव को यजमान के यज्ञ में आश्रय प्राप्त करने के निमित्त आहूत करते हैं ॥२॥ उच्च शब्द करने वाले अश्व का बच्चा जैसे अपनी माता के आश्रय में वृद्धि प्राप्त करता है, वैसे ही कौशिकों के द्वारा वैश्वानर अग्नि की वृद्धि की जाती है। हे अग्ने ! तुम देवताओं में चैतन्य हो। हमको श्रेष्ठ अश्व, पौरुष और महान् धन दो ॥३॥ अग्निरूप अश्व, बलवान् मरुद्गण से संयुक्त हुए पृषती वाहनों को मिलावें। सर्वज्ञाता, किसी के द्वारा भी हिंसित न होने वाले मरुद्गण जलराशियुक्त तथा पर्वत के समान मेघ को कम्पायमान करते हैं ॥३॥ अग्नि के आश्रित मरुत सागर को आकर्षित करते हैं। हम उन्हीं मरुतों के उत्कृष्ट आश्रय की याचना करते

हैं। वे वर्षा रूप वाले, सिंह के समान गर्जनशील मरुद्गण जलदाता के रूप में प्रसिद्ध हैं ॥५॥ [२६]

व्रातव्रात गणगण सुशस्तभिरग्नेर्भाम मरुतामोज ईमहे ।
पृषदश्वासो अनवभ्रराधसो गतारो यज्ञं विदथेषु धीराः ॥६
अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृत मे चक्षुरमृत म आसन् ।
अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्रो धर्मो हविरस्मि नाम ॥७
त्रिभिः पवित्रैपुपोद्धय कं हृदा मति ज्योतिरनु प्रजानन् ।
वर्षिष्ठं रत्ननकृत स्वधाभिरादिद् द्यावापृथिवी पर्यपश्यत् ॥८
शतधारमुत्समक्षीयमाणं विपश्चित पितर वक्त्वानाम् ।
मेलि मदन्त पित्रोरुपस्थे त रोदसी पितृत सत्यवाचम् ॥९। २७

बहुत से स्तोत्रों द्वारा हम अग्नि के तेज और मरुद्गण के बल की कामना करते हैं। वे बिन्दु चिह्न वाले अश्व युक्त मरुद्गण नष्ट न होने वाले धन के सहित हवि के निमित्त यज्ञ को प्राप्त होते हैं ॥६॥ मैं अग्नि जन्म से ही मेधावी हूं। अपने रूप को स्वयं प्रकट करता हूं। प्रकाश मेरा नेत्र है। मेरी जिह्वा में अमृत है। मैं त्रिविध प्राण युक्त एवं अन्तरिक्ष का मापक हूं। मेरे ताप का कभी क्षय नहीं होता। मैं ही साक्षात् हवि हूं ॥७॥ सुन्दर ज्योति को हृदय से जानने वाले अग्निदेव ने अग्नि, वायु और सूर्य रूप धारण कर अपने को समर्थक बनाया। अग्नि ने इन रूपों से प्रकट होकर आकाश पृथिवी के दर्शन किये थे ॥८॥ हे आकाश-पृथिवी ! सौ धार वाले मेघ की तरह प्रक्षुण्ण प्रवाहयुक्त मेधावी पालनकर्त्ता, वाक्यों को मिलाकर बताने वाले माता-पिता की गोद में प्रसन्न सत्य स्वरूप अग्नि को पूर्ण करो ॥९॥ [२७]

सूक्त २७

(ऋषि—विश्वामित्रः देवता—ऋतवोऽग्निर्वा अग्नि । छन्द—गायत्री)

प्रवो वाजा अभिद्यवो हविष्मतो घृताच्या।देवाञ्जिगाति सुम्नयुः॥१
ईंले अग्निं विपश्चितं गिरा यज्ञस्य साधनम् ।
श्रुष्टीवानं धितावानम् ॥२

अग्ने शकेम ते वयं वेवस्य वाजिनः । अति द्वेषांसि तरेम ॥३
समिध्यमानो अध्वरेग्निः पावक ईड्यः । शोचिष्केशस्तमीमहे ॥४
पृथुपाजा अमर्त्यो घृतनिर्णिक्स्वाहुतः । अग्निर्यज्ञस्य हव्यवाट्।५।२८

हे ऋत्विजो ! स्रुकयुक्त हवि वाले देवता, मास, अर्द्धमास आदि यजमान के निमित्त सुखी करने के इच्छुक हैं । वह यजमान देवताओं की कृपा प्राप्त करता है ॥१॥ यज्ञ सम्पन्न कर्ता, प्रज्ञावान्, ऐश्वर्यवान्, वेगशाली अग्निदेव को मैं स्तोत्रों सहित पूजता हूं।२।हे अग्ने ! तुम प्रकाशवान् हो । हव्य तैयार कर हम तुम्हारी सेवा करेंगे और पाप से बच सकेंगे।३। यज्ञ-काल में प्रकट होने वाले ज्वालायुक्त केश, वाले, पवित्रकर्ता पूज्य, अग्निदेव के समीप उपस्थित होकर इच्छित फल माँगते हैं ॥४॥ उत्पन्न तेज से युक्त, अगर, घृत के शुद्ध करने वाले और समान रूप से पूजा किये गये अग्निदेव यज्ञ के हवि को वहन करें ॥५॥

तं सबाधो यतस्रुच इत्या धिया यज्ञवन्तः । आ चक्रुरग्निमूतये॥६
होता देवो अमर्त्यं पुरस्तादेति मायया । विदथानि प्रचोदयत् ॥७
वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्रणीयते । विप्रो यज्ञस्य साधनः ॥८
धिपा चक्रे वरेण्यो भूतानां गभमा दधे । दक्षस्य पितरं तना ॥९
नि त्वा दधे वरेण्यं दक्षस्येला सहस्कृत ।
अग्ने सुदोतिमुशिजम् ॥१०। २९ ॰

यज्ञ, में उपस्थित विघ्नों को नष्ट करने वाले, हवियुक्त ऋत्विजों ने स्रुक को उठाकर आश्रय के निमित्त स्तोत्रों द्वारा अग्निदेव की पूजा करते हुए बढ़ाया ॥ ६ ॥ यज्ञ-सम्पादक, मरण-रहित, प्रकाशयुक्त अग्निदेव यज्ञानुष्ठान में सबको प्रेरणा देते हुए, सहयोगपूर्वक यज्ञ में अग्रणि बनते हैं ॥७॥ अग्नि शक्तिशाली हैं । वे युद्ध में सबसे आगे स्थान ग्रहण करते हैं । यज्ञ के समय अपने स्थान पर प्रतिष्ठित होते हैं । वे यज्ञ कार्यों के सम्पादनकर्त्ता और प्रज्ञावान् हैं ॥८॥ कर्मों के द्वारा वरण करने योग्य, भूतों के कारण रूप, पिता तुल्य अग्निदेव को दक्ष–पुत्री (पृथिवी) धारण करती हैं ॥९॥

हे बलोत्पन्न अग्निदेव ! तुम श्रेष्ठ प्रकाश वाले, हवियों की कामना वाले और वरण करने योग्य हो । तुम्हें दक्ष-पुत्री इला धारण करती है ॥१०॥

अग्नि यन्तुरमप्तुरमृतस्य योगे वनुषः । विप्रा वाजैः समिन्धते ॥११
अर्जो नमातमध्वरे दीदिवांसमुपद्यवि । अग्निमीळे कविक्रतुम् ॥१२
ईंलेन्यो नमस्तस्ति रस्तमांसि वर्शतः । समग्निरिध्यते वृषा ॥१३
वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः । तं हविष्मत ईलते ॥१४
वृषण त्वा वयं वृषन्वृषणः समिधीमहि ।
अग्ने दीद्यतं वृहत् ॥१५। ३०

विश्व के नियामक और जल को प्रेरित करने वासे अग्नि को यज्ञ कार्य सम्पन्न करने के निमित्त ज्ञानी जन हवि द्वारा भले प्रकार प्रदीप्त करते हैं ॥११॥ मनुष्यों को अन्न से विहीन न होने देने वाले, अन्तरिक्ष के निकट प्रकाशवान् अग्निदेव का मैं स्तवन करता हूँ ॥१२॥ वे अनि नमस्कार करने योग्य पूज्य दर्शनीय तथा कामनाओं की वर्षा करने वाले हैं। वे प्रज्वालत होते ही अंधेरे को नष्ट करते हैं ॥१३॥ घोड़े के समान हवि वहन करने वाले कामनाओं के वर्षक अग्निदेव प्रज्वलित होते हैं। मैं उन अग्नि का पूजन करता हूं ॥१४॥ हे अग्ने ! तुम कामनाओं की वर्षा करने वाले हो । हम घृतादि खींचते हैं, तुम जल सींचते हो । हम तुम्हें प्रदीप्त करते है। तुम प्रकाशवान् और महान् हो ॥१५॥

सूक्त २८

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्
उष्णिक् जगती)

अग्ने जुषस्व नो हविः पुरोडाशं जातवेदः । प्रातःसावे धियावसो॥१
पुरोला अग्ने पचतस्तुभ्यं वा घा परिष्कृतः । त जुषस्व यविष्ठ्य॥२
अग्ने वीहि पुरोडाशमाहुतं तिरोअह्न्यम् ।
सहसः सनुस्यध्वरे हितः ॥३

माध्यन्दिने सविने जातवेदः पुरोडाशमिह कवे जुषत्व ।
अग्ने यह्वस्य तव भागधेयं न प्र मिनन्ति विदथेषु घीराः ॥४
अग्ने तृतीये सवने हि कानिषः पुरोडाशं सहसः सूनबाहुतम् ।
अथा देवेष्यध्वरं विपन्यया धा रत्नवतममृतेष जागृविम् ॥५
अग्ने वृधान आहुतिं पुरोडाश जातवेदः ।
जुषस्व तिरोअह्नचम् ॥६। ३१

हे अग्ने ! तुम जन्म में ही दीप्तिमुक्त हो। तुम्हारे स्तोत्र से बन मिलता है। तुम हमारे पुरोडाश और हव्य का प्रातः सवन में सेवन करो ॥१॥ हे अग्ने ! तुम अत्यन्त युवा हो। तुम्हारे निमित्त ही पुरोडाश पक्व किया और सिद्ध किया गया है। उसका सेवन करो।२। हे अग्ने ! उत्तम प्रकार से दिन के अन्त में दिये गये पुरोडाश का सेवन करो। तुम बल के पुत्र हो। यज्ञ कार्य में लगो ॥३॥ हे अग्ने! तुम विज्ञानी हो। मध्य सवन में पुरोडाश ग्रहण करो। अध्वयुंगण तुम्हारे यज्ञ भाग को नष्ट नहीं करते ॥४॥ हे बलोत्पन्न अग्निदेव । तुम तीसरे सवप दिये जाने वाले पुरोडाश की कामना करो। फिर इस ऐश्वर्यवान्, चैतन्य सोम को देवगण के निकट स्तुतिपूर्वक प्रतिष्ठित करो।५। हे विज्ञानी अग्निदेव ! तुम पुरोडाश रूप आहुति को दिवस के अन्त में ग्रहण करो ॥६॥ (४१

सूक्त २९

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता —अग्निः । छन्द–अनुष्टुप् पंक्तिः,
त्रिष्टुप् जगती)

अस्तीदमधि मन्थनमस्ति प्रजनन कृतभ् ।
एतां विश्पत्नीमा भराग्नि मन्थाम पूर्वथा ॥१
अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुधितो गर्भिणीषु ।
दिवेद्रिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ॥२

उत्तानायामव भरा चिकित्वान्त्सद्यः प्रवीता वृषणं जजान ।
अरुषस्तूपा रुशदस्य पाज इलायास्पुत्रो वयुनेऽजनिष्ट ॥३
इलायास्त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्या अधि ।
जातवेदो नि धीमह्यग्ने हव्याय वोलहवे ॥४
मन्थता नरः कविमद्वयन्त प्रचेतसममृतं सुप्रतीकम् ।
यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरस्तादग्निं नरो जनयता सुशेवम् ॥५।३२

अरणि संसार की रक्षा में समर्थ है, उसे लाओ । इसी के मंथन द्वारा अग्नि की उत्पत्ति होती है । पूर्वकाल के समान हम अग्नि को मंथन द्वारा प्रकट करेंगे ॥१॥ अरणियों में अग्निदेव गर्भवती स्त्री के गर्भ के समान स्थापित हैं । वे अपने कर्म में सदा तत्पर रहते हैं । उन हवियुक्त अग्नि को मनुष्य नित्य-प्रति पूजते हैं ॥२॥ हे ज्ञानवान् अध्वर्युओ ! ऊर्ध्व मुख वाली अरणि पर नीचे मुख वाली अर्णि रखो । तत्काल गर्भ वाली अरणि ने कामनाओं की वर्षा करने वाले अग्नि को प्रकट किया । उस अग्नि में दाहक गुण था । उत्तम प्रकाश वाले इला-पुत्र अग्नि अरणि द्वारा उत्पन्न हुए ॥३॥ हे विज्ञानी अग्नि देव ! हम तुम्हें पृथिवी की नाभि रूप उत्तर वेदी में हवि-वहन करने के निमित्त प्रतिष्ठित करते हैं ॥४॥ हे अध्वर्युओ ! श्रेष्ठ ज्ञानी, अविनाशी कवि, प्रदीप्तियुक्त देह वाली अग्नि को अरणि मंथन से प्रकट करो । तुम यज्ञ कर्म में मनुष्य का नेतृत्व करने वाले हो जो अग्नि यज्ञ-सूचक, सुख देने वाले, प्रथम पूज्य हैं, उन्हें प्रारम्भ में ही प्रकट करो ॥५॥ (३२)

यदी मंथन्ति बाहुभिर्वि रोचतेऽश्वो न वाज्यरुषो वनेष्वा ।
चित्रो न यामन्नश्विनोरनिवृतः परि वृणक्त्यश्मनस्तृणा दहन् ॥६
जातो अग्नी रोचते चेकितानो वाजी विप्रः कविशस्तः सुदानुः ।
यं देवास ईड्यं विश्वविदं हव्यवाहमदधुरध्वरेषु ॥७
सीद होतः स्व उ लोके चिकित्वान्त्सादया यज्ञं सुकृतस्य योनौ ।
देवावीर्देवान्हविषा यजास्यग्ने बृहद्यजमाने वयो धाः ॥८

कृणोत धूमं वृषणं सखायोऽस्त्रीधन्त इतन वाजमच्छ ।
अयमग्निः पृतनाषाट् सुवीरो येन देवासो असहन्त दस्यून् ।।९.
अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथा ।
तं जानन्नग्न आ सीदाथा नो वर्धया गिरः ।।१०।३३

हाथों द्वारा अरणि मंथन करने पर काष्ठ द्वय से वह अग्नि अश्व के समान शोभायमान तथा अश्विनीकुमारों के रथ के समान द्रुतगामी होकर सुशोभित होते हैं। उनके मार्ग को रोकने की सामर्थ्य किसी में नहीं है। वे अग्नि कपले और फूंस को जला कर उस स्थान को त्याग देते हैं ।।६।। अग्नि उत्पन्न होते ही अपने कर्म में विज्ञ होते हैं। वे स्वर्ग कर्मों के ज्ञाता तथा तेजस्वी हैं। अतः ज्ञानीजन उनका स्तवन करते हैं। वह कर्मों का फल देते हुए सुशोभित होते हैं। उन पूज्य और सर्वज्ञ अग्निदेव को देवताओं ने यज्ञ-कर्म में हवि वहन करने वाला नियुक्त किया ।।७।। हे अग्ने ! तुम यज्ञ सम्पादक हो । अपने स्थान पर बिराजमान होओ। तुम सबको जानने वाले हो। यजमान को दिव्यलोक प्राप्त कराओ। तुम देवताओं की रक्षा करने वाले हो। हवि द्वारा देवताओं की पूजा करो और मुझ यज्ञकर्त्ता को इच्छित अन्न दो ।।८।। हे अध्वर्युओ ! तुम कामनाओं की वर्षा करने वाले धूम को उत्पन्न करो उससे बलवान् होकर युद्ध में पहुंचो। अग्नि देव वीरों में श्रेष्ठ हैं। वे शत्रु सेना के विजेता हैं। देवताओं ने उन्हीं की सहायता से दैत्यों पर विजय प्राप्त की थी ।।९।। हे अग्ने ! यह काष्ठ वाली अरणि तुम्हारा प्राकट्य स्थान है। तुम इससे प्रकट होकर सुशोभित होओ। उसे जानते हुए विराजमान होओ और हमारी स्तुति को बढ़ाओ ।।१०।। [३३]

तनूनपादुच्यते गर्भ आसुरो नराशंसो भवति यद्विजायते ।
मातरिश्वा यदमिमीत मातरि वातस्य सर्गो अभवत्सरीमणि ।।११
सुनिर्मथा निर्मथित सुनिधा निहितः कविः ।
अग्ने स्वध्वरा कृणु देवान्देवयते यज ।।१२
अजीजनन्नमृतं मर्त्यासोऽस्रेमाणं तरणिं वीलुजम्भम् ।

दश स्वसारो अग्रुवः समीचीः पुमांसंस जातमभि सं रभन्ते ॥१३
प्र सप्तहोता सनकादरोचत मातुरुपस्थे यदशीचदूधनि ।
न नि मिषति सूरणो शिवेदिवे यदसुरस्य जठरादजायत ॥१४
अमित्रायुधो मरुतामिव प्रयाः प्रथमजा ब्रह्मणो विश्वा मिद्विदुः ।
द्युम्नवद्ब्रह्म कुशिकास एरिर एक एको दमे अग्नि समीधिरे।१५
यदद्य त्वा प्रयात यज्ञे अस्मिन्हो । श्चकित्वोऽवृणीमहीह ।
ध्रुव मया ध्रुव मुताशामष्ठाः प्रजानन्विदाँ उप याहि सोमम् ॥१६।३४

जिस अग्नि का व्यापक रूप कभी नष्ट नहीं होता, उसे तनूनपात् कहते हैं। जब वह साक्षात् होते हैं तब आसुर और नराशंस कहलाते हैं और जब अन्तरिक्ष में अपने तेज को फैलाते हैं तब मातरिश्वा होते हैं। जब वह प्रकट होते हैं, तब वायु के समान होते हैं ॥११॥ हे अग्ने ! तुम ज्ञानी तथा मन्थन से उत्पन्न हो । तुम श्रेष्ठ स्थान में प्रतिष्ठित हो। हमारे यज्ञ को निर्विघ्न पूर्ण करो । हम, देवताओं को कामना करने वालों के निमित्त देवताओं का पूजन करो ॥१२॥ मरणधर्मा ऋत्विजों ने अक्षय, अविनाशी दृढ़ दाँतों वाले और पाप से उद्धार करने वाले अग्नि को प्रकट किया । सन्तान के समान उत्पन्न हुए उस अग्नि के प्रति, भगिनी-रूपिणी दसों अंगुलियाँ हर्ष-सूचक ध्वनि करती हैं ॥१३॥ अग्नि प्राचीन हैं। सप्त होताओं द्वारा किये जाने वाले यज्ञ में अत्यन्त सुशोभित होते हैं। जब वे वेदी में क्रीड़ा करते हैं तब अत्यन्त कांतियुक्त लगते हैं। वे सदा चैतन्य रहते हैं। वे असुर के मध्य से उत्पन्न हुए हैं ॥१४॥ शत्रुओं से मरुद्गण के समान युद्ध करने वाले ब्रह्मा द्वारा प्रथम उत्पन्न कौशिक ऋषियों ने सम्पूर्ण विश्व को जाना । वे अपने ग्रह में अग्नि को प्रदीप्त करते और उनके प्रति हवि देते हुए स्तुतियाँ करते हैं ॥१५॥ यज्ञ-कार्य सम्पन्न करने वाले, मेधावी, सर्वज्ञाता अग्नि को हम इस यज्ञ में स्थापित करते हैं। हे अग्ने ! इस यज्ञ में देवताओं को हवि दो। उनकी नित्य प्रति स्तुति करो। सोम को सिद्ध हुआ जानकर उसको प्राप्त होओ ॥१६॥

३० सूक्त (तृतीय अनुवाक)

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप् पंक्ति)

इच्छन्ति त्व सोम्यासः सखायः सुन्वन्ति सोम दधति प्रयांसि ।
तितिक्षन्ते अभिशस्ति जनानामिन्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः ॥१
न ते दूरे परमा चिद्रजांस्या तु प्र याहि हरिवो हरिभ्याम् ।
स्थिराय वृष्णे सवना कृतेमा युक्ता ग्रावाणः समिधाने अग्नौ ॥२
इंद्रः सुशिप्रो मघवा तरुत्रो साहाव्रातस्तुविकेमिऋं घावान् ।
यदुग्रो धा वाधितो मर्त्येषु क्व त्या ते वृषभ वीर्याणि ॥३
त्व हिष्मा च्चावयन्नच्यु तान्येको वृत्रा चरसि जिघ्नमानः ।
व द्यावापृथिवो पर्वतासोऽनुव्रताय निमितेव तस्थुः ॥४
उताभये पुरुहूत श्रवोभिरेको दृलहमवदो वृत्रहा सन् ।
इमे चिदिन्द्र रोदसी अपारे यत्संगृभ्णा मघवन्काशिरत्ते ॥५॥१

हे इन्द्र ! सोम वाले ऋत्विगण तुम्हारी स्तुति- कामना करते हैं। मित्रगण तुम्हारे निमित सोम छानते हैं। उनमें से कुछ शत्रुओं के विघ्नों को सहन करते हुए हवि धारण करते हैं। तुम्हारे सिवाय विश्व में अधिक ख्यातिप्राप्त अन्न कौन है ? ॥१॥ हे हरित् वर्ण वाले अश्व युक्त इन्द्र ! सुदूर स्थान भी तुम्हारे लिए दूर नहीं है। तुम अपने अश्व सहित शीघ्र पधारो। तुम दृढ़ विचार वाले तथा कामनाओं की वर्षा करने वाले हो। यह सवन तुम्हारे निमित्त ही किया गया है। अग्नि के प्रदीप्त होने पर सोम कूटने के लिए पाषाण कार्य में लिये जाते हैं ॥२॥ हे कामनाओं की वर्षा करने वाले इन्द्र ! तुम महान् ऐश्वर्यवान् हो। तुम्हारा शिरस्त्राण देखने योग्य है। तुम विजयशील, धनयुक्त मरुतों से युक्त, युद्ध में विविध कर्म वाले, शत्रुओं का संहार करने वाले तथा विकराल हो। तुमने मनुष्यों के लिए जो कर्म युद्धों में किये, वह पराक्रम युक्त कर्म कहाँ हैं ? ॥३॥ हे इन्द्र ! तुमने अकेले ही अत्यन्त दृढ़ असुरों को धराशायी किया। वृत्रादि का संहार किया आकाश- पृथिवी और पर्वत तुम्हारे कर्म से ही अचल हुए हैं ॥४॥ हे इन्द्र ! तुम

बहुतों द्वारा आह्वान किये गये हो । तुम अत्यन्त पराक्रमी हो । तुमने अकेले ही वृत्र का सहार कर देवताओं को निर्भय बनाया । तुम्हीं आकाश-पृथिवी को कर्मों में लगाते हो । हे मघवन् ! तुम्हारी यह महिमा प्रसिद्ध है ॥ ५ ॥ [१]

प्र सू त इन्द्र प्रवता हरिभ्यां प्र ते ते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून् ।
जहि प्रतीचो अनूचः पराचो विश्वं सत्यं कृणुहि विष्टमस्तु ॥६
तस्मै धायुरदधा मर्त्यायाभक्तं चिद्भजते गेह्यं स ।
भद्रा त इन्द्र सुमतिर्घृताची सहस्रदाना पुरुहूत रातिः ॥७
सहद नुं पुरुहूत क्षियन्तमहस्तमिन्द्र सं पिणक् कुणारुम् ।
अभि वृत्रं वर्धमानं पियारुमपादमिन्द्र तवसा जघन्थ ॥८
नि सामनामिषिरामिन्द्र भूमिं महीमपारां सदने ससत्थ ।
अस्तभ्नाद् द्यां वृषभो अन्तरिक्षमर्षन्त्वापस्त्वयेह प्रसूताः ॥९
अलातृणो वल इन्द्र व्रजो गोः पुरा हन्तोर्भयमानो व्यार ।
सुगान्पथो अकृणोन्निरजे गाः प्रावन्वाणीः पुरुहूतं धमन्तीः ॥१०।२

हे इन्द्र ! तुम्हारा अश्वयुक्त रथ शत्रु के विरुद्ध शीघ्र आवे । शत्रु को मारने वाला तुम्हारा बज्र कार्य करे । अपने सम्मुख आए शत्रुओं का संहार करो । भागने वाले शत्रुओं को मारो । संसार को यज्ञ-कर्म करने वाला बनाओ । तुम में ही ऐसी सामर्थ्य है ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम सदा ऐश्वर्यवान् रहते हो । तुम जिसे देते हो, वह उसे पहिले कभी प्राप्त नहीं था वह गृहोपयोगी पशु, सुवर्ण आदि धनों को पाता है । तुम बहुतों द्वारा स्तुति तथा घृत युक्त हवियों से युक्त हो । तुम्हारे अनुग्रह में ही मङ्गल हैं। अन्नदान करने की तुम में असीमित सामर्थ्य है ॥७॥ हे इन्द्र ! तुम अनेकों द्वारा स्तुति किये गये हो । तुम दान से युक्त हो । तुम बाधा देने वाले गर्जनकारी वृत्र को हस्तविहीन तथा छिन्न-भिन्न करते हो । उस बढ़े हुए वृत्र को पंगु बनाकर अपनी शक्ति से तुमने नष्ट कर दिया ॥८॥ हे इन्द्र ! तुमने अनन्त, विशाल और गतिमान पृथिवी को स्थापित किया था । तुमने आकाश और अन्तरिक्ष को ऐसे धारण किया, जिससे वह गिर न सके । हे इन्द्र !

तुम्हारी प्रेरणा से जल पृथिवी को प्राप्त हो ॥९॥ हे इन्द्र ! जलों का गोष्ठभूत मेघ वज्र प्रहार से पूर्व ही खण्ड-खण्ड होगया । जल रूप गौ के निकलने का मार्ग तुमने सरल किया । शब्द करता हुआ रमणीय जल अनेकों द्वारा पूजित हो कर इन्द्र के समक्ष उपस्थित हुआ ॥१०॥ [२]

एको द्वे वसुमती समीचो इन्द्र आ पप्रौ पृथिवीमृतद्याम् ।
उतान्तरिक्षादभि नःसमीक इषो रथीः सयुजः शूर वाजान् ॥११
दिशः सूर्यो न मिनाति प्रदिष्टा दिवेदिवे हर्यश्व प्रसूतः ।
सं यदानलध्वन आदिदश्वैर्विमोचनं कृष्णुते तत्त्वस्य ॥१२
दिदृक्षन्त उषसो यामन्नक्तोर्विस्वत्या महि चित्रमनीकम् ।
विश्वे जानन्ति महिना यदागादिन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ॥१३
महि ज्योतिर्निहितं वक्षणास्वमा पक्वं चरति बिभ्रीत गोः ।
विश्वं स्वाद्म सम्भृतमुस्त्रियायाँ यत्सीमिन्द्रो अदधाद्भोजनाय ॥१४
इन्द्रदृह्य याम कोशा अभूवन्यज्ञाय शिक्ष गृणते सखिभ्यः ।
दुर्मायवो दुरेवा मर्त्यासो निषङ्गिणो रिपवो हन्त्वासः ॥१५।३

इन्द्र ने अपने कर्म द्वारा आकाश-पृथिवी को सुसंगत कर अन्न-धन से पूर्ण किया । हे वीर इन्द्र ! तुम रथी हो । हमारे साथ रहने की इच्छा से रथ में जुते अश्वों को हमारे सामने करो ॥ ११ ॥ इन्द्र से ही सूर्य प्रेरणा पाते हैं । वे प्रकाशवान् दिशाओं पर नित्यप्रति गमन करते हैं । जब वे अपने अश्व सहित अपना गमन-मार्ग पूर्ण कर लेते हैं, तब हम से अलग होते हैं यह सब भी इन्द्र की प्रेरणा से ही होते हैं ॥१२॥ गतिगान् रात्रि के पश्चात् उषा के भी चले जाने पर उन अद्भुत, महान् और तेजस्वी सूर्य के दर्शन करने को सभी उत्सुक होते हैं । जब उषाकाल समाप्त हो जाता है तब मनुष्य यज्ञादि कर्म में लग जाते हैं । इस प्रकार अनेक उत्तम कार्य इन्द्र के ही हैं ॥ १३ ॥ इन्द्र ने महान् गुण वाले जल को नदियों में प्रयुक्त किया, इन्द्र ने अत्यन्त स्वादिष्ट दही, घृत क्षीर आदि भोजन को जल रूप से गौ में धारण किया । वह नवप्रसूता गौ दुग्धवती हुई घूमती है ॥ १४ ॥ हे इन्द्र !

तुम दृढ़ होओ । शत्रुओं ने विघ्न उपस्थित किया है । तुम यज्ञकर्त्ता स्तोता तथा मित्रों को उनका अभीष्ट फल दो । शत्रुगण मन्द गति से चलते हुए शस्त्र चलाते हैं । वे धनुष वाण से युक्त हिंसक हैं, उनका संहार करना उचित है ॥१५॥

सं घोषः शृण्वेऽवमरैरमित्रैर्जही न्यूष्वशनिं तपिष्ठाम् ।
बृश्चेमधस्ताद्वि रुजा सहस्व जहि रक्षो मघवन् रन्धयस्व ॥१६
उद्वृह रक्षः सहमूलमिन्द्र बृश्चा मध्यं प्रत्यग्रं शृणीहि ।
आ कीवतः सललूकं चकर्थ ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतमस्य ॥१
स्वस्तये वाजिभिश्च प्रणेतः स यन्महीरष आसत्सि पूर्वीः ।
रायो वन्वा रोवृहतः स्यामास्मे अस्तु भग इन्द्र प्रजावान् ॥१८
आ नो भर भगमिन्द्र द्युमन्तं नि ते देष्णस्य धीमहि प्ररेके ।
ऊर्वइव वप्रथे कामो अस्मे तमा पृण वसुपते वसूनाम् ॥१९
इमं काम मंदया गोभिरश्वैश्चन्द्रपता राधसा पप्रथश्च ।
स्वर्यवो मतिभिस्तुभ्यं विप्रा इन्द्राय वाहः कुशिकासो अक्रन् ॥२०
आनो गोत्रा दर्दृहि गोपते गाः समस्मभ्य सनयो यन्तु वाजाः ।
दिवक्षा असि वृषभ सत्यशुष्मोऽस्मभ्यंसु मघवन्गोधि गोदाः ॥२१
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रं मस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वंतमुग्रमूतये समत्सुं घ्नन्वृतत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥२२

"हे इन्द्र ! शत्रुओं द्वारा फेंके गए वज्र का शब्द हमको सुनाई पड़ता है । घोर दुःख देने वाली अशनियों (तोप आदि) को शत्रुओं के सामने ही नष्ट कर डालो । शत्रुओं के कार्य में बाधा देते हुए उन्हें छेद डालो । हे इन्द्र ! राक्षसों का संहार करके यज्ञ-कर्म में लगो ॥१६॥ हे इन्द्र दैत्यों के वंश को जड़ से नष्ट करो । उनके मध्य भाग में प्रहार करो । अगले भाग को नष्ट करते हुए उन्हें दूर कर दो । यज्ञ से द्वेष करने वाले पर दुःखदायक हथियार चलाओ ॥१७॥ हे इन्द्र ! तुम विश्व के पोषक हो । हमको अश्व-युक्त बनाओ । हमको अमरत्व प्रदान करो । तुम्हारी निकटता प्राप्त कर

हम महान् अन्न और प्राप्त धन के उपभोग द्वारा वृद्धि को प्राप्त होंगे। हमको पुत्रपौत्रादि सहित धन प्राप्त कराओ ॥ १८ ॥ हे इन्द्र ! हमारे निमित्त उज्ज्वल धन लेकर आओ। तुम दान करने वाले हो। हम तुम्हारे दान को पाने योग्य हैं। हमारी कामना अत्यन्त बढ़ी हुई है तुम धन के स्वामी हो। हमारी कामना की पूर्त्ति करो ॥१९॥ हे इन्द्र ! हमारी गौ-अश्व तथा रमणीय धन वाली कामना को अपने दान द्वारा पूर्ण करो। उससे हमको ख्याति प्राप्त हो। स्वर्ग की कामना वाले तथा सुख प्राप्ति की इच्छा वाले कर्मवान् कौशिकों ने श्रेष्ठ मन्त्रों से तुम्हारी स्तुति की है ॥२०॥ हे स्वर्ग के स्वामी इन्द्र ! मेघको छिन्न-भिन्न कर हमको जल प्रदान करो। उपभोग्य अन्न हमको प्राप्त हो। तुम अभीष्ट के वर्षक हो। आकाश को व्याप्त करते हुए रहते हो। तुम सत्य के बल से युक्त हो। हमको गौ प्रदान करो ॥२१॥ हे इन्द्र ! तुम अन्नवान् हो। युद्ध में उत्साहपूर्वक बढ़े हुए तुम अत्यन्त धन वाले, ऐश्वर्यशाली, नायकों में श्रेष्ठ स्तुतियों को सुनने वाले, विकराल शत्रुओं का संहार करने वाले और धनों को जीतने वाले हो। हम तुम्हारे आश्रय के निमित्त तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥२२॥

सूक्त ३१

(ऋषि—विश्वामित्रः कुणको वा। देवता—इन्द्रः। छन्द—पंक्तिः, अनुष्टुप्)

शासद्वह्निर्दुहितुर्नप्त्यं गाद्विद्वाँ ऋतस्य दीधितिं सपर्यन् ।
पिता यत्र दुहितुः सेकमृञ्जन्त्सं शग्म्येन मनसा दधन्वे ॥१
न जामये तान्वो रिक्थमारैक्चकार गर्भं सनितुर्निधानम् ।
यदी मातरो जनयंत वह्निमन्यः कर्ता सुकृतोरन्य ऋन्धन् ॥२
अग्निर्जज्ञे जुह्वा रेजमानो महस्पुत्राँ अरुषस्य प्रयक्षे ।
महान्गर्भो मह्या जातमेषां मही प्रवृद्धर्यश्वस्य यज्ञैः ॥३
अभि जैत्रीरसचत स्पृधानं महि ज्योतिस्तमसो निरजानन् ।
तं जानतीः प्रत्युदायन्नुषासः पतिर्गवामभवदेक इन्द्रः ॥४
वीळौ सतीरभि धीरा अतृन्दन्प्राचाहिन्वन्मनसा सप्त विप्राः ।

विश्वामविन्दन्पथ्यामृतस्य प्रजानन्नित्ता नमसा विवेश ।।५।५

जिसके पुत्र न हो ऐसा व्यक्ति अपनी पुत्री का योग्य पुरुष से विवाह करता हुआ दौहित्र को प्राप्त करता है । वह पुत्रहीन व्यक्ति, पुत्री के गर्भधारण विश्वास पर जीवित रहता है ।। १ ।। औरस पुत्र से पुत्री को धन नहीं मिलता । वह पुत्री को उसके पति सेंचन-कार्य द्वारा माता बनाता है । यदि माता-पिता के पुत्र और पुत्री दोनों ही उत्पन्न हों, तो उनमे से पुत्र क्रिया-कर्म करने का अधिकारी है तथा पुत्री सम्मान की अधिकारिणी है ।।२।। हे इन्द्र ! तेजस्वी हो । हमारे यज्ञ के निमित्त कम्पित अग्नि के पुत्र रूप किरणों को प्रकट किया है । इन किरणों का गर्भ जल-रूप है । इनका महान् जन्म औषिध-रूप है ! हे हरे अश्व वाले इन्द्र, सोम द्वारा प्रेरित तुम्हारी इन किरणों के कर्म महत्तावान् होते हैं ।।३।। वृत्र से संग्राम-रत इन्द्र के साथ मरुद्गण मिले थे । सूर्य रूप महान् तेज अन्धकार रूप वृत्र के आवरण मे भी मार्ग-दर्शक है, इसे मरुद्गण जान गये । उषाओं नें इन्द्र को सूर्य समझा और उनके समक्ष पहुंची । तब एक मात्र इन्द्र ही समस्त किरणों के स्वामी हुए ।।४।। प्रज्ञावान् सप्त अङ्गिराओं ने सुदृढ़ पर्वत पर रोकी हुई गौओ को ढूंढ़ा । 'पर्वत पर 'गौऐं हैं' यह विश्वास कर वे जिस मार्ग से वहाँ गये, उसी से लौटे । उन्होने यज्ञ-मार्ग द्वारा सभी गौओं को प्राप्त किया । अङ्गिराओं की नमस्कार युक्त पूजा से प्रभावित इन्द्र इस बात को जान कर पर्वत पर पहुंचे ।।५।। [५]

विदद्यती सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यं सध्र्यक्कः ।
अग्रं नयत्सुपद्यक्षराणामच्छा रवं प्रथमा जानता गात् ।।६
अग छदु विप्रतमः सखीयन्नसुदयत्सूकृते गर्भमद्रिः ।
समान मर्यो युवभिर्मखस्यन्नथाभवदङ्गिराः सद्यो अर्चन् ।।७
सतः सतः प्रतिमानं पुरोभूर्विश्वा वेद जनिमा हन्ति शुष्णम् ।
प्र णो दिवः पदवीर्गव्युरर्चन्त्सखा सखीँरमुञ्चन्निरवद्यात् ।।८
नि गव्यता मनसा सेदुरर्कैः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम् ।

इदं चिन्नु सदनं भूयषां येन मासां असिषासन्नृतेन ।।६
सम्पश्यमाना अमदन्नभि स्वं पयः प्रत्नस्य रेतसी दुघानः ।
वि रोदसी अतपद्धोष एषां जाते निःष्ठामदधुर्गोषु वीरान् ।।१०।६।

पर्वत के टूटे हुए द्वार पर जब सरमा गई, तब इन्द्र ने अपने वचनानुसार उसे उसका चाहा हुआ प्रचुर अन्न तथा धन प्रदान किया। वह उत्तम पाँव वाली सरमा गौओं के शब्द को पहचानती हुई उनके समीप प्राप्त हुई ।।६।। अत्यन्त प्रज्ञासम्पन्न इन्द्र अङ्गिराओं के प्रति मैत्री-पूर्ण इच्छा से वहाँ पहुंचे। पर्वत ने अपने में छिपे हुए गोधन को उन महान् योद्धा के निमित्त प्रकट किया, शत्रु का संहार करने वाले इन्द्र ने युवा मरुतों की सहायता से उन्हें पाया। तब अङ्गिराओं ने उनका पूजन किया ।।७।। जो समस्त ऐश्वर्यवानों में अग्रण्य हैं, जो रण-क्षेत्र में सबसे आगे चलते हैं, जो सभी उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता हैं जिन्होंने शुष्ण को मारा था, वे इन्द्र गोधन की इच्छा वाले तथा अत्यन्त दूरदर्शी हैं। वे हमको आदर प्रदान करते हुए पाप से रक्षा करते हैं ।।८।। मेधावीजन अन्तःकरण में गोधन-प्राप्ति की इच्छा से स्तोत्र द्वारा अमरत्व प्राप्ति का यत्न करते हुए यज्ञ कर्म में लगे। इनका यज्ञ ही महान् आश्रय रूप है। इन्होंने इस सत्य के कारण भूत यज्ञ के बल से महीनों को विभक्त किया ।।९।। अङ्गिरावंशियों ने प्रथम उत्पन्न पुत्रों की रक्षा के निमित्त गोधन प्राप्त कर उनका दोहन किया और शरीर को पुष्ट बनाया। उनकी हर्ष ध्वनि आकाश-पृथिवी में व्याप्त हो गई। वे पूर्वकाल के समान ही संसार में रहे और गौओं की रक्षा के लिये उन्होंने वीरों नियुक्त किया ।।१०।।

[६.

स जातेभिर्वृत्रहा सेदु हव्यैरुदुस्रिया असृजोदद्री अर्कैः।
उरूच्यस्मै घृतवद्मरंती मधु स्याद्म दुदुहे जेन्या गौः ।।११
पित्रे चिच्चक्रुः सदनं समस्मै महि त्विषीमत्सुकृतो चि हि ख्यन्।
वष्कभ्नन्त:स्कम्भनेना जनित्रो आसीना ऊर्ध्वं रभसं वि मिन्वन्।।
मही यदि धिषणा शश्नथे धात्सद्यवृधं विभ्वं रोदस्तोः।

गिरो यस्मिन्नवद्याः समीचीर्विश्वा इंद्राय तविषीरनुत्ताः ॥१३
मह्यः ते सख्यं वश्मि शक्तीरावृत्रघ्ने नियुतो यन्ति पूर्वीः ।
महि स्तोत्रमव आगन्म सूरेरस्माकं सु मघवन्बोधि गोपाः ॥१४
महि क्षेत्रं पुरुश्चन्द्रं विविद्वानादित्सखिभ्यश्चरथं समैरत् ।
इंद्रो नृभिरजनद्दीद्यानः साकं सूर्यमुषसं गातुमग्निम् ॥१५।७

इन्द्र ने मरुद्गण को साथ लेकर वृत्र का संहार किया । वे ही पूज्य हैं तथा यजन करने योग्य हैं । उन्होंने मरुद्गण के साथ यज्ञ के निमित्त गौओं का दान किया । घृतयुक्त हवि वाली तथा उत्तम हवि देने वाली गौ ने इनके निमित्त सुस्वादु क्षीर प्रदान किया ॥११॥ उन पालनकर्त्ता इन्द्र के लिए अङ्गिराओं ने अत्यन्त स्वच्छ एवं उज्ज्वल श्रेष्ठ स्थान का संस्कार किया । उत्तम कर्म वाले अङ्गिराओं ने इन्द्र के योग्य इस सुन्दर स्थान को दिखाया । उन्होंने यज्ञ में बैठकर आकाश पृथिवी के मध्य अन्तरिक्ष रूप स्तम्भ का आरोपण कर इन्द्र को स्वर्ग में प्रतिष्ठित किया था ॥१२॥ आकाश-पृथिवी के विश्लेषण में प्रयुक्त वाणी, उसके वर्णन में समर्थ न हो तो भी इन्द्र की स्तुति द्वारा वृद्धि को प्राप्त होती हुई सुसंगत होती है । उन इन्द्र कीं सभी शक्तियाँ स्वयं सामर्थ्य वाली हैं ॥१३॥ हे इन्द्र ! मैं तुम्हारे महान् मित्र-भाव की याचना करता हूं ॥ तुम्हारी शक्ति के निमित्त याचना करता हूं । तुम वृत्र का संहार करने वाले हो । तुम्हारे पास अनेक अश्व हैं । तुम अत्यन्त मेधावी हो । हम तुम्हें अपना हार्दिक मित्र-भाव, स्तोत्र और हवियाँ अर्पित करेंगे । हे इन्द्र ! तुम हमारे रक्षक हो, हमको बुद्धिमान् बनाओ ॥१४॥ इन्द्र ने भले प्रकार विचार कर मित्रों को भूमि और सुवर्ण रूप धन प्रदान किया । फिर उन्होंने गवादि धन भी दिया । वे अत्यन्त तेजस्वी हैं । उन्होंने ही मरुद्गण, सूर्य, उषा, पृथिवी और अग्नि को प्रकट किया ॥१५॥ [७]

अपश्चिदेष विभ्वा दमूना प्र सध्रीचीरसृजद्विश्वश्चन्द्राः ।
मध्वः पुनानाः कविभिः पवित्रैर्द्युभिर्हिन्वन्त्यक्तुभिर्धनुत्रीः ॥१६
अनु कृष्णे वसुधिती जिहाते उभे सूर्यस्य मंहना यजत्रे ।
परि यत्ते महिमानं वृजध्यै सखाय इन्द्र काम्या ऋजिप्याः ॥१७

पतिर्भव वृत्रहंत्सूनुतानां विश्वापुर्वृषभो वयोधाः ।
आ नो गहि स व्येभिः शिवेभिर्महान्महीभिरूतिभिः सरण्यन् ॥१८
तमङ्गिरस्वन्नमसा सपर्यन्नव्यं कृणोमि सन्यसे पुराजाम् ।
द्रुहो वि याहि वहुला अदेवीः स्वश्च नो मघवन्त्सातये धा ॥१९
मिहः पावकाः प्रतता अभूवन्त्स्वस्ति नः पिपृहि पारमासाम् ।
इन्नु त्वं रथिरः पाहि ना रिषो मक्षू मक्षू कृणुति गजितो नः ॥२०
अदेदिष्ट वत्रहा गोपतिर्गा अंतः कृष्णाँ अरुषैर्धामभिर्गात् ।
प्र सुनृता दिशमान ऋतेन दुरश्च विश्वा अवृणोदप स्वाः ॥२१
शुनं हुवेम मघवानमिद्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वतमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्त वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥२२॥८

वे इन्द्र शांत स्वभाव से युक्त हैं। इन्होंने अत्यन्त वेग वाले सुसंगत और विश्व को परम आनन्द देने वाले जल को प्रकट किया। वह मधुर सोमों को पवित्र करते तथा अग्नि, सूर्य और वायु के द्वारा शुद्ध करते हैं। वे ही सम्पूर्ण जगत् को आनन्द प्रदान करते हुए इस विश्व को दिन और रात्रि में भी अपने कर्मों में लगाते हैं ॥१६॥ सूर्य की महिमा के समस्त पदार्थों के धारण करने वाले तथा यज्ञ निर्वाहक दिन रात्रि क्रमपूर्वक भ्रमण करते हैं। ऋजु रूप, मित्र-भाव वाले मरुद्गण शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए तुम्हारी शक्ति का आश्रय प्राप्त करते हैं ॥१७॥ हे इन्द्र! तुम पुत्र-संहारक हो। तुम कामनाओं की वर्षा करने वाले, अमर तथा अन्न प्रदान करने वाले हो। तुम हमारी प्रिय स्तुतियों के अधिपति होओ। तुम यज्ञ में जाने की इच्छा वाले एवं महान् हो। तुम अपनी कल्याण वहन करने वाली मित्रता सहित तथा महान् आश्रय से युक्त हुए हमको प्राप्त होओ ॥१८॥ हे इन्द्र! तुम प्राचीन हो। अङ्गिराओं के समान मैं भी तुम्हारा पूजन करता हूं। मैं तुम्हारे स्तवन के निमित्त नवीन स्तुतियां प्रस्तुत करता हूं। तुम देवताओं के बैरियों का संहार करने वाले हो। हे इन्द्र! हमारे लिये उपभोग करने योग्य धन प्रदान करो ॥१९॥ हे इन्द्र! यह पवित्र जल सब ओर फैल गया। हमारे इस श्रेष्ठ तट को जल से पूर्ण करो। तुम रथ युक्त हो।

शत्रुओं से हमारी रक्षा करो। हमको गौओं के जीतने योग्य बल दो।२०। वृत्त का संहार करने वाले गौओं के स्वामी इन्द्र हमको गौऐं दें। यज्ञ में विघ्न करने वाले राक्षसों को अपने प्रकाशवान्‌तेज से मार डालें। उन्होंने सत्य के द्वारा अङ्गिराओं को रमणीय गौऐं दान कीं और असत्य के सभी मार्गों को रोक दिया ॥२१॥ हे इन्द्र ! तुम अन्न का लाभ कराने वाले, युद्ध में उत्साह द्वारा वृद्धि को प्राप्त हुए धन से युक्त,ऐश्वर्यवानों में श्रेष्ठ स्तुतियों के सुनने वाले, विकराल, रणस्थल में शत्रुओं का संहार करने वाले तथा धनों के जीतने वाले हो। मैं आश्रय प्राप्त करने के लिए तुम्हारा आह्वान करता हूँ ॥२२॥ ८

सूक्त ३२

(ऋषि--विश्वामित्रः। देवता - इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप्पंक्ति)

इन्द्र सोमं सोमयते पवेम मधयन्दिनं सवन चारु यत्ते।
प्रप्रुथ्या शिप्रे मघवन्नृजीषिन्विमुच्या हरी इह मादयस्व ॥१
गवाशिरं मन्थिनमिन्द्र शुक्रं पिवा सोमः ररिमा ते मदाय।
ब्रह्माकृता मारुतेना गणेन सजोषा रुद्रस्तृपदा वृषस्व ॥२
ये ते शुष्मं ये तविषीमववान्नवन्त इंद्र मरुतस्त आजः।
माध्यन्दिने सवने वज्रहस्त पिवा रुद्रेभिः सगणः सुशिप्र ॥३
त इंद्रन्वस्य मधुमद्विविप्र इंद्रस्य शर्धोः मरुतो य आसन्।
ये भिर्वृत्रस्येषितो विवेदामर्मणो मन्यमानस्य मर्म ॥४
मनुष्वदिद्र सवन जुषाण पिवा सोम शश्वते वीर्याय।
स आववृत्स्व हर्यश्व यज्ञैः सरण्युभिरपो अर्णा सिसर्षि ॥५। ९

हे इन्द्र ! तुम सोम के स्वामी हो। इस मध्य सवन में सोम पान करो। यह सोम तुमको अत्यन्त प्रिय हैं। तुम धन से युक्त तथा सोम से युक्त हो। अपने अश्वों को रथ से पृथक् कर उनके मुख को श्रेष्ठ तृणादि पूर्ण करते हुए उन्हें इस यज्ञ में आनन्दित करो ॥१॥ हे इन्द्र ! दुग्धादि से युक्त, संस्कारित नवीन सोम को पीओ। तुम्हारी प्रसन्नता के निमित्त

हम उसे भेंट करते हैं। तुम मरुद्गण और रुद्रों के साथ तृप्त होने तक सोम-पान करो ॥२॥ हे इन्द्र ! जो मरुद्गण, शत्रु को सुखाने वाले तुम्हारे तेज की वृद्धि करते हैं, वे मरुद्गण, ही तुम्हारे बल को बढ़ाने वाले भी हैं। वे मरुद् ही स्तुति से तुम्हारी युद्ध सामर्थ्य को बढ़ाते हैं। तुम वज्र धारण कर, सुशोभित शिरस्त्राण युक्त हुए मध्य सवन में रुद्रों सहित सोम पान करो ॥३॥ वृत्र को विश्वास था कि मेरा भेद कोई नहीं जानता। परन्तु मरुतों की सहायता और प्रेरणा द्वारा इन्द्र ने वृत्र का भेद जान लिया। उन्हीं मरुद्गण ने उत्साह वर्द्धक मधुर वाणी से तुम्हें उत्साहित किया था ॥४॥ हे इन्द्र ! मनु के यज्ञ के समान तुम मेरे यज्ञ का ग्रहण करते हुए स्थायी बल के निमित सोम पीओ। तुम हरे अश्व वाले हो। यज्ञ के पात्र मरुद्गण के सहित आओ और अन्तरिक्ष से जल को छोड़ो ॥५॥

त्वमपो युद्ध वृत्रं जवन्वाँ अत्यांइव प्रासृजः सर्तवाजौ ।
शयानमिन्द्र चरता वधेन वव्रिवांसं परि देवीरदेवीम् ॥६
यजाम इन्नमसा बृद्धामन्द्र बृहन्तमृष्वमजरं युवानम् ।
यस्य प्रिये ममतुयज्ञियस्य न रोदसी म हमानं ममाते ॥७
इंदस्य कर्म सुकृता पुरूणि ब्रतानि देवा न मिनन्ति विश्वे ।
दाधार यः पृथिवी द्यामुतेमां जजान सुर्यमुषसं सुदंसाः ॥८
अद्रोघ सत्यं तव तन्महित्व सद्यो यज्जातो अपिबो ह सोमम् ।
न द्याव इंद्र तवसस्त ओजा नाहा न मासा शरदो वरन्त ॥९
त्वं सद्यो अपिबो जात इंद्र मदाय सोम परमे व्योमन् ।
युद्ध द्यावापृथिवी आविवेशारथाभवः पूर्व्यः कारुधायाः ॥१०॥१०

हे इन्द्र ! तुम उज्ज्वल जल को ढकते हो। तुमने उस सोते हुए वृक्ष को युद्ध में गिराया है। तुमने युद्ध में अश्व के समान जल को छोड़ दिया ॥६॥ हवि द्वारा वृद्धि को प्राप्त, अविनाशी, महान, सतत युवा स्तुति के पात्र इन्द्र का हम पूजन करते हैं। महती आकाश और पृथिवी

भी इन्द्र की महिमा को सीमित करने में समर्थ नहीं हैं।।७।।इन्द्र के उत्तम कर्म, यज्ञादि पराक्रम में सभी देव मिलकर भी बाधा नहीं डाल सकते। वे आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष के धारणकर्ता हैं। उनके कर्म श्रेष्ठ हैं। उन्हीं ने सूर्य और उषा को प्रकट किया है।।।८।। हे इन्द्र! तुम्हारी कामना श्रेष्ठ है। तुम्हारी महिमा ही प्रमुख है। तुम प्रकट होकर ही सोम पीते हो। तुम शक्तिशाली हो। तुम्हारे तेज को स्वर्गादि लोक, दिन, मास और वर्ष कोई भी नहीं रोक सकता।।९।। हे इन्द्र! तुमने उत्पन्न होते ही सब से ऊँचे लोक स्वर्ग में विराजमान होकर प्रसन्नता के लिए सोम पान किया। जब तुम आकाश पृथिवी में व्याप्त हुए तभी सम्पूर्ण सृष्टि के विधाता बन गये।।१०।।

अहन्नहिं परिशयानमर्णं ओजायमानं तुविजात तव्यान्।
न ते महित्वमनु भूदध द्यौर्यदन्यया स्फिग्या क्षाम स्था ।।११
यज्ञो हि त इन्द्र बधनो भदुत प्रियः सुतसोमो मियेधः।
तज्ञेन यज्ञमव यज्ञियः सन्यज्ञस्ते वज्रमहिहत्य आवत् ।।१२
यज्ञेनेन्द्रमवसा चक्री अर्वागैन सुम्नाय नव्यसे ववृत्याम्।
यः स्तोमेभिर्वावृधे पूर्व्येभिर्यो मध्यमेभिरुत नूतनेभिः ।।१३
विवेष यन्मा जजान स्तवै पुरा पार्यादिन्द्रमह्नः।
अहंसो यत्र पीपरद्यथा नो नावेव यान्तमुभयै हवन्ते ।।१४
अपूर्णो अस्य कलश स्वाहा सेयतेव कोश सिञ्चे पिबध्यै।
सम प्रिया आववृत्रन्मदाय प्रदक्षिणिदभि सोमास इंद्रम् ।।१५
न त्वा गभोरः पुरुहूत सिन्धुर्नाद्रयः परि षन्तो वरन्त।
इत्था सखिभ्य इषितों यदिन्द्रा दृलह चिदरुजो गव्यमूर्वम् ।।१६
शुनं हुवेम मघवान मिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं बाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतयेसमम्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ।।१७।११

हे इन्द्र! तुमने अनेकों को उत्पन्न किया, जल को रोकने वाले अहंकारी अहि को तुमने नष्ट कर दिया। जब तुम पृथिवी को कटि में छिपा

कर चलते हो तब स्वर्ग भी तुम्हारी महिमा की समता करने में समर्थ नहीं होता ।।११।। हे इन्द्र ! हमारा यश तुमको बढ़ता है। जिस कार्य में सोम का संस्कार किया जाता है, वह कार्य तुमको प्रिय है। तुम यज्ञ के योग्य। हो अपने यजमान की यज्ञ-कार्य के निमित्त रक्षा करो। अहि का संहार करने के निमित्त यह यज्ञ तुम्हारे वज्र को बलशाली बनावे ।।१२।। पुरातन, मध्यकालीन तथा नवीन स्तोत्र से जो इन्द्र बढ़ते हैं, उन्ही इन्द्र को यजमान अपने रक्षक यज्ञ द्वारा सामने बुलाता है। नवीन धन के लिए वह उनका आह्वान करता है ।।१३।। इन्द्र की स्तुति करने-की जब मैं इच्छा करता हूं, तभी स्तुति करने लगता हूं। मैं उस अशुभ दूरवर्ती दिन की आशंका से, पहिले ही इन्द्र का स्तवन करता हूं। वे इन्द्र हमें दुःख से पार करें। नदी के दोनों तटों के लोग जैसे नाव वाले को बुलाते हैं वैसे ही हमारे मातृकुल के व्यक्ति इन्द्र को बुलाते हैं ।।१४।। इन्द्र का कलश पूर्ण हो गया। पान के निमित्त स्वाहाकार की ध्वनि हुई। जैसे जल सींचने वाला पात्र से जल सींचता है, वैसे ही मैं सोम को सींचता हूं। सुन्दर स्वाद वाला सोम इन्द्र को आनंदित करने के लिए उनके सम्मुख जाता है ।।१५।। हे इन्द्र ! तुम बहुतों द्वारा आह्वाहन किए गये हो। गम्भीर समुद्र भी तुम्हें रोक नहीं सकता। समुद्र के चारों ओर का उप-समुद्र भी तुम्हें निवारण करने में समर्थ नहीं है। क्योंकि मित्रों की प्रार्थना पर तुमने महाबली वृत्र का निवारण कर दिया है ।।१६।। हे इन्द्र ! तुम अन्न का लाभ कराने वाले उत्साह से बढ़े हुए, धन और ऐश्वर्य से सम्पन्न नायकों में श्रेष्ठ, स्तुति सुनने वाले, विकराल युद्ध में शत्रु का नाश करने वाले तथा धनों को जीतने वाले हो। आश्रय प्राप्त करते के लिए मैं तुम्हारा आह्वान करता हूं ।।१७।।

सूक्त ३३

(ऋषि—विश्वामित्र। देवता—नद्यः । छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप्, उष्णिक्

प्र पर्वतानामुशती उपस्थादश्वेइव बिषिते हासमाने।
गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे विपाट्छुतुद्री पयसा जवेते ।।१
इन्द्रेषिते प्रसवं भिक्षमाणे अच्छा समुद्रं रथ्येव याथः।

समाराणे ऊर्मिभिः पिन्वमाने अन्या वामन्यानप्येति शुभ्रे ॥२
अच्छा सिंधुं मातृतमामयास विपाशमुर्वीं सुभगामगन्म ।
वत्समिव मातरा संरिहाणे समानं योनिमनु सञ्चरन्ती ॥३
एना वय पयसा पिन्वमाना अनु योनिं देवकृतं चरन्तीः ।
न वर्तवे प्रसवः सर्गतक्तः किंयुर्विप्रो नद्यो जोहवीति ॥४
रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवैः ।
प्र सिंधुमच्छा बृहती मनीषावस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः ॥५॥१२

जलयुक्त प्रवाह वाली विपाशा और शुतुद्री नदियाँ पर्वत के अङ्क निकल कर समुद्र से मिलने की कामना वाली होकर, अश्वशाला से विमुक्त अश्व के समान स्पर्द्धावान् होती हुई, दो गौओं के समान सुशोभित हुई वेग से समुद्र की ओर चलती हैं ॥१॥ हे दोनों नदियो ! इन्द्र तुम्हें प्रेरणा देते हैं। तुम परस्पर प्रार्थना-सी करती हुईं दो रथियों के समान समुद्र को प्राप्त होती हो। तुम प्रवाहमान हुई, तरंगों द्वारा बढ़ कर परस्पर मिलने की चेष्टा करती हुई-सी चलती हो और शोभा पाती हो ॥२॥ माता के समान सिन्धु नदी और श्रेष्ठ सौभाग्य वाली विपाशा नदी को प्राप्त होता हूं। यह दोनों वत्साभिलाषिणी गौओं के समान आश्रय स्थान की ओर जाती हैं ॥३॥ यह नदियाँ जल से पूर्ण हुई भूमि प्रदेशों को सींचती हुई ईश्वर के रचे हुए स्थान पर चलती हैं। इनकी गति कभी रुकती नहीं, हम उन नदियों के अनुकूल होते हुए प्राप्त होते हैं ॥४॥ हे जल से पूर्ण हुई नदियो ! मेरे सोमसम्पन्नता के कार्य की बात सुनने के लिए एक क्षण के लिए चलने से रुको। मैं कुशिक पुत्र विश्वामित्र बृहती स्तुति से प्रसन्नता प्राप्ति और अपनी अभीष्टपूर्ति के निमित्त इन नदियों का आह्वान करता हूं ॥५॥

इन्द्रो अस्माँ अरदद्वज्रबाहुरपाहन्वृत्रं परिधिं नदीनाम् ।
देवोऽनयत्सविता सुपाणिस्तस्य वयं प्रसवे याम उर्वीः ॥६
प्रवाच्यं शश्वधा वीर्यं तादिन्द्रस्य कर्म यदहिं विवृश्चत् ।
वि वज्रेण परिषदो जघानायन्नापोऽयनमिच्छमानाः ॥७

एतद्वचो जरितर्मापि मृष्टा आ यत्ते घोषानुत्तरा युगानि ।
उक्थेषु करो प्रति जुषस्व मा नो नि कः पुरुषत्रा नमस्ते ॥८
ओ षु स्वसारः कारवे शृणोत ययौ वो दूरादनसा रथेन ।
नि षू नमध्वं भवता सुपारा अधो अक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः ॥९
आ ते कारो शृणवामा वचांसि ययाथ दूरादनसा रथेन ।
नि ते नंसै पीप्यानेव योषा मर्यायेव कन्या शश्वचते ॥१०।१३

नदियों को रोकने वाले वृत्र का संहार कर वज्रधारी इन्द्र ने हम दोनों नदियों का मार्ग खोल दिया। उत्तम बाहु वाले, तेजस्वी तथा संसार को प्रेरणा देने वाले इन्द्र ने हमें प्रेरणा दी है। हम आज्ञा के निर्देश से गमन करती हैं ॥६॥ इन्द्र द्वारा वृत्र-वध के पराक्रमपूर्ण कार्य का सदा गान करना चाहिए। इन्द्र ने सब दिशाओं से बाधा देने वालों को खोज कर वज्र से मार डाला। तब गमनशील जल आने लगा ॥७॥ हे स्तुति करने वाले! तुम अपनी प्रतिज्ञा को न भूलना। आने वाले यज्ञके दिनों में स्तोत्र रच कर तुम हमारी पूजा करना। हम नदियाँ तुम्हें नमस्कार करती है। हमारा पुरुषों के मध्य निरादर न करना ॥८॥ हे परस्पर बहिन रूप दोनों नदियो ! मैं कौशिक स्तवन करता हूँ। मैं सुदूर से रथ में अश्व जोत कर आया हूं। तुम नीची हो जाओ जिससे मैं तुम्हें पार कर सकूं। स्तोत्र के जल के समान रथ चक्र के आधे भाग तक ऊँची रहकर ही प्रवाहित होओ ॥९॥ हे स्तुति करने वाले! हम नदियों ने तुम्हारी बात सुन ली है। तुम दूर से आये हो, अतः शकट और रथ के साथ जाओ। जिस प्रकार माता पुत्र को स्तन पान कराने को तथा पत्नी पति से मिलने को झुकती है उसी प्रकार हम भी तुम्हारे निमित्त झुकती हैं ॥१०॥

यदङ्ग त्वा भरताः सन्तरेयुर्गव्यन्ग्राम इषित इन्द्रजूतः ।
अर्षादह प्रसवः सर्गतक्त आ वो वृणे सुमतिं यज्ञियानाम् ॥११
अतारिषुर्भरता गव्यवः समभक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम् ।
प्रापिन्वध्वमिषयन्सी.सुपाधा आ वक्षणाः पृणध्वं यागशोभम् ॥१२

उद्व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत ।
मादुष्कृतौ व्येनसाऽघ्न्यौ शूनमारताम् ॥१३॥१४॥

दोनों नदियो ! भरतवंश वाले, तुम्हें पार करने की इच्छा वाले भारतीय, इन्द्र द्वारा प्रेरित तुम्हारे द्वारा पार किए जायेंगे । उन पर जाने का यत्न करने वालों को तुम अनुमति प्रदान कर चुकी हो इसलिए मैं विश्वामित्र तुम्हारी सर्वत्र प्रशंसा करूंगा । तुम यजन करने योग्य हो ॥११॥ गोधन की कामना करने वाले भारतीय पार हो गये । विद्वानों ने नदियों का भले प्रकार स्तवन किया । तुम अन्न की कारणभूत तथा धन से सम्पन्न होकर लघु नदियों को भी जल से पूर्ण करती हुई द्रुत वेग से चलती रहो ॥१२॥ दोनों नदियो ! तुम इस प्रकार प्रवाहित हो कि दोनों कीलें ऊपर रहें । तुम रज्जु को स्पर्श नहीं करना । पाप से रहित कल्याण करने वाली तथा अनिंद्य विपाशा और शुतुद्री तुम्हारी तरंग इस समय अधिक ऊँची न उठें ॥१३॥

सूक्त ४३

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—इन्द्र । छंद—त्रिष्टुप् पंक्ति)

इन्द्रः पूर्भिदातिरद्दासमर्कैर्विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून् ।
ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधानो भूरिदात्र आपृणद्रोदसी उभे ॥१
मखस्य ते तविषस्य प्र जूतिमियर्मि वाचममृताय भूषन् ।
इन्द्र क्षितीनामसि मानुषीणां विशां दैवीनामुत पूर्वयावा ॥२
इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनीममिनाद्वर्पणीतिः ।
अहन्व्यंसमुशधग्वनेष्वाविर्धेना अकृणोद्राम्याणाम् ॥३
इन्द्रः स्वर्षा जनयन्नहानि जिगायोशिग्भिः पृतना अभिष्टिः ।
प्रारोचयन्मनवे केतुमह्नामविन्दज्ज्योतिर्बृहते रणाय ॥४
इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवेश नृवद्दधानो नर्या पुरूणि ।
अचेतयद्धिय इमा जरित्रे प्रेमं वर्णमतिरच्छुक्रमासाम् ॥५।१५

पुरों को तोड़ने वाले, महिमावान्, धनवान् इन्द्र ने अपने तेज से दस्युओं का संहार कर उन्हें जीत लिया। उन मन्त्र द्वारा आकर्षित हुए, और बढ़े हुए शरीर और बहुत से शस्त्रों से युक्त इन्द्र ने आकाश और पृथिवी को पूर्ण किया ॥१॥ हे इन्द्र ! तुम पूज्य तथा शक्तिशाली हो। अन्न के लिए मैं तुम्हें सजाकर, तुम्हारी प्रेरणा से ही स्तोत्र उच्चारण करता हूं। तुम देवता और मनुष्य दोनों में अग्रगण्य हो ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम विख्यातकर्मा हो। तुमने वृत्र को निवारण किया था। शत्रुओं के आक्रमण को रोकने वाले इन्द्र ने उन माया करने वालों का संहार कर डाला। शत्रु को मारने की इच्छा वाले इन्द्र ने जंगल में छिपे हुए कंधाविहीन शत्रु को मार दिया। उन्होंने रमणीय गौओं को प्रकट किया ॥३॥ वे इन्द्र स्वर्ग प्राप्त कराने वाले हैं। उन्होंने दिन को प्रकट कर संग्राम की इच्छा वाले अङ्गिराओं का साथ देकर उनके विरोधियों की सेना को हराया। दिन के ध्वजरूप सूर्य को मनुष्यों के निमित्त प्रकाशित किया। इस प्रकार भीषण युद्ध के निमित्त अत्यन्त तेज प्राप्त किया ॥४॥ बाधा देने वालों तथा बल में बढ़ी हुई शत्रु-सेना के मध्य धन को ग्रहण कर इन्द्र जा घुसे। स्तुति करने वालों के लिए उन्होंने उषा को चैतन्यता देकर उसके श्वेत वर्ण को बढ़ाया ॥५॥ (१५)

महो महानि पनबन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म पुरूणि ।
वृजनेन वृजिनान्त्स पिपेष मायाभिदस्यूँर भिभूत्योजाः ॥६
युधेन्द्रो मह्ना वरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चषणिप्राः ।
विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति ॥७
सत्रासाहं वरेण्यं सहोदा ससह्वांसस्वरपश्च देवीः ।
सस न य पृथिवीं द्यामुतेमामिन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः ॥८
ससानात्यां उत सूर्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुमोजस गाम् ।
हिरण्यमुत भोगं सस न हत्वो दस्यूप्रार्यं वर्णमावत् ॥९
इन्द्र ओषधीरसनोदहानि वनस्पतींरसनोदन्तरिक्षम् ।
विभेद बलं नुनुदे विवचोऽथाभवद्दमिताभिक्रतूनाम् ॥१०

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्त वृत्राणि सञ्चित धनानाम्॥११॥६

उन महान् इन्द्र द्वारा किये गये श्रेष्ठ कार्यों को साधकगण कीर्तन करते हैं। वे इन्द्र अपने बल से बड़े-बड़े बलवानों को पीस डालते हैं। उन विजेता इन्द्र ने दस्युओं को अपनी भेद नीति द्वारा पीस डाला॥६॥ देवताओं के स्वामी और मनुष्यों को वर देने वाले इन्द्र ने वृहद् संग्राम में धन प्राप्त कर स्तुति करने वालों को प्रदान किया। विद्वान् स्तुतिकर्त्ताजन यजमान के गृह में मन्त्रों द्वारा इन्द्र का यश कीर्तन करते हैं ॥७॥ सर्व विजयी, वरण करने योग्य, स्वर्ग के स्वामी, दिव्य जलों के अधिपति इन्द्र के आनन्दित होने पर स्तोतागण प्रसन्नता प्राप्त करते हैं। वह इन्द्र पृथिवी, आकाश और अन्तरिक्ष को धारण करने वाले हैं ॥८॥ अश्व, सूर्य, गोधन रत्न और सुवर्ण आदि यह सब इन्द्र के दानरूप हैं। उन्होंने पापियों का संहार कर आर्यों की सदा रक्षा की है ॥९॥ इन्द्र ने ही दान रूप दिन बनाया, उन्होंने ही औषधियां दीं तथा अन्तरिक्ष और बनस्पतियाँ प्रदान कीं। उन्होंने मेघ को विदीर्ण कर शत्रुओं को नष्ट किया। इन्द्र के सामने जो भी विरोधी उपस्थित हुआ, उसीको उन्होंने मार डाला॥१०॥ हे इन्द्र! तुम अन्न प्राप्त करने में समर्थ हो। युद्ध में उत्साह द्वारा बढ़ते हो। तुम धन से हुए अपने वैभव से ही ऐश्वर्यवान् हो। तुम नायकों में श्रेष्ठ तथा स्तुतियों को सुनने वाले हो। तुम अपने उग्र कर्मों द्वारा युद्ध में शत्रु नाश करते हुए धन जीतते हो। हम आश्रय प्राप्ति के निमित्त तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥११॥ [१९]

सूक्त ३५

(ऋषि—विश्वामित्रः। देवता—इन्द्र। छन्द–त्रिष्टुप् पंक्ति)

तिष्ठा हरी रथ आ पुज्यमाना याहि वायुर्न नियतो नो अच्छ ।
पिबास्यन्धो अभिसृष्टो अस्मे इन्द्र स्वाहा ररिमा ते मदाय ॥१
उपाजिरा पुरुहूताय सप्ती हरी रथस्य धूर्ष्वा युनज्मि ।

द्रवद्यथा सम्भृतं विश्वतश्चिदुपेमं यज्ञमा वहात इन्द्रम् ॥२
उपा नयस्व वृषणा तपुष्पीतेमव त्व बृषभ स्वधाव: ।
ग्रसेतामश्वा वि सुचेह शोणा दिवेदिवे सदृशीरद्धि धाना: ॥३
ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि हरी सखाय सधमाद आशू ।
स्थिर रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठन्प्रजानन्विद्वां उप याहि सोमम् ॥४
मा ते हरी वृषणा वीतपृष्ठा नि रीरमन्यजमोनासो अन्ये ।
अत्यायाहि शश्वतो वय तेऽरं सुतेभिः कृणव म सोमैः ॥५।१७

हे इन्द्र ! तुम्हारे हरित् अश्व रथ में जोड़े जाते हैं । जैसे वायु अपने अश्वों की प्रतीक्षा करते हैं । वैसे ही तुम भी कुछ क्षण अपने अश्वों की प्रतीक्षा कर उनके सहित यहाँ आओ और हमारे सोम का पान करो । हम स्वाहाकार द्वारा तुम्हारी प्रसन्नता के लिए सोम अर्पित करते हैं ॥१॥ अनेकों द्वारा बुलाये गये इन्द्र के शीघ्र आगमन के निमित्त रथ के आगे दोनों घोड़ों को हम जोड़ते हैं । विधिपूर्वक किये जाते इस यज्ञानुष्ठान में इन्द्र को दोनों घोड़े यहां ले आवें ॥२॥ इन्द्र! तुम कामनाओं की वर्षा करने वाले तथा अन्नों के स्वामी हो । शत्रु के भय से मुक्त कराने वाले अपने दोनों पराक्रमी घोड़ों को यहाँ ले आओ और इस यजमान के रक्षक बनो । तुम अपने दोनों घोड़ों को यहाँ खोल दो । वे यहाँ भोज़ करें, तुम भी समान रूप वाले उपभोग्य धान्य का सेवन करो ॥३॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे घोड़े मंत्रो द्वारा जुड़ते हैं । तुम्हारे जो अश्व युद्ध में ख्याति प्राप्ति कर चुके हैं, उन्हीं को हम मंत्रों द्वारा जोड़ते हैं । हे इन्द्र ! तुम मेधावी हो । अपनी वृद्धि से दृढ़ और सुखदायक रथ पर बैठ कर सोम के निकट पधारो ॥५॥ हे इन्द्र ! यजमान तुम्हारे पराक्रमी सुन्दर पीठ वाले दोनों घोड़ों को आनन्द दें । हम तुमको उत्तम प्रकार से सिद्ध किये गये सोम के द्वारा तृप्त करेंगे । तुम बहुत से यजमानों को लाँघकर यहाँ शीघ्रतापूर्वक आओ ॥५॥ (१७)

तवायं सोमस्त्वमेह्यर्वाङ् शश्वकत्तमं सुमना अस्य पाहि ।
अस्मिन्यज्ञे ब्रहिष्मा निषद्या दभिष्वेम जठर इन्दुमिन्द्र ॥६

स्तीर्णं ते बर्हिः सूत इन्द्र सोमः कृता धाना अत्तवे ते हरिभ्याम् ।
तदोकसे पुरुशाकाय वृष्णे मरुत्वते तुभ्य राता हवींषि ॥७

इमं नरः पर्वतास्तुभ्यमापः समिन्द गोभिर्मधुमन्तमक्रन् ।
तस्यागत्या सुमना ऋष्व पाहि प्रजानन्विद्वान्पथ्या अनु स्वाः ॥८
यां आभजो मरुत इन्द्र सोमे ये त्वामवर्धन्नभवन्गणस्ते ।
तेभिरेतं सजोषा वावशानोऽग्नेः पिब जिह्वया सोममिन्द्र ॥९

इन्द्र पिब स्वधया चित्सुतस्याग्नेर्वा पाहि जिह्वया यजत्र ।
अध्वर्योर्वा प्रयतं शक्रहस्ताद्धोतुर्वा यज्ञं हविषो जुषस्व ॥१०
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥११।१९

हे इन्द्र ! यह सोम तुम्हारे लिए है, इसके समक्ष पधारो । प्रसन्न मुख द्वारा उस सिद्ध सोम का पान करो । इस यज्ञ में कुश पर प्रतिष्ठित होकर इस सोम को उदरस्थ करो ॥६॥ हे इन्द्र ! यह कुश तुम्हारे निमित्त बिछाये गये हैं और सोम को संस्कार किया गया है। तुम्हारे दोनों घोड़ों के लिए धन्य प्रस्तुत है । कुश तुम्हारा आसन है । बहुत से विद्वान् तुम्हारा स्तवन करते हैं। तुम कामनाओं की वर्षा करने वाले हो तुम्हारे पास मरुद्गण रूप सेना है । तुम्हारे लिये विस्तृत हवियां प्रस्तुत हैं ।।७।। हे इन्द्र ! अध्वर्यु, पाषाण और जल ने इस दूध मिश्रित सोम को तुम्हारे लिए मधुरता से पूर्ण किया है तुम मेधावी एवम् दर्शनीय हो । हमारी इन स्तुतियों को अपने हित में जानते हुए प्रसन्न मुख से सोम-पान करो ।।८।। हे इन्द्र ! जिन मरुद्गण को सोम-पान करते समय आदरयुक्त करते हो तथा जो मरुद्गण के साथ सोम-पीने की इच्छा करते हुए, अग्निरूप जिह्वा द्वारा सोम-रस को पीओ ।।९।। हे इन्द्र ! तुम यजन-योग्य हो. अग्निरूप जिह्वा द्वारा इस संस्कारित सोम को पीओ । अध्वर्यु द्वारा अर्पित सोम और होता द्वारा आहुति योग्य हवि को ग्रहण करो ।। १० ।। हे इन्द्र ! तुम अन्न-लाभ वाले युद्ध में उत्साह से बढ़ते हो । तुम धन और ऐश्वर्य से युक्त नायकों में

श्रेष्ठ, स्तुति के सुनने वाले विकराल, युद्ध में शत्रु संहारक और धन जीतने वाले हो। हम आश्रय प्राप्त करने के निमित्त तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥११॥ । ८]

सूक्त ३६

(ऋषि—विश्वामित्रः घोर आंगिरसः। देवता—इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप् पंक्ति)।

इमामू षु प्रभृतिं सातये धाः शश्वच्छश्वदूतिभिर्यादमानः।
सुतेसुते वावृधे वर्धनेभिर्यः कर्मभिर्महद्भिः सुश्रुतो भूत् ॥१
इन्द्राय सोमाः प्रदिवो विदाना ऋभुर्येभिर्वृषपर्वा विहायाः।
प्रयम्यमानान्प्रति षू गृभायेन्द्र पिब बृषधूतस्य वृष्णः ॥२
पिबा वर्धस्व तव धा सुताय इन्द्र सोमासः प्रथमा उतेमे।
यथापिब पूर्व्यां इन्द्र सोमां एवा पाहि पन्यो अद्या नवीयान् ॥३
महाँ अमत्रो वृजने विरप्श्यूग्रं शवः पत्यते धृष्णवोजः।
नाह विव्याच पृथिवी चनैन यत्सोमासो हर्यश्वममन्दन् ॥४
महाँ उग्रो वावृधे वीर्याय समाचक्रे वृषभः काव्येन।
इन्द्रो भगो वाजदा अस्य गावः प्र जायन्ते दक्षिणा:अस्य पूर्वी॥५।१९

हे इन्द्र ! धन देने के लिए मरुद्गण के सहित यहाँ आकर विशेष प्रकार से सिद्ध किये गये इस सोम को ग्रहण करो। वे इन्द्र अपने महान् कर्मों के द्वारा विख्यात हैं तथा सोम सिद्ध किये जाने वाले कर्म में हर बार पुष्टिदायक हवियों द्वारा बढ़ते हैं।१। प्राचीन काल में इन्द्र के लिए सोम अर्पण किया गया था, जिससे वे नियम-पालक, प्रकाशवान् और महान् बने। हे इन्द्र ! इस अर्पित सोम को स्वीकार करो। यह पत्थर द्वारा कूटा हुआ सोम दिव्य फल देने वाला है, इसका तुम पालन करो ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे निमित्त प्राचीन काल से प्रसिद्ध सोम अभिनव रूप में संस्कारित किया गया है, इसे पीकर पुष्ट होओ। तुम स्तुति के योग्य हो। जैसे तुमने प्राचीन काल में सोम-पान किया था, वैसे ही इस समय सोम-पान करो ॥३॥ जो इन्द्र महाबली तथा शत्रुओं को जीतने वाले हैं, जो इन्द्र शत्रुओं को युद्ध में

ललकारते है, उन इन्द्र का बल जीतने योग्य है। उनका तेज सर्वत्र व्याप्त है। जब अश्वयुक्त इन्द्र को सोम पुष्ट करता है, तब पृथिवी और स्वर्ग भी उनको धारण करने की सामर्थ्य नहीं रखते।४। बलवान्, पराक्रमी, कामनाओं की वर्षा करने वाले, दानशील इन्द्र वीरतापूर्ण यश के निमित्त वृद्धि को प्राप्त हुए स्तोत्र से संगति करते हैं। इन्द्र की सब गौऐं दूध देने वाली होकर प्रकटी हैं। इन्द्र अत्यंत दान करने वाले हैं।५। [१६]

प्र यत्सिन्धवः प्रसव यथायन्नापः समुद्रं रथ्येव जग्मुः।
अतिरिश्चदिन्द्र सदसो वरोयान्यदीं सोमः पृणति दुग्धो अंशुः॥६
समुद्रेण सिन्धवो यादमाना इन्द्राय सोमं सुषुत् भरन्तः।
अंशुं दुहन्ति हस्तिनो भरित्रैर्मध्वः पुनन्ति धारया पवित्रैः॥७
ह्रनदाइव कुक्षयः सोमधानाः सभी विव्याच सबना पुरूणि।
अन्ना यदिन्द्रः प्रथमा व्याश वृत्रं जघन्वां अवृणोत सोमम्॥८
आ तू भरु माकिरेतत्परिष्टाद्विद्म हि त्वा वसुपतिं वसूनाम्।
इन्द्र यत्तो माहिनं दत्रमस्त्यस्मभ्यं तद्धर्यश्व प्र यन्धि॥९
अस्मे प्र यन्धि मघवन्नृजीषिन्नन्द्र रायो बिश्ववारस्य भूरेः।
अस्मे शत शरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छश्वत इंद्र शिप्रिन्॥१०
शुन हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतयेसमत्सुघ्नन्तं वृत्राणिसञ्जितंधनानाम्॥११।२०
०

नदियां जब स्रोत के समान दूरस्थ सागर की ओर बहती हैं, तब रथ के समान जल दौड़ता है। उसी प्रकार वरण करने योग्य इन्द्र अंतरिक्ष से इस लतारूप सुसिद्ध की ओर आते हैं।६। समुद्र से मिलने की इच्छा करने वाली नदियाँ जैसे समुद्र को भरतां हैं, वैसे ही इंद्र के निमित्त अध्वर्युगण छाने गये सोम को संस्कारित करते हुए हाथों से सोम लता को दुहाते हैं और पाषाण द्वारा सोम-रस को शुद्ध करते हुए मधुरतायुक्त बनाते हैं।७। सरोवर के समान इन्द्र का उदर सोम का आश्रय-स्थान है। वे एक साथ ही अनेक यज्ञों को पूर्ण करते हैं। इन्द्र

नें भक्षण के योग्य सोम का सेवन किया है। फिर वृत्र को निवारण कर देवताओं को भाग दिया ।।८।। हे इन्द्र ! शीघ्र ही धन प्रदान करो । तुम्हारे दान को रोकने में कोई भी समर्थ नहीं हैं। तुम धन के स्वामी हो, यह हम जानते हैं। तुम्हारा धन श्रेष्ठ और पूजा के योग्य है, उसे हमको प्रदान करो ।।९।। हे सरल प्रवृत्ति वाले मघवन् ! तुम सबके वरण करने योग्य हो । हमको उत्तम धन प्रदान करो । हमको सौ वर्षों तक जीने की सामर्थ्य दो । हमको चिरायुष्य वीर पुत्र प्रदान करो ।।१९।। हे इन्द्र ! तुम अन्न लाभ वाले युद्ध में उत्साहपूर्वक वृद्धि को प्राप्त होते हो । तुम धन और ऐश्वर्य से युक्त, नायकों में श्रेष्ठ, स्तुति के श्रवण करने वाले विकराल, रणक्षेत्र में शत्रु का नाश करने वाले और धन को जीतने में समर्थ हो । आश्रय-प्राप्त करने के निमित्त हम तुम्हारा आह्वान करते हैं ।।११।। [२०]

सूक्त ३७

(ऋषि--विश्वामित्रः । देवता इन्द्रः । छन्द--गायत्री, अनुष्टुप्)

वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च । इन्द्र त्वा वर्तयामसि ।।१
अर्वाचीन सु ते मन उत चक्षु शतक्रतो इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः ।।२
नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे । इन्द्राभिमातिषाह्ये ।।३
पुरुष्टुतस्य धामासिः शतेन महयामसि । इन्द्रस्य चर्षणीधृतः ।।४
इन्द्र वृत्राय हन्तवे पुरुहूतमुप ब्रुवे । भरेषु वाजसातये ।।५।२१

हे इन्द्र ! वृत्र को नाश करने वाले बल को प्राप्त करने और शत्रु की सेना को हराने के लिये हम तुम्हें प्रेरित करते हैं ।।१।। हे शतकर्मा इन्द्र! तुम्हारे मन और नेत्र को हर्ष प्रदान करते हुए, स्तुति करने वाले तुम्हें हमारे सामने बुलावें ।२। हे इन्द्र ! तुम शतकर्म वाले हो । अहंकारी शत्रुओं को परास्त करने वाले रणक्षेत्र में हम तुम्हारा स्तवन करते हुए यशोगान करेंगे ।३। हे इन्द्र ! तुम सब प्राणियों द्वारा स्तुति करने योग्य हो । तुम्हारे तेज की कोई सीमा नहीं है। तुम मनुष्यों के स्वामी हो । हम तुम्हारी स्तुति करते हैं ।४। हे इन्द्र ! तुम्हारा बहुतों ने आह्वान किया है । वृत्र-समान

शत्रुओं का नाश करने और धन प्राप्त करने के निमित्त हम भी तुम्हारा आह्वान करते हैं ।।५।। [२१]

वाजेषु सासहिर्भव त्वामीमहे शतक्रतो । इन्द्र वृत्राय हन्तवे ।।६
द्युम्नेषु पृतनाज्ये पृत्सूतूर्षु श्रवःसु च । इन्द्र साक्ष्वाभिम तिषु ।।७
शुष्मिन्तम न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम् इन्द्र सोमं शतक्रतो।।८
इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु । इन्द्र तानि त आ वृणे।।९
अगन्निन्द्र श्रवो बृहद् द्युम्न दधिष्व दुष्टरम् ।
उत्ते शुष्मं तिरामसि ।।१०
अर्वावतो न आगह्यथो शक्र परावतः ।
उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि ।।११।२२

हे सैकड़ों कर्मों में समर्थ इन्द्र ! तुम रणक्षेत्र में शत्रुओं को हराने में समर्थ हो । वृत्र के संहार करने के लिए हम तुम्हारा स्तवन करते हैं ।।६।। हे इन्द्र ! जो शत्रु युद्ध में अहंकार करने वाले धन में प्रतिस्पर्धा वाले तथा वीर सैनिकों और पराक्रम में हमको चुनौती देने वाले हैं, तुम उनको हराओ ।।७।। हे शतकर्मा इन्द्र ! हमको आश्रय देने के निमित्त अत्यन्त शक्तिशाली, तेज-सम्पन्न और दुःस्वप्नों का निवारण करने वाले सोम का पान करो ।।८।। हे शतकर्मयुक्त इन्द्र ! पञ्चों में जो इन्द्रियाँ हैं, उन सबको हम तुम्हारे द्वारा प्रेरित की जाने वाली मानते हैं ।।९।। हे इन्द्र ! प्रदत्त हवि तुम्हें प्राप्त हो । शत्रुओं को कठिनता से प्राप्त अन्न हमको दो । हम तुम्हारे श्रेष्ठ बल को बढ़ावेंगे ।।१०।। हे इन्द्र ! पास हो या दूर जहाँ कहीं भी हो, वहीं से हमारे पास आओ । तुम वज्र धारण करने वाले हो । तुम अपने दिव्य स्थान से हमारे इस यज्ञ को प्राप्त होओ ।।११।। २२]

सूक्त ३८

(ऋषि—प्रजापतिः । देवता—इन्द्र । छन्द—त्रिष्टुप् पंक्तिः)

अभि तष्टेव दीधया मनीष मत्यो न वाजो सुधुरो जिहानः ।
अभि प्रियाणि मर्मृशत्पराणि कवीरिच्छामि सन्दृशे सुमेधाः ।।१

इनोत पृच्छ जनिमा कवीनां मनोधृतः सुकृतस्तक्षत द्याम् ।
इमा उ ते प्रण्यो वर्धमाना मनोवाता अध नु धर्माणि ग्मन् ॥२
नि षीमिदत्र गुह्या दधाना उत क्षत्राय रोदसी समञ्जन् ।
सं मात्राभिर्ममिरे येमरुर्वी अन्तर्मही स्मृते धायसे धुः ॥३
आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ्छ्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः ।
महत्तद्वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥४
असूत पूर्वो वृषभो ज्यायानिमा अस्य शुरुधः सन्ति पूर्वीः ।
दिवो नपाता विदथस्य धीभिः क्षत्रं राजना प्रदिवो दधाथे ॥५।२३

हे स्तुति करने वालो ! स्वष्टा के समान इन्द्र के स्तोत्रों को चैतन्य करो । श्रेष्ठ, भार वहन करने वाले, वेगवान् अश्व के समान कर्म में लगा हुआ तथा इन्द्र के कर्मों का चिन्तन करता हुआ मैं अपनी बुद्धि की वृद्धि करता हुआ स्वर्ग में गये हुए विद्वानों के दर्शन की कामना करता हूँ ॥१ । हे इन्द्र ! उन विद्वानों के जन्म के सम्बन्ध में उनके गुरुओं से पूछो, जिन्होंने मनोनिग्रह तथा पवित्र कार्यों के द्वारा अपने को स्वर्ग-भागी बनाया । इस यज्ञ में तुम्हारे निमित्त रची गई स्तुतियाँ वृद्धि को प्राप्त होती हुईं, मन के समान वेग से गमन करती हैं॥२॥ विद्वज्जनों ने पृथिवी पर उत्तम कर्म करते हुए पृथिवी और आकाश को बल प्राप्ति के लिए सजाया । उन्होंने गूढ़ तत्वों द्वारा भूमि और स्वर्ग को स्थिर किया । उन्होंने विशाल एवं विस्तृत पृथिवी और आकाश को सुसंगत किया तथा आकाश और पृथिवी के मध्य अन्तरिक्ष का स्थापन किया ॥३॥ समस्त मेधावीजनों ने रथ में विराजमान इन्द्र को सजाया । अपने स्वभाव से ही तेजवान् इन्द्र प्रकाशित हुए सस्थित हैं। कामनाओं की वर्षा करने वाले उग्रकर्मा इन्द्र विचित्र कीर्ति वाले हैं। वे विश्वरूप को धारण करने तथा अमृत्व में व्याप्त हैं ॥४॥ कामनाओं की वर्षा करने वाले, प्राचीन तथा सर्वोत्कृष्ट इन्द्र ने जलों को उत्पन्न किया । उत्पन्न हुए जल ने उनकी पिपासा का निवारण किया । स्वर्ग के पौत्र रूप, सुशोभित इन्द्र और वरुण दोनों तेजस्वी स्तोता के स्तवन से हमारे निमित्त सुखकारी अन्न धारण करते हैं ॥५॥ [२३]

त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि ।
अपश्यमत्र मनसा जगवान्व्रते गन्धर्वां अपि वायुकेशान् ॥६
तदिन्नस्य वृषभस्य धेनोरा नामाभिर्मं मरे सक्म्यं गौः ।
अन्यदन्यसुर्यं वसाना निमायिनो मभिरे रूपमस्मिन् ॥७
तदिन्न्वस्य सवितुर्नकिर्मे हिरण्ययीममर्ति यामशिश्रेत् ।
आ सुष्टुती रोदसी विश्वामिन्वे अपीव योषा जनिमानि वव्रे ॥८
युवं प्रत्नस्य साधथो महो यद्दैवी स्वस्तिः परिणः स्योत्रम् ।
गोपाजिह्वस्य तस्थुषो विरूपा विश्वे पश्यन्ति मायिनः कृतानि॥९
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतम वाजसातौ ।
शृण्वन्वग्रमूतये समत्सुघ्नन्त वृत्राणि सञ्जित धनानाम् ॥१०।२४

हे इन्द्र और तरुण ! व्यापक और सम्पूर्ण तीनों सवनों को इस यज्ञ में सुशोभित करो । हे इन्द्र ! तुम इस यज्ञ में पधारे थे । वहाँ मैंने वायु के समान विशिष्ट केश वाले गन्धर्वों के दर्शन किये थे ॥६॥ कामनाओं की वर्षा करने वाले इन्द्र के निमित्त जो यजमान हवि-योग्य रस को गौओं से दोहन करते हैं तथा जिन यजमानों के अनेक नाम हैं वे नवीन पराक्रम धारण कर अपने-अपने कार्यों को इन्द्र के निमित्त समर्पित करते ।७। सूर्य का स्वर्णमय प्रकाश असीमित है जो इस आकाश के आश्रयभूत हैं, वे सूर्य श्रेष्ठ स्तुतियों द्वारा प्रशंसित होते हुए, माता द्वारा सन्तान का आलिगन करने के समान सर्वव्याप्त आकाश पृथिवी का आलिंगन करते हैं ।८। हे इन्द्र और वरुण ! पुरातन स्तोत्र उच्चारण करने वाले का कल्याण करो । हमारी सब ओर से रक्षा करो । इन्द्र की जिह्व रूप वाणी सबको निर्भय बनाती हैइ, न्द्र स्थिर चित्त हैं । उनके विविध कार्यों को सभी मेधावीजन देखते हैं ।९। हे इन्द्र ! तुम अन्न लाभ वाले युद्ध में उत्साह-पूर्वक वृद्धि को प्राप्त होते हो । तुम धन और ऐश्वर्य से युक्त, नेताओं में श्रेष्ठ स्तुति सुनने वाले, उग्र, रणक्षेत्र में शत्रुओं का संहार करने वाले और धन को जीतने वाले हो । आश्रय-प्राप्ति के निमित्त हम तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥१०॥

[२४]

३९ सूक्त [चौथा अनुवाक]

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

इन्द्रं मयिर्हृद आ वच्यमानाच्छा पतिं स्तोमतष्टा जिगाति ।
या जागृविर्विद्रथे शस्यमानेन्द्र यत्ते जायते विद्धि तस्य ॥१
दिवश्चिदा पर्व्या जायमाना नि जागृविर्विदथे शस्यमाना ।
भद्रा वस्त्राण्जुंना वसाना सेयमस्मे सनजा पित्र्या धीः ॥२
यमा चिदत्र यमसूरसूत जिह्वाया अग्रं पतदा ह्यस्थात् ।
वपूंषि जाता मिथुना सचेते तमोहना तपुषो बुध्न एता ॥३
नकिरेषां निन्दिता मर्त्येष ये अस्माकं पितरो गोधाः ।
इन्द्र एषां दृंहिता माहिनावानुद्गोत्राणि ससृजे दसनावान् ॥४
सखा ह यत्र सखिभिर्नवग्वैरभिज्ञ्वा सत्वभिर्गा अनुग्मन् ।
सत्यं तदिन्द्रो दशभिर्दशग्वैः सूर्यं विवेद तमसि क्षियन्तम् ॥५।२५

हे इन्द्र ! तुम संसार के स्वामी हो । हृदय से निकले हुए तथा स्तुति कहने वालों के द्वारा सम्पादन किये हुए स्तोत्र तुम्हारे सम्मुख उपस्थित होते हैं । जो स्तुति मेरे द्वारा उत्पन्न हुई है और तुम्हें चैतन्य कर यज्ञ में उच्चारण की जाती है, उसे स्वीकार करो ।१। हे इन्द्र ! जो स्तुति सूर्य्योदय से भी पूर्व उत्पन्न होकर यज्ञ में उच्चारण की जाती हुई तुम्हें चैतन्य करती है, वह कल्याण करने वाली उज्ज्वल स्तुति हमारे पूर्वजों से प्राप्त होने वाली सनातन है ।।२।। अश्विद्वय को माता ने इन्हें जन्म दिया उनकी स्तुति के निमित्त मेरी जिह्वा का अग्रभाग चञ्चल हो उठा है । अन्धकार का नाश करने वाले दिन के प्रारम्भ में आते हुए दोनों स्तुतियों से सुसंगति करते हैं ।३। हे इन्द्र ! गोधन-प्राप्ति के निमित्त संग्राम करने वाले हमारे पितरों की पृथिवी पर कोई निन्दा नहीं करता । अङ्गिराओं को उन महिमावान्, यशस्वी इन्द्र ने समृद्ध गोधन प्रदान किया ।४। अङ्गिराओं के मित्र इन्द्र जब घुटने के बल गोधन की खोज में पर्वत पर चढ़े थे तब उन अङ्गिराओं ने अन्धेरे में छिपे सूर्य का दर्शन किया।५।(२५)

इन्द्रो मधु सम्भतमुस्त्रियायां पद्वद्विवेद शफवन्नमे गोः ।
गुहां हितं गुह्यं गूलहमप्सु हस्ते दधे दक्षिणे दक्षिणावान् ।।६
ज्योतिर्वृणीत तमसो विजानन्नारे स्याम दुरितादभी के ।
इमा गिर सोमपाः सोमवृद्ध जुषस्वेन्द्र पुरुतमस्य कारोः ।।७
ज्योतिर्यज्ञाय रोदसो अनुष्यादारे स्याम दुरितस्य भूरेः ।
भूरि चिद्धि तुजतो मर्त्यस्य सुपारासो वसवो बहणावत् ।।८
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्र मस्मिन्मरे नृतमं वाजसातौ
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नतं वृत्राणि सञ्जित धनानाम् ।।९।२६

इन्द्र ने प्रथम दूध देने वाली गौओं पर मधुर रस सींचा। फिर चरण और खुर से युक्त उस गोधन को ले आये। गुफा में स्थित, अन्तरिक्ष में छिपे हुए मायामय असुर को इन्द्र ने दक्षिण हस्त द्वारा पकड़ लिया ।६। इन्द्र ने रात्रि के गर्भ से उत्पन्न होकर प्रकाश धारण किया। हम पाप-रहित तथा निर्भय स्थान में रहने की इच्छा करते हैं। हे सोमपायी इन्द्र ! तुम स्तोता की इस स्तुति को स्वीकार करो ।७। यज्ञ के लिये आकाश और पृथिवी को सूर्य प्रकाशित करे। हम पाप से दूर रहने की इच्छा करते रहते हैं। हे वसु देवताओ ! तुम स्तुति के द्वारा अनुकूल होते हो इस धन को उदार दानी मनुष्य के लिये दो ।८। हे इन्द्र ! तुम अन्न-लाभ वाले युद्ध में उत्साह-पूर्वक बढ़ते हो, तुम धन और ऐश्वर्य से युक्त, नेताओं में श्रेष्ठ, स्तुति सुनने वाले, उग्र, रणक्षेत्र में शत्रुओं को मारने वाले तथा धन को जीतने वाले हो। आश्रय प्राप्ति के लिए हम तुम्हारा आह्वान करते हैं ।।९।। (२६)

सूक्त ४०

[ऋषि—विश्वामित्रः । देवता=इन्द्रः । छन्द–गायत्री)

इन्द्र त्वा वृषभ वयं सुते सोमे हवमाहे। स पाहि मध्वो अन्धसः।।१
इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत। पिबा [illegible]स्व तातृपिम् ।।२
इन्द्र प्रणो धितावानं यज्ञ विश्वेभिर्देवेभिः तिर [illegible] न विश्पते ।।३

इन्द्र सोमाः सुता इमे तव प्र यति सत्पते । क्षयं चन्द्रास इन्दवः ।।४
दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम् । तघद्युक्षास इन्दवः ।।५।१

हे इन्द्र ! तुम कामनाऐं पूर्ण करने वाले हो । इस संस्कारित सोम के निमित्त हम तुम्हारा आह्वान करते हैं आनन्ददायक अन्न मिश्रित मधुर सोम का पान करो ।१। हे इन्द्र तुम बहुतों द्वारा स्तुति किये गये हो । यह छाना हुआ सोम बुद्धि को बढ़ाने वाला है । इसे पीने की इच्छा प्रकट करते हुए इस तृप्त करने वाले सोम से अपने उदर को सींचो ।२। हे मरुतों के स्वामी इंन्द्र ! समस्त यजन योग्य देवताओं के सहित हमारे इस हव्य युक्त यज्ञ को भले प्रकार बढ़ाओ ।३। हे सत्य के स्वामी इन्द्र ! हमारे द्वारा दिया हुआ प्रसन्नमुद तेजयुक्त निष्पन्न सोम तुम्हारे उदर में प्रविष्ट हो रहा है इसे धारण करो ।४। हे इन्द्र ! यह निष्पन्न सोम सब के लिए वरण करने योग्य है । इसे अपने उदर में रखो । यह अत्यन्त उज्ज्वल सोमरस तुम्हारे साथ स्वर्ग में निवास करता है ।।५।।

।१।

गिर्वणः पाहि नः सुत मद्योर्धाराभिरज्यसे । इन्द्र त्वादःतमिद्यश।।६
अभिद्युम्न:नि वनिन इन्द्र सचन्ते अक्षिता । पीत्वी सोमम्यबावृधे।।७
अर्वावतो न आ गहि परावतश्च वृत्रहन् । इमा जुषस्व नो गिरः।।८
यदन्तरा परावतमर्वावतं च हूयसे । इन्द्रेह तत आ गहि ।।९।२

हे इन्द्र ! तुम स्तुति के योग्य हो । तुम आह्लाद सोम की धारा से हर्षित होते हो । हमारे इस सुसिद्ध सोम का पान करो । तुम्हारे द्वारा वृद्धि को प्राप्त हुआ अन्न हमको मिलता है ।६। देवताओं का यज्ञ करने वालों की उज्ज्वल, अक्षुण्ण, सोमयुक्त हवियाँ इन्द्र के समक्ष उपस्थित होती हैं । इन्द्रदेव सोम पीकर बढ़ते हैं ।।७।। हे इन्द्र ! तुमने वृत्र का हनन किया था । तुम पास या दूर जहाँ कहीं हो, वहीं से हमारी ओर आते हुए हमारी स्तुति को स्वीकार करो ।।८।। हे इन्द्र ! तुम दूर, पास और मध्य प्रदेश में बुलाये जाते हो । इस यज्ञ में सोम पीने के निमित्त आओ ।।९।।

[२]

सूक्त ४१

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री ।)

आ तू न इन्द्रमद्रचाद्घ्युवानः सोमपीतये । हरिभ्यां याह्यद्रिवः।।१
सत्तो होता न ऋत्वियस्तिस्तिरे वर्हिरानुषक । अयुज्रन्प्रातरद्रयः।।२
इमां ब्रह्म ब्रह्मवाहः कियन्त आ वर्हिःसीद । दोहि शूर पुरोलाशम्।
रारन्धि सवनेषुण एषु स्तोमेषु वृत्रहन् । उवथेष्विन्द्र गिर्वणः ।।४
मतय सोमपामरुं रिहन्ति शवसस्पतिम् । इन्द्रतत्स न मातरः।।५।

हे वाज्रन् होताओं द्वारा बुलाये जाने पर हमारे इस यज्ञ में अपने अश्वों के सहित सोम पान के निमित्त आओ ।।१।। हे इन्द्र ! ऋत्विक् होता तुम्हारे आह्वान के निमित्त हमारे यज्ञ में बैटे हैं । परस्पर मिलाकर कुश बिछाये गये हैं । प्रातः सवन में सोम सिद्ध के लिए पाषाण भी प्रस्तुत हैं । इसलिये सोम पीने को यहां आओ ।।२।। हे इन्द्र ! तुम स्तुति द्वारा प्राप्त होओ । तुम वीर हो हमारे द्वारा दिये गये पुरोडाश का सेवन करो ।।३।। हे इन्द्र ! तुम वृत्र को मारने वाले और स्तुति के योग्य हो । हमारे यज्ञ में सवन त्रय में उच्चारित स्तुतियों में व्याप्त होओ ।।४।। सोम पीने वाले बल के स्वामी, महान् इन्द्र को, गौओं द्वारा बछड़ों को चटने के समान स्तुतियाँ चाटती हैं ।।५।। ३]

स मन्दस्वा ह्यन्धसो राघसे तन्वा महे । न स्तोतारं निदे करः ।।६
वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे । उत त्वमस्मयुर्वसो ।।७
मारे अस्मद्वि मुमुचो हरिप्रियर्वाङ् याहि । इन्द्र स्वधावो मत्स्वेह।।८
अर्वाञ्च त्वा सुखे रथे वहतामिन्द्र केशिना । घृतस्नू बर्हिरासदे।। ।४

हे इन्द्र ! धन देने के निमित्त इस सोम द्वारा अपने शरीर को पुष्ट करो । मुझसे स्तुति करने वाले की कभी निन्दा न हो ।।६।।हे इंद्र ! हम तुम्हारी कामना करते हुए हवि युक्त स्तुति करते हैं । तुम हवि ग्रहण करने के निमित्त हमारी रक्षा करो ।।७।। हे इन्द्र ! तुम अपने अश्वों प्रेम करते हो । अपने घोड़ों को हमसे दूर न खोलो । हमारे

पास आओ। इस यज्ञ में सोम से हर्ष प्राप्त करो ।८। हे इन्द्र ! श्रम के स्वेद से युक्त तुम्हारे बड़े केश वाले अश्व, तुम्हारे बैठने योग्य इस कुश के आसन के सामने, सुख देने वाले रथ से ले आवें ।९। [४]

सूक्त ४२

(ऋषि—विश्वामित्रः। देवता - इन्द्रः। छन्द—गायत्री)

उप नः सुतमा गहि सोममन्द्रिगदाशिरम् ।हरिभ्यां यस्ते अस्मयुः।।१
तमिन्द्र मदमा गहि बर्हि ष्टां ग्रावभिःसुतम् कुविन्नवस्य तृष्णवः ।।२
इन्द्रमित्था गिरो ममाच्छागुरिषता इतः आवते सोमपीतये ।।३
इन्द्र सोमस्य पीतये स्तोमैंरिह हवामहे । उक्थेभि । कुविदागमत्।।४
इन्द्र सोमाः सुता इमे तान्द्रधिष्व शतक्रतो ।
ठरे जवाजिनीवासो ।।५।५

हे इन्द्र ! हमारा सोम दूध मिलाया हुआ सुप्रसिद्ध है। उसके समीप पधारो। तुम्हारा रथ घोड़े सहित हमसे मिलाने की इच्छा करता है ।१। हे इन्द्र ! पाषाणों से कूटकर छाना गया यह सोम कुश पर रखा है। तुम इसका सामीप्य प्राप्त करो। तुम इसे यथेष्ट मात्रा में पीकर तृप्ति को प्राप्त करो ।२। हमारी स्तुति रूप वाणी इन्द्र के निमित्त उच्चारित होती हुई सोम-पान के लिए इन्द्र का आह्वान करती हुई, यज्ञ स्थान में चलकर इन्द्र का सामीप्य प्राप्त करे ।३। स्तोत्रों तथा प्रशंसनीय स्तुतियों द्वारा यज्ञ में सोम पान निमित्त हम इन्द्र का आह्वान करते हैं। वे बहुत बार आह्वान किये गये इन्द्र हमारे यज्ञ में पधारें ।४। हे इन्द्र ! तुम सैकड़ों कर्मों से युक्त हो। तुम्हारे निमित्त यह संस्कारित सोम प्रस्तुत है। इसे अपने उदर में धारण करो और हमारे लिए अन्न तथा धन प्रदान करो ।५।

विद्मा हि त्वा धनञ्जयं वाजेषु दधृषं कवे । अधा ते सुम्नमीहे ६
इमामिन्द्र गवाशिर यवाशिरं च नः पिवः । आगत्या वृषभिःसुतम्।।७
तुभ्येदिन्द्र स्व ओक्ये सोमं चोदामि पीतये । एष रारन्तु ते हृदि।।८

त्वाँ सुतस्य पीतये प्रत्नमिंद्र हवामहे । कुशिकासोअवस्यवः ॥६।६

हे विद्वन् ! हे इन्द्र ! संग्राम भूमि में तुम शत्रुओं को हराने वाले तथा उनके धनों को जीतने वाले हो । ऐसा जानते हुए हम तुमसे धन माँगते हैं ।६। हे इन्द्र ! हमारे यज्ञ में आकर इस दुग्धादि मिश्रित किये निष्पन्न सोम रस को पीओ ।७। हे इन्द्र ! इस सुसंस्कारित सोम-रस को तुम्हारे पान करने के निमित्त ही हम तुम्हारे उदर में प्रविष्ट कराते हैं । इससे तुम्हारा मन तृप्त होता हुआ पुष्टि को प्राप्त करेगा ।८। हे इन्द्र ! तुम प्राचीन हो । हम कौषिकवंशीय ऋषिगण तुम्हारे द्वारा रक्षा साधन प्राप्त करने की कामना करते हुए इन सुसंस्कारित सोम को पान करने के निमित्त सुन्दर स्तुति रूप वाणी से तुम्हारा आह्वान करते हैं ।९। [६]

सूक्त ४३

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप)

अ! यग्ह्यर्वाङ्ुप बन्धुरेष्ठास्तवेदनु प्रदिवः सोमपेयम् ।
प्रिया सखाया वि मुचोप वर्ि्स्त्वामिमे हव्यवाहो हवन्ते ॥१
आ याहि पूर्वीरति चर्षणीरां अर्य आशिष उप नो हरिभ्याम् ।
इमा हि त्वा मतयः स्तोमतष्टा इन्द्र हवते सख्यं जुषाणाः ॥२
आ न्ा यज्ञ नमोवृधं सजोषा इन्द्र देव हरिभिर्याहि तूयम् ।
अहं हि त्वा मतिभिर्जोहवोमि तृतप्रयाः सधमादे मधूनाम् ॥३
अ च त्वामेता वृषणा वहातो हार सखाया सुधरा स्वङ्गा ।
धानावदिद्रः सवनं जुषाणः सखा सख्यु शृणवन्दनानि ॥४
कुविन्मा गोपां करसे जनस्य कुविद्राज्ञानं मघवन्नृजीषिन् ।
कुविन्म ऋषि पपिवांसं सुतस्य कुविन्मे वस्वो अमृतस्य शिक्षाः॥५
आ त्वा वृहन्तो हरयो युजाना अर्वागिन्द्र सधमादो बहतु ।
प्रये द्विता दिव ऋञ्जन्त्याताः सुसम्मृष्टासो वृषभस्य मूराः ॥६
इन्प्र पिव वृषधूतस्य वृष्ण आ यं ते श्येन उशते जभार ।

यस्य मदे च्यावयसि प्र कुष्टीयंस्य मदे अप गोत्रा ववर्थं ।।७
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतम वाजस.तौ ।
शूण्वन्तमुग्रमूतये स मत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जित धनानाम् ।।८।७

हे इन्द्र ! अपने जुए युक्त रथ द्वारा हमको प्राप्त होओ । यह पुरातन कालीन सोम तुम्हारे निमित्त ही तैयार हुआ है । तुम अपने प्रिय मित्ररूप अश्व को कुशों के समीप खोलो । यह ऋत्विग्गण सोम-पान के निमित्त तुम्हारा आह्वान कर रहे हैं ।१। हे इन्द्र ! हे प्रभो ! तुम सभी प्राचीन मनुष्यों को लाँघकर यहाँ आओ । अपने अश्व के सहित यहाँ आकर सोम-पान करो । हमारी इस प्रार्थना पर ध्यान दो । यह मित्रता की कामना वाली स्तुतियाँ स्तोताओं के मुख से उच्चारण की जाती हुई तुम्हें बुलाती हैं ।२। हे इन्द्र ! तुम प्रकाशवान् हो । हमारे अन्न को बढ़ाने वाले इस यज्ञ में अपने अश्व के सहित शीघ्र पधारो । घृत अन्न से युक्त हवि सहित सोम पीने के निमित्त स्तुतियों द्वाता तुम्हें बुलाते हैं ।३। हे इन्द्र ! तुम्हारे सेचन कर्म में समर्थ सुन्दर धुरा युक्त दोनों मित्र-रूप रमणीय अश्व तुम्हें यज्ञ स्थान को प्राप्त कराते हैं । भुने हुए धान्ययुक्त सेवन का सेवन करते हुए तुम मित्र-भाव से हम स्तुति करने वालों की स्तुति सुनो ।४। हे इन्द्र ! मुझे मनुष्यों की रक्षा करने की सामर्थ्य प्रदान करो । तुम सोम से युक्त रहते ही मुझे सबँ का आधिपत्य प्रदान करो । मुझे ऋषि बनाओ और सोम के पीने के योग्य बनाते हुए कभी भी क्षय न होने वाला मन दो ।५। हे इन्द्र ! रथ में जुते हुए महान् अश्व तुम्हें, हमारे सामने लावें । तुम अभीष्ट वर्षक हो । तुम्हारे अश्व शत्रुओं का नाश करने वाले हैं । इन्द्र के हाथों से चलते हुए वे अश्व दिशाओं का नाश करने वाले हैं । इन्द्र के हाथों से चलते हुए वे अश्व दिशाओं की परिधि में चलते हुए आकाश-मार्ग द्वारा हमारे सम्मुख आते हैं ।६। हे इन्द्र ! तुम सोम की कामना करते हो । तुम इच्छित फल देने वाले और पोषण द्वारा सिद्ध किये सोम को पीने वाले हो । श्येन तुम्हारे निमित्त सोम लाता है । सोम से उत्पन्न हर्ष द्वारा तुम शत्रुता करने वाले व्यक्तियों को धराशायी करते हो ।७। हे इन्द्र ! तुम अन्न लाभ वाले

युद्ध में उत्साह से बढ़ते हो। धन और ऐश्वर्य से युक्त, नायकों में श्रेष्ठ तथा स्तुतियों के सुनने वाले हो। भीषण युद्ध में भी शत्रु का विनाश कर धन जीतते हो। आश्रय प्राप्त करने के निमित्त हम तुम्हारा आह्वान करते हैं।८। [७]

सूक्त ४४

(ऋषि—विश्वामित्रः। देवता—अग्नि। छन्द—बृहती, अनुष्टुप्)

अयं ते अस्तु हर्यतः सोम आ हरिभिः सुतः।
जुषाण इन्द्र हरिभिन आ गह्या तिष्ठ हरितं रथम् ॥१
हर्यन्नुषसमचपः सूर्यो हर्यन्ननरोचयः
विद्वाँश्चिकित्वान्हर्यश्व वर्धस इन्द्र विश्वा अभिश्रियः ॥२
द्यामिन्द्रो हरिधायसं पृथिवीं हरिवर्षसम्।
अधारयद्धरितोर्भूरि भोजनं ययोरन्तर्हरिश्चरत् ॥३
जज्ञातो हरितो वृषा विश्वमा भाति रोचनम्।
हर्यश्वो हरित धत्त आयुधमा वज्रं बाह्वोर्हरिम् ॥४
इन्द्रो हर्यन्तमर्जुनं वज्रं शुक्रस्भीवृतम्।
अपावृणोद्धरिभिरद्रिभिः सुतमुद्गा हरिभिराजत ॥५।८

हे इन्द्र! यह सोम पाषणों से कूटकर सिद्ध किया गया है। यह प्रीति को बढ़ाने वाला तथा रमणीय सोम तुम्हारे निमित्त है। तुम अपने अश्वों से युक्त रथ पर चढ़कर हमारे सामने आओ।१। हे इन्द्र! तुम सोम की इच्छा वाले होकर सूर्य को प्रकाशवान् बनाते हो। हे अश्वसंयुक्त इन्द्र! तुम मेधावी तथा हमारी कामनाओं के जानने वाले हो। तुम इच्छित प्रदान कर हमारे धन की वृद्धि करते हो।२। हरे रङ्ग वाली किरणों से यक्त सूर्य लोक और हरे रङ्ग वाली ओषधियों से हरी हुई पृथिवी को इन्द्र धारण करते हैं। हरिद्वर्णा आकाश-पृथिवी के मध्य इन्द्र अपने अश्व के लिए भोजन लेते हैं तथा इसी आकाश-पृथिवी के मध्य घूमते हैं।३। अभीष्टों को प्रदान करने वाले इन्द्र उत्पन्न होते ही सब लोकों को प्रकाशित करते हैं।

हरे अश्वों वाले इन्द्र अपने हाथों में हरे शस्त्र धारण करते हुए शत्रुओं को नष्ट करने वाला वज्र उठाते हैं ।।४।। इन्द्र ने उज्ज्वल, दुग्धादि द्वारा मिश्रित तथा पाषाणों द्वारा निष्पन्न सोम को प्रकट किया । उन्होंने अश्वों को साथ लेकर पणियों द्वारा चुराई हुई गौओं को बाहर निकाला था ।।५।।

८]

सूक्त ४५

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द—बृहती अनुष्टुप्)

आ मन्द्रै रिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
मा त्वा के चिन्नि मवन्वि न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ।।१
वृत्रखादो वलंरुजः पुरां दर्मो अपामज ।
स्थाता रथस्य हर्योरभिस्वर इन्द्रो दृलहा चिदारुजः ।।२
गम्भीराँ उदधीरिव क्रतुं तुष्यसि गाइव ।
प्र सुगापा यवसं धेनवो यथा ह्रदं कुल्या इवाशत ।।३
आ नस्तुज रयिं भराश न प्रतिजानते ।
वृक्षं पक्व फलमङ्कीव धूनुहीन्द्र सम्पारणं वसु ।।४
स्वयुरिन्द्र स्वरालसि स्मद्दिष्टिः स्वयशस्तरः ।
स वावृधान ओजसा पुरुष्टुत भवा नः सुश्रवस्तमः ।।५।९

हे इन्द्र मोर पंखों के समान रोम वाले अश्वों के साथ इस यज्ञ स्थान को प्राप्त होओ । जैसे शिकारी उड़ते हुए पक्षियों को फांस लेते हैं वैसे ही तुम्हारे मार्ग में बाधक हुआ कोई तुम्हें न फाँस ले । जैसे मार्ग चलने वाले व्यक्ति मरुभूमि को लाँघते हैं, वैसे ही तुम भी सब उपस्थित बाधाओं को लांघ कर हमारे यज्ञ में शीघ्र पधारो ।१। इन्द्र ने वृत्र का संहार किया, यह मेघों को चीर कर जल को गिराते हैं । उन्होंने शत्रु के नगरों का विध्वंस किया है । इन्द्र घोड़ी को चलाने के निमित्त हमारे सामने ही रथारूढ़ हुए हैं । इन्हीं इन्द्र ने शक्तिशाली बैरियों का संहार किया है ।२। हे इन्द्र ! जैसे साधु और ग्वाले अपनी गौओं को जो आदि खाद्य-पदार्थों द्वारा पालते हैं तथा तुम जैसे जल द्वारा गंभीरतम समुद्र को पूर्ण करते हो, वैसे ही यज्ञ कर्मानुष्ठान

में रत यजमान को भी उसका इच्छित फल देकर पुष्ट करो। जैसे गौऐं घास आदि को प्राप्त करती हैं तथा छोटी नदियाँ बड़े जलाशयों को प्राप्त करती हैं, वैसे ही यज्ञ में संस्कारित सोम तुम को प्राप्त करता है ।३। हे इन्द्र ! जैसे पिता अपने व्यावहार कुशल पुत्र को धन प्रदान करता है, वैसे ही शत्रुओं को जीतने में समर्थ, धन प्राप्ति योग्य पुत्र हमको प्रदान करो। जैमे पके फलों को अकुशाकर टेढ़ा बाँस झाड़ कर गिरा देता है, वैसे हमारी इच्छा पूर्ण करने वाला फल प्रदान करो ।४। हे इन्द्र ! तुम धन से युक्त हो। दिव्यलोक के स्वामी, उत्तम वचन वाले तथा सुन्दर यश वाले हो । बहुतों ने तुम्हारा स्तवन किया है। तुम अपने बल से ही बड़े हुए हो । हमको अत्यंत सुशोभित अन्न देने वाले बनो ।।५।। (९)

सूक्त ४६

(ऋषि—विश्वामित्रः, । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्)

युध्मस्य ते वृषभस्य स्वराज उग्रस्य यूनः स्थविरस्य धृष्वे ।
अजूर्यतो वज्रिणो वीर्याणीन्द्र श्रुतस्य महतो महानि ।।१
महाँ असि महिष वृष्ण्येभिर्धनस्पृदुग्र सहमानो अन्यान् ।
एको विश्वस्य भुवनस्य राजा स योधया च क्षयया च जनान् ।।२
प्र मात्राभी रिरिचे रोचमानः प्र देवेभिर्विश्वतो अप्रतीतः ।
प्र मज्मना दिव इन्द्रः पृथिव्या प्रोरोर्महो अन्तरिक्षादृजीषी ।।३
उरुं गभीरं जनुषाभ्युग्रं विश्वव्यचसमवतं मतीनाम् ।
इन्द्रं सोमासः प्रदिवि सुतासः समुद्रं न स्रवत आ विशन्ति ।।३
यं सोममिन्द्र पृथिवीद्यावा गर्भं न माता बिभृतस्त्वाया ।
तं ते हिन्वन्ति तमु ते मृजन्त्यध्वर्यवो वृषभ पातवा उ ।।५।०

हे इन्द्र ! तुम धनों के स्वामी, अभीष्ट फल देने वाले युद्ध में बढ़ने वाले, सामर्थ्य से युक्त, अजर, शत्रुओं को हराने वाले, अत्यन्त युवा, वज्र धारण करने, वाले, शाश्वत और लोक-त्रय में प्रसिद्ध प्राप्त हो। तुम महान् पराक्रम वाले हो ।। १ ।। हे इन्द्र तुम उग्र कर्म वाले तथा

पूजनीय हो। तुम अपने धन को सेवन करने वाले हो। अपने बल से शत्रुओं को आतंकित करते हो। तुम सम्पूर्ण विश्व के एक मात्र स्वामी हो। तुम शत्रुओं का नाश करते हुए सज्जनों को उत्तम वास प्रदान करो।२। यह इन्द्र सोमयुक्त हैं। सब प्रकार से असीमित तथा पर्वतों से भी अधिक दृढ़ हैं। यह प्रकाशयुक्त तथा देवताओं से भी अधिक बलशाली है। यह आकाश और पृथिवी से भी विशाल है तथा विस्तृत और महान् अंतरिक्ष से भी उत्कृष्ट है।३। हे इन्द्र! तुम अत्यंत गम्भीर एवं महान् हो। तुम अपने स्वभाव से ही शत्रुओं के प्रति विकराल हो जाते हो। तुम सर्वव्यापक एवं स्तुति करने वालों की रक्षा करने वाले हो। जैसे नदियाँ समुद्र की ओर जाती हैं, वैसे ही यह प्राचीन काल से व्यवहृत सोम सुसिद्ध होकर इन्द्र की ओर जाने वाला हो।४। हे इन्द्र! गर्भ धारण करने वाली जननी के समान, तुम्हारी कामना करने लायी आकाश-पृथिवी सोम को धारग करती है। तुम कामनाओं के पूर्ण करने वाले हो। अध्वर्युगण उसी सोम का शोधन कर तुम्हारे सेवन करने के लिए उसे प्रेरित करते हैं।५।

सूक्त ४७

(ऋषि—विश्वामित्रः। देवता—इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप)

भेरुत्वाँ इन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधं मदाय।
आ सिंचस्व जठरे मध्व ऊर्मिं त्व राजासि प्रदिवः सुतानाम् ॥१
मजोषा सगणो मरुद्भि सोम पिब वृत्रहा शूर विद्वान्।
जहि शत्रूरप मृधो नुदस्वाथाभयं कृणुहि विश्वतो नः ॥२
उत ऋतुभिर्ऋतुपाः पाहि सोममिन्द्रः देवेभिः सखिभिः सुतं नः।
याँ आभजो मरुती ये त्वान्वहन्वत्र मदधुस्तुभ्यमोजः ॥३
ये त्वाहिहत्ये मघवन्नवर्धंन्ये शाम्वरे हरिवी ये गविष्टी।
ये त्वा नूनमनुमदंति विप्राः पिबेन्द्र सोम सगणी मरुद्भिः ॥४
मरु त्वन्त वृशभ वावृधानमकवारि दिव्य शासमिन्द्रम्।
विश्वासाहसमवसे नूतननायोग्रं सहोदा तं हुवेम ॥५॥११

हे इंद्र ! तुम मरुद्गण के साथी तथा जल की वर्षा करने वाले हो, तुम हविरूप अन्न से युक्त सोम को युद्धादि के निमित्त तथा आनंदवर्द्धन के लिए पान करो। तुम उस सोम के अपने उदर में सींचो। तुम प्राचीन काल से ही सोमों को अधीश्वर हो।१। हे इन्द्र ! तुम वीर हो। तुम देवताओं के साथी तथा मरुतों की सहायता को प्राप्त करने वाले हो । तुम वृत्र को मारने वाले तथा सभी कर्मों को जानने वाले हो तुम सोमपान करते हुए हमारे शत्रुओं का संहार करो। हिंसक जीवों को नष्ट कर डालो तथा हमको सब ओर से निर्भय कर दो।२। हे इन्द्र ! तुम अपने मित्र रूप देवताओं और मरुद्गण को साथ लाकर हमारे संस्कारित सोम को पीओ। युद्ध में सहायता के लिये तुमने जिन मरुतों को साथ लिया था और जिन मरुतों ने तुम्हें अपना प्रभु स्वीकार किया था, उन्हीं मरुतों ने युद्धक्षेत्र में तुम्हारा बल बढ़ाया था। फिर तुमने वृत्र का संहार किया था।३। हे मघवन् ! तुम अश्वों से युक्त हो। जिन मरुद्गण ने तुम्हें असुर को मारने वाले कार्य में बढ़ाया था, जिन्होंने तुमको शम्बर को मारने के कार्य में शक्तिशाली बनाया तथा उन्होंने गौओं के निमित्त पणियों के साथ हुए संग्राम में तुम्हें प्रवृद्ध किया था, वे मरुद्गण प्रज्ञावान् हैं। वे अन्न भी तुमको प्रसन्न करने में लगे रहते हैं। तुम उन्हीं मरुतों के साथ आकर सोम को पीओ।४। हे इंद्र ! तुम मरुतों से युक्त हो। तुम जलवर्षा करते हो। विश्व के नियंता तथा शासक हो। तुम विकराल कर्म वाले अत्यंत शक्तिशाली हो। दिव्य तथा अद्भुत हो। हम तुम्हारा अभिनव आश्रय प्राप्त करने के निमित्त स्तुति पूर्वक आह्वान करते हैं।५। [११]

सूक्त ४८

(ऋषि— विश्वामित्रः, । देवता——इन्द्र । छंद–त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

सद्या ह वृषभः कनीनः प्रभुर्तुं मावदन्धसः सतस्य ।
साधा पिब प्रतिकाम यथा ते रसशिरः प्रथमं सोम्यस्य ।।१
यज्जायथास्तदरहास्य कामेंऽशोः पीयूमपिबो गिरिष्ठाम् ।
तं ते माता परियीषा जनित्री महः पितुदम आसिचंदग्रे ।।२

उपस्थाय मातरमन्नमैट्ट तिग्म मपश्यदभि सोममूधः।
प्रयावयन्नचरद् गृत्सो अन्यान्महानि चक्रे पुरुधप्रतीकः ।।३
उग्रस्तुराषालभिभूत्योजा यथावशं तन्वं चक्र एषः।
त्वष्टारमिन्द्रो जनुषाभिभूयामुष्या सोममपिबच्चमूषु ।।४
शुन हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु इतन्त वृत्राणि संजितं धनानाम् ।।५।१२

वे जल-वर्षा करने वाले, सद्यःजात इन्द्र हवियुक्त सोम के संग्रह करने वाले के रक्षक हों। सोम-पान की इच्छा करते हुए तुम दुग्धादि से युक्त सोम को देवताओं से पहिले ही पीओ ।।१।। हे इन्द्र! तुमने उत्पन्न होते ही, प्यास लगने पर पर्वत पर स्थित सोमलता का रस पिया था। तुम्हारी माता अदिति ने तुम्हारे पिता कश्यप के घर में, स्तन पिलाने से पूर्व सोम-रस ही तुम्हारे मुख में डाला था ।।२।। इन्द्र ने माता से अन्न माँगा तब उन्होंने उसके स्तन में दुग्ध रूप उज्ज्वल सोम का दर्शन किया। शत्रुओं को मारने के लिए देवताओं द्वारा कामना किये गये इन्द्र शत्रुओं को अपने स्थान से हटाते हुए घूमने लगे। उनके अङ्ग-भङ्ग करते हुए, इन्द्र ने वृत्र का संहार और बहुत से पराक्रम युक्त महान् कर्म किये ।।३।। वे इन्द्र शत्रुओं के लिये भयंकर हैं। वे अपने पराक्रम से शत्रुओं को शीघ्र हराते हैं। वे अपने रूप को विभिन्न प्रकार का बनाने में समर्थ हैं। उन्होंने अपने सामर्थ्य से त्वष्टा को वश में कर चमस में स्थित सोम का पान किया था ।।४।। हे इन्द्र! हे मघवन्! तुम अन्न प्राप्त करने वाले युद्ध में उत्साह द्वारा वृद्धि को प्राप्त होते हो। तुम धन और ऐश्वर्य से युक्त, श्रेष्ठ नेतृत्व वाले तथा स्तुतियों को सुनने वाले हो। तुम विकराल रूप वाले, भीषण युद्ध में शत्रुओं का नाश करते तथा धनों को जीतते हो आश्रय प्राप्त करने के निमित्त हम तुम्हारा आह्वान करते हैं ।।५।। [१२]

सूक्त ४९

(ऋषि—विश्वामित्रः। देवता—इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप् पंक्तिः)

शंसा महामिद्रं यस्मिन्विश्वा आ कृष्टयः सोमपाः काममव्यन्।

यसुक्तु धिषणो विभ्वतष्ट घनं वृत्राणां जनयन्त देवाः ॥१
यं नु नकि पृतनास स्वराजं द्विता तरति नृतमं हरिष्ठाम् ।
इनतमः सत्वभिर्यो ह शूषैः वृथुज्रया अमिनादायुर्दस्योः ॥२
सहावा पृत्सु तरणिर्नार्वा व्यानसी रोदसी मेहनावान् ।
भगो न कारे हव्यो मतीनां पितेव चारुःसुहवो वयोधाः ॥३
धर्ता दिवो रजसस्पृष्ट ऊर्ध्वो रथो न वायुर्वसुभिर्नियत्वान् ।
क्षपां वस्ता जनिता सूर्यस्य विभक्ता भागं धिषणेव वाजम् ॥४
शुनं तुवेव मचवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाज सातौ ।
श्रृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सजित धनानाम् ॥५।१३

हे स्तुति करने वाले ! यह इन्द्र महान् हैं, इनकी स्तुति करो। इन्द्र द्वारा रक्षित हुए सब मनुष्य यज्ञ में सोम पीते हुए इच्छित प्राप्त करते हैं। देवगण तथा आकाश और पृथिवी ने ब्रह्मा द्वारा विश्व के स्वामी बनाये गये उत्ताम कर्मवाले, पाप–विनाशक इंद्र को प्रकट किया ॥१॥ युद्धस्थल में अपने तेज से सुशोभित, अश्व जुते हुए रथ पर बैठे हुए बलवानों के युद्ध में नायक रूप, लड़ती हुई सेनाओं को दो और विभक्त करने वाले जिन इन्द्र पर आक्रमण करने में कोई समर्थ नहीं है, वे इन्द्र उन सेनाओं के अधपति हैं। संग्राम में शत्रुओं के बल को क्षीण करने वाले मरुद्गण के सहित वे इन्द्र अत्यन्त वज्र वाले होकर शत्रुओं के जीवन को समाप्त करने में समर्थ हैं ॥२॥ जैसे शक्तिशाली अश्व शत्रुओं के सामने वेग से जाता है, वैसे ही वे सामर्थ्यवान् इन्द्र स्पर्द्धा-युक्त संग्राम में अधिक वेगवान् होते हैं। वे इन्द्र आकाश-पृथिवी को श्रेष्ठ धनों से सम्पन्न करते हैं। यज्ञ में की जाने वाली स्तुतियों के वे पिता तुल्य हैं। वे बुलाये जाने पर अन्न प्रदान करते हैं ॥३॥ वे इन्द्र ही आकाश और अन्तरिक्ष के धारण करने वाले होते हैं। वे ऊपर की ओर चढ़ाने वाले रथ के समान उन्नत हैं। वे मरुद्गणों की सहायता प्राप्त कर चुके हैं। वे रात्रिमें अन्धकार करते तथा सूर्य को उदय करते हैं वे कर्म के फल रूप अन्न का वैसे ही विभाजन करते हैं जैसे धनवान् पुरुष अपनी वाणी द्वारा धन का विभाजन करता है।२४। हे मघवन् ! तुम अन्न प्राप्त

करने वाले युद्ध में उत्साह के द्वारा वृद्धि को प्राप्त होते हो। तुम धन और ऐश्वर्य से युक्त हो। तुम श्रेष्ठ नेतृत्व से युक्त तथा स्तुतियों के श्रवणकर्त्ता हो। तुम उग्र कर्म वाले हो। संग्राम में शत्रुओं का विनाश करने में समर्थ हो। तुम धनों के विजेता हो। हम, आश्रय-प्राप्ति के निमित्त तुम्हारा आह्वाहन करते हैं ।५०। [१३]

सूक्त ५०

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द–त्रिष्टुप्)

इन्द्रः स्वाहा पिबतु सोम आगत्या तुम्रो वृषभो मरुत्वान् ।
ओरुव्यचाः पृणतामेभिरन्नैरास्य हविस्तन्वः काममृध्याः ॥१
आ ते सपर्यू जवसे युनज्मि ययोरनु प्रदिवः श्रुष्टिमावः ।
इह त्वा धेयुर्हरयः सुशिप्र पिबा त्वस्य सुषुतस्य चारोः ॥२
गोभिर्मिमिक्षुं दधिरे सुपारमिन्द्रं ज्यैष्ठ्या धायसे गृणानाः ।
मन्दानः सोमं पपिवाँ ऋजोषिन्त्समस्मभ्यं पुरुधा गा इषण्य ॥३
इम कामं मन्दया गोभिरश्वैश्चन्द्रवता राधस पप्रथश्च ।
स्वर्यवो मतिभिस्तुभ्यं विप्रा इन्द्राय वाहः कुशिकासो अक्रन् ॥४
शुन हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतम वाजसातो ।
शृण्वन्तमुग्रमतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धानानाम् ॥५॥१४

हे इन्द्र ! हमारे यज्ञ में आकर इस सोम को पीओ। यह सोम जिन इन्द्र के निमित्त है, वे विघ्न करने वालों की हिंसा करने में समर्थ हैं। वे मरुतों से युक्त इन्द्र यज्ञकर्त्ताओं को फूल की वर्षा करते हैं। वे अत्यंत व्यापक हैं। हमारे द्वारा अर्पित अन्न से वे तृप्त हों। हवि उनको संतुष्ट करे ।१। हे इन्द्र ! तुम्हें यज्ञ में बुलाने के निमित्त हम रथ में अश्व जोड़ते हैं। तुम प्राचीन काल से अश्वों का अनुगमन करने वाले हो। तुम्हारी ठोड़ी अत्यंत सुंदर है। ये अश्व तुमको सवार करा कर इस यज्ञ में लावें। तुम इस उत्तम प्रकार से सिद्ध किये गये सोम-रस को यहाँ आकर पीओ ।२। स्तुति किये जाने वाले, अभीष्टों की वर्षा करने वाले तथा स्तुतियों से प्रसन्न होने वाले

इन्द्र के स्तोता ऋत्विक् श्रेष्ठत्व की प्राप्ति के लिए, दुग्धयुक्त सोम द्वारा धारण करते हैं। हे इन्द्र ! तुम सोमयुक्त हो ! प्रसन्नतापूर्वक सोम को पीओ और स्तुति करने वालों को यज्ञ सिद्धि के निमित्त गौऐं प्रदान करो ।४। हमारी कामना को गौ, घोड़े और श्रेष्ठ धन से पूरी करो। धन द्वारा हमको प्रसिद्धि प्राप्त हो। हे इन्द्र ! स्वर्ग-सुख की कामना करने वाले कर्मवान् कौशिकों ने मंत्रों द्वारा तुम्हारा स्तवन किया है ।४। हे इन्द्र ! तुम अन्न प्राप्त करते हो। युद्ध में उत्साह द्वारा बढ़ते हुए धन और ऐश्वर्य के स्वामी बनते हो। तुम श्रेष्ठ नेतृत्व शक्ति से युक्त हो तथा स्तुतियों के सुनने वाले हो। तुम उग्र कर्म वाले हो। संग्राम में शत्रुओं का विनाश कर धन जीतते हो। हम आश्रय-प्राप्ति के निमत्त तुम्हारा आह्वान करते हैं ।५।

सूक्त ५१

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—इन्द्रः । छंद—त्रिष्टुप् पंक्ति)

चर्षणोघृतं मघवानमुक्थ्य मिन्द्र गिरो बृहतीरभ्यनूषत ।
वावृधानं पुरुहूतं सुवृक्तिभिरमर्त्यं जरमाण दिवेदिवे ।।१
शतक्रतुमर्णवं शाकिननरं गिरो म इन्द्रमप यन्ति विश्वतः ।
वाजसनिं पूर्भिदं तूर्णिमप्तुरं धामसाचम भिषाचं स्वर्विदम् ।२
आकरे वसोजरिता नस्यतेऽनेहसः स्तुभ इंद्रो दुवस्यति ।
विवस्वतः सदन आ हि पिप्रिये सत्रासासहभितातिहनं स्तुहि ।।३
नृणामु त्वा नमत गार्भिरुक्थैरभि प्र वीरमर्चता सवाधः ।
सं सहसे पुरुमायो जिहीते नमो अस्य प्रदिव एक ईशे ।।४
पूर्वीरस्य निष्षिधो मर्त्येषु पुरू वसूनि पृथिवी विभर्ति ।
इंद्राय द्याव ओषधोरुतापो रयिं रक्षन्ति जीरयो वनापि ।।५।१५

अभीष्ट प्रदान करके मनुष्यों के पालनकर्त्ता, प्रशंसनीय धन, बल, और ऐश्वर्य से निरंतर बढ़ते हुए, स्तुति करने वालों द्वारा बहुत बार बुलाये गये, अमर, शोभायमान रूप वाणी से सुभोभित इंद्रका स्तोत्र उच्चारण

करें ॥ १ ॥ इन्द्र सैकड़ों कर्म करने वाले, मरुद्वान्, जलवान्, संसार के अग्रणी, अन्नदाता, शत्रु के नगरों को ध्वंस करने वाले, युद्ध के निमित्त शीघ्र गमन करने वाले, मेघ को विदीर्ण कर जल गिराने वाले, धन-दान करने वाले शत्रुओं को हराने वाले तथा स्वर्ग-लाभ कराने वाले हैं ! उन इन्द्र को हमारी स्तुति रूप वाणी प्राप्त हो ॥ २ ॥ इन्द्र की रणक्षेत्र में सभी स्तुति करते हैं । वे शत्रुओं के बल को नष्ट करते हैं । वे हृदयपूर्वक कही हुई स्तुतियों का आदर करते हैं । वे यज्ञकर्त्ता यजमान घर में सोम पीकर परमानन्द प्राप्त करते हैं । हे विश्वामित्र ! मरुद्गण को साथ लेकर शत्रुओं का विनाश करने वाले इन्द्र का स्तवन करो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम पराक्रमी तथा मणुष्यों के नायक हो । दैत्यों द्वारा सन्तापित हुए ऋत्विक् तुम्हारी स्तुति मन्त्रों से भले प्रकार करते हैं । तुम वृत्र संहारक कार्य में बल के सहित जाते हो । प्राचीन इन्द्र ही इस अन्न के स्वामी हैं । इसलिये मैं उन इन्द्र को ही प्रणाम करता हूँ ॥ ४ ॥ इन्द्र का अनुशासन मनुष्यों में व्यापक है । उनके निमित्त ही पृथिवी महान् ऐश्वर्य धारण करते हैं । इन्द्र की आज्ञा से सूर्य औषधियों, जलों, मनुष्यों और वृक्षों के उपभोग्य अन्न की रक्षा करते हैं ॥५॥

तुभ्यं ब्रह्माणि गिरि इन्द्र तुभ्य सत्रा दधिरे हरिवो जुषस्व ।
बोध्या पिरवसो नूतनस्य सखे वसो जगितृभ्यो ययो धाः ॥६

इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोमं यथा शार्याते अपिबः सुतस्य ।
यव प्रणोती तव शूर शर्मन्ना विवासन्ति कवयः सुयज्ञाः ॥७

स वावशान इह पाहि सोम मरुद्भिरिन्द्र सखिभिः सुतं नः ।
जात यत्त्वा परि देवा अभूषन्महे भराय पुरुहूत विश्वे ॥८

अप्तूर्ये मरुत आपिरेषोऽमन्दन्निन्द्रमनु दातिवाराः ।
तेभिः साकं पिबतु वृत्रखादः सुत सोम दाशुषः स्वे सधस्वे ॥९

इद ह्यन्वोजसा सुत राधानां पते। पिबा त्वस्य गिर्वणः ॥१०
यस्तेअनु स्वधामसत्सुते नि यच्छ तन्वम् । सत्वा ममत्तु सोम्यम् ॥११

प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः ।
प्र बाहू शूर राधसे ।।१२।।१६

हे इन्द्र ! तुम अश्ववान् हो, ऋत्विग्गण तुम्हारे निमित्त स्तोत्रों को धारण करते हैं, तुम उन्हें ग्रहण करो । तुम सबको निवास देने वाले मित्र स्वरूप हो । इन नवीन हवि को स्वीकार कर स्तुति करने वालों को अन्न प्रदान करो ।।६।। हे मरुद्वान् इन्द्र ! जिस प्रकार तुमने शर्याति के यज्ञ में सोम-पान किया था, उसी प्रकार इस यज्ञ में भी करो। तुम वीर हो। तुम्हारे ठहरने के स्थान में मेधावी यज्ञकर्त्ता हवि द्वारा तुम्हारी सेवा करते हैं ।।७।। हे इन्द्र ! सोम की इच्छा से अपने मित्र मरुतों को साथ लेकर हमारे इस यज्ञ में सुसंस्कारित सोम का पान करो । तुमको पुरुवंशियों ने बुलाया था । तुम्हारे उत्पन्न होते ही सब देवताओं ने महासमर के निमित्त तुम्हें प्रतिष्ठित किया था ।।८।। हे मरुद्गण ! जल को प्रेरित करने के कारण इन्द्र तुम्हारे मित्र बने हैं। उनको तुमने प्रसन्न किया है वे वृत्र का संहार करने वाले इन्द्र हविदाता यजमान के घर में सुसिद्ध किये गये सोम को तुम्हारे साथ बैठ कर पान करें ।।९।। हे इन्द्र ! तुम धनों के ईश्वर हो । तुम इच्छापूर्वक इस सोम को अपने बल से शीघ्र पीओ ।१०। हे इन्द्र ! तुम्हारे निमित्त जो अन्नयुक्त सोम संस्कारित किया है अपने मनको उसमें लगाओ । तुम सोम पान करने के पात्र हो । यह सोम तुम्हें आनन्दित करे ।।११।। हे इन्द्र ! वह सोम तुम्हारी दोनों कुक्षियों में व्याप्त हो स्तोत्रों से युक्त हुआ सोम तुम्हारे शरीर में रमे। हे वीर ! वह सोम धन के निमित्त तुम्हारी दोनों बाहुओं को पुष्ट बनावें ।।१२।।
[१६]

सूक्त ५२

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—इन्द्रः । छंद—त्रिष्टुप् गायत्री, जगती)

धानान्वत करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम् । इन्द्र प्रातुर्जुषस्व नः ।।
पुरोलाश पचत्यं जुषस्वेन्द्रा गुरस्व च । तुभ्य हव्यानि सिस्रते ।।२
परोलाश च नो घसो जोषयासे गिरश्च नः । वधूयुरिव योषणाम् ।।

पुरोलाश सनश्रुत प्रातः सावे जुषस्व नः ।इन्द्र क्रतुर्हि ते वृहन् ।।४
माध्यन्दिनस्य सववस्य धाना पुरोलाषमिन्द्र कृष्वेह चारुम् ।
प्र यत्स्तोता जरिता तूर्ण्यर्थो वृषायमाण उप गोर्भिरोट्टे ।।५।१७

हे इन्द्र ! यव मिश्रित, दही, सत्तू और पुरोडाश से युक्त पाषाण द्वारा प्रस्तुत हमारे सोम को प्रातः सवन में ग्रहण करो ।।१।। हे इन्द्र ! परिपक्व पुरोडाश का भक्षण करो । यह यज्ञ-योग्य पुरोडाश तुम्हारे निमित्त प्रस्तुत होता है ।।२।। हे इन्द्र ! हमारे इस पुरोडाश को ग्रहण करो । हमारी इस सुनने योग्य वाणी को पत्नी के प्रेमी पति के समान सेवन करो ।।३। हे इन्द्र ! तुम प्राचीन काल से विख्यात हो । हमारे पुरोडाश का प्रातः सवन में भक्षण करते हुए अपने कर्म में महत्ता प्राप्त करो ।।४।। हे इन्द्र ! मध्य सवन वाले यवादि युक्त श्रेष्ठ पुरोडश को यहाँ पधार कर सेवन करो । तुम्हारे सेवक स्तुति के निमित्त उत्कंठित रहते हैं । तुम्हारी सेवा के लिए इधर-उधर गमन करने वाले स्तोता श्रेष्ठ मंत्रों से जब तुम्हारी उपासना करते हैं, तभी पुरोडाशादि को ग्रहण करते हो ।।५।।

[१७]

तृतीये धानाः सवने पुरुष्टु पुरोलाशमाहुतं मामहस्व नः ।
ऋभुमन्तं वाजवन्त त्वा कवे प्रयस्वन्त उप शिक्षेम धीतिभिः ।।६
पूषण्वते ते चकृमा करम्भ हरिवरो हर्यश्वाय धानाः ।
अपूपमद्धि सगणो मरुदाभः सोम पिव वृत्रहा शूर विद्वान् ।।७
प्रति धाना भरत तूयमस्मै पुरोलाशं वीरतमाय नृणाम् ।
दिवेदिवे सहशीरिन्द्र तुभ्य वधन्तु त्वा सोमपेयाय घृष्णो ।।८।१८

हे इन्द्र ! तुम्हारी बहुतों ने स्तुति की है । तुम तीसरे सवन हमारे भूंजे यवादि युक्त पुरोडाश का सेवन करो । तुम ऋभुओं से युक्त तथा धन और पुत्रों से युक्त हो । हम हवियों से युक्त स्तोत्रों द्वारा तुम्हारी पूजा करते हैं ।।६।। हे इन्द्र ! तुम पूषा देवता से युक्त हो तुम्हारे लिए हम दधि-मिश्रित सत्तू तैयार करते हैं। तम अश्ववान् के निमित्त हम भूँजा हुआ जो प्रस्तुत करते हैं । मरुद्गण के साथ आकर पुरोडाश ग्रहण करो । तुमने वृत्र-

को मारा था । तुम मेधावी हो इस सोम का पान करो ।७।। हे अध्वर्युओ ! इन्द्र के निमित्त भुने जौ प्रस्तुत करो । यह नायकों में महान् हैं । इन्हें पुरीडाश दो । हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं को दूर करने वाले हो । तुम्हारे निमित्त नित्य प्रति की जाने वाली स्तुतियाँ सोम-पान के कर्म में तुम्हें प्रोत्साहित करें ।।८।। (१८)

सूक्त ५३

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—इन्द्रापर्वती आदि । छन्द—त्रिष्टुप्)

(अनुष्टुप्, जगती, गायत्री, बृहती)

इन्द्रापर्वत बृहता रथेन वामीरिष आ वहतं सुवीराः ।
वीतं हव्यान्यध्वरेषु, देवा वर्धेथां गीर्भिरिलया मदन्ता ।।१
तिष्ठा सुक मघवन्मा परा गाः सोमस्य नु त्वा सुषुतस्य यक्षि ।
पितुर्न पुत्रः सिचमा रभे त इन्द्र स्वादिष्ठया गिरा शचीवः ॥२
शंसावाध्वर्यो प्रति मे गृणीहीन्द्राय वाहः कृणवाव जुष्टम् ।
एदं वर्हिर्यजमानस्य सीदाथा च भूदुक्थमिन्द्राय शस्तम् ।।३
जायेदस्त मघवन्त्सेदु योनिस्तदित्त्वा युक्ता हरयो वहन्तु ।
यदा कदा च सुनवाम सोममग्निष्ट्वा दूतो धन्वात्यच्छ ।।
परा याहि मघवन्ना च याहीन्द्र भ्रातरुभयत्रा ते क्षर्थम् ।
यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो रासभस्य ।।५।१९

हे इन्द्र ! हे पर्वत ! अपने श्रेष्ठ रथ पर उत्तम संतानयुक्त अन्न लाओ । तुम प्रकाशवान् हो । हमारे यज्ञ में आकर हविसेवन करो । हवियों द्वारा पुष्ट होते हुए हमारी उत्तम स्तुतियों से वृद्धि को प्राप्त होओ ।।१।। हे इन्द्र ! कुछ समय तक इस यज्ञ स्थान में सुख से रहो । हमारे यज्ञ से जाओ मत । रमणीय निष्पन्न सोम रस द्वारा हम तुम्हारा यज्ञ करते हैं । तुम अत्यंत बली हो। पिता के वस्त्रों को मीठे वचन बोलता हुआ बालक जैसे पकड़ लेता है, वैसे ही सुन्दर स्तोत्रों द्वारा हम तुम्हारे वस्त्रों को पकड़ते हैं ।।२।। हे अध्वर्युओ ! हम दोनों उन इन्द्र की स्तुति करेंगे । तुम हमको

सदुपदेश करो । हम इन्द्र के प्रति श्रद्धावान् हुए उनका स्तवन करें। तुम यजमान के कुश रूप आसन पर विराजमान होओ। हमारे द्वारा प्रदत्त उक्थ (स्तुति) इन्द्र के लिए आकर्षित करने वाला हो ॥३॥ हे इन्द्र ! स्त्री ही पुरुषों का वास स्थान है । रथयुक्त अश्व तुमको उस गृह में पहुँचावें । हम जब कभी तुम्हारे निमित्त सोम को संस्कारवान् करें, तब हमारे द्वारा अभिषिक्त अग्नि दूतरूप से तुनको प्राप्त हो ॥४॥ हे इन्द्र ! तुम दूर देश में गमन करते हुए हमारे यहाँ पधारो। तुम सबका पोषण करने वाले हो, तुम्हारा प्रयोजन दोनों स्थानों पर है । जिस घर में स्त्री है वहाँ सोम है । तुम रथ पर आरोहण कर घर को प्राप्त होकर घोड़ों को खोल दो ॥ ५ ॥

(६)

अपाः सोममस्तमिन्द्र प्राय हि काल्पाणीर्जाया सुरण गृहे ते ।
यत्रा रथस्य वृहतो निधान विमोचनं बाजिनो दक्षिणावत् ॥६
इमे भोजा अङ्गिरसो विरूपा दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।
विश्वमित्राय ददतो मघानि सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः ॥७
रूपंरूप मघवा बो भवोति मायाः कृण्वानस्तन्वं परि स्वाम् ।
त्रिय द्दिवः परि मुहूर्तम ागात्स्वैमन्त्रैरनुतुपा ऋतावा ॥८
महां ऋषिर्देवजा देवजूतोऽस्तभ्नात्सिन्धुमणवं नृचक्षा ।
विश्वामित्रो यदवहत्सुदाहमप्रियाय्त कुशिकेभिरिन्द्रः ॥९
हसा इव कृष्णुय श्लोकमद्रिभिभदन्तो गीभिर्रध्वरे सुते सचा ।
देवेभिविप्रा ऋषयो न चक्षसो विपिबध्व
कुशिकाः सोम्यं मधु ॥१०।२०

हे इन्द्र ! तुम यहाँ रुक कर सोम पीओ । सोम पीकर ही घर को गमन करना । तुम्हारे गृह में सौभाग्यवती सुरमणीया स्त्री है । तुम घर जाने के निमित्त रथ पर चढ़ो और वहाँ अश्वों को विमुक्त करो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! यह "भोज" और "सुदास" राजा की ओर से यज्ञ करते हैं। यह "अङ्गिरा" 'मेधातिथि' आदि विविध रूप वाले देवताओं में अत्यन्त बली रुद्रात्पन्न मरुद्गण अश्वमेध यज्ञ में मुझ "विश्वामित्र" को महान् धन दे और अन्न को बढ़ावें ।७। इन्द्र जैसी इच्छा करते हैं, वैसा ही रूप बना लेते

हैं। वे अपने देह को माया द्वारा विविध रूप का बनाने में समर्थ हैं। वे ऋतुओं को प्रेरित करने वाले होकर भी सोम-पान करने में किसी ऋतु विशेष का ध्यान नहीं रखते। वे अपनी ही स्तुतियों द्वारा बुलाये जाकर तीनों सवनों में पहुंचते हैं ॥८॥ अत्यन्त समर्थ, तेजस्वी, तेजों को उत्पंन करने वाले, अध्वर्यु आदि को उपदेश देने वाले "विश्वामित्र" ने जल से पूर्ण सागर के वेग को बाँध दिया। जब उन विश्वामित्र ने "पिजवन-पुत्र सुदास" यज्ञ-कर्म में लगाया तब इन्द्र ने कौशिकों के प्रति अपना उत्तम व्यवहार व्यक्त किया ॥९॥ हे विद्वानो ! हे परमहंसो ! हे ऋषियो हे सबको देखने वालो ! तुम यज्ञनुष्ठान में पाषाणी में सोम के संस्कारित होने पर स्तुतियों से देवताओं को प्रसन्न करो। हंसों के समान श्लोकों का उच्चारण करो। देवताओं के साथ मधुर सोम-रस पीओ ॥१०।

उप प्रेत कुशिकाश्चेतयध्वमश्वं राये प्र मुञ्चता सुदासः ।
राजा वृत्रं जङ्घनत्प्रागपागुदगथा यजाते वर आ पृथिव्याः ॥११
य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टवम् ।
विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारत जनम् ॥१२
विश्वामित्रा अरासत ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे। करदिन्नः सुराधसः ॥१३
किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिरं दुह्रे न तपन्ति घर्मम् ।
आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदो नैचाशाखं मघवन्रन्धया नः ॥१४
ससर्परीरमतिं बाधमाना बृहन्मिमाय जमदग्निदत्ता ।
आ सूर्यस्य दुहिता ततान श्रवो देवेष्वमृतमजुर्यम् ॥१५।२१

हे कौशिको ! तुम अश्व के पास आकर उसे उत्तेजना दो। "सुदास" राजा के घोड़े को धन के निमित्त छोड़ो। इन्द्र ने विघ्न करने वाले वृत्र को पूर्व, पश्चिम, उत्तर में संहार किया। "राजा सुदास" श्रेष्ठ भू भाग में यजन कर्म करें ॥११। हे कौशिको ! हमने आकाश-पृथिवी के सहयोग से इन्द्र की पूजा की है। स्तुति करने वाले विश्वामित्र का इन्द्र के प्रति कहा गया स्तोत्र भरतवंशियों की रक्षा करे।१२। विश्वामित्र क

वंशजों ने वज्रधारी इन्द्र का स्तवन किया है। वे इन्द्र हमको श्रेष्ठ धन से सुशोभित करें ।१३। हे इन्द्र ! "कीकट" लोग, जो कि अनार्य हैं वे गौओं का क्या उपयोग करते हैं ? वे न तो दुग्ध ही प्राप्त करते हैं न घृत ही निकालते हैं। हे इन्द्र! उन गौओं को हमारे पास ले आओ। अधिक धन प्राप्त करने की आशा से धन उधार देने वालों के धनों को भी हमें प्राप्त कराओ।१४। अग्नि को चैतन्य करने वाले ऋषियों द्वारा सूर्य से प्राप्त कर हमको दी गई अज्ञान को हटाने वाली, रूप और शब्द से युक्त, लपकती हुई वाणी शब्द द्वारा ज्ञान को प्रकट करती है। सूर्य की दुहिता वाणी अमृत रूप अन्न का विस्तार करती है ।१५। [५]

ससर्परीरभरत्तू यमेभ्योऽधिश्रवः पाञ्चजन्यासु कृष्टिषु ।
सा पक्ष्या नव्यवायुर्दधाना यां मे पलस्तिजमदग्नयो ददुः ॥१६
स्थिरौ गावौ भवतां वील रक्षो मेषा वि वर्हि मा युगं वि शारि ।
इन्द्रः पातल्ये ददतां शरीतोररिष्टनेमे अभि नः सचस्व ॥१७
बलं धेहि तनूषु नो बलमिन्द्रानलुत्सुनः ।
बंल तोकाय तनयाय जीवसे त्वं हि बलद असि ॥१८
अभि व्ययस्व खदिरस्य सारमोजो धेहि स्पन्दने शिंशपायाम् ।
अक्ष वोलो वीलित वीलयस्व मा यामादस्माव जीहिपो नः ॥१९
अयमस्मान्वनस्पतिर्मा च हा च रीरषत् ।
स्वस्त्या गृहेभ्य आवासा आ विमोचनात् ॥२०।२२

लपकती हुई गद्य रूप रूपिणी वाणी सर्वत्र विद्यमान ज्ञान रूप अन्न को हमें प्रदान करे। दीर्घजीवी ऋषियों ने जिस वाणी को सूर्य से प्राप्त कर हमको प्रदान किया है, वह सूर्य की दुहिता वाणी हमको नया जीवन प्रदान करे ।१६। दोनों वृषभ स्थिर होओ। धुरा दृढ़ हो। जिससे दण्ड नष्ट न हो। जुआ न टूट जाय। दोनों कीलें उखड़ें नहीं। वे इन्द्र रथ को गिरने से पहले ही बचावें। हे अरिष्टनेमि रथ ! तू हमको मङ्गलमय मार्ग पर ले जाता हुआ सदा प्राप्त हो ।१७। हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त बलवान् हो।

हमारे शरीर को बल दो। हमारे बैलों को बलिष्ठ बनाओ पुत्र-पौत्रादि को दीर्घजीवी होने के निमित्त शक्ति प्रदान करो।१८। हे इन्द्र! रथ के खदिर के काष्ठ के सार को दृढ़ बनाओ। शीशम के काष्ठ को भी दृढ़ करो। हे अक्ष! तुम हमारे द्वारा मजबूती से बनाये गये हो। अतः दृढ़ होओ। कहीं हमारे गमनशील रथ से हमको अलग मत कर देना।१९। यह रथ वृक्षों के काष्ठ द्वारा बनाया गया है। यह हमको छोड़ न दे। जब तक हमको घर प्राप्त न हो तब तक यह रथ चलता रहे और जब तक उससे घोड़ों को खोल न दिया जाय तब तक हमारा कल्याण हो।२०।

[२२]

इन्द्रीतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य याच्छ्रेत्राभिर्मघवञ्छूर जिन्व।
यो नो द्वेष्ट्यधरः सस्पदीष्ट यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातु ॥२१
परशुं चिद्वि तपति शिम्बलं चिद्वि वृश्चति।
उखा चिदिन्द्र येषन्ती प्रयस्ता फेनमस्यति ॥२२
न सायकस्य चिकिते जनासो लोधं नयन्ति पशु मन्यमानाः।
नावाजिनं वाजिना हासयन्ति न गर्दभं पुरो अश्वान्नयन्ति ॥२३
इम इन्द्र भरतस्य पुत्रा अपपित्वं चिकितुर्न प्रपित्वम्।
हिन्वन्त्यश्वमरणं न नित्यं ज्यावाजं परिणयन्त्याजौ ॥२४।२३

हे वीर! हे शत्रु संहारक इन्द्र! तुम शत्रुओं का नाश करने के कार्य में वीरों से युक्त उत्तम सेनाओं से हमको युक्त कर विजय प्राप्त कराओ और प्रसन्न करो। हमसे वैर करने वाला भले प्रकार नीचा देखे। जिससे हम द्वेष करें उसका प्राण उसका त्याग करे।२०। हे इन्द्र! जैसे तपती हुई पतीली उबलती हुई फेन निकालती है, वैसे ही हमारे शत्रु मुख से झागों को निकालें, जैसे सेमर का पुष्प अनायास ही छिन्न-भिन्न हो जाता, वैसे ही हमारे शत्रुओं के शरीर कट कर गिर जाँय। लोहार जैसे अग्नि पर कुठार को तपाता है, वैसे ही शत्रु सेना संतप्त हो।२१। हे मनुष्यो! अस्त्रादि के समान अपने प्राणों का अन्त करने वाले के अज्ञान को तुम नहीं जानते। वे लोभ के वशीभूत हुए अपने आपको पशु के समान आगे ले जाते हैं। ज्ञानी पुरुष अज्ञानी पुरुष से सामना करके हँसी नहीं उड़वाते। क्योंकि अश्व की समानता

गधा नहीं करता ।२३। हे इन्द्र ! यह भारतवंशी पार्थक्य जानते हैं और मेल भी जानते हैं। वे युद्ध काल में प्रेरित अश्व के समान धनुष की प्रत्यंचा का घोष करते हैं ।२४।

[२३]

५४ सूक्त [पाँचवाँ अनुवाक]

(ऋषि—प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा। देवता–विश्वदेवाः।
छन्द–त्रिष्टुप् पंक्तिः)

इमं महे विदथ्याय शूषं शश्वत्कृत्व ईड्याय प्र जभ्रुः।
शृणोतु नो दम्येभिरनीकैः शृणोत्वग्निर्दिव्यैरजस्रः ॥१
महि महे दिवे अर्चा पृथिव्यै कामो म इच्छञ्चरति प्रजानन् ।
ययोर्ह स्तोमे विदथेषु देवाः सपर्यवो मादयन्ते सचायोः ॥२
युवोर्ऋतं रोदसी सत्यमस्तु महे षु णः सुविताय प्र भूतम् ।
इदं दिवे नमो अग्ने पृथिव्यै सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ॥३
उतो हि वां पूर्व्या आविविद्र ऋतावरी रोदसी सत्यवाचः ।
नरश्चिद्वां समिथे शूरसातौ ववन्दिरे पृथिवि वेविदानाः ॥४
को अद्धा वेद क इह प्र वोचद्देवाँ अच्छा पथ्या का समेति ।
ददृश्र एषामवमा सदांसि परेषु या गुह्येषु व्रतेषु ॥५ ।२४

अध्ययन रूप मन्थन द्वारा प्रतिपादित स्तोत्र स्तुति के योग्य है। इसका महान् यज्ञ में बारम्बार उच्चारण किया जाता है। अपने घर तेज से परिपूर्ण हुए अग्निदेव इस स्तोत्र का श्रवण करें। वे अपने दिव्य तेज से निरन्तर पूर्ण रहते हुए हमारी स्तुतियों पर ध्यान दें ।१। हे स्तुतिकर्त्ता ! तुम आकश-पृथिवी की अत्यन्त शक्ति को समझते हुए उन्हें पूजो। मैं सम्पूर्ण भोगों की कामना करता हूं। मेरा मन सब ओर जाता है। अपने अर्चन की कामना वाले देवगण मनुष्यों के यज्ञों में जाकर आकाश पृथिवी को पूर्ण करते हुए आनन्द प्राप्त करते हैं ।२। हे आकाश, पृथिवी ! तुम्हारा कर्म सत्य हो। तुम हमारे इस महान् यज्ञ को निर्विघ्न पूर्ण कराने में समर्थ होओ। हे अग्नि !

मैं आकाश और पृथिवी को प्रणाम करता हूँ। हवि रूप अन्न द्वारा सेवा करता हुआ मैं श्रेष्ठ धन माँगता हूं।३। हे सत्य धर्मवाली आकाश पृथिवी ! प्राचीन सत्यवक्ता ऋषियों ने तुमसे हित करने वाला अभीष्ट-प्राप्त किया था। हे पृथिवी ! रणक्षेत्र को प्रस्थान करने वाली सभी वीर तुम्हारी महिमा को जानते हुए तुम्हें नमस्कार करते हैं।४। उसके सत्य से कारणरूप ज्ञाता कौन है ? उस समझे हुए विषय को प्रकट करने वाला कौन है ? वह सरल मार्ग कौन सा है जो देवताओं का सामीप्य प्राप्त कराये ? दिव्य लोक के निचले स्थान में नक्षत्रादि प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। वे हमको उत्कृष्ट एवं कठिन व्रतों में लगाते हैं।५।

कविर्नृचक्षा अभि षीमचष्ट ऋतस्य योना विघृते मदन्ती ।
नाना चक्राते सदनं यथा वेः समानेन क्रतुना संविदाने ॥६
समान्या वियुते दूरेअन्ते ध्रुवे पदे तस्थतुर्जागरूके ।
उत स्वसारा युवती भवन्ती आदु ब्रुवाते मिथुनानि नाम ॥७
विश्वेदेते जनिमा स विविक्तो महो देवान्बिभ्रती न व्यथेते ।
एजद् ध्रुवं पत्यते विश्वमेकं चरत्पतत्रि विषुणं वि जातम् ॥८
सना पुराणमध्येम्यारान्महः पितुर्जनितुर्जामि तन्नः ।
देवासो यत्र पनितार एवैरुरौ पथि व्युते तस्थुरन्तः ॥९
इमं स्तोमं रोदसी प्र ब्रवीम्यृदूदराः शृण्वन्नग्निजिह्वाः ।
मित्रः सम्राजो वरुणो युवान आदित्यासः कवयः पप्रथानाः ॥१०।२५

मनुष्यों के दृष्टा सूर्य आकाश-पृथिवी को सब ओर देखते हैं। जल के प्राकट्य स्थान अन्तरिक्ष में यह हर्षोत्पादन करने वाली, रस से युक्त हुई, समान कर्मवाली आकाश-पृथिवी अनेक स्थान पर घोंसला रखने वाले पक्षियों के समान विभिन्न स्थानों को व्याप्त करती है।६। परस्पर आकर्षण में बंधी हुई, पृथक् रहकर भी साथ रहने वाली, जिनका कभी विनाश नहीं होता, ऐसी आकाश-पृथिवी कभी भी नष्ट न होने वाले अन्तरिक्ष में दो तरुणी बहिनों के समान एक आत्मावाली हुई सृष्टि कर्म में समर्थ बन कर स्थित हैं।७। यह आकाश-पृथिवी सभी भौतिक

पदार्थों को प्रकट करती हुई, सूर्य, इन्द्र, नदी, समुद्र, पर्वत आदि को धारण करके भी नहीं थकतीं। स्थावर और जङ्गम पदार्थों से युक्त विश्व केवल पृथिवी को ही प्राप्त करता और चलायमान पशु पक्ष्यादि जीव आकाश-पृथिवी में ही व्याप्त होते हैं ॥८॥ हे आकाश ! तुम सब की जन्मदात्री हो, तुम्हीं सब का पालन करने वाली हो। तुम्हारी प्राचीनता, पूर्व क्रम से विकास और हमारा उत्पादन इस सबका एक ही कारणभूत है। आकाश भगिनी रूपा है। हम उसका चिंतन करते हैं। तुम्हारी स्तुति करने वाले देवगण अपने-अपने वाहनों पर चढ़े हुए तुम्हारा स्तवन सुनते हैं ॥९॥ हे आकाश-पृथिवी ! तुम्हारे स्तोत्र को भले प्रकार गाते हैं। सोम को उदरस्थ करने वाले, अग्निरूप जिह्वा वाले, नित्य युवा, तेजस्वी अपने-अपने कर्मों को प्रकट करने वाले मित्रादि देवगण हमारी स्तुतियों को श्रवण करें ॥१०॥ [२५]

हिरण्यपाणिः सविता सुजिह्वस्त्रिरा दिवो विदथे पत्यमानः ।
देवेषु च सवितः श्लोकमश्रेरादस्मभ्यमा सुव सर्वतातिम् ॥११
सुकृत्सुपाणिः स्ववां ऋतावा देवास्त्वष्टावसे तानि नो धात् ।
पूषण्वन्त ऋभवो मादयध्वमूर्ध्वग्रावाणो अध्वरमतष्ट ॥१२
विद्युद्रथा मरुत ऋष्टिमतो दिवो मर्या ऋतजाता अयासः ।
सरस्वती शृणवन्यज्ञियासो धाता रयिं सहवीरं तुरासः ॥१३
विष्णुं स्तोमासः पुरुदस्ममर्का भगस्येव कारिणो यामनि ग्मन् ।
उरुक्रमः ककुहो यस्य पूर्वीर्न मर्धन्ति युवतयो जनित्रीः ॥१४
इन्द्रो विश्वैर्वीर्यैः पत्यमान उभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।
पुरन्दरो वृत्रहा धृष्णुषेणः सङ्गृभ्या न आ भरा भूरि पश्वः ॥१५।२६

दान के निमित्त सुवर्ण को हाथ में लेने वाले, उत्तम वचन वाले सूर्य यज्ञ के तीनों सवनों को आकाश से आकर प्राप्त करते हैं। हे सूर्य! तुम स्तुति करने वालों के स्तोत्र को स्वीकार करो। फिर इच्छित धनों को हमारे निमित्त प्रेरित करो ॥११॥ कल्याण के हाथ वाले, सुन्दर विश्व के

रचयिता, सत्य प्रतिज्ञा, धन से युक्त त्वष्टा हमारी रक्षा के लिए आवश्यक साधन दें। हे ऋभुगण ! तुम पूषा से युक्त होकर हमको धन देते हुए पुष्ट बनाओ । पाषाण को सोमाभिषेक के निमित्त प्रेरित करने वाले ऋत्विक् इस अनुष्ठान को करते हैं ॥ १२ ॥ दमकते हुए रथ वाले, शस्त्रों से युक्त तेजस्वी शत्रुओं के नाशक, यज्ञ में प्रकट, गतिमान् मरुद्गण और वाक् देवता हमारी स्तुतियों को श्रवण करें। हे मरुतो ! हमको पुत्र से सम्पन्न धन प्रदान करो ॥३॥ धन का कारणभूत यह स्तोत्र और पूजा के योग्य हवि इस महान् यज्ञ में अनेक कर्म करने वाले विष्णु को प्राप्त हो। सब को जन्म देने वाली दिशाऐं, जिन विष्णु को नष्ट नहीं कर सकतीं, वेब विष्णु अत्यन्त सामर्थ्यवान् हैं। उन्होंने अपने एक पाँव से सम्पूर्ण संसार को ढक लिया था ॥ १४ ॥ सब बलों से युक्त हुए इन्द्र ने आकाश और पृथिवी दोनों को असनी महती सामर्थ्य से पूर्ण किया। शत्रु के गढ़ों को तोड़ने वाले वृत्र संहारक और शत्रुओं को जीतने वाली सेना से युक्त इन्द्र पशु सम्पत्ति को भले प्रकार संग्रहीत कर हमको प्रदान करें [॥१५॥२६]

नासत्या मे पितरा बन्धुपृच्छा सजात्यमश्विनोश्चारु नाम ।
युवं हि स्थो रयिदौ नो रयीणां दात्रं रक्षेथे: अकवैरदब्धा ॥१६
महत्तद्व: कवयश्चारु नाम लद्ध देवा भवथ विश्व इन्द्रे ।
सख ऋभुभि: पुरुधहूत प्रियेभिरिमां धिय सातये तक्षता न: ॥१७
अर्यमा णो अदितिर्यज्ञियासोऽ-धानि वरुणस्य व्रतानि ।
युयोत नो अनपत्यानि गन्तो प्रजावान्न: पशुमां अस्तु गातु: ॥१८
देवामा दूत: पुरुध प्रसूतोऽनानान्नो वोचतु सर्वताता ।
श्रृणोतु न: पृथिवी द्यौरुताप: सूर्यो नक्षत्रै रुर्वन्तरिक्षम् ॥१९
शृण्वन्तु नो वृषण: पर्वतासो ध्रुवक्षेमास इल्या मदन्त: ।
आदित्यैर्नो अदिति: शृणोतु यच्छन्तु नो मरुत: शर्म भद्रम् ॥२०
सदा सुग: पितुमां अस्तु पन्था मध्वा ओषधी: स विपृक्त ।
भोगो मे अग्ने सख्ये न मृध्या उद्राया अश्यां सदन पुरुक्षो ॥२१
स्वदस्य हव्या समिषो दिदीह्यस्मद्य क्सं मिमीह श्रवांसि ।

विश्वां अग्ने पृत्सु ताञ्जेषि शत्रू नहा
विश्वा सुमना दीदिही नः ॥२२॥२७

हे आश्विद्वय ! तुम हमसे बंधुत्व स्थापन की इच्छा करते हो। तुम हमारा पालन करने वाले बनो ! हे अश्विओ ! तुम्हारा निरादर करने में कोई समर्थ नहीं है। तुम हमको श्रेष्ठ धन देने में समर्थ हो। हम तुमको हव्यदान करते हैं। उत्तम कर्मों द्वारा हमारी रक्षा करो ।१६। हे देवताओं ! हे विद्वानो ! तुम्हारा कर्म अत्यन्त श्रेष्ठ है, जो तुम इन्द्र की सेवा में रहते हुए ऐश्वर्य या विजय प्राप्त करते हो। हे इन्द्र ! तुम बहुतों द्वारा आहूत किये हुए हो। तुम्हारी मित्रता ऋभुओं को प्राप्त है। धन-लाभ के निमित्त हमारे इस स्तोत्र को स्वीकार करो ।१७। सदा गतिमान् सूर्य, देवमाता अदिति, देवगण और अहिंसायुक्त वरुण हमारा पालन करें। हमारे मार्ग से अहितकारी विघ्नों को दूर भगावें। हमारे घर को पशु और सन्तान आदि से सम्पन्न बनावें ।१८। यज्ञानुष्ठानों के निमित्त अग्नि देवताओं के दूत रूप से प्रसिद्ध हैं। वे हमको कर्म साधन से युक्त और अपराध वृत्ति से रहित करें। आकाश, पृथिवी, जलाशय, सूर्य और नक्षत्रों से युक्त अन्तरिक्ष हमारे स्तोत्रों को सुनें ।१९। वे मरुद्गण इच्छित फलों की वर्षा करने वाले हैं। वे अभिलाषियों का अभीष्ट पूर्ण करने वाले अचल पर्वत, हवि-युक्त अन्न से प्रसन्न होकर हमारे स्तोत्र पर ध्यान दें अदिति अपने पुत्र देवताओं के सहित हमारी स्तुति सुनें और मरुद्गण हमारा मङ्गल करने वाला धन प्रदान करें ।२०। हे अग्ने ! हमारा पथ सरल हो। हम अन्न-यात्रा में सफलता प्राप्त करें। देवताओ ! औषधियों को मधुर रस से पूर्ण करदो। हे अग्ने ! हम तुम्हारे मित्र हो गये हैं, अतः हमारे धन का नाश न हो। हम धन को उत्पन्न करने वाले अन्न को प्राप्त करें ।२१। हे अग्ने ! इस यज्ञ-योग्य हवि का स्वाद लो। हमारे निमित्त अन्न का प्रकाश करो। अन्न हमारे लिये प्रत्यक्ष हो। युद्ध करने वाले सभी बाधक शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो और प्रसन्न मन से हमारे सब दिनों को प्रकाशपूर्ण करो ।२२। (२७)

सूक्त ५५

(ऋषि–प्रजापतिर्विश्वामित्रो वाच्यो वा । देवता–विश्वेदेवाः आदि ।

छन्द–त्रिष्टुप् पंक्तिः)

उषस पूर्वा अघ यद्वयू षुर्महद्वि जज्ञे अक्षरं पदे गोः ।
व्रता देवनामुप नु प्रभुषन्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१
मो षू णो अत्र जुहरन्त देवा मा पूर्वे अग्ने पितरः पदज्ञाः ।
पुराण्योः सद्मग्नोः केतुरातमं हद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥२
वि मे पुरुत्रा पतयन्ति कामाः शम्यच्छा दीद्ये पूर्व्याणि ।
समिद्धे अग्नाव तश्मिद्वदेम महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥३
समानो राजाविभृतः पुरुत्रा शपे शयासु प्रयुतो वनानु ।
अन्या वत्सं भरति क्षेति माता महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥४
आक्षित्पूर्वास्वपरा अनरुत्सद्यो जातासु तरुणीष्वन्तः ।
अन्तवतीः सुवते अप्रवीता महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥५।२७

जब प्राचीन उषा उदय काल के तेज से संतप्त होता है अब आकाश में अमरत्व प्राप्त आदित्य उदय होते हैं। सूर्योदय होने पर यजमान यज्ञ कर्म करते हुए देवताओं का सामीप्य प्राप्त करते हैं। वे सब महान् देवता समान बल से युक्त हैं ।१। हे अग्ने ! देवगण हमारा विनाश न करें। देवत्व प्राप्त पितरगण हमको न मारें। यज्ञ की प्रेरणा देने वाले सूर्य आकाश पृथिवी के मध्य उदित होते हैं, वे हमारी हिंसा न करे। उन सब देवताओं का महान् बल एक ही हैं ।२। हे अग्ने ! हमारी बहुत प्रकार की कामनाएं विभिन्न दिशाओं में भ्रमण करती हैं। उन उत्तम से प्रकट हुए अग्नि के प्रति हम अपने प्राचीन स्तोत्र को चेतन्य करते हैं। अग्नि के भले प्रकार प्रदीप्त होने पर स्तोत्र-उच्चारण करेंगे। सब देवताओं का महान् पराक्रम एक ही है।३। वे प्रजा स्वामी अग्निदेव, सभी स्थानों में यज्ञादि कर्मों के निमित्त स्थापति किये जाते हैं। वे वेदी पर रमण करते हैं। अरणियों से प्रकट होते हैं। इनके माता-पिता पृथिवी और

आकाश हैं । आकाश इनका वर्षा द्वारा पोषण करता है और पृथिवी इनको निवास देती है । देवताओं का बल एक समान ही है ॥४॥ पुरातन ओषधियों में रमे हुए और नवीन औषधियों में गुण के अनुरूप स्थित अग्निदेव फली-फूली ओषधियों के अन्तर में वास करते हैं । वे ओषधियाँ, बिना वीर्य-दान प्राप्त किये, अग्नि द्वारा गर्भवती हुई फल-पुष्पादि को उत्पन्न करने में समर्थ हैं । यह सब अग्निदेव का सामर्थ्य है । सभी देवताओं का बल समान है ॥५॥

शयुः परस्तादध नु द्विमाताबन्धनश्चरति वत्स एकः ।
मित्रस्य ता वरुणस्य व्रतानि महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥६
द्विमाता होता विदथेषु सम्रालन्वग्रं चरति क्षेति बुध्नः ।
प्र रण्यानि रण्यवाचो भरन्ते महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥७
शूनरस्येव युध्यतो अन्तमस्य प्रतीचान ददृशे विश्वमायत ।
अन्तमं तिश्चरति निष्षिध गोर्महद्देवानामसुरत्त्वमेकम् ॥८
न वेवेति पलितो दूत आस्वन्तर्महांश्चरति रोचनेन ।
वपूंषि बिभ्रदभि नो वि चष्टे महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥९
विष्णुर्गोपाः परमं पाति पाथः प्रिया धामान्यमृता दधानः ।
अग्निष्टा विश्वा भुवनानि वेद महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१०।२९

दोनों माता-पिता रूप आकाश-पृथिवी के मध्य सूर्य अस्त होते हुए पश्चिम में शयन करते हैं । वे सूर्य उदय-काल में अकेले ही आकाश में अबाध गति से विचरण करते हैं । यह कर्म मित्र वरुण की प्रेरणा से होता है । वे दोनों समान बल वाले हैं ॥६॥ वे अग्नि आकाश पृथिवी रूप दोनों लोकों के रचयिता हैं । वे यज्ञ में भले प्रकार रमण करते हैं और आकाश में सूर्य रूप से विचरते हैं । वे ही इस पृथिवी पर वास करते हुए सब कर्मों के कारण रूप हैं । स्तोतागण सुन्दर वचनों द्वारा श्रेष्ठ स्तोत्रों का उच्चारण करते हैं । उन सब देवताओं का पराक्रम एक-सा है ॥७॥ अति वीरतापूर्वक युद्ध करने वाले पुरुष के सामने जो कोई आता है, वही उससे हार कर पराङ्मुख होता

है उसी प्रकार अग्नि के सम्मुख जो भी आता है वही परांगमुख दिखाई देता है। वे सर्वज्ञाता अग्निदेव सर्वत्र व्यापते हैं उन सब देवताओं का एक ही महान् बल है ॥८॥ जैसे सूर्य आकाश और पृथिवी के मध्य अपनी अत्यन्त सामर्थ्य से व्याप्त हैं, वैसे ही देवताओं के दूत प्राणीमात्र का पालन करने वाले अग्नि औषधियों में व्याप्त हैं, वे विविध रूपधारी हमको अत्यन्त कृपा-दृष्टि से देखें। सब देवों का महान् बल एक ही है ॥९॥ सर्व व्यापक सब के पालक, हितैषी, कभी क्षीण न होने वाले अग्नि तेज को धारण करते हुए पृथिवी आदि लोकों की रक्षा करते हैं। वह अग्नि समस्त भूतों को जानते हैं। वह सब देवों में अद्वितीय एक ही महान् शक्ति है ॥१०॥

नाना चक्राते यम्या वपूंषि तयोरन्यद्रोचते कृष्णमन्यत् ।
श्यावी च यदरुषी च स्वसारौ महद्देवानाममुरत्वमेकम् ।११
माता च यत्र दुहिता चधेनू सबर्दुधे धापयेते समीची ।
ऋतस्य ते सदसीले अन्तर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१२
अन्यस्या वत्सं रिहिती मिमाय कया भुवा नि दधे धेनुरूधः ।
ऋतस्य सा पयसापिन्वतेला महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१३
पद्या वस्ते पुरुरूपा वपूंष्यूर्ध्वा तस्थौ त्र्यविं रेरिहाणा ।
ऋतस्य सद्म वि चरामि विद्वान्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१४
पदे इव निहिते दस्मे अन्तस्तयोरन्यद् गुह्यमाविरन्यत् ।
सध्रीचीना पथ्या सा विषूची महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१५।३०

कृष्ण वर्ण वाली रात्रि और तेजमय उज्जवल उषा दोनों बहिनें सूर्य से उत्पन्न होती हुई जागृति और निद्रा के नियम में जीवों को डालने वाली विविध रूपों से युक्त हैं। उन दोनों में एक तेज से चमकती तथा दूसरी अन्धकार से काली रहती है। इन सब देवताओं में उन सूर्य रूप अग्नि का एक ही महान् बल है ॥ ११ ॥ पृथिवी और आकाश दोनों ही माता और पुत्री के समान है। पृथिवी सब जीवों को उत्पन्न कर उनका पालन करने के कारण माता तथा आकाश से वर्षा के जल को दूध के समान ग्रहण करने के

कारण पुत्री रूप है। वैसे ही आकाश मेघ, वर्षा आदि से जीवों के पालन कर्त्ता होने से माता और पृथिवी के जल को दूध के समान खींचकर पीने से पुत्री के समान है। यह दोनों ही गौ के समान अन्न, जल रूप से दूध देने वाली हैं। उन आकाश और पृथिवी का हम स्तवन करते हैं। यह दोनों देवताओं के एक ही महान् बल द्वारा समर्थ हुई हैं।१२। गौ के समान रस-वर्षा करने वाले आकाश के जल को पृथिवी मेघ रूप से धारण करती है। उस समय वह पृथिवी के जल से उत्पन्न मेघ को बछड़े के समान चाटती है और विद्युत् गर्जन के रूप से ध्वनि करती हुई भूमि को अन्नोत्पादक तथा पोषक वर्षा के जल से भले प्रकार सींचती है। यह सब देवताओं के एक महान् बल का ही परिणाम है।१३। शरीर को विविध प्रकार से आकाश पृथिवी ढकती है। उन्नत होकर तीनों लोकों को व्याप्त करने वाले सूर्य को चाटती हुई सी चलती है। सत्य के कारणभूत सूर्य के स्थान को जानकर हम उनकी स्तुति करते हैं। देवताओं का महान् बल एक ही है।१४। दो पाँवों के समान गमनशील दिन रात्रि आकाश और पृथिवी के मध्य व्याप्त हैं। के दोनों अद्भुत हैं, एक अन्धकार का और दूसरी उजाले का नाश करने वाली है। उन दोनों का मिलन मार्ग पापी और पुण्यकर्मा दोनों को ही प्राप्त है। देवताओं का एक ही महान् बल है।१५। [३०]

आ धेनेवो धुतयन्तामशिश्वी सबर्दुघाः शशया अप्रदुग्धाः।
नव्यानव्या युवतयो भवन्तीर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१६
यदन्यासु वृषभो रोरवीति सो अन्यस्मिन्यूथे नि दधाति रेतः।
स हि क्षपावान्त्स भगः स राजा महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१७
वीरस्य नु स्वश्व्य जन सः प्र नु वोचाम विदुरस्य देवाः।
षोलहा युक्ताः पञ्चपञ्चा वहन्ति महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१८
देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः पुपोष प्रजाः पुरुधा जजान।
इमा च विश्वा भुवनान्यस्य महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१९
मही समरञ्चम्मा समीचो उभे ते अस्य वसुना न्यष्टे।
शृण्वे वीरो विन्दमाना वसूनि महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥२०

इमां च नः पृथिवीं विश्वधाया उप क्षेति हितमित्रो न राजा ।
पुरः सदः शर्मसदो न वीरा महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥२१

निष्षिध्वरीस्त ओषधीरुतापो रयिं त इन्द्र पृथिवी बिभर्ति ।
समायस्ते वामभाजः स्याय महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥२२॥३१

वर्षा करने के कारण सबको प्रीति प्राप्त करने वाली, शिशु-विहीना, आकाश-व्यापिनी, सदा युवती और नवीन स्वरूप वाली दिशायें कम्पायमान होती हैं। यह देवताओं की एक महान् सामर्थ्य का फल है।१६। वर्षणशील मेघ गौ के मध्य स्थित वृषभ के समान दिशाओं में शब्द करता हुआ जल वर्षा करता है। इन्द्र ही उसे इस कार्य में प्रेरित करते हैं। वे इन्द्र सब के द्वारा उपासना करने योग्य है और सब के स्वामी हैं। देवताओं का सामर्थ्य एक समान है।१७। हे मनुष्यो ! हम इन्द्र के सुशोभित घोड़ों का उत्तम वर्णन करते हैं। देवगण उन इन्द्र के अश्वों को जानते हैं। दोदो महीनों को मिलाकर वर्ष में छः ऋतुऐं होती हैं। हेमन्त और शिशिर को एक कर देने पर पाँच ऋतुऐं मानी जाती हैं। यह इन्द्र के अश्व रूप ऋतुयें मानी जाती हैं यह इन्द्र के अश्व रूप ऋतुऐं सूर्यरूप इन्द्र का वहन करती हैं। देवताओं का महान् सामर्थ्य एक ही है।१८। त्वष्टा देव अन्तर्यामी होने से सबको प्रेरित करते वाले हैं वे विभिन्न रूप वाली प्रजाओं को उत्पन्न करने वाले, तथा यही उनका पोषण करते हैं। यह सब लोक त्वष्टा के ही हैं। देवताओं का महान् बल एक समान है।१९। इन्द्र ने ही इन महत्तावान् आकाश पृथिवी को सुसंगत कर, पशु पक्षियों को प्रकट करने वाली बनाया। वे आकाश पृथिवी दोनों हीं,इन्द्र के तेज से व्याप्त हैं। वे सामर्थ्यवान् इन्द्र शत्रुओं को हराकर उनके धन को ले लेने में प्रसिद्ध हैं। उनके साथी देवताओं का महान् बल एक ही है।२०। विश्व के धारण करने वाले, हमारी पृथिवी और आकाश के भी स्वामी,हितचिंतक मित्रों से युक्त इन्द्र स्वयं तेजस्वी हुए प्राणियों का पालन करते हैं। मरुद्गण युद्ध का अवसर प्राप्त होने पर इन्द्र के आगे चलते हैं और दिव्य स्थानों पर निवास

करते हैं। देवताओं का महान् सामर्थ्य एक ही है।२१। हे इन्द्र! यह पृथिवी रोग नाशिनी औषधियों को पुष्ट करती है। जल धाराऐं भी तुम्हारे सखा श्रेष्ठ ऐश्वर्यों को प्राप्त कर उनका भोग करने में समर्थ हों। देवताओं का महान् बल एक ही है।२२। [३१]

सूक्त ५६

(ऋषि—प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा । देवता-विश्वेदेवाः ।
छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

न ता मिनन्ति मायनो न धीरा वृता देवानां प्रथमा ध्रुवाणि ।
न रोदसी अद्रुहा वेद्याभिर्न पर्वता निनमे तस्थिवांसः ॥१
षड्भारा एको अचरत्यिभर्त्यृं त वर्षिठमुप गाव आगुः ।
तिस्रो महीरुपरास्तथुरत्या गुहा द्वे निहिते दर्श्येका ॥२
त्रिपाजस्यो वृषभो विश्वरूप उत युधा पुरुध प्रजावान् ।
त्र्यनीकः पत्यते माहिनावान्त्स रेतीधा वृषभः शश्वतीनाम् ॥३
अभीक आसां पदवीरबोध्यादित्यानमह्वे चारु नाम ।
आपश्चिदस्मा अरमन्त देवीः पृथग्व्रजतीः पारषोमबृञ्जन् ॥४
त्रो षधस्था सिन्धवस्त्रिः कवीनामुत त्रिमाता विदथेषु सम्राट् ।
ऋतावरीर्योषणास्तिस्रो अप्यास्त्रिरा दिवो विदथे पत्यमानाः ॥५
त्रिरा दिवः सवितर्वार्याणि दिवेदिव आ सुव त्रिर्नो अह्नः ।
त्रिधातु राय आ सुवा वसूनि भग त्रातर्बिषणे सातये धाः ॥६
त्रिरा दिवः सवित सोषवीति राजाना मित्रावरुणा सुपाणी ।
आपश्चिदस्य रोदसी विदुर्वी रत्न भक्षन्त सवितुः सवाय ॥७
त्रिरुत्तमा दूणशा रोचनानि त्रयो राजन्त्सुरस्य वीराः ।
ऋतावान इषिरा दुजभासस्त्रिरा दिवो विदते सन्तु देवाः ॥८॥१

देवताओं की सृष्टि से उत्पन्न होने वाले मायावी असुर श्रेष्ठ कर्मों की हिंसा न करें। विद्वान् भी उत्तम कर्मों को न त्यागे। आकाश-पृथिवी भी प्रजाओं के साथ विघ्न रहित रहें। अविचल पर्वत को कोई झुकानहीं

सकता ।१। एक संवत्सर वसंतादि षट् ऋतुओं का धारणकर्ता है। सत्य के आधारभूत, सूर्य से युक्त संवतसर को रश्मियाँ प्राप्त होती हैं। तीनों लोक ऊपर ही स्थित हैं। स्वर्ग और अन्तरिक्ष गुफा में छिपे हैं। केवल पृथिवी ही प्रत्यक्ष है ।२। ग्रीष्म, वर्षा, हेमन्त ऋतुओं से युक्त, जल की वर्षा करने में समर्थ, तीनों लोकों को स्तन के समान रस प्रदान करने वाले, प्रजायुक्त, गर्मी, वर्षा शीतगुण वाले महत्त्वशील संवत्सर प्राणशक्ति से युक्त हैं। वह संवत्सर जल धारण कर पृथिवी को सींचने में समर्थ है ।३। इन सब औषधियों के समीप उनके पद रूप से संवत्सर चैतन्य होता है। मैं उन आदित्यों के सुन्दर नामों को जानता हूँ। इस संवत्सर से स्वतन्त्रमार्गगामी जल समूह चार महीने तक सुसंगति करता और आठ महीनों के लिये वियुक्त रहता है ।४। हे नदियो! त्रिगुणात्मक और त्रिसंख्यक लोकों में देवता निवास करते हैं। लोक त्रय के रचयिता सूर्य यज्ञ के भी स्वामी हैं। अन्तरिक्ष से चलने वाली जलवती इला सरस्वती और भारती यज्ञ के तीनों सवनों में रहें ।५। हे सूर्य! तुम सबको बल देते हो। प्रतिदिन तीनों सवनों में आकाश में आकर हमको प्राप्त होते हुए सुन्दर उपभोग्य धन दो। तुम हमारा पालन करने वाले हो। हमको दिन के तीनों सवनों में पशु, स्वर्ण रत्न और गवादि धन दो। हे मेधावी सूर्य! जिस उपाय से हमको धन-लाभ हो सके, वही उपाय करो ।६। वे सवितादेव सदन में तीन बार हमको ऐश्वर्य दें। कल्याण रूप हाथ वाले, राजा मित्र और वरुण, आकाश और पृथिवी तथा अन्तरिक्ष आदि देवता, सवितादेव से ऐश्वर्य वृद्धि की याचना करें ।७। सर्व विजेता, प्रकाशवान्, अविनाशी तीन श्रेष्ठ स्थान है। इन तीनों में अग्नि वायु और सूर्य सुशोभित होते हैं। यज्ञ से युक्त, तिरस्कृत न किये जाने वाले द्रुतगामी देवता तीनों सवनों में हमारे यज्ञानुष्ठान में पधारें ।८। [१]

सूक्त ५७

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द—त्रिष्टुप्)

प्र मे विविक्वाँ अविदन्मनीषां धेनुं चरन्ती प्रयुतामगोपाम् ।

सद्यश्चिद्या दुदुहे भूरि धासेरिन्द्रस्तदग्निः पनितारो अस्याः ॥१

इन्द्रः सु पूषा पूषणा सुहस्ता दिवो न प्रीताः शशयं दुदुह्ने ।
विश्वे यदस्यां रणयत देवाः प्रवोऽत्र वसवः सुम्नमश्याम् ॥२

या जामयो वृष्ण इच्छन्ति शक्ति नमस्यन्तोर्जानते गर्भमस्मिन् ।
अच्छा पुत्र धेनवो वावशाना महश्चरन्ति बिभ्रतं वपूंषि ॥३

अच्छा विवक्मि रोदसी सुमेके ग्राव्णो युजानो अध्वरे मनीषा ।
इमा उते मनवे भूरिवारा ऊर्ध्वा भवन्ति दशता यजत्राः ॥४

या ते जिह्वा मधुमती सुमेधा अग्ने देवेषूच्यत उरूची ।
तयेह विश्वां अवसे यजत्राना सादय पायया चा मधूनि ॥५

या ते अग्ने पर्वतस्येव धारासश्चन्तीं पीपयद्देव चित्रा ।
तामस्मभ्य प्रमतिं जातवेदो वसो रास्व सुमतिं विश्वजन्याम् ॥६॥२

वे बुद्धिमान् इन्द्र अकेले विहार करने वाली, रक्षक से रहित गौ के समान हमको प्राप्त करें । जिस स्तुति रूप से अभिलाषित फल दोहने की इच्छा की जाती है, उस स्तुति को इन्द्र और अग्नि दोनों प्राप्त करें ।१। इन्द्र, पूषा और अभिलाषित वर्षा करने वाले मंगलहस्त मित्रावरुण अंतरिक्ष में शयन करने वाले मेघ को अंतरिक्ष से दुहते हैं । हे विश्वेदेवाओ ! तुम उत्तम निवास देने वाले हो । इस यज्ञ वेदी पर रमण करो जिससे हम तुम्हारे द्वारा दिये गये सुख को प्राप्त कर सकें ।२। जल वर्षक इन्द्र की शक्ति को कामना करने वाली औषधियाँ नम्र होकर इन्द्र की गर्भाधान करने वाली क्षमता का ज्ञान प्राप्त करती हैं । फल की अभिलाषा करने वाली औषधियाँ यवादि शिशुओं के सामने अभिमुख होती हैं ।३। यज्ञ में सोम-अभिषव करने वाले पाषाण को धारण करते हुए हम आकाश पृथिवी की मधुर वाणी द्वारा स्तुति करते हैं हे अग्निदेव ! तुम्हारी वरण करने योग्य, पूजनी एवं रमणीय प्रदीप्तियाँ मनुष्य के समक्ष ऊपर उठती है ।४। हे अग्न ! तुम्हारी ज्वाला रूप जिह्वा अत्यन्त रस ी तथा मधुर ी और प्रज्ञावती होती हुई देवताओं के आह्वान का निमित्त होता है । अपनी उस जिह्वा से यजन करने

योग्य देवताओं को इस यज्ञ कर्म में हमारी रक्षा के निमित्त बुलाओ और उन देवताओं को सोम-पान कराके प्रसन्न करो ।५। हे तेजस्वी अग्निदेव ! हमको त्यागकर अन्य किसी के पास न जाने वाली विविध रूपिणी तुम्हारी कृपापूर्ण मति हमको इच्छित फल प्रदान करती हुई बढ़ावे, उस प्रकार जैसे मेघ जल द्वारा वनस्पतियों को बढ़ाता है । तुम स्वयं बुद्धिमान् एवं निवास दाता हो, हमको अपनी वही कृपापूर्ण वृद्धि दो तथा सबका कल्याण करने वाली बुद्धि से सुशोभित करो ।६। (२)

सूक्त ५८

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता– अश्विनौ । छन्द–त्रिष्टुप् पंक्तिः)

धेनुः प्रत्नस्य काम्यं दुहानान्तः पुत्रश्चरति दक्षिणायाः ।
आ द्योतनिं वहति शुभ्रयामोषसः स्तोमो अश्विनावजागः ॥१
सुयग्वहन्ति प्रति वामृतेनोर्ध्वा भवन्ति पितरेव मेधाः ।
जरेथामस्मद्वि पणेर्मनीषां युवोरवश्चकृमा यातमर्वाक् ॥२
सायुग्भिरश्वैः सुवृता रथेन द्रस्राविमं श्रृणुतं श्लोकमद्रेः ।
किमङ्ग वां प्रत्यवर्तिं गमिष्ठाहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः ॥३
आ मन्येथामा गतं कच्चिदेवैर्विश्वे जनासो अश्विना हवन्ते ।
इमा हि वां गोऋजीका मधूनि प्र मित्रासो न ददुरुस्रो अग्रे ॥४
तिरः पुरू चिदश्विना रजांस्याङ्गूषो वां मघवाना जनेषु ।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्दस्राविमे वां निधयो मधूनाम् ॥५।३

प्राचीन अग्नि के निमित्त उषा रात्रि की समाप्ति ओस रूप रस बूंदों को दुहती है । फिर उषा पुत्र-भास्कर उसके बीच घूमते हैं । उज्ज्वल प्रकाश से युक्त दिन सबको प्रकाश देने वाले सूर्य को घुमाता है । सूर्योदय से पूर्व ही अश्विनीकुमार का स्तवन करने वाले तत्पर होते हैं । १ । हे अश्विनीकुमारो ! उत्तम, श्रेष्ठ तथा सत्यरूप रथ द्वारा तुमको यज्ञ में लाने के लिए दो घोड़े जुतते हैं । माता-पिता की ओर पुत्र के जाने के समान यज्ञ

तुम्हारी ओर जाता है। हमारे निकटस्थ दत्यों और दुष्कर्मियों को इससे दूर हटाओ। हम तुम्हारे लिये हव्य प्रदान करते हैं । तुम दोनों यहाँ आओ ।२। हे अश्विनीकुमारो ! विशेष चक्र वाले सुन्दर रथ में सुशोभित घोड़ों को जोड़ो और उस पर चढ़कर यहाँ आओ। हम स्तोता तुम दोनों का स्तोत्र उच्चारण करते हैं उसे आकर सुनो तथा इस बात पर भी ध्यान दो कि प्राचीन बुद्धिमानों ने क्या-क्या स्तुति की तुम दोनों उन्हीं के अनुकूल जलो ।३। हे अश्वनीकुमारो ! तुम दोनों को भी सभी आदर पूर्वक बुलाते हैं। उनके आहवान पर ध्यान देकर अपने अश्वों सहित यज्ञ में पधारो। वे तुम्हारे निमित्त मित्र के समान प्रसन्नताप्रद दुग्धादि से मिश्रित हव्य प्रदान करते हैं। उषा के पश्चात् आदित्य देव उदित हो रहे हैं। अतः शीघ्र ही यहाँ पधारो ।४। हे अश्वियो ! तुम दोनों की बाणी सब लोकों को प्राप्त हो। तुम्हारी वाणी संकटों को दूर करे। तुम दोनों विद्वज्जनों के मार्गों से इस लोक में आगमन करो। तुम शत्रुओं का संहार करने में समर्थ हो। इस मधुर रस से पूर्ण पुष्टिकारक सोम को तुम्हारे निमित्त ही पात्रों में निचोड़ कर रखा गया है ।५। (३)

पुराणमोर्कः सख्यं शिवं वां यवोर्नरा द्रविणं जह्नाव्याम् ।
पुनः कृण्वानाः सख्या शिवानि मध्वा मदेय सह नू समानाः ॥६
अश्विना वायुना यव सुदक्षा नियुद्भिश्व सजोषसा युवाना ।
नासत्या तिरोअह्न्यं जुदाणा सोमं पिवेतमस्त्रिधा सुदानू ॥७
अश्विना परि वामिषः पुरूचोरीयुर्गीर्भियतमाना अमृध्राः ।
रथो ह वामृतजा अद्रिजूतः परि द्यावापृथिवी याति सद्यः ॥८
अश्विना मधुसुत्तमो युवाकुः सोमस्तं पातमा गत दुरोणे ।
रथो ह वां भूरि वर्पः करिक्रत्सुतावतो निष्कृतमागमिष्टः ॥९।४

हे अश्वनीकुमारो ! तुम्हारी मित्रता प्रचीन और सबको अवश्यक तथा मंगलकारी है। तुम दोनों सबका नेतृत्व करने वाले हो तुम दोनों का ज्ञान जन्हू कुल वालों के लिए कल्याणकारी हो। तुम दोनों के मैत्री भावका

सुख बारम्बार प्राप्त करें । प्रसन्नता उत्पन्न करने वाले सोम का पान करते हुए हम भी तुम दोनों के साथ शीघ्र ही तुष्टि को प्राप्त करें ।६। हे आश्विनी कुमारो ! तुम सभी उपयुक्त सामर्थ्यों से युक्त हो। तुम मिथ्यात्व रहित, सतत युवा तथा शोंभनीय धनों के देने वाले हो। वायु, तथा नियमों से वियुक्त अश्वों से युक्त हुए । यहाँ आकर अक्षय गुण वाले सोम पीने के अभ्यासी तुम दोनों ही दिन के प्रकाश में सोम पान करो ।७। हे अश्वियीकुमारो ! यह पर्याप्त हव्य तुमको प्राप्त होता है। कर्मों में चतुर तथा पाप-रहित स्तुति करने वाले उत्तम स्तोत्रों द्वारा तुम दोनों की पूजा करते हैं। स्तुति करने वाले उपासकों द्वारा आरक्षित किया गया जलदायक रथ आकाश और पृथिवी के बीच चलता है ।८। हे अश्विनीकुमारो ! यह अत्यन्त मधुर रस तथा दुग्धादि से मिश्रित सोम प्रस्तुत है, उसे पीओ। तुम दोनों का धन देने वाला श्रेष्ठ रथ सोम शुद्ध करने वाले यजमान के सुशोभित घर में बारम्बार पहुंचता है ।९। (४)

सूक्त ५९

(ऋषि— विश्वामित्रः । देवता — मित्रः । छन्द–त्रिष्टुप् पंक्ति । गायत्री)

मित्रो जनान्यातयति ब्रुवाणो मित्रो दाधार पृथिवीमुतद्याम् ।
मित्रः कृष्टीरनिमिषाभि चष्टे मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोत ॥१

प्र स मित्र मर्तो अस्तु प्रयस्वान्यस्त आदित्य शिक्षति व्रतेन ।
न हन्यते न जीयते त्वोतोर्नैनमंहो अश्नोत्यन्तितो न दूरात् ॥२

अनमीवास इलया मदन्तो मितज्ञवो वरिमन्ना पृथिव्याः ।
आदित्यस्य व्रतमुपक्षियन्तो वयं मित्रस्य सुमतौ स्याम ॥३

अयं मित्रो नमस्यः सुशेवो राजा सुक्षत्रो अजनिष्ट वेधः ।
तस्य त्रयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सोमनसे स्याम ॥४

यहां आदित्यो नमसोपसद्यो यातयज्जनो गृणते सशेवः ।
तस्मा एतत्पन्यतमा जुष्टमन्नौ मित्राय हविरा जुहोत ॥५।४

देवगण पूजित होने पर सम्पूर्ण संसार को कृषि आदि कर्मों में प्रेरित करते हैं। वर्षा द्वारा अन्नादि को उत्पन्न करने वाले मित्र देवता पृथिवी और आकाश दोनों को धारण करने वाले हैं। वे मित्र देवता कर्म वाले व्यक्तियों को सब प्रकार के अनुग्रह की दृष्टि से देखते हैं। उन मित्र देव के निमित्त घृतयुक्त हवियां दो ।१। हे आदित्य ! तुम्हें मित्र के सहित जो व्यक्ति हवियाँ देता है, वह अन्नों का स्वामी हो। जो मनुष्य तुम्हारी रक्षा प्राप्त कर लेता है, उसकी हिंसा कोई नहीं कर सकता। तुम्हारे निमित्त जो मनुष्य हवि देता है, उसके निकट पाप कभी नहीं आता ।२। हे मित्र ! हम रोगों से बचें अन्न प्राप्ति द्वारा पुष्ट हों। इस विस्तृत पृथिवी पर हम अपनी जांघों को सकोड़ कर (जानु के बल बैठे हुए,) आदित्य के व्रत का पालन करते हैं। वे आदित्य हमारे प्रति अपनी कृपा-बुद्धि रखें ।३। यह आदित्य सुन्दर प्रकाश वाले, वल में बढ़े हुए, सबको उत्पन्न करने वाले, सबके स्वामी तथा नमस्कार करने के योग्य हैं। इनके प्रादुर्भाव पर यज्ञ कर्म होते हैं। हम यजमान इनकी कृपा तथा मंगलकारी वात्सल्य भाव को प्राप्त करें ।४। उन महान् लोकों के प्रवर्त्तक आदित्य को नमस्कारों से युक्त पूजा करनी चाहिए स्तुति करने वालों से वे आदित्य अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। हे स्तोताओ ! मित्र देवता स्तुति के पात्र हैं, उनके निमित्त प्रीतिदायक हवियाँ अग्नि में डालो ।५। [५]

मित्रस्य चर्षणीधृतोऽवो देवस्य सानसि । द्युम्नं चितश्रवस्तमम्।।६
अभिः यो महिमा दिवं मित्रो वभूव सप्रथाः ।
अभि श्रवोभिः पृथिवीम् ।।७
मित्राय पञ्च येमिरे जना अभिष्टिशवसे ।
स देवान्विश्वान्बिभर्ति ।।८
मित्रो देवे ष्वायुणु जनाय वृक्तवर्हिषे । इस इष्टव्रता अक ।।६।६

वर्षा के द्वारा मनुष्यों को धारण करने वाले मित्र देवता का विचित्र अन्नादि धन कीर्ति और ज्ञान से युक्त होकर सबके लिये सेवन करने के योग्य यथा सुख देने वाला ।६। मित्र देवता ने अपनी महत्ता से आकाश

को वशीभूत किया है, उन्होंने अपने कर्मों द्वारा अत्यन्त यशस्वी पृथिवी को सबको सेवन करने वाले अन्न युक्त किया ।७। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा निषाद यह पाँचों वर्ण शत्रुओं को जीतने की क्षमता वाले मित्र देवता के प्रति सम्मान प्रदर्शित करें। वे मित्र अपने स्वरूप द्वारा ही सब देवताओं का पोषण करते हैं ।८। जो व्यक्ति विद्वानों, देवताओं एवं अन्य मनुष्यों में कुश को काटकर लाता है, मित्र देवता उसके लिये मङ्गलकारी अन्न प्रदान करते हैं ।९। [६]

सूक्त ६०

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—ऋभवः । छन्द—जगती)

इहेह वो मानसा बन्धुता नर उशिजो जग्मुरभि तानि वेदसा
याभिर्मायाभिः प्रतिजूतिवपसः सौधन्वना यज्ञियं भागमानश ।।१
याभिः शचीभिश्चमसाँ अपिंशत यया धिया गामरिणीत चर्मणः ।
येन हरी मनसा निरतक्षत तेन देवत्वमृभवः समानश ।।२
इन्द्रस्य सख्यमृभवः समानशुर्मनोर्नपातो दधन्विरे ।
सौधन्वनासो अमृतत्व मेरिरे विष्ट्वी शमीभिः सुकृतः सुकृत्यया।।३
इन्द्रेण याथ सरथं सुते सचाँ अथा वशानां भवथा सह श्रिया ।
न र्नः प्रतिमै सुकृतानि वाघतः सौधन्वना ऋभवो वीर्याणि च ।।४
इन्द्र ऋभुभिर्वाजवद्भिः समुक्षितं सुत सोममा वृषस्वा गभस्त्योः ।
धियेषितो मघवन्दाशुषोगृहे सौधन्वनेभिः सह मत्स्व नृभिः ।।५
इंद्र ऋभुमान्वाजतान्मसत्स्वेह नोऽस्मिन्त्सवने शच्या पुरुष्टुत ।
इमानि तुभ्यं स्वसराणि येमिरे व्रता देवानां मनुषश्च धर्मभिः ।।६
इंद्र ऋभुभिर्वाजिवर्वाजयन्निह स्योम जरितुरुप याहि यज्ञियम् ।
शतं केतेभिरिषिरेभिरायवे सहस्रणीथो अध्वरस्य होमनि ।।७

हे ऋभुओ ! तुम्हारे ऐश्वर्य, कर्म और सामर्थ्य को सभी जानते हैं। हे मनुष्यो ! तुम सुधन्वा के वंशज हो, तुम अपने जिस कर्म द्वारा शत्रुओं

को हराने में उपयुक्त तथा विशिष्ट तेज से युक्त होकर यज्ञ भाग को प्राप्त करते हो उस सब कर्म को तुम इच्छा करते ही जान लेते हो ।१। हे ऋभुओ ! तुमने अपनी जिस शक्ति से चमस का विभाजन किया था, जिस बुद्धि की शक्ति से तुमने गौ के शरीर में चर्म जोड़ा था तथा जिस ज्ञान से तुमने इन्द्र के दोनों घोड़ों की रचना की थी अपने उन्हीं सब कर्मों द्वारा तुम यज्ञ-भाग के अधिकारी होकर देवत्व प्राप्त कर सके ।२। मनुष्यों के वंशज ऋभुओं ने यज्ञादि कर्मों द्वारा इन्द्र का मैत्री भाव प्राप्त किया । पहिले चरणधर्मा होते हुए भी वे इन्द्र की मित्रता से शरीर में प्राणयुक्त रहते हैं । पुण्यकर्म करने वाले यह सुधन्व के पुत्र कर्म के बल से अविनाशी पद प्राप्त किये हुए हैं ।३। हे ऋभुओ ! तुम इन्द्र के साथ एक ही रथ पर चढ़कर सोम सिद्ध करने वाले स्थान में जाओ । फिर मनुष्यों के स्तोत्रों को स्वीकार करो । हे सुधन्वा के पुत्रो ! तुम अमृत की शक्ति को वहन करने वाले हो । तुम्हारे श्रेष्ठ कर्मों को कोई रोक नहीं सकता । हे ऋभुगण ! तुम्हारी शक्ति का सामना करने में कोई भी समर्थ नहीं है ।४। हे इन्द्र ! जैसे सूर्य वेगवती तथा तेजस्विनी रश्मियों को पुष्ट करता है, वैसे ही तुम पृथिवी को बलवान् और ज्ञानीजनों से पुष्ट करो । हे इंद्र! तुम ऋभुओं के सहित सोम पान करो और स्तुतियों द्वारा आहूत हुए तुम यजमान के घर में सोधन्व के साथ सोम पान करते हुए आनंद का लाभ प्राप्त करो ।५। हे इन्द्र ! तुम बहुतों के द्वारा स्तुत्य हो । तुम इन्द्राणी सहित तथा ऋभुओं से युक्त होकर हमारे तीसरे सवन में आनन्द प्राप्त करो । हे इन्द्र ! दिन में तीनों सवनों में यह सवन तुम्हारे सोम-पान के लिए निश्चित है । वैसे देवताओं के सब व्रतों और मनुष्यों के सब कर्मों द्वारा सभी दिन तुम्हारी पूजा के लिए श्रेष्ठ हैं ।६। हे इन्द्र ! स्तुति करने वालों के लिए अन्न-सम्पादन करते हुए बलवान् ऋभुगण सहित स्तोता की स्तुतियों के प्रति इस यज्ञ में पधारो । शतसंख्यक कुशल अश्वों के द्वारा मरुद्गण भी यजमान के सहस्र, हिंसा रहित यज्ञ में आगमन करें ।७।

सूक्त ६१

(ऋषि—विश्वामित्रः, । देवता—उषाः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

उषो वाजेन वाजिनि प्रचेताः स्तोम जुषस्व गृणतो मघोनि ।
पुराणा देवि युवतिः पुरन्धिरनु व्रतं चरसि विश्ववारे ॥१
उषा देव्यमर्त्या वि भाहि चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती ।
आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्यवर्णां पृथुपाजसो ये ॥२
उषः प्रतीची भुवनानि विश्वोर्ध्वा तिष्ठस्य मृतस्य केतुः ।
समानमर्थं चरणीयमाना चक्रमिव नव्यस्या ववृत्स्व ॥३
अव स्यूमेव चिन्वती मघोन्युषा याति स्वसरस्य पत्नी ।
स्वर्जनन्ती सुभगा सुदंसा आन्ताद्दिवः पप्रथ आ पृथिव्याः ॥४
अच्छा वो-देवीमुषसं विभातीं प्र बो भरध्वं नमसा सुवृक्तिम् ।
ऊर्ध्वं मधुधा पाजो अश्रेत्प्र रोचना रुरुचे रण्वसन्दृक् ॥५
ऋतावरी दिवो अर्कै रबोध्या रेवती रोदसी चित्रमस्थात् ।
आयतीमग्न उषस विभातीं वाममेषि द्रविणं भिक्षमाणः ॥६
ऋतस्य बुध्न उषसामिषण्यन्वृषा मही रोदसी आ विवेश ।
मही मित्रस्य वरुणस्य माया चन्द्रे व भानुं वि दधे पुरुत्रा ॥७।८

हे उषा ! तुम धनेश्वर्यं और अन्न वाली हो । तुम श्रेष्ठ ज्ञान से युक्त होकर स्तुति करने वाले के स्तोत्र को स्वीकार करो । तुम सभी के द्वारा वरण करने के योग्य हो । अतः प्राचीनकालीन युवती के समान सुशोभित तथा बहुत से स्तोत्रों से युक्त होकर यज्ञानुष्ठान निमित्त शीघ्र आओ । ।१। हे उषा ! तुम रमणधर्म से मुक्त हो । तुम्हारा रथ स्वर्णयुक्त है । तुम सत्य रूप प्रिय वचनों का उच्चारण करने वाली हो । तुम सूर्य किरणों की शोभा से शोभायमान होती हो । अरुण-वर्ण वाले बलवान अश्व सरलता से तुम्हारे रथ में जुड़ते हैं । वे तुम्हें आहूत करें । हे उषे ! तुम सम्पूर्ण संसार के प्राणियों के सामनें आती हो । तुम मरण धर्म से रहित तथा सूर्य की सूचना देने वाली, समान मार्ग में चलती हुई उन्नता-

काश में गमन करती। तुम सूर्य के रथ के समान बारम्बार उस मार्ग पर चलो।३। वस्त्र के समान ढकने वाली घोर अन्धकार को नाश करने वाली, धन से युक्त उषा सूर्य की पत्नी के रूप में गमन करती है, वह अत्यन्त सौभाग्यशालिनी और सत्कर्मों की की साधिका है। वही उषा आकाश और पृथिवी की सीमा में प्रकाशित होती है।४। हे स्तुति करने वालो! तुम्हारे सामने सुशोभित उषा प्रत्यक्ष होती है। तुम नमस्कार पूर्वक उसकी स्तुति करो। उन स्तुतियों को पुष्ट करने वाली उषा आकाश के उन्नत तेज को धारण करती है। वह उषा अत्यन्त सुन्दर, सुशोभित तथा तैजस्विनी हैं।५। उस सत्य से युक्त उषा को आकाश के तेज रूप से प्रकट होने पर सब जानते हैं। वह उषा धनैश्वर्य है और अनेक प्रकार से आकाश-पृथिवी में व्याप्त होती है। हे अग्ने! उषा तुम्हारे सामने आती है। तुम उससे हवि की याचना करते हुए सुखकारी धनों को पाते हो।३। आदित्य ही वृष्टि द्वारा जल गिराते हैं। वे सत्यरूप दिन के आरम्भ में उषा को भेज कर आकाश पृथिवी के मध्य प्रविष्ट होते हैं। फिर यह अत्यन्त महत्त्वशाली उषा मित्रावरुण की प्रभा के रूप में प्रकट होकर सुवर्ण के समान अपनी प्रदीप्ति को संसार में फैलाती है।७। [७]

सूक्त ६२

(ऋषि—विश्वामित्रः विश्वामित्रो जमदग्निर्वा। देवता—इन्द्रावरुणौ आदि। छन्द—त्रिष्टुप्, गायत्री)

इमा उ भमयो मन्यमाना युवावते न तुज्या अभूवन्।
क्व त्यदिन्द्रावरुणा यशो वां येन स्मा सिनं भरथः सखिभ्य ॥१
अयमु वां पुरुतमो रयीयञ्छश्वत्तममवसे जोहवीति।
सजोषाविन्द्रावरुणा मरुद्भिर्दिवा पृथिव्या शृणुतं हवं मे ॥२
अस्मे तदिन्द्रावरुणा वसु ष्यादस्मे रयिर्मरुतः सर्ववीरः।
अस्मान्वरूत्रीः शरणैरवन्त्वस्मान्होत्रा भरती दक्षिणाभि ॥३
बृहस्पते जुषस्व नो हव्यानि विश्वदेव्य। रास्व रत्नानि दाशुषे॥४

शुचि कैंवृंहस्पतिमध्वरेषु नमस्यत । अनाम्योज आ चके ॥५।८

हे इन्द्रवरुण ! सब को ढकने वाले अन्धकार के समान सबको वशीभूत करने वाले तुम दोनों की भ्रमणशीला क्रियायें जानी जाती हैं । वे क्रियाऐं तुम्हारे साधकों के लाभ के लिए हैं तथा किसी प्रकार भी नाश के योग्य नही हैं । हे इन्द्रावरुण ! तुम्हारा वह यश और तेज कहाँ है जिसके द्वारा तुम मित्रों के निमित्त अन्न और बल की वृद्धि करते हो ।१। हे इन्द्रावरुण ! धन की इच्छा करने वाले यह साधक तुम दोनों को अन्न प्राप्ति के निमित्त बुलाते हैं । हे मरुतो ! आकाश और पृथिवी से संगत हुए तुम मेरे स्तोत्र को सुनो ।२। हे इन्द्रावरुण ! हमको वह अलौकिक ऐश्वर्य प्राप्त हो । हे मरुतो हमको सब वीरों से युक्त सृवर्ण, रत्न तथा गवादि धन प्राप्त हो । तुम्हारी रक्षक सेनाऐं अपने शत्रुनाशक साधनों तथा शस्त्रास्त्रों द्वारा हमारी रक्षा करें । सब पालन करने वाली प्रदान करने योग्य वाणी उदार वचनों द्वारा हमारा पोषण करें ।३। हे बृहस्पते ! तुम सब सज्जनों का हित करने वाले हो । हमारे द्वारा दिये जाने वाली हवियों को स्वीकार करो । हविदाता यजमान को श्रेष्ठ तथा रमणीय धन प्रदान करो ।४। हे ऋत्विजो ! तुम श्रेष्ठ स्तोत्रों द्वारा बृहस्पति को यज्ञादि शुभ कर्मों के अवसरों पर नमस्कार द्वारा पूजो । मैं उनसे ही, शत्रु द्वारा कभी न झुकाये जा सकने वाले पराक्रम की याचना करता हूँ ।५। [६]

वृषभं चर्षंगीनां विश्वरूपमदाभ्यम् । बृहस्पतिं वरेण्यम् ॥६
इयं ते पूषन्नाघृणे सुष्टतिर्देव नव्यसी । अस्माभिस्तुभ्यं शस्यते ॥७
तां जुषस्व गिरं मम वाजयन्तीमवा धियम् वधूयुरिव योषणाम्॥८
यो विश्वाभि विश्वाति भुवना सं च पश्यति ।
स नः पूषाविता भुवत् ॥९
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥१०।'०

सब मनुष्यों में सर्व सुखों की वर्षा करने में समर्थ सब सत्कार पाने के योग्य, किसी के द्वारा भी हिंसित न होने वाले, बलवान्, सब पर अनुग्रह करने वाले, श्रेष्ठ मार्ग पर प्रेरणा करने वाले बृहस्पति सभी पदार्थों के जानने वाले हैं। उनको नमस्कार करो ।६। हे पूषन् ! तुम सब प्रकार से प्रकाशवान् तथा प्रत्येक सुख की वर्षा करने में समर्थ हो। तुम्हारा यह अत्यन्त नवीन स्तोत्र सदा ही स्तुति करने के योग्य हो। इस श्रेष्ठ स्तुति को हम तुम्हारे प्रति सदैव उच्चारण करते रहें ।७। पत्नी की कामना करने वाला पुरुष जैसे पुष्टि चाहने वाली रमणी को प्रेम-पूर्वक स्वीकार करता है, वैसे ही हे पूषन् ! मेरी उस ज्ञानमय तथा सत्यासत्य को जानने वाली वाणी और श्रेष्ठ धारणावाली, मन्त्रमय बुद्धि को प्रेम-भावना पूर्वक स्वीकार करो ।८। जो पूषा सब लोकों को समान रूप से देखते हैं तथा सब लोकों को विविध दृष्टिकोण से देखते हैं, वह हमारे पोषक तथा सब प्रकार से रक्षा करने वाले हों ।९। जो सविता-देव हमारी बुद्धियों को सन्मार्ग में प्रेरित करते हैं, उन पूर्ण तेजस्वी, सर्व प्रकाशक, सर्व दाता, सर्वस्रष्टा परमेश्वर के उस अद्भुत, सर्वश्रेष्ठ, पापों का नाश करने वाले तेज को धारण करते हुए उसी का ध्यान करें ।१०।

देवस्य सवितुर्वयं वाजयन्तः पुरन्ध्या । भगस्य रातिमीमहे ॥११
देवं नरः सवितारं विप्रायज्ञैः सुवृक्तिभिः । नमस्यन्ति धियेषिताः ॥१२
सोमो जिगाति गातुविद् देवानामेति ।
निष्कृतम् । ऋतस्य योनिमासदम् ॥१३
सोमो अस्मभ्यं द्विपदे चतुष्पदे च पशवे । अनमीवा इषस्करत् ॥१४
अस्माकमायुर्वर्धयन्नभिमातीः सहमानः । सोमः सधस्थमासदत् ॥१५
आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥१६
उरुशंसानमोवृधामह्नादक्षस्यराजथः । द्राघिष्ठाभिःशुचिव्रता ॥१७
गृणानाजमदग्निनायोनावृतस्य सीदतम् । पातंसोममृतावृधा ॥ १८॥११

हम सर्व प्रकाशक, तेजोमय, सब ऐश्वर्यों को देने वाले सबके भजने योग्य कल्याण रूप, सुखकारी सवितादेव की दान बुद्धि की, अन्न बल और धन

की कामना करते हुए, धारणा सामर्थ्य से युक्त स्तुति द्वारा, याचना करते हैं ।११। मेधावीजन श्रेष्ठ कर्मों में प्रेरित करने वाली बुद्धि की प्रेरणा से दोषों का समूल नाश करने में समर्थ यज्ञादि उत्तम कर्मों से सर्व प्रकाशक, सर्वप्रेरक तथा रचयिता सवितादेव की नमस्कार पूजा करते हैं ।१२। सोम ज्ञानीजनों की प्रशंसा को प्राप्त करता हुआ अनेक सर्व साधन-सम्पन्न कर्मों के कारण उनके आश्रय को प्राप्त करता है । वह अत्यन्त पुष्ट-सुख और सत्य के आश्रय से यज्ञ-स्थान को जाता है ।१३। वह सोम हम दो पांव वाले मनुष्यों के निमित्त तथा चार पाँव वाले पशुओं के निमित्त भी, रोग-रहित, स्वास्थ्यप्रद अन्नों को उत्पन्न करने में समर्थ हो ।१४। वह सोम हमारी आयु की वृद्धि करता हुआ तथा देह के सभी रोगों को शत्रु के समान नष्ट करता हुआ हमारे यज्ञ स्थान में हमारे साथ आकर निवास करे ।१५। हे मित्रावरुण ! तुम दोनों हमारे बीच से श्रेष्ठ कर्मों को करते हुए, उत्तम आचरणों द्वारा, ज्ञानयुक्त मधुर वचनों से लोकों को सींचो अथवा पृथिवी को मधुर रस से सिक्त करो । ।१६। हे मित्रावरुण ! तुम दोनों अत्यन्त शुद्ध आचरण करने वाले हो । तुम प्रशस्त स्तुतियों से युक्त नमस्कारपूर्वक पूजन किये जाते हुए वृद्धि को प्राप्त होते हो । तुम अपनी अत्यन्त पुरुषार्थ युक्त शक्ति तथा बल और ज्ञान के महान् सामर्थ से सुशोभित होओ ।१७। हे मित्रावरुण ! तुम प्रज्वलित अग्नि के समान सत्य को प्रकाशित करने वाले ज्ञान के द्वारा उपदेश करते हुए अन्न परिपूर्ण हुए घर के समान विराजमान होओ । तुम दोनों नित्य सेवन करने योग्य सत्य के बल से वृद्धि प्राप्त होते हुए श्रेष्ठ सोम-रस का पान करो ।१८। [१८]

॥ तृतीय मण्डलम् समाप्तम् ॥

॥ अथ चतुर्थ मण्डलम् ॥

सूक्त १

(ऋषि—वामदेवः । देवता—अग्निः अग्निर्वा वरुणश्च ।
छन्द—पंक्तिः त्रिष्टुप्)

त्वां ह्यग्नेसदमित्समन्यवोदेवासोदेवमरतिन्येरिरइतिक्रत्वान्येरिरे।

अमर्त्यं यजत मर्त्येष्वा देवमादेव जनत प्रचेतसं
विश्वमादेवं जनत प्रचेतसम् ।।१

स भ्रातरं वरुणमग्न आ ववृत्स्व देवाँ अच्छा
सुमती यज्ञवनसं ज्येष्ठं यज्ञवनसम् ।
ऋतावानमादित्यं चर्षणीधृतं राजानं चर्षणीधृतम् ।।२
मखे सखायमभ्या ववृत्स्वाशुं नश्चक्रं रथ्येव रह्यास्मभ्य दस्म रंह्या ।
अग्ने मृलीक वरुणे सचा विदो मरुत्सु विश्वभानुषु ।
तोकाय तुजे शुशुचान शं कृध्यस्मभ्यं दस्म शं कृधि ।।३
त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हैलोऽव यासिसीष्ठाः ।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् ।।४
स त्वं नो अग्नेऽवमो भवाती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ ।
अव यक्ष्व नो वरुण रराणो वीहि मृलीकं सुहवो न एधि ।।५।१२

हे अग्ने ! तुम प्रकाशवान् हो। वेग से चलते हो। शत्रु को विजय करने की इच्छा वाले स्पर्द्धा से युक्त देवता तुम्हें युद्ध के निमित्त प्राप्त करते हैं । यजमान तुम्हारी स्तुति करते हुए आकर्षित करते हैं। तुम अविनाशी, प्रकाशवान् और अत्यन्त ज्ञानी हो मनुष्यों को यज्ञ-कर्म के निमित्त प्राप्त करने के लिए देवताओं ने तुम्हें प्रकट किया। तुम कर्मों के ज्ञाता को सन यज्ञों में प्रत्यक्ष रहने के लिये देवताओं ने तुम्हारी उत्पत्ति की है।। १ ।। हे अग्ने ! वरुण तुम्हारे भाई है। वे हवियों के पात्र, यज्ञ का उपयोग करने वाले, जल, वाले, प्रशंसित, अदिति के पुत्र हैं। वे जल-वृद्धि द्वारा मनुष्यों को धारण करने वाले हैं। वे सुन्दर प्रज्ञा वाले एवं शोभनीय हैं । इन वरुण को स्तुति करने वालों के सामने लाओ ।।२।। हे अग्ने ! तुम मित्र-भाव से युक्त हो। जैसे गमनोपयुक्त रथ में जुते दो घोड़े जल्दी चलने वाले हियों को लक्ष्य पर पहुंचाते हैं, वैसे ही तुम अपने मित्र वरुण को हमारे पास पहुँचाओ । हे अग्ने ! तुम्हारे सहयोग से वरुण ने सुखदायक हवियां प्राप्त की हैं तथा अत्यन्त तेजस्वी मरुत्तों के लिए भी सुखदायक हव्य-अर्जन किया है। हे अग्ने ! तुम

हमारी सन्तान को सुख दो और हमको कल्याण प्रदान करो ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम सर्व कर्मों के ज्ञाता हो । प्रकाशवान् वरुण को हमारे प्रति क्रोधित न होने दो । तुम यज्ञ करने वालों में श्रेष्ठ हवियों के वहन करने वाले और अत्यन्त प्रकाशवान् हो । तुम हर प्रकार के पापों से हमारी रक्षा करो ॥ ४ ॥ हे ! रक्षण कर्मों द्वारा हमारे अत्यन्त समीप होओ । उषा की समापति पर, प्रातः वेला में यज्ञादि कर्मों की सिद्धि के निमित्त हमारे अत्यन्त निकट आओ । हमारे निमित्त बल से होने वाले रज्ञों को पहले ही नष्ट कर दो । तुम यजमानों को अभीष्ट फल देते हो । इस पुष्टिप्रद हवि का सेवन करो । हम तुम्हें भले प्रकार आहूत करते हैं । तुम हमारे निकट आओ ॥५॥ [१२]

अस्य श्रेष्ठा शुभगस्य सन्दृग्देवस्य चित्रतमा मर्त्येषु ।
शुचि घृतं त तप्तमघ्न्यायाः स्पार्हा देवस्य मंहनेव धेनोः ॥६
त्रिरस्य ता परमा सन्ति सत्या स्पार्हा देवस्य जनिमान्यग्नेः ।
अनन्ते अन्तः परिवीत आगाच्छुचिः शुक्रो अर्यो रोरुचानः ॥७
स दूतो विश्वेदभि वष्टि सद्मा होता हिरण्यरथो रंसुजिह्वः ।
रोहिदश्वो वपुष्यो विभावा सदा रण्वः पितुमतीव संसत् ॥८
स चेतयन्मनुषो यज्ञबन्धुः प्र तं मह्या रशनया नयन्ति ।
स क्षेत्यस्य दुर्यासु साधन्देवो मर्तस्य सधनित्वमाप ॥९
स तु नो अग्निर्नयतु प्रजानन्नच्छा रत्नं देवभक्तं यदस्य ।
धिया यद्विश्वे अमृता अकृण्वन्द्यौष्पिता जनिता सत्यमुक्षन् ॥१०।१२

श्रेष्ठ ऐश्वर्यवान् अग्नि की, मनुष्यों के मध्य अत्यन्त श्रेष्ठ तथा अद्भुत अनुग्रह दृष्टि हो । जैसे दूध की इच्छा वाले मनुष्य को गौ का पवित्र दूध थनों से निकल कर उष्ण ही प्राप्त होता है, जैसे गौ दान की अभिलाषा वाले को दान स्पृहणीय होता है, वैसे अग्नि का तेज भी गाय के समान पोषण-योग्य एवं स्पृहणीय होता है ॥ ६ ॥ अग्नि के तीन रूप अग्नि, वायु और सूर्य प्रसिद्ध एवं श्रेष्ठ हैं । अनन्त आकाश में अपने तेज से व्याप्त, सब के शुद्ध करने वाले, प्रकाश से युक्त और अत्यन्त तेजस्वी अग्नि हमारे यज्ञ को प्राप्त हों ॥८॥ वे अग्नि, देवताओं

के बुलाने वाले दूत, सुवर्ण रथ वाले कमनीय ज्वालाओं वाले सभी यज्ञों के प्राप्त होने की कामना करते हैं। सुन्दर अश्व वाले, प्रदीप्त, अग्नि अन्न से सम्पन्न घर के समान सुखकर हैं ॥८॥ अग्नि यज्ञ में व्याप्त होते हैं। वे यज्ञ कर्मों की इच्छा वाले मनुष्यों को जानते हैं। अध्वर्यु गण उन्हें उत्तरवेदी में नियम पूर्वक स्थापित करते हैं। वे यजमानों का अभीष्ट सिद्ध करते हुए उनके घरों में रहते हैं। वे प्रकाशवान् अग्नि धन सम्पन्नों के साथ निवास करते हैं ॥९॥ जिस रमणीय ऐश्वर्य को स्तुति करने वाले भजते हैं, अग्नि का वह श्रेष्ठ ऐश्वर्य हमारे सामने आवे। अविनाशी देवताओं ने अग्नि को यज्ञ के निमित्त उत्पन्न किया है आकाश उनके पालक पित रूप हैं। अध्वर्यु लोग घृतादि की आहुतियों से उस सत्यभूत अग्नि को सींचते हैं ॥१०॥ (२)

स जायत प्रथमः पस्त्यासु महो बुध्ने रजसो अस्य य नौ।
अपागशीर्षा गुहमानो अन्तायोयुवानो वृषभस्य नीले ॥११
प्र शर्धं आर्तं प्रथमं विरन्याँ ऋतष्य योना वृषभस्य नीले।
स्पार्हो युवा वपुष्पो विभावा सप्त प्रियासाऽजनयन्त वृष्णे ॥१२
अस्माकत्र पितरो मनुष्या अभि प्र सेदुऋतमाशुषाणाः।
अश्मव्रजाः सुदुघा वव्रे अन्तरुदुस्रा आजन्नुषसो हुवानाः ॥१३
ते मर्मृजत ददृवांसो अद्रि तदेषामन्ये अनितो वि वाचन्।
पश्वयन्त्रासो अभि कारमर्चान्विदन्त ज्योतिश्चिक्रपन्त धीभिः॥१४
ते मव्यता मनसा दृध्रमुब्धं गा येमान परिषन्तमद्रिम्।
दृलह नरो वचसा देवग्रेन व्रज गोमन्तमुशिजो वि वव्रिः ॥१५॥१४

अग्नि सबसे श्रेष्ठ है। वे घरों में रहने वाले मनुष्यों के मध्य घरों के प्रधान पुरुष के समान निवास करते हैं। वे महान् जन-समूह के आश्रयस्थानरूप एवं स्वयं बिना पांव वाले हैं। वे सबके शीर्ष रूप होते हुए भी शिरोवर्जित हैं। वे सबके भीतर रमे रहते हैं तथा जल वर्षक मेघों में व्याप्त होते हुए घूमाकर लगते हैं ॥११॥ हे अग्ने! तुम जलों के उत्पत्ति स्थान में

मेघ के नीड़ रूप अन्तरिक्ष में, स्तुतियों से युक्त हुए व्याप्त रहते हो । सर्व श्रेष्ठ तेज तुम्हारे पास उपस्थित रहता है । जो अग्निदेव सबके चाहने योग्य, सतत युवा, कमनीय एवं प्रकाश से युक्त हैं सप्त होता उन्हीं के लिये स्तुतियाँ उच्चारित करते हैं ।।१२।। इस लोक में हमारे पितर यज्ञ-साधन के निमित्त अग्नि के सम्मुख उपस्थित हुए । उन्होंने उषा का आह्वान किया और अग्नि की उपासना से प्राप्त हुई शक्ति के द्वारा पर्वत की गुफाओं में छाये हुए घोर अन्धकार में से दुहने योग्य पयस्विनी गौओं को बाहर निकाला ।।१३।। उन्होंने पर्वत को तोड़ते समय अग्नि की पूजा की । अन्य ऋषियों ने भी उनके कर्मों का सर्वत्र बखान किया । उन्हें पशु-रक्षा के उपायों का पूर्ण ज्ञान था । उन्होंने अभीष्ट फल देने वाले अग्नि की स्तुति द्वारा देखने वाली इन्द्रिय का लाभ प्राप्त किया तथा अपनी उत्तम बुद्धि द्वारा यज्ञ-कर्म का साधन किया ।१४। पूर्वजगण कर्मों के करने में अग्रगण्य थे । वे अग्नि की सदा कामना करते थे । उन्होंने गौ के प्राप्त करने की इच्छा से अत्यन्त दृढ़ गौओं से भरे हुए गौशाला के समान पर्वत को अग्नि की स्तुतियों से प्राप्त शक्ति द्वारा खोला ।।१५।। (१४)

ते मन्वन्त प्रथमं नाम धेनोस्त्रिः सप्त मातुः परमाणि विन्दन् ।
तज्जानतीरभ्यनूषत व्रा आविर्भुवदरुणीर्यशसा गाः ।।१६
नेशत्तमो दुधित रोचत द्यौरुद्देव्या उषसो भानुरर्त ।
आ सूर्यो वृहतस्तिष्ठदज्रां ऋतु मर्तेषु वृजिना च पश्यन् ।।१७
आदित्यश्वा बुब्रुधाना व्यख्यन्नादिद्रत्न धारयन्त द्युभक्तम् ।
विश्वे विश्वासु दुर्यासु देवा मित्र धिये वरुण सत्यमस्तु ।।१८
अच्छा वोचेय शुशूचानमग्नि होतारं विश्वभरस यजिष्ठम् ।
शुच्युधा अतृणन्न गवामन्धो न पूतं परिशिक्त मन्शोः ।।१९
विश्वेषामदितिर्यज्ञियानां विश्वेषामतिथिर्मानूषाणाम् ।
अग्निर्देवानामव आवृणानः सुमृलीको भवतु जातवेदाः २०।१५

हे अग्ने ! स्तुति करने वाले अङ्गिरा आदि ऋषियों ने ही वाणी-

रूपिणी माता से उत्पन्न स्तुतियों के साधन रूप शब्दों का प्रथम बार ज्ञान प्राप्त किया फिर सत्ताईस छन्दों को जाना । इसके पश्चात् इनको जानने वाली उषा की स्तुति की और तब आदित्य के तेज से युक्त अरुण वर्ण वाली उषा का आविर्भाव हुआ ।१६। रात्रि के द्वारा उत्पन्न अन्धकार उषा की प्रेरणा से नष्ट हुआ फिर अन्तरिक्ष में प्रकाशवान् हुआ । उषा की आभा प्रकट हुई । मनुष्यों के सत्यासत्य कर्मों को देखने में समर्थ आदित्य सुदृढ़ पर्वत पर चढ़ गये ।१७। सूर्य के उदित होने पर अङ्गिरा आदि ऋषियों ने पणियों के द्वारा चुराई गई गौओं को जाना तथा पीछे से उन्हें भले प्रकार देखा । इनके सब स्थानों को यज्ञ-कर्म में भाग प्राप्त करने के पात्र देवता प्राप्त हुए । हे मित्रता की भावना से ओत-प्रोत अग्निदेव ! तुम वरुण के क्रोध को शान्त करने वाले हो । तुम्हारी पूजा करने वाले को सुन्दर फल प्राप्त हो ।१८। हे अग्ने ! तुम देवताओं का आह्वान करने वाले, अत्यन्त प्रदीप्ति वाले, संसार का पालन करने वाले एवं सब की अपेक्षा अधिक यज्ञ कर्म करने वाले हो, हम तुम्हारे स्तवन करते हैं । तुम्हारे निमित्त आहुति देने वाले यजमान न तो दूध दुहते हैं और न सोम का संस्कार करते हैं । वे केवल तुम्हरी पूजा करते हैं ।१९। अग्निदेव, यज्ञ वे पात्र सभी देवताओं को प्रसन्न करने वाले हैं । वे अग्नि सब मनुष्यों के लिए अतिथि के समान पूजनीय हैं । स्तोताओं का हव्य भक्षण करने वाले अग्निदेव स्तुति करने वालों को सुखी करें ।२०। (१५)

सूक्त २

(ऋषि—वामदेवः । देवता—अग्निः । छन्द—पक्तिः, त्रिष्टुप)

योमर्त्येष्वमृय ऋतावा देवा देवेष्वरतिर्निधायि ।
होता यजिष्टो मह्ना शुचध्यै रग्निमंनुष ईरयध्यै ॥१
इह त्वं सूनो सहसो नो अद्य जातो उभयाँ अन्तरग्ने ।
दूत ईयसे युयुजान ऋष्व ऋजुमुष्कान्वृषणः शुक्रांश्च ॥२
अत्या वृधस्नू रो हता घृतस्नू ऋतस्य मन्ये मनसा जविष्ठा ।
अन्तरीय से अरुषा युजावो युश्मांश्च देवान्विश आ च मर्तान् ॥३

अर्यमणं वरुण मित्रमेषामिन्द्राविष्णू मरुतो अश्विनीत ।
स्वश्वो अग्ने सुरथः सुराधा एदु वह सु हविषे जनाय ॥४
गोमाँ अग्नेऽविमाँ अश्व यज्ञो नृपत्सखा मदमिदप्रमृष्यः ।
इलावाँ एषो असुर प्रजावान्दीर्घो रयिः पृथुबुघ्नः सभावान् ॥५॥१६

अविनाशी अग्नि सत्य स्वरूप से मनुष्यों के मध्य रहते हैं। जो प्रकाशवान् अग्निदेव इन्द्रादि देवताओं के साथ मिलकर पशुओं को हराने वाले हैं, वे अग्नि देवताओं को बुलाने में समर्थ हैं तथा सबसे अधिक यज्ञनुष्ठान करते हैं। वे उत्तर वेदी पर अपनी महिमा द्वारा ही प्रदीप्त होने के लिए विराजते हैं। तथा हवि वहन करते हुए, यजमानों को मोक्ष प्राप्त कराने के लिए प्रकट हुए हैं।१। हे बलोत्पन्न अग्निदेव ! तुम आज हमारे कार्य में सिद्ध हुए हो। तुम दर्शनीय हो अपने पुष्ट, तेजस्वी, बली घोड़ों को रथ में जोड़कर देवताओं और मनुष्यों के बीच हविवाहक बनकर दूतरूप से प्राप्त होते हो।२। हे अग्ने ! तुम सत्य के कारण रूप हो। मैं तुम्हारे दोनो लाल रङ्ग वाले घोड़ों की स्तुति करता हूं। तुम्हारे वे घोड़े मन से भी अधिक वेग वाले हैं। वे अन्न और जल की वर्षा करते हैं। तुम उन तेजस्वी घोड़ों को अपने रथ में जोड़कर देवताओं और मनुष्यों के बीच में पधारो।३। हे अग्ने ! तुम्हारे घोड़े, रथ एवं ऐश्वर्य सभी श्रेष्ठ हैं। अर्यमा, वरुण, मित्र, इन्द्र, विष्णु मरुद्गण तथा दोनों अश्विनी कुमारों को हवियुक्त यजमानों के निमित्त इन मनुष्यों के मध्य बुलाओ।४। हे शक्तिशाली अग्निदेव ! हमारा यह यज्ञ गो, बैल और अश्व लाभ कराने वाला हो। जो यज्ञ अध्वर्युओं और यजमानों द्वारा किया जाता है, वह यज्ञ हव्य से सम्पन्न तथा सन्तानों से युक्त हो और अनुष्ठान धन तथा ऐश्वर्यों का कारणभूत और उपदेश करने वाले ज्ञानियों से पूर्ण हो।५।

यस्त इध्मं जभरत्सिष्विदानो मूर्धानं वा ततपते त्वाया ।
भुवस्तस्य स्वतवाँः पायुरग्ने विश्वस्वात्सीमघायत उरुष्य ॥६
यस्ते भरादग्नियते चिदन्नं निशिषन्मन्द्रमतिथिमुदीरत् ।

आ देवयुरिनधते दुरोणे तस्मिन्रयिध्रुवो अस्तु दास्वान् ।।७।
यस्त्वा दोषा य उष स प्रशंसात्प्रियं वा त्वा कृणवते हविष्मान् ।
अश्वो न स्वे दम आ हेम्यावन्तनंहसः पीपरो दाश्वांसम् ।।८
यस्तुभ्यमग्ने अमृताय दाशद् दुवस्त्वे कृणवते यंतस्रुक् ।
न स राया शशोमानो वि योषन्नैनगहः परि वरदघयोः ।।९
गल्य त्वमग्ने अध्वरं जुजोषो देवो मतस्य सुधितं रराणः ।
प्रीतेदसद्धोत्रा सा ययिष्ठासाम यस्य विधतो वृधासः ।।१०।१७

हे अग्ने ! तुम्हारे निमित्त लकड़ियों को ढोने वाला जो मनुष्य पसीने से युक्त होता है, जो तुम्हारी कामना से अपने मस्तक को काष्ठ के बोझ से भारी करता है, तुम उसका पालन करते हुए धन से युक्त करते हो । तुम उसके अहित चिंतकों से भी उसकी रक्षा करते हो ।६। हे अग्ने । अन्न की कामना से जो तुम्हें देने के निमित्त हव्य संचित करता है, जो तुमको सोम-रस देता है, जो तुम्हें उत्तर वेदी पर अतिथि रूप से प्रतिष्ठित करता है तथा जो व्यक्ति देवत्व की कामना से अपने घर में तुम्हें स्थापित करता है उसका पुत्र धर्ममार्गी, दृढ़ तथा उदार हो ।७। हे अग्ने ! जो मनुष्य रात्रि के समय तथा जो व्यक्ति उषा बेला में तुम्हारा स्तवन करता है, तुम उस यजमान की सुवर्ण से बनी झूल वाले अश्व के समान चलते हुए आकर रक्षा करो ।८। हे अग्ने ! तुम्हारा कभी नाश नहीं होता । जो यजमान तुमको हवि देता है, जो यजमान तुम्हारे निमित्त स्रुक को ठीक करता है तथा जो यजमान तुम्हारी पूजा-सेवा करता है, वह स्तुति करने वाला यजमान कभी भी निर्धन न हो । हिंसकों की हिंसा उसे कभी भी स्पर्श न करे ।९। हे सद्यायुवा अग्ने ! तुम सदा प्रसन्न रहते हो तथा प्रकाशवान् हो । जिस यजमान का भले प्रकार सम्पादित और हिंसा-शून्य भावना से दिया हुआ अन्न सेवन करते हो, वह होता निश्चय ही प्रेम करने वाला है । अग्नि की सेवा करने वाले जो यजमान यज्ञ को बढ़ाते हैं, हम उन्हीं का अनुसरण करेंगे ।१०।

चित्तिमचित्त चिनवद्वि विद्वान्पृष्टेव वीता वृजिना च मर्तान् ।
राये न जः स्वपत्याय देव दितिं च रास्वादितमुरुष्य ॥११
कविं शशासुः कवयोऽदब्धा निधारयन्तो दुर्यास्वायो ।
अतस्त्वं दृश्यां अग्न एतान्पड्भिः पश्येरद्भुतां अय एवः ॥१२
त्वमग्ने वाघते सूप्रणीतिः सुतसोमाय विधते यविष्ठ ।
रत्न भर शशमानाय घृष्वे पृथुश्चन्द्रमवसे चर्षणिप्राः ॥१३
अधा ह यद्वयमग्ने त्वाया षड्भिर्हस्तेभिश्चकृमा तनूभिः ।
रथं न क्रन्तो अपसा भुरुजोर्ऋत येमुः सुध्य आशुषाणाः ॥१४
अधा मातुरुषसः सप्त विप्रा जायेमहि प्रथमा वेधसो नृन् ।
दिवस्पुत्रा अङ्गिरसो भवेमाद्रिं रुजेम धनिनं शुचन्तः ॥१५॥१८

जैसे अश्व को पालने वाला उसकी पीठ के कसे हुए साज को अलग कर देता है,वैसे ही अग्नि पाप-पुण्य को पृथक करें। हे अग्ने! हमको सुन्दर पुत्र से युक्त धन प्रदान करो। तुम दान देने वाले को धन प्रदान करो और उसका निकट से पालन करो ।११। हे अग्ने ! मनुष्यों के घर में निवास करने वाले तथा कभी भी निराहृत न होने वाले देवताओं ने तुम अत्यन्त ज्ञानी को होता नियुक्त किया है । हे अग्ने! तुम यज्ञ का पालन करने वाले एवं मेधावान् हो । तुम अपने चञ्चल तेज के द्वारा देवताओं को दर्शनीय बनाओ ।१२। हे सद्य युवा अग्नि ! तुम अत्यन्त तेज वाले हो । तुम मनुष्यों की इच्छाओं को पूर्ण करते हो। तुम उत्तरवेदी पर प्रतिष्ठित किये जाने के पात्र हो । जो यजमान तुम्हारे निमित्त सोम का अभिषव करता है तुम्हारी सेवा करता हुआ स्तोत्र उच्चारण करता है, उसकीरक्षाके निमित्त उसे प्रसन्नता श्रेष्ठ धन प्रदान करो ।१३। हे अग्नि ! जिस कारण हम तुम्हारी अभिलाषा करते हुए हाथ-पाँव तथा देह को कार्य-रत करते हैं उसी कारण उत्तमें कार्य वाले, यज्ञ-कार्य में लगे हुए अङ्गिरादि ऋषियों मैं अपने हाथों से अरणि मंथन द्वारा शिल्पी के पथ निर्माण करने के समन तुमने सत्य के कारणरूप को प्रकट किया ।१। हम सात विप्र आरम्भिक मेधावी हैं ।

हमने माता रूप उषा के प्रारम्भकाल से अग्नि को उत्पन्न किया है । हम प्रकाशवान् आदित्य के पुत्र अङ्गिरा हैं । हम तेजस्वी होकर जल से पूर्ण मेघ को विदीर्ण करेंगे ॥१५॥ (१८)

अधा यथाः नः पितरः परामः प्रत्नासो अग्न ऋतमाणाः ।
शुचीदयन्दीधितिमुक्थशासः क्षामा भिंदतो अरुणीरप व्रन् ॥१६
सुकर्माणः सुरचो देवयतोऽयो न देवा जनिमा धमतः ।
शुचंतो अग्नि ववधत इस्द्रमूर्वं गव्य परिषदन्तो अग्मन् ॥१७
आ यूथेव क्षुमति पश्वो अख्यद्दे नानां यज्जनिमान्युग्र ।
मर्ताना चिदुर्वशोरकृन्वृधे चिदर्य उपरस्यायोः ॥१८
अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋयमवस्रन्नुषसो विभातीः ।
अनूनमग्नि पुरुधा सुश्चन्द्र देवश्य मर्मृजतश्चारु चक्षुः ॥१९
एता ते अग्न उचथानि वेधोऽवोचाम कवये ता जुषस्व ।
उच्छोचस्व कृणुहि वस्यसो नो महो रायः गुरुवार प्र यन्धि ॥२०।१९

हे अग्ने ! हमारे पितरों ने श्रेष्ठ, परम्परागत और सत्य के कारणरूप यज्ञ कर्मों को करके उत्तम पद तथा तेज को प्राप्त किया । उन्होंने उक्थों के द्वारा अन्धकार का नाश किया और पणियों द्वारा अपहृत गौओं को ढूंढ़ निकाला ॥१६॥ धौंकनी के द्वारा स्वच्छ हुए लोह के समान, यज्ञादि श्रेष्ठ कार्यों में लगे, देवताओं की कामना वाले स्तोता अपने मनुष्य जन्म को यज्ञादि कार्यों के द्वारा स्वच्छ करते हैं । वे अग्नि को प्रदीप्त करते हुए इन्द्र को बढ़ाते हैं । उन्होंने चारों ओर उपासना करते हुए वृहद् गो-समूह को पाया था ।१७। हे अग्निदेव ! तुम तेजवान् हो । अन्न से युक्त घर में पशुओं के रहने के समान देवताओं की गौओं का सामीप्य अङ्गिरादि को प्राप्त है । उनके द्वारा लाई-गयी गौओं ने प्रजाओं को पुष्ट किया । बर्द्धन-सामर्थ्य से युक्त मनुष्य सन्तानवान् तथा पोषण-सामर्थ्य से युक्त हो गये ।१८। हे अग्ने ! हम तुम्हारी पूजा करते हैं, उसी से हम श्रेष्ठ कर्म वाले बनते हैं । अन्धकार का नाश करने वाली उषा सम्पूर्ण तेजों से युक्त हुई प्रसन्नता देने

वाले अग्नि को धारण करने वाली है । तुम प्रकाश से युक्त हो । हम तुम्हारे रमणीय तेज की उपासना करते हैं ।१९। हे अग्निदेव ! तुम विद्वान् हो । हम तुम्हारे निमित्त स्तोत्रों का उच्चारण करते हैं, तुम इसको ग्रहण करो । तुम प्रदीप्त होकर हमको बढ़ाओ । तुम बहुतों द्वारा वरणीय हो । हमको उत्तम धन प्रदान करो । श्रेष्ठ घर वालो में उत्तम निवास हमको दो ।।२०।। (१९)

सूक्त ३

(ऋषि—वामदेवः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप् वृहती, पंक्तिः)

आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययज रौदस्योः ।
अग्नि पुरा तनयित्नरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ।।१
अय योनिश्चकृमा यं वयं ते जायेव पत्य उशती सुवासाः ।
अर्वाचीनः परिवीतो नि षीदेमा उ ते स्वपाक प्रतीचीः ।।२
आश्टृण्वते अदृपिताय मन्म नृचक्षसे सुमृलीकाय वेधः ।
देवाय शस्तिममृतीय शंस ग्रावेव सोता मधुषुद्य मीले ।।३
त्वं चिन्नः शम्या अग्ने अस्या ऋतस्य वोध्यृतचित्स्वाधोः ।
कदा त उक्था सधमाद्यानि कदा भवन्ति संख्या गृहे ते ।।४
कथा ह तद्वरुणाय त्वमग्ने कथा दिवे गर्हसे कन्न आगः ।
कथा मित्राय मीलहुषे पृथिव्यै ब्रवः कदर्यम्णे कद्भगाय ।।५।२०

हे पुरुषो ! देवताओं के आह्वान करने वाले, यज्ञ के स्वामी, आकाश पृथिवी को अन्न से पूर्ण करने वाले, सुवर्ण के समान आभा वाले तथा शत्रुओं को रुलाने में समर्थ रौद्र रूप वाले अग्निदेव की, मृत्यु के पूर्व ही रक्षा प्राप्त करने के निमित्त पूजा करो ।१। हे अग्ने ! पति की कामना वाली एवं सुन्दर वस्त्रों से सुशोभित जननी जिस प्रकार पति के लिए स्थान देती है वैसे ही हम भी उत्तर वेदी रूप स्थान तुम्हारे लिए देते हैं । तुम्हारा यही स्थान हैं । हे अग्निदेव ! तुम श्रेष्ठ कर्मों को करने वाले हो । तुम अपने तेज से सुशोभित हुए हमारे सामने

पधारो। यह स्तुति तुम्हारी उपासना में पहुँचे।२। हे स्तोता ! तुम स्तोत्रों को सुनने वाले, निरालस्य, सुखदाता, द्दष्टा एवं अविनाशी अग्नि की कामना से स्तुतियों का उच्चारण करो। पाषाण जैसे सोम का अभिषव करने में समर्थ है, उसी प्रकार यजमान अग्नि के निमित्त स्तुति करने में रत रहते हैं।३। हे अग्ने ! हमारे इस यज्ञानुष्ठान में तुम देवता बनो। तुम सत्य के जानने वाले और श्रेष्ठकर्मों के करने वाले हो। तुम हमारे स्तोत्र को जानो। आह्लाद उत्पन्न करने वाले तुम्हारे स्तोत्र कब कहे जायेंगे ? कब तुम हमारे घर में मैत्री भाव से व्याप्त होगे ?।४। हे अग्ने ! हमारे पापों की बात वरुण के सामने क्यों करते हो ? हमारी निन्दा सूर्य से क्यों करते हो ? हमारा तुम्हारे प्रति कौन-सा अपराध हुआ है ? अभीष्ट फल देने वाले मित्र, पृथिवी अर्यमा और भग से तुमने हमारी बात क्यों कही ? ।।५।। [२०]

कद्धिष्ण्यासु वृधसादो अग्ने कद्वाताय प्रतवसे शुभये।
परिज्मने नासत्याय क्षे ब्रवः कदग्ने रुद्राय नृघ्ने: ।।६
कथ महे पुष्टिम्भराय पूष्णे कद्रुद्राय सुमखाय हविर्दे।
कद्विष्णवः उरुगायाय रेतो ब्रवः कदग्ने शरवे वृहत्यै ।।७
कथा शर्धाय मरुतानृताय कथा सूरे बृहते पृच्छ्यमानः।
प्रति ब्रवोऽदितये तुराय साधा दिवो जातवेदश्चिकित्वान् ।।८
ऋतेन ऋतं नियतंमील आ गोरामा सचा मधुमत्पक्कमग्ने।
कृष्णा सती रुशतां धासिनषा जामर्येण पयसा पीपाय ।।९
ऋतन हि ष्मा वृषमश्चिदक्तः अग्नि पयसा पृष्ठ्येन।
अस्पन्दमानो अचरद्वयाधा वृषा शक्र दुदुहे पृश्निरूधः ।।१०।११

हे अग्ने ! तुम जब यज्ञमें बढ़ते हो तब उस बात को क्यों कहते हो ? महान् बली, शुभकारी सर्वत्र गतिमान् सत्य में अग्रणी वायु से भी वह बात क्यों कहते हो ? पृथिवी तथा पापियों का संहार करने वाले रुद्र से वह बात क्यों कहते हो।६। हे अग्निदेव ! उस श्रेष्ठ एवं पालक पूषा से, यज्ञ के

पात्र एवं हवियुक्त रुद्र से, बहुत सी स्तुतियों के पात्र विष्णु सेतथा महान् संवत्सर के समक्ष वह बात क्यों कहते हो ? ।७। हे अग्ने ! सत्य के कारण रूप मरुद्गण से वह बात क्यों कहते हो ? पूछे जाने पर भी सूर्य से, अदिति से तथा द्रुतगामी वायु से क्यों कहते हो ? हे सबको जानने वाले मेधावी ! तुम महान् कर्मों को सिद्ध करो ।८। हे अग्ने ! हम सत्य के कारणभूत यज्ञ से सम्बन्धित दुग्ध को गौओं से नित्य मांगते हैं। वह गौएं कच्ची अवस्था में भी पक्व एवं मधुर दूध को धारण करती हैं। उनमें काली गौएं भी पुष्टिप्रद, प्राणदाता, श्वेत दूध देकर मनुष्यों को पुष्ट करती हैं ।९। इच्छित फल की वर्षा करने वाले श्रेष्ठ अग्निदेन पोषक दूध द्वारा सींचे जाते हैं। अन्नदाता अग्निदेव अपने सम्पूर्ण तेज को एकत्र करते हुए गमन करते हैं। जल की वर्षा करने वाले आदित्य अन्तरिक्ष का दोहन करते हैं ।१०। (२१)

ऋतेनाद्रिं व्यसन्भिदन्तः समङ्गिरसो नवन्त गोभिः ।
शुनं नरः परि षदन्नुषासमाविः स्वरभवज्जाते अग्नौ ।।११
ऋतेन देवीरमृता अमृक्ता अर्णोभिरापो मधुमद्भिरग्ने ।
वाजी न सर्गेषु प्रस्तुभानः प्र सदमित्स्रवितवे दधन्युः ।।१२
मा कस्य यक्षं सदमिद्धुरो गा मा वेशस्य प्रमिनतो मापेः ।
मा भ्रातुरग्ने अनृजोर्ऋणं वेर्मा सख्युर्दक्षं रिपोर्भुजेम ।।१३
रक्षा णो अग्ने तव रक्षणेभी रारक्षाणः सुमख प्रीणानः ।
प्रतिष्फुर वि रुज वीड्वंहो जहि रक्षो महि चिद्वावृधानम् ।।१४
एभिर्भव सुमना अग्ने अर्कैरिमान्त्स्पृश मन्मभिः शूर वाजान् ।
उत ब्रह्माण्यङ्गिरो जुषस्व सं ते शस्तिर्देववाता जरेत ।।१५
एता विश्वा विदुषे तुभ्यं वेधो नीथान्यग्ने निण्या वचांसि ।
निवचना कवये काव्यान्यशंसिषं मतिभिर्विप्र उक्थैः ।।१६।२२

गौओं को रोकने वाले पर्वत को "मेधातिथि" आदि ने चीर डाला और तब गौओं को पाया। कर्मों में अग्रसर अङ्गिराओं ने ऊषा को सुख से प्राप्त किया। फिर अरणि-मन्थन से अग्नि के प्रकट होने पर सूर्य उदित हुए

।११। हे अग्ने ! अविनाशिनी, मधुर जल वाली नदियां यज्ञ-द्वारा प्रेरणा प्राप्त कर, चलने के लिए उमङ्गित अश्व के समान निर्विघ्न रूप से सदा बहती हैं ।१२। हे अग्ने ! जो कोई हमारी हिंसा करे, उसके यज्ञ में तुम कभी न पहुंचना, किसी दुष्ट पड़ोसी के यज्ञ में कभी मत जाना । हमारे सिवाय किसी अन्य को मित्र न बनाना । तुम कुटिल बुद्धि वाले बन्धु की हवियों की इच्छा मत करना । हम भी शत्रु के दिये अन्न का सेवन नहीं करते । केवल तुम्हारे दिए धन को ही भोगेंगे ।१३। हे अग्ने ! तुम उत्तम यज्ञ वाले हो । तुम हमारी रक्षा करते हो तुम हवि द्वारा प्रसन्न होकर अपना आश्रय प्रदान करते हुए हमारी रक्षा करो । तुम हमको बढ़ाओ । हमारे घोर पाप का नाश करते हुए इस बढ़े हुए अज्ञान को नष्ट कर डालो ।१४। हे अग्ने ! हमारे उपासना योग्य स्तोत्रों द्वारा तुम हम पर स्नेह करो । हमारी स्तुतियों से युक्त हवियों को स्वीकार करो । तुम हवि रूप अन्न को ग्रहण करने वाले हो हमारे स्तोत्रों को ग्रहण करो । देवताओं के निमित्त की जाने वाली स्तुतियाँ तुम्हें बढ़ावें ।५। हे अग्ने ! तुम विधायक हो । तुम कर्मों के ज्ञाता तथा मनुष्यों के द्रष्टा हो । हम बुद्धिमान मनुष्य तुम्हारी कामना से फलदायक, गूढ़ अत्यन्त उच्चारण के योग्य हमारे द्वारा रचित इस सम्पूर्ण स्तोत्र का भले प्रकार से उच्चारण करते हैं ।१६। २२

सूक्त ५९

(ऋषि वामदेवः । देवता—रक्षोहाऽग्निः । छन्द—त्रिष्टुप् पंक्तिः बृहती)

कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ इभेन ।
तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्यासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ॥१
तव भ्रयास आशुया पतन्त्यनु पृश धृषवा शोशुचानः ।
तपूंष्नेग्ने जुह्वा पतङ्गानसन्दितो वि सृज विष्वगुल्काः ॥२
प्रति स्पशो वि सृज तूर्णितमो मवा पायुर्विशो अस्या अदब्ध ।
यः नो दूरे अघशंसा यो अत्यग्ने माकिष्टे व्यथिरादधर्षीत् । ३
उदग्ने तिष्ठ प्रत्या तनुष्व न्यमित्राँ ओषतात्ति महेते ।

यो नो अरातिं समिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम् ॥४
ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने ।
अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्र मृणीहि शत्रून् ॥५।२३

हे अग्ने ! तुम अपनी तेज-राशि को व्याधि द्वारा अपने जाल को बढ़ाने के समान विस्तृत करो। मन्त्री को साथ लेकर राजा के गमन करने के समान तुम अपने भय रहित तेज के साथ गमन करो। तुम अपनी द्रुत वेग वाली सेना के साथ शत्रु की सेना का संहार करो। शत्रुओं को नष्ट कर डालो। तुम अपने तीक्ष्ण तेज से असुरों को विदीर्ण कर डालो।१। हे अग्ने ! तुम्हारी गतिमती, द्रुतगामिनी किरणें सब जगह जाती हैं। तुम अत्यन्त तेजस्वी हो। शत्रुओं को हराने में समर्थ तेज द्वारा शत्रुओं को जला डालो। शत्रु तुमको बाधित नहीं कर सकते तुम आकाश से गिरने वाले तारों के समान वेग से जाने वाले अपने तेज को प्रेरित करो।२। हे अग्ने ! तुम अत्यन्त वेग वाले हो। शत्रुओं को रोकने वाली अपनी शक्ति को शत्रुओं के प्रति चलाओ। तुम्हें कोई हिंसित नहीं कर सकता। दूर या पास से हमारा अनिष्ट-चिन्तन करने वाले से हमारी सन्तानों की रक्षा करो। हमको कोई भी शत्रु वशीभूत न कर पावे, इसका ध्यान रखो, क्योंकि हम साधक तुम्हारे ही हैं।३। हे तीक्ष्ण ज्वाला वाले अग्निदेव ! दुष्टों का संहार करने को तैयार होओ। शत्रुओं पर अपनी ज्वालाओं का आवरण डाल दो और उन्हें भस्म कर डालो। हे अग्ने ! हमारे साथ शत्रुता का व्यवहार करने वाले दुष्ट को सूखे काठ के समान जला डालो।४। हे अग्ने ! तुम दुष्टों का संहार करने को तैयार होओ। हमसे अधिक बलवान शत्रुओं को एक-एक कर मारो। अपने दिव्य तेज को प्रत्यक्ष करो। जीवों को सन्तापित करने वाले दुष्टों को विजय रहित करो। पहले पराजित हुये अथवा अपराजित शत्रुओं का नाश कर डालो।५। [२३]

स ते जानाति सुमतिं यविष्ठ य ईवते ब्रह्मणे गातुमैरत् ।
विश्वान्यस्मै सुदिनानि रायो द्युम्नान्यर्यो वि दुरो अभि द्यौत् । ६
सेदग्ने अस्तु सुभगः सुदानुर्यस्त्वा नित्येन हविषा य उक्थैः ।

पिप्रीषति स्व आयुषि दुरोणे विश्वेदस्म सुदीनासदिष्टिः ॥७
आर्चाति ते सुमतिं घोष्यर्वाक्सं ते वावाता जरतामियं गीः ।
स्वश्वास्त्वा सुरथा मर्जयेमास्से क्षत्राणि धारयेरनु द्यून् ॥८
इह त्वा भूर्या चरेदुप त्मन्दोषावस्तर्दीदिवांसमनु द्यून् ।
क्रीलन्तस्त्वा सुमनसः सपेमाभि द्युम्ना तस्थिवांसो जनानाम् ॥९
यस्त्वा स्वश्वः सुहिरण्यो अग्न उपयाति वसुमता रथेन ।
तस्य त्राता भवसि तस्य सखा यस्त आतिथ्यमानुषग्जुजोषत् ॥१०॥२४

हे अत्यन्त युवा अग्ने ! तुम गतिमान एवं मुख्य हो । तुम्हारे प्रति स्तुति करने वाला मनुष्य तुम्हारी कृपा प्राप्त करता है । हे यज्ञ स्वामिन् ! तुम उसके निमित्त समस्त सौभाग्यशाली दिनों को, अन्न एवं रत्नादि धनों को ग्रहण करो । तुम उसके सामने प्रकाशवान् होओ ॥६॥ हे अग्ने ! जो व्यक्ति नित्य हवि-दान एवं मन्त्र रूप स्तुतियाँ प्रेरित करने के उद्देश्य से तुम्हारी प्रीति की इच्छा करता है, वह व्यक्ति सौभाग्यशाली एवं दानशील हो । वह कठिनता से प्राप्त होने वाली अपनी सौ वर्ष की पूर्ण आयु को भोगे । उस यजमान के लिए सभी दिन सौभाग्य की वर्षा करने वाले हों । वह यज्ञ का फल प्राप्त करने के साधनों से सम्पन्न हो ॥७॥ हे अग्निदेव ! हम तुम्हारी कृपा-पूर्ण बुद्धि का स्तवन करते हैं । तुम्हारे निमित्त उच्चारण किए हुए वाक्य प्रतिध्वनित होते हुए तुम्हारा स्तवन करें । हम अपने पुत्र पौत्रादि एवं श्रेष्ठ रथ और अश्वों से युक्त तुम्हारी सेवा करने वाले हों । तुम हमारे निमित्त नित्यप्रति शोभन अन्न धारण करो ।८। हे अग्ने ! तुम दिन रात प्रदीप्त होते हो । इस लोक में मनुष्य तुम्हारा सामीप्य प्राप्त कर नित्य प्रति तुम्हारी सेवा करते हैं । शत्रुओं के धन को अपनाते हुए हम भी अपने घर में सन्तानों के सहित मोद करते हुए प्रसन्न हृदय से तुम्हारी विविध भाँति सेवा करते हैं ।९। हे अग्ने ! जो मनुष्य यज्ञ के योग्य सुन्दर घोड़ों से युक्त धन आदि से सम्पन्न रथ के सहित तुम्हारे निकट जाता है, तुम उस मनुष्य की रक्षा करते हो । जो मनुष्य तुम्हें अतिथि मानकर तुम्हारा पूजन करता है, तुम उसके प्रति मित्र-भाव रखने वाले होओ ।१०। [२४]

महो रुजामि बन्धुता वचोभिस्तन्मा पितुर्गोतमादन्वियाय ।
त्व नो अस्य वचसश्चिकिद्धि होतर्यविष्ठ सुक्रतो दमूनाः ॥११

अस्वप्नजस्तरणयः सुशेवा अतन्द्रासोऽवृका अश्रमिष्ठाः ।
ते पायवः सध्र्यञ्चो निषद्याग्ने तव नः पान्त्वमूर ॥१२

ये पायवो मामतेय ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।
ररक्ष तान्त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभुः ॥१३

त्वता वय सधन्य स्त्वोतास्तव प्रणीत्यश्याम वाजान् ।
उभा शंसा सूदय सत्यतातेऽनुष्टया कृणुह्यह्रयाण ॥१४

अया ते अग्ने समिधा विधेम प्रति स्तोमं शस्यमानं गृभाय ।
दहाशसो रक्षसः पाह्य स्मान्द्रुहो निदो मित्रमहो अवद्यात् ॥१५।२५

हे अग्ने ! अत्यन्त युवा, बुद्धिमान् एवं होता रूप हो। स्तोत्र द्वारा तुम जो हमारा भ्रातृभाव उत्पन्न हुआ है, उसके द्वारा हम आसुरी वृत्ति वाले शत्रुओं को विदीर्ण करें। यह स्तोत्र रूप वाणी गोतमों द्वारा हमको प्राप्त हुई है। तुम शत्रुओं का संहार करने वाले हो। हमारे स्तुति रूप वचनों पर पूरी तरह ध्यान देने की कृपा करो।११। हे अग्ने ! तुम सर्वज्ञाता हो तुम्हारी रश्मियाँ सदा चैतन्य रहती हैं। वे सदा गमनशील प्रसाद-रहित अहिंसित, अश्रान्त एवं सुसङ्गठित रहती हुई रक्षा-कार्य में समर्थ है। वे रश्मियाँ इस यज्ञ स्थान पर रमण करती हुई हमारी रक्षा करे।१२। हे अग्ने ! तुम्हारी इन रक्षणक्षम रश्मियों ने ममता के नेत्रहीन पुत्र दीर्घतमा पर अनुग्रह कर उसकी शाप से रक्षा की। हे अग्निदेव ! तुम अत्यन्त मेधावी हो अपनी उन रश्मियों का स्नेह पूर्वक पालन करते हो। तुम्हारे शत्रु तुम्हारा नाश करने की इच्छा करते हुए भी अपने प्रयत्न में विफल होते हैं।१३। हे अग्ने ! तुम निःसंकोच गमन करते हो हम स्तुति करने वाले तुम्हारी कृपा से धनवान् होकर तुम्हारा आश्रय प्राप्त करें। तुम्हारी प्रेरणा से हमको अन्न-लाभ हो। हे अग्ने ! तुम सत्य का विस्तार करने वाले हो। तुम पाप का नाश करने में समर्थ हो। निकट या दूर के शत्रुओं का तुम नाश करो और सभी

कार्यों का साधन करो ।१४। हे अग्ने ! प्रस्तुत स्तुति द्वारा हम तुम्हारी सेवा कर । हमारे स्तोत्र को ग्रहण करो । जो दुष्ट स्तुति नहीं करते, उन्हें भस्म कर डालो । हे अग्ने ! तुम मित्रों द्वारा पूजनीय हो । हमको शत्रुओं और निंदकों की निन्दापूर्ण वार्ताओं से बचाओ ।१५। [२५]

सूक्त ५

(ऋषि—वामदेवः । देवता—वैश्वानरः । छन्द–त्रिष्टुप् पंक्तिः)

वैश्वानराय मोलहुषे सजोषाः कथा दाशेमाग्नये बृहद्भाः ।
अनूनेन वृहता वक्षथेनोप स्तभायदुपमिन्न रोधः ॥१
मा निन्दत य इमां मह्यं रातिं देवो ददौ मर्त्याय स्वधावान् ।
पाकाय गृत्सो अमृतो विचेता वैश्वानरो नृतमो यह्वो अग्निः ॥२
साम द्विबर्हा महि तिग्मभृष्टिः सहस्ररेता वृषभस्तुविष्मान् ।
पदं न गोरपगूलहं विविद्वानग्निमह्यं प्रेदु वोचन्मनीषाम् ॥३
प्रताँ अग्निर्बभसत्तिग्मजम्भस्तपिष्ठेन शोचिषा यः सुराधाः ।
प्र ये मिनन्ति वरुणस्य धाम प्रिया मित्रस्य चेततो ध्रुवाणि ॥४
अभ्रातरो न योषणो व्यन्तः पतिरिपो न जनयो दुरेवाः ।
पापासः सन्तो अनता असत्या इदं पदमजनता गभीरम् ॥५॥१

हम सब समान प्रीति वाले साधक यजमान उन अभीष्टों की वर्षा करने वाले, अत्यन्त दीप्तिमान् वैश्वानर अग्नि को प्रसन्न करने के निमित्त किस प्रकार हवि दें ? जसे छप्पर को खम्भा धारण करता है वैसे ही वे अग्निदेव अपने सम्पूर्ण रूप द्वारा आकाश को धारण करते हैं ।१। हे होताओ ! हवियुक्त होकर हम मरणधर्मा परिपक्व बुद्धि वाले यजमानों को अग्निदेव धन देते हैं, उनका निरादर न करो। वे अविनाशी अग्निदेव अत्यन्त मेधावी हैं । वे श्रेष्ठ नेतृत्व वाले वैश्वानर अग्नि अत्यन्त महान् हैं ।२। मध्यम एवं उत्तम दोनों स्थानों में व्याप्त अग्निदेव अपने तीक्ष्ण तेज से युक्त । वे अभीष्टों की वर्षा करने वाले, सारयुक्त एवं धन-सम्पन्न होते हुए भी पर्वत में

छिपे गोष्ठ के समान रहस्यपूर्ण हैं। उसका ज्ञान प्राप्त करना उचित है। विद्वज्जन महान् स्तोत्रों के अध्ययन द्वारा हमको उनका स्वरूप ज्ञान करावें ।३। जो व्यक्ति मेधावी मित्र और वरुण के प्रिय तेज की हिंसा करना चाहता है, उसे तीक्ष्ण दाँत वाले सुन्दर धन युक्त अग्निदेव अपने अत्यन्त क्लेशदायी तेज के द्वारा भस्म कर डालें ।४। जैसे पालन करने वाले भाई से द्वेष करने वाली स्त्री तथा पति से द्वेष करने वाली मिथ्याचारिणी स्त्री दुःख देने वाली गम्भीर दशा को प्राप्त हो जाती है, वैसे ही यज्ञ-विहीन एवं अग्नि से द्वेष करने वाले सत्य-रहित तथा सत्य वाणी से शून्य पापाचारी अधःपतन को प्राप्त होते हैं ।५। [१]

इदं मे अग्ने क्रियते पावकामिनते गुरुं भारं न मन्म ।
बृहद्धाथ धृषता गभीरं यह्वं पृष्ठ प्रयसा सप्तधातु ॥६
तमिन्न्वे व समना समानमभि क्रत्वा धीतिरश्याः ।
ससस्य चर्मन्नधि चारु पृश्नेरग्रे रुप आरुपितं जबारु ॥७
प्रवाच्यं वचसः किं मे अस्य गुहा हितमुप निणिग्वदन्ति ।
यदुस्रियाणामप वारिव व्रन्पाति प्रियं रुपो अग्रं पद वेः ॥८
इदमुत्यन्महि महामनीकं यदुस्रिया सचत पूर्व्यं गौः ।
ऋतस्य पदे अधि दीद्यानं गुहा रघुष्यद्रघुयद्विवेद ॥९
अध द्युतानः पित्रो सवासामनुत गुह्यं चारु पृश्नेः ।
मातुष्पवे परमे अन्ति षद्गोर्वृष्णः शोचिषः प्रयतस्य जिह्वा॥१०।२

हे पावक ! हम तुम्हारे प्रति किये जाने वाले व्रत को नहीं छोड़ते। जैसे दुर्बल को कोई भारी बोझा से लाद दे उसी प्रकार तुम हमको सुन्दर धन प्रदान करो। वह धन शत्रु को रगड़ने वाला,अन्न से युक्त पोषण करने में समर्थ आनन्दवर्षक एवं महान् सप्त धातुओं से युक्त है ।६। यह सब प्रकार उपयुक्त, समान शोधन करने वाली स्तुति पूजन विधि के द्वारा वैश्वानर अग्नि को प्राप्त हो। वह स्तुति वैश्वानर अग्नि को बढ़ाने वाली उज्जवल पृथिवी के समीप से अचल आकाश पर विचरण करने के निमित्त पूर्वदिशा में प्रकट हुई है ।७। विद्वानों का कथन है कि दोग्धा जिस दूध को जल के

समान दुहते हैं, उस दूध को वैश्वान अग्नि गुहा में गुप्त रखते हैं। वे विस्तृत भूमंडल के प्रिय स्थान के रक्षक हैं। यह वचन कितना अद्भुत अथवा अधिक कहा जाने के योग्य है।८। जिन अग्निदेव की दूध देने वाली गाय यज्ञादि शुभ कर्म में सेवा करती है जो अग्नि स्वयं प्रकाशवान् हैं, जो गुंफा में बसे हुए हैं, जो शीघ्र गतिमान् एवं वेगवान् हैं, वे महान् एवं पूजनीय हैं, सूर्य मंडल में व्याप्त उन वैश्वानर अग्नि को हम भले प्रकार जानते हैं।९। फिर पिता माता के समान आकाश पृथिवी के बीज में व्याप्त हुए प्रकाशवान् वैश्वानर गौ के ऊर्ध्व भाग में श्रेष्ठ एवं सुस्वादु दूध को पीने के निमित्त चैतन्य हों उन अभीष्टों की वर्षा करने वाले, प्रकाशवान् वैश्वानर अग्नि की जिह्वा मातृ रूपणी गौ के ऊर्ध्व स्थान में पय-पान करने की इच्छा करती है।१०। [२]

ऋत वोचे नमसा पृच्छ्यमानस्तवाशसा जातवेदो य दीदम् ।
त्वमस्य क्षयसि यद्ध विश्व दिवि यद्द्रवणं तत्पृथिव्याम् ॥११
किं नो शस्य द्रविणं कद्ध रत्न वि नो वोचो जातवेदश्चिकित्वान् ।
गुहाध्वनः परमं यन्नो अस्य रेकु पद न निमाना अगन्म ॥१२

का मर्यादा वयुना कद्ध वाममच्छा गमेम रघवो न वाजम् ।
कदा नो देवीरमृतस्य पत्नीः सूरो वर्णेन तयनन्नुषासः ॥१३

अभिरेण वचसा फल्वेन प्रतीत्येन कृधुनातृणास ।
अधा ते अग्ने किमिहा वदन्त्यनायुधास आसता सचन्ताम् ॥१४

अस्य श्रिये समिधानस्य वृष्णा वसोरनीक दम आ रुरोच ।
रुशद्वसानः सुद्वशीकरूपः क्षितिनं राया पुरुवारो अद्यौत् ॥१५।३

मुझसे कोई अत्यन्त आदर पूर्वक पूछे तो हे विद्वन्! मैं अवश्य ही सत्य बात कहूं। हे अग्ने तुम्हारी स्तुति करते हुए हम इस सुन्दर धन को प्राप्त करें तो तुम ही इस धन के अधिपति बनो। क्योंकि तुम सभी धनों के स्वामी हो। पृथिवी और आकाश में जितने भी धन हैं उन सबके ही तुम अधीश्वर हो।११। इस धन की साधन भूत शक्ति क्या है? इसका हित-

कारी धन कौन सा है ? हे अग्निदेव ! तुम जो जानते हो, वह हमको बताओ। इस धन को प्राप्त करने का जो सरल मार्ग है, उसका श्रेष्ठ उपाय बताओ । जिससे हम अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में निन्दा के भागी न बनें ।१२। मर्यादा क्या है ? करने योग्य कर्त्तव्य कौन-कौन से हैं ? जानने योग्य ज्ञान कौन से हैं ? वेगवान् अश्व जैसे युद्ध को जाता है एवं शीघ्र कार्य-क्षम व्यक्ति निरालस्य हुआ ज्ञान-विज्ञानों को प्राप्त करता है वैसे हम भी कब गतिमान् होंगे ? और ज्ञानैश्वर्य को प्राप्त करेंगे ? उज्ज्वल प्रकाश वाली अविनाशिनी उषा सूर्य के प्रकाश से युक्त हुई कब हमारे निमित्त प्रकाशित होगी ? ।१३। हे अग्ने ! अन्न से वंचित विरुद्ध ज्ञान वाला, अतृप्त मनुष्य इस लोक में स्वल्प वचन से तुम्हारे प्रति क्या कहता है ? वह हथियारों से रहित निहत्थे व्यक्ति की भाँति असत् ज्ञान से युक्त हुए क्लेश पाते हैं ।१४। इस सुखवर्षक देदीप्यमान अग्नि की तेज राशि यज्ञ स्थान में प्रदीप्त होती है । यजमान को सुख देने के निमित्त वे उज्ज्वल तेज को धारण करते हैं, अतः उनका स्वरूप अत्यन्त सुन्दर है। जैसे अश्वादि धनों से युक्त हुआ राजा चमकता है, वैसे ही अग्निदेव यजमानों की स्तुतियों द्वारा पूजित होकर चमकते हैं ।५। [३]

सूक्त ६

(ऋषि—वामदेवः । देवता—अग्निः । छन्द-पंक्तिः, त्रिष्टुप)

ऊर्ध्व ऊषुणो अध्वरस्य हीतरऽग्ने तिष्ठ देवतानां यजीयान् ।
त्वं हि विश्वनभ्यसि मन्म प्र वेधसश्चित्तिरसि मनीषाम् ।।१

अमूरो होत न्यसादि विक्ष्वग्निर्मन्द्रो विदथेषु प्रचेताः ।
ऊर्वं भानुं सवितेवाश्रेन्मेतेव धूम स्तभायदुप द्याम् ।।२

यता सुजूर्णी रातिनी घृताची प्रदक्षिणिद् देवतातिमुराणः ।
उदु स्वरुर्नवजा नाक्रः पश्वो अनक्ति सुधितः सुमेकः ।।३

स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्ना ऊर्ध्वयुर्जुषाणो अस्थात् ।
पर्यग्निः पशुपा न होता त्रिविष्ट्येति प्रदिव उराणः।।४

परि त्मना मितद्रु रेति होताग्निर्मन्द्रो मधुवचा ऋतावा ।
द्रवन्त्यस्य वाजिनो न शोका भयन्ते विश्वा भुवना यदभ्राट् ॥५।४

हे होता अग्ने ! तुम याज्ञिकों में श्रेष्ठ हो । तुम हमसे परमोच्च पद पर अवस्थित होओ । तुम सभी शत्रुओं के धनों को जीतने वाले हो । स्तुति करने वालों की स्तुतियो को प्रशस्त करो ।१। वे अग्निदेव यज्ञ का सम्पादन करने वाले, प्रसन्नता को उत्पन्न करने वाले अत्यन्त ज्ञानी और मेधावी हैं। वे यज्ञ मंडप में यजमानों के मध्य विराजमान होते हैं । वे उदय होते हुए सूर्य के समान ऊँचे उठते हैं और खम्भे के समान धूप को धारण करते हैं ।२। प्राचीन एवं संयत जुहू घृत से पूर्ण हुआ है । यज्ञ की वृद्धि करने वाले अध्वर्यु प्रदक्षिणा करते हुए अपनी कामना को प्राप्त करते हैं । नवोत्पन्न यूप ऊपर उठता हुआ सुखकारी होता है । हितकर्त्ता यजमान गवादि पशुओं को प्राप्त करता है ।३। कुश के बिछाये जाने पर तथा अग्नि के समृद्ध होने पर अध्वर्युगण दोनों का आदर करने के निमित्त प्रस्तुत होतें हैं । यज्ञ का संपादन करने वाले प्राचीन अग्निदेव थोड़े से हव्य को भी प्रचुर करते हैं । वेपालकों के समान ऐश्वर्य वृद्धि करते हुए उत्तम, मध्यम, अधम तीनीं श्रेणी के जीवों पर अनुग्रह करते हैं ।४। प्रसन्नता प्रदान करने वाले, होता रूप, मिष्टभाषी, यज्ञ से युक्त अग्निदेव परिमित गति वाले होकर सर्वत्र गमन करते हैं उनका प्रकाशपुञ्ज घोड़े के समान सब ओर दौड़ता है । वे जब प्रदीप्त होते हैं तब अखिल विश्व के प्राणी डर जाते हैं ।५।

(४)

भद्रा ते अग्ने स्वनीक सन्दृग्घोरस्य सतो विषुणस्य चारुः ।
न यत्ते शोचिस्तमसा वरन्त न ध्वस्मानस्तन्वो रेप आ धुः ॥६
न यस्य सातुर्जनितोरवारि न मातरापितरा नू चिदिष्टौ ।
अधा मित्रो न सुधित पावकोऽग्निर्दीदाय मानुषीषु विक्षु ॥७
द्विर्यं पञ्च जीजनन्त्सं वसानाः स्वसारो अग्नि मानुषीषु विक्षु ।
उषर्बुधमथर्यो न द तं शुक्रं स्वासं परशुं न तिग्मम् ॥८
तव त्ये अग्ने हरितो घृतस्ना रोहितास ऋज्वञ्चः स्वञ्चः ।

अरुषासो वृषण ऋजुमुष्का आ देवतामिह्वन्त दस्माः ॥८
ये ह त्ये ते सहमाना अयासस्त्वेषासो अग्ने अर्चयश्चरन्ति ।
श्येनासो न दुवसनासो अर्थं तुविष्वणसो मरुतं न शर्धः ॥१
अकारि ब्रह्म समिधाम तुभ्य शसात्युक्थं यजते व्यू धाः ।
होतारमग्नि मनुषो नि षेदर्नमस्यन्त उशिजः शंसमायोः ॥११।५

हे अग्ने ! तुम्हरी ज्वालाऐं सुन्दर हैं, तुम दुष्टों को भयभीत करने वाले एवं सर्वव्यापक हो । तुम्हारा मनोहर और कल्याणकारी स्वरूप भले प्रकार दर्शनीय है। रात्रि का अन्धकार भी तुम्हारे प्रकाश को रोकने में समर्थ नहीं है। राक्षसादि दुष्ट तुम्हारे शरीर पर पापमय प्रयोग करने में सफल नहीं हो सकते ।६। हे वैश्वानर अग्निदेव ! तुम वर्षा के कारणभूत हो। तुम्हारा दान किसी के द्वारा रोक नहीं जा सकता। जिस अग्नि को प्रेरित करने में माता पिता रूप पृथिवी-आकाश शीघ्र ही समर्थ नहीं होते, वे अग्नि तृप्त होकर पवित्र करने वाले होते हैं और मनुष्यों के बीच मित्र के समान प्रतिष्ठित हुए प्रकाशित होते हैं ।७। मनुष्यों की दसों अंगुलियाँ, नारी के समान जिस अग्नि को प्रदीप्त करती हैं वे अग्नि उषा काल में जगाने वाले, हव्य भक्षण करने वाले, उत्तम प्रकाश से दमकने वाले एवं सुन्दर स्वरूप वाले हैं । वे तीखे मुख वाले फरसे के समान शत्रुओं का नाश करते हैं ।८। हे अग्ने ! तुम्हारे उन घड़ों को हम अपने यश के सम्मुख बुलाते हैं। उनके मुख से फेन निकलता है। वे लाल वर्ण वाले सीधे मार्ग पर चलने वाले हैं । उनकी चाल सुन्दर है और वे दमकते हुए शरीर वाले युवावस्था से युक्त, बलवान् तथा देखने योग्य हैं ।९। अग्ने ! तुम्हारी रश्मियाँ शत्रुओं को वश में करने में समर्थ हैं। वे गमनशील, दमकती हुई और पूजा के योग्य रश्मियाँ मरुतों के समान विविध नाद करने वाली हैं तथा वे घोड़े के समान गन्तव्य स्थान पर पहुंचने में पूर्ण समर्थ हैं ।१०। हे देदीप्यमान अग्निदेव ! यह महान् स्तोत्र तुम्हारे निमित्त ही हमने किया है। तुम्हारे निमित्त ही विद्वान् पुरुष श्रेष्ठ वचनों का उच्चारण करते हैं। यजमान तुम्हारा यज्ञ करते हैं। इसलिए तुम हमको धनैश्वर्य प्रदान करो। मनुष्यों

के होता अग्नि का पूजन करने के लिए तथा पशु आदि धनों की कामना के साथ ऋत्विक् आदि विद्वान् यहाँ बैठे हैं ।११। [५]

सूक्त ७

(ऋषि—वामदेवः देवता—अग्निः । त्रिष्टुप् उष्णिक्)

कयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः ।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुधुवनेषु चित्र मिम्वं विशेविशे ॥१
अग्ने कदा त आनुषग्भुवस्य चेततम् ।
अधा हि त्वा जगृभ्रिरे मर्तासो विक्ष्वीडयम् ॥२
ऋतावान विचेतसं पश्यन्तो द्यामिव स्तमिः ।
विश्वेषामध्वराणां हस्कर्तारं दमेदमे ॥३
आशु दूतं विवस्वतो विश्वा यश्चचर्षणी रभि ।
आजभ्रुः केतुमायवो भृगवाणं विशेविशे ॥४
तमी होतारमानुषक्चिकित्वांसं नि षेदिरे ।
रण्वं पावकशोचिष यजिष्टं सप्तधामभिः ॥५।६

यह अग्नि सब से श्रेष्ठ, सब के आदि में वर्तमान, सर्व सुखों के दाता, पूजनीय एवं सभी यज्ञों में स्तुति करने के योग्य हैं । इन्हें आदि काल में भृगुओं ने प्रदीप्त किया था । वे अग्नि याज्ञिकों में श्रेष्ठकर्मा, तेजस्वी एवं पाप नाश : हैं । इन परमेश्वर स्वरूप अग्नि को यज्ञ करने वाले विद्वान् प्रतिष्ठित करते हैं ।१। हे अग्ने ! तुम मनुष्यों के द्वारा पूजा करने के योग्य हो। तुम अत्यन्त दीप्तिमान् हो । तुम्हरा प्रकाश कब अनुकूल होगा ? तुमको जीवनदाता रूप से यह मरणधर्मा मनुष्य कब ग्रहण करेंगे ? ।२। वे अग्निदेव विविध ज्ञानों से युक्त, माया से रहित तथा नक्षत्रों से युक्त आकाश के समान सभी यज्ञों को सम्पन्न करने वाले हैं । दर्शनीय को ऋत्विक् आदि मेधावी जन प्रत्येक यज्ञ स्थान में प्रतिष्ठित करते हैं ।।३।। जो अग्निदेव प्रजाओं के सुख के निमित्त अपना तेजोमय प्रकाश देते हैं, वे शीघ्र गमनशील, यजमान

के दूत स्वरूप एवं ज्ञान के प्रकाश से युक्त हैं। अग्निदेव का प्रकट होना प्रत्येक प्रजाजन के लिए कल्याण करने वाला हो ॥४॥ उन होता रूप अग्नि को अध्वर्यु आदि ने यथा स्थान प्रतिष्ठित किया है। वे तेजस्वी एवं पवित्र करने वाली प्रदीप्ति से युक्त हैं। वे अत्यन्त दानशील तथा सभी के सखा रूप हैं। वे सप्त तेजोयुक्त अग्नि अनुकूल होकर यज्ञ स्थान में निवास करें ॥५॥ (६)

तंक्षश्वतीषु मातृषु वन आ वीतमश्रितम् ।
चित्रं सन्त गुहा हितं सुवेदं कूचिदर्थिनम् ॥६
ससस्य यद्वियुता सस्मिन्नूधन्नृतस्य धामन्रणयन्त देवाः ।
महाँ मग्निर्नमसा रातहव्यो वेरध्वराय सदामिहतावा ॥७
वेरध्वरस्य दूत्यानि विद्वानुभे अन्ता रोदसी सञ्चिकित्वान्
दूत ईयसे प्रदिव उराणो विष्दुटरो दिव आरोधनानि ॥८
कृष्णं त एम रुशतः पुरो भाश्चरिष्णवर्चिर्वपुषामिदेकम् ।
यदप्रवीता दधते ह गर्भं सद्यश्चिज्जातो भवसीदु दूतः ॥९
सद्यो जातस्य दहशानमोजो यदस्य वांतो अनुवाति शोचिः ।
वृणक्ति तिग्मामतसेषु जिह्वां स्थिरा चिदन्ना दयते वि जम्भैः ॥१०
तृषु यदन्ना तृषुणा ववक्ष तृषुं दुत कृणुते यह्वो अग्निः ।
वतस्य मेलिं सचते निजूर्वन्नाशुं वाजयते हिन्वे अर्वा ॥११।७

मातृभूत जलों में तथा वृक्षों में विद्यमान, जलने के भय से बहुत से प्राणियों द्वारा असेवित, गुहा में अवस्थित, अद्‌भुत, मेधावी और सर्वत्र हव्य सामग्री को ग्रहण करने वाले अग्नि की मनुष्यों ने उपासना की हैं।६। देवता निद्रा को त्याग कर उषाकाल में जिन अग्नि को यज्ञ स्थान में स्तुतियों द्वारा प्रसन्न करते हैं, सत्य से युक्त महान् अग्निदेव नमस्कारपूर्वक दिये हुए हव्य को स्वीकार करते हुए यजमान द्वारा किये गये यज्ञ को जानते रहें।७। हे अग्ने तुम ज्ञानवान् हो। यज्ञ के दौत्य कर्म जानने वाले हो। तुम इन दोंनो आकाश–पृथिवी के बीच अवस्थित हुए अन्तरिक्ष को भली प्रकार जानते हो। हे अग्निदेव ! तुम प्राचीन हो। अल्प हव्य को भी बढ़ाकर

अधिक कर देते हो। तुम अत्यन्त मेधावी हो, सर्वश्रेष्ठ एवं देवताओं के दूत हो। तुम देवताओं को हवि पहुंचाने के लिए स्वर्ग के उच्च स्थान को भी प्राप्त होते हो।८। हे अग्ने! तुम प्रकाश से युक्त हो। तुम्हारा चलने का मार्ग काले रङ्ग का है। तुम्हारी कान्ति आगे से ही दीखती है। तुम्हारा तेज सभी तेजोमय पदार्थों में सर्वश्रेष्ठ है तुम्हारी प्राप्ति के निमित्त तुम्हारे उत्पत्ति कारण काष्ठ को ग्रहण किया जाता है और तुम उत्पन्न होते ही यजमान के दूत बन जाते हो।९। अरणियों को मथने के पश्चात् उत्पन्न होने वाले अग्नि के तेज को ऋत्विज आदि ही देखते हैं। जब अग्नि की शिखा रूप लपटों के लक्ष्य पर वायु प्रवाहमान होती है, तब अग्नि अपनी तीक्ष्ण ज्वाला को वृक्षों के समूह में प्राप्त कर देते हैं तथा अन्न रूप काष्ठादि को अपने तेज से खा जाते हैं।१०। अग्नि देव शीघ्रगामी किरणों द्वारा अन्नादि काष्ठ को शीघ्र ही जला डालते हैं। अग्नि महान् हैं। वे शीघ्र गमन करने वाले दूत बन जाते हैं। वे काठों को जलाकर वायु के साथ मिल जाते हैं। जैसे अश्वारोही अपने अश्व को पुष्ट करता है, वैसे यह गतिमान् अग्नि अपनी रश्मियों को पुष्ट करते हैं और प्रेरणा देते हैं।।११।।

सूक्त ८

(ऋषि—वामदेवः। देवता—अग्निः। छन्द—गायत्री)

दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहममर्त्यम्। यजिष्ठमृञ्जसे गिरा ।।१
स हि वेदा बसुधितिं महाँ आरोधनं दिवः। स देवाँ एह वक्षति।।२
स वेद देव आनमं देवाँ ऋबायते दमे। दानि प्रियाणि चिद्वसु ।।३
स होता सेदु दूत्यं चिकित्वाँ अन्तरीयते। विद्वाँ आरोधनं दिवः।।४
ते स्याम ये अग्नये ददाशुर्हव्यदातिभिः। य ईं पृष्यन्त इन्धते ।।५
ते राया ते सुवीर्यैः ससवांसो वि शृण्विरे। ये अग्ना दधिरे दुवः।।६
अस्मे रायो दिवेदिवे स चरन्तु पुरुस्पृहः। अस्मे वाजास ईरताम।।७
सविप्रश्चर्षणीना शवसा मानुषाणाम्। अति क्षिप्रेव विध्यति ।।८

हे अग्ने ! तुम समस्त धनों के स्वामी, देवताओं को हवि पहुँचाने वाले, अविनाशी अत्यन्त यज्ञ करने वाले एवं देवताओं के निमित्त दौत्य-कर्म करने वाले हो। तुम अग्निदेव को हम साधकगण स्तुतियों द्वारा बढ़ाते हैं ।१। वे अग्नि महान् हैं। वे यजमानों का मनोरथ सिद्ध करने वाले धन का दान करना जानते हैं। वे देवलोक को चढ़ने वाले स्थान के भी ज्ञाता हैं। वे अग्निदेव इन्द्रादि देवों को हमारे यज्ञ में बुलावें ।२। वे अग्नि प्रकाशवान् हैं। वे इन्द्रादि देवों को नमस्कार करने के क्रम को जानने वाले हैं। वे यज्ञ की अभिलाषा करने वाले यजमान को यज्ञ स्थान में अभीष्ट धन देते हैं ।३। दौत्य कर्म के ज्ञाता अग्निदेव होता रूप हैं। स्वर्गारोहण के योग्य स्थान को जानने वाले हैं तथा आकाश और पृथिवी के मध्य गमन करते रहते हैं ।४। जो यजमान उन्हें काष्ठ के द्वारा प्रज्वलित करता है उन्हें हव्यदान द्वारा बढ़ाता हुआ प्रसन्न करता है, हम भी उस यजमान के समान कर्म करते हुए अग्नि को प्रसन्न करें ।५। जो यजमान अग्नि का पूजनादि परिचर्या करते है वे धन से युक्त होते हुए विभिन्न ऐश्वर्यों को भोगते हुए सन्तानादि सुखों से पूर्ण होते है ।६। ऋत्विक् आदि द्वारा कामना किया हुआ धन प्रतिदिन हमारे पास आवे और उसके द्वारा हमको विभिन्न ज्ञान-विज्ञान तथा बलादि की प्राप्ति हो ।७। वे अग्निदेव विद्वान् हैं। वे मनुष्यों के दुःखों को वेग से चलने वाले बाणों के समान अपने बल से प्रहार करते हुए नष्ट कर डालें ।।८।।

सूक्त ९

(ऋषि—वामदेवः । देवता—अग्निः । छन्दः—गायत्री)

अग्ने मृल महाँ असि य ईमा देवयुं वनम् । इयेथ बर्हिरासदम्।।१
स मनुषीषु दूलभो विक्षु प्राचीरमर्त्यः दूतो विश्वेषां भुवत् ।।२
स सद्म परिणीयते होता मन्द्रोदिविष्टषु । उत नि षीदति ।।३
उतग्ना अग्निरध्वर उतो गृहपतिर्दमे । उत ब्रह्मानि षीदति ।।४
वेषि ह्यध्वरीयतामुपवक्ता जनानाम् । हव्या च मानुषाणाम् ।।५
वेषीद्वस्य दूत्यं यस्य जुजोषो अध्वरम् हव्यं मर्तस्य वोलहवे । ६

अस्माकं जोष्यध्वरमस्माकं यज्ञमङ्गिरः । अस्माकं शृणुधी हवम्॥७
परि दूलभो रथोऽस्माँ अश्नोतु विश्वतः येन रक्षसि दाशुषः ॥८॥९

हे अग्ने ! हमको सुख दो । तुम देवताओं की इच्छा करने वाले एवं महान् हो । तुम यजमान के निकट कुश पर विराजमान होने की इच्छा से आते हो ।१। राक्षसादि दुष्टों द्वारा भी जिनकी हिंसा नहीं हो सकती, जो मर्त्यलोक में स्वच्छन्द विचरण करने में समर्थ हैं, वे अग्निदेव अविनाशी हैं । वे सब देवताओं के दूत हैं ।२। ऋत्विज् आदि द्वारा यज्ञ-गृह में ले जाये जाकर अग्निदेव स्तुति के पात्र होते हैं या वे होता हुए यज्ञ-स्थान में जाते हैं ।३। या वे अग्निदेव अध्वर्यु अथवा देवपत्नी रूप होते हैं । अथवा यज्ञ-गृह में गृहपति रूप से प्रतिष्ठित होते हैं । अथवा यज्ञ में ब्रह्मा रूप से विराजमान होते हैं ।४। अग्ने ! तुम यज्ञ की कामना करने वाले मनुष्यों की हवियों की अभिलाषा करते हो । तुम अध्वर्यु आदि के कर्मों के ज्ञाता ब्रह्मा रूप हो । तुम यज्ञ कर्मों के उपदेष्टा स्वरूप हो ।५। हे अग्ने ! तुम हवियाँ वन करने के निमित्त जिस यजमान के यज्ञ का सेवन करते हो, उस यजमान के यज्ञ में दौत्य कर्म करने के लिए भी तुम इच्छा करते हो ।६। हे तेजस्वी ! तुम हमारे यज्ञ का सेवन करो हमारे हव्य को ग्रहण करो और आह्वान करने वाले हमारे स्तोत्र को सुनने का अनुग्रह करो ।७। हे अग्ने ! तुम अपने जिस रथ पर चढ़ कर सब दिशाओं में गमन करते हुए हव्यदाता यजमान की रक्षा करते हो, तुम्हारा वह रथ कभी भी हिंसित नहीं हो सकता । वह रथ हमारे सब ओर व्याप्त होता हुआ करे ॥८॥ [९]

सूक्त १०

(ऋषि—वामदेव : देवता—अग्निः । छन्द गायत्री)

अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् ।
ऋध्यामा त ओहैः ॥१
अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः ।
रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ॥२

एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाङ्स्वर्ण ज्योतिः ।
अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥३

आभिष्टे अद्य गीर्भिर्गृणन्तोऽग्ने दाशेम ।
प्र ते दिवो न स्तनयन्ति शुष्माः ॥४

तव स्वादिष्ठाग्ने संदृष्टिरिदा चिदह्न इदा चिदक्तोः ।
श्रिये रुक्मो न रोचत उपाके ॥५

घृतं न पूतं तनूररेपाः शुचि हिरण्यम् ।
तत्ते रुक्मो न रोचत स्वधावः ॥६

कृतं चिद्धि ष्मा सनेमि द्वेषोऽग्न इनोषि मर्त्तात् ।
इत्था यजमानादृतावः ॥७

शिवा नः सख्या सन्तु भ्रात्राग्ने देवषु युष्मे ।
सा नो नाभिः सदने सस्मिन्नूधन् ॥८॥१०

हे अग्ने ! हम ऋत्विग्गण स्तुति द्वारा आज तुमको बढ़ाते हैं। जैसे घोड़ा सवार को चढ़ाता है, वैसे ही तुम हवियों को वहन करते हो। तुम यज्ञ करने वाले का उपकार करते हो। तुम यजन करने योग्य तथा अत्यन्त प्रिय एवं सुखकारी हो ॥१॥ हे अग्ने ! तुम हमारे यजन के योग्य हो। तुम बढ़े हुए अभीष्ट फल को सिद्ध करने वाले, सत्य के आधाररूप एवं महान् हो तथा रथी के समान नेतृत्व करने वाले हो।२। हे अग्ने ! तुम प्रकाश से युक्त सूर्य के समान सम्पूर्ण तेज से पूर्ण एवं श्रेष्ठ अन्तःकरण वाले हो। तुम हमारे द्वारा उत्तम चित्त होकर हमारे सामने आओ।३। हे अग्ने ! हम आज वाणी द्वारा स्तुति करके तुम्हारे लिए हव्य प्रदान करेंगे। सूर्य रश्मि के सामने तुम्हारी पवित्र करने वाली ज्वाला शब्दवान् हैं। अथवा मेघ के समान गर्जनशील हैं।४। हे अग्ने ! तुम्हारी परम प्रिय प्रदीप्ति अलङ्कार के समान पदार्थों को आश्रित करने के निमित्त उनके पास रात-दिन सुशोभित होती है।५। हे अग्ने ! तुम अन्न से युक्त हो। तुम्हारा स्वरूप शुद्ध घृत के समान पाप से शून्य है। तुम्हारा पवित्र एवं

शुद्ध तेज आभूषण के समान प्रकाशवान् है ।६। हे सत्य से युक्त अग्ने ! तुम चिरन्तन होते हुए भी यजमानों द्वारा उत्पन्न होते हो । तुम यजमानों के पाप को दूर करने में निश्चय ही समर्थ हो ।७। हे अग्ने ! तुम प्रकाशवान् हो । तुम्हारे प्रति हमारा जो बन्धुत्व और मैत्री भाव है, वह कल्याणकारी हो । यह मैत्रीभाव एवं भ्रातृत्व संपूर्ण यज्ञ में हमारा बन्धन रूप हो ।।८।।

सूक्त ११ [दूसरा अनुवाक]

(ऋषि—वामदेवः । देवता — अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्, वृहती, पंक्तिः)

भद्रं ते अग्ने सहसिन्ननीकमुपाकआ रोचते सूर्यस्य ।
रुशद्दृशे ददृशे नक्तया चिदरूक्षितं दृश आ रूपे अन्नम् ।।१
विषाह्यग्ने गृणते मनीषां खं वेपसा तुविजात स्तवानः ।
विश्वेभिर्यद्वावनः शुक्र देवैस्तन्नो रास्व सुमहो भूरि मन्म ।।२
त्वमग्ने काव्या त्वन्मनीषास्त्वदुक्था जायन्ते राध्यानि ।
त्वदेति द्रविणं वीरपेशा इत्थाधिये दाशुये मर्त्याय ।।३
त्वद्वाजी वाजम्भरो विहाया अभिष्टिकृज्जायते सत्यशुष्मः ।
त्वद्रयिर्देवजूतो मयोभुस्त्वदाशुर्जूजुवाँ अग्ने अर्वा ।।४
त्वामग्ने प्रथमं देवयन्तो देवं मर्ता अमृत मन्द्रजिह्वम् ।
द्वेषोयुतमा विवासन्ति धीभिर्दमूनसं गृहपतिममूरम् ।।५
आरे अस्मदमतिमारे अंह आरे विश्वां दुर्मतिं यन्निपासि ।
दोषा शिवःसहसःसूनोअग्ने यं देव आ चित्सचसे स्वस्ति ।।६।।१

हे अग्ने ! तुम बल से युक्त हो । तुम्हारा यजन योग्य तेज सूर्य के देदीप्यमान तेज के समान है । तुम्हारा तेज सुन्दर एवं दर्शनीय है,वह रात्रि में भी छिपता नहीं । तुम अत्यन्त रूप वाले हो । तुम्हारी प्रेरणा से घृतादि युक्त अन्न उत्पन्न होता है ।१। हे बहुत जन्म वाले अग्निदेव ! तुम यज्ञ करने वालों के द्वारा पूजित हुए,स्तोता यजमान के निमित्त पुण्य लोक का द्वार खोलो,तुम सुन्दर तेज से युक्त हो । देवताओं के साथ तुम यजमान को जो धन प्रदान करते हो, हमको भी वही इच्छित धन प्रदान करो ।२। हे

अग्ने ! हवियों का वपन करना और देवताओं के आगमन सम्बन्धी कार्य तुम्हारे द्वारा ही प्रकट हुए हैं । स्तुतिरूपी वाणी तुम्हारे द्वारा ही उत्पन्न हुई है और आराधना के योग्य मन्त्र भी तुमसे ही प्रकट हुए हैं । सत्य कर्म वाले एवं हविदाता के निमित्त पुष्टिदायक धन एवं अन्न भी तुम्हारे द्वारा ही उत्पन्न हुए हैं ।३। हे अग्ने ! शक्तिशाली, हव्य वहन करने वाले यज्ञ कर्मों के साधक, महान् और सत्यबल से युक्त पुत्र तुम्हारे द्वारा ही प्रकट हुए हैं । देवताओं द्वारा प्रेरित कल्याणकारी ऐश्वर्य तुम्हारे द्वारा प्रकट होता है । विशेष गति वाला, वेगवान, शीघ्रगामी अश्व भी तुम्हारे द्वारा ही उत्पन्न हुआ ।४। हे अग्ने ! तुम अविनाशी हो । देवताओं की कामना करने वाले मनुष्य स्तुतियों द्वारा तुम्हारी सेवा करते हैं । तुम देवताओं में आदि देवता हो । तुम दीप्तिमान् हो । तुम्हारी जिह्वा देवताओं को बलवान् बनाने वाली है । तुम पापों को दूर करते हो तथा दैत्यों का संहार करने की कामना करते रहते हो ।५। हे बलोत्पन्न अग्निदेव ! तुम रात्रि के समय मङ्गलकारी एवं प्रकाशवान् होकर हमारे कल्याण के निमित्त जागरूक रहते हो । जिस कारणवश तुम यजमानों को पुष्ट करते हो, उसी से हमारे समीप उत्पन्न हुई मतिहीनता को हटाओ हमारे पास के पाप को हटादो । हमारे पास से कुबुद्धि को दूर करो ।६। (११)

सूक्त १२

(ऋषि—वामदेवः, । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप् पंक्ति)

यस्त्वामग्न इनधते यतस्रुक्त्रिस्ते अन्नं कृणवत्सास्मिन्नहन् ।
स सु द्युम्नैरभ्यस्तु प्रसक्षत्तव क्रत्वा जातवेदश्चिकित्वान् ॥१
इध्मं यस्ते जभरच्छश्रमाणो महा अग्ने अनीकमा सपर्यन् ।
स इधानः प्रति दोषामुषासं पुष्यन्रयिं सचते घ्नन्नमित्रान् ॥२
अग्निरीशे बृहतः क्षत्रियस्याग्निर्वाजस्य परमस्य रायः ।
दधाति रत्नं विधते यविष्ठो व्यानुषङ्मर्त्याय स्वधावान् ॥३
यच्चिद्धि ते पुरुषत्रा यविष्ठाचित्तिभिश्चकृमा कच्चिदागः ।
कृधी ष्व स्मां अदितेरनागान्व्येनांसि शिश्रथो निष्वगग्ने ॥४

महश्चिदग्न एनसो अभीक ऊर्वाद्देवानामुत मर्त्यानाम् ।
मा ते सखायः सदमिद्रिषाम यच्छा तोकाय तनयाय शंयोः ॥५
यथा ह त्यद्वसवो गौर्यं चित्पदि षिताममुञ्चता यजत्राः ।
एवो ष्वस्मन्मुञ्चता व्यंहः प्रतार्यग्ने प्रतरं न आयुः ॥६

हे अग्ने ! स्रुक को स्थिर कर जो यजमान तुम्हें प्रदीप्त करता है एवं जो तुम्हें नित्यप्रति तीनों सवनों में हविरूप अन्नदान करता है, वह तुम्हें तृप्ति करने वाले कर्म द्वारा तुम्हारे तेज का ज्ञान प्राप्त कर बल से शत्रुओं को जीतता है ।१। हे अग्ने ! जो व्यक्ति तुम्हारे लिए यज्ञ-साधक काष्ठ को लाता है तथा जो व्यक्ति काष्ठ की खोज में थक कर तुम्हारे तेज की पूजा करता है एवं रात और दिन में तुम्हें प्रज्वलित करता है, वह यजमान सन्तान और पशुओं से सम्पन्न होकर शत्रुओं का नाश करता और धन प्राप्त करता है ।२। वे अग्नि महान् शक्ति के स्वामी तथा श्रेष्ठ अन्न और पशु-रूप धन के अधिपति हैं। अत्यन्त युवा एवं अन्नवान् अग्नि सेवा करने वाले यजमान को सुन्दर धन से सम्पन्न करें ।३। हे सद्य युवा अग्निदेव ! तुम्हारे सेवकों के मध्य हम अज्ञान के वश में पड़े हुए तुम्हारा अपराध करते हैं, तुम पृथिवी के निकट हमको उन अपराधों और पापों से बचा दो। हे अग्ने ! हम सर्वत्र प्राप्त हों। हमारे पापों को हटाओ ।४। अग्ने ! तुम हमारे मित्र हो। हमने इन्द्रादि देवताओं अथवा सद् मनुष्यों का जो अपराध या पाप किया है, उस घोर पाप से हम कभी भी विघ्नों को प्राप्त न हों। तुम हमारी सन्तान को भी पाप-रूप उपद्रवों से बचाते हुए सुख प्रदान करो ।५। हे अग्ने ! तुम पूज्य एवं निवास से युक्त हो। तुमने जिस प्रकार पांवों से बँधी हुई गौ को बचाया था, उसी प्रकार हमको पाप से बचाओ। हे अग्ने ! हमारी आयु तुम्हारे द्वारा बढ़ाई गई है, तुम इसे और भी बढ़ाओ ॥६॥ (१२)

सूक्त १३

(ऋषि—वामदेवः। देवता—अग्निः। छन्द—त्रिष्टुप्)

प्रत्यग्निरुपसामग्रमख्यद्विभातीनां सुमना रत्नधेयम् ।

यातमश्विना सुकृतो दुरोणमुत्सूर्यो ज्योतिषा देव एति ॥१
अर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेद्द्रप्स दविध्वद्गविषो न सत्वा ।
अनु व्रतं वरुणो यन्ति मित्रो यत्सूर्यं दिव्यारोहयन्ति ॥२
यं सीम कृण्वन्तमसे विपृचे घ्रु वक्षेमा अनवस्यन्तो अथम् ।
तं सूर्यं हरितः सप्त यह्वी स्पर्शं विश्वस्य जगतो वहन्ति ॥३
वहिष्ठेभिर्विहरन्यासि तन्तुमवव्ययन्नसित देव भस्म ।
दविध्वतो रश्मयः चर्म वावाधुस्तमो अप्स्वन्तः ॥४
अनायतो अनिबद्धः कथायं न्यङ्ङुत्तानोऽव पद्यते न ।
कयायातिस्वधयाको ददर्श दिवः स्कम्भःसमृतःपातिनाकम्॥५॥१३

हे श्रेष्ठ मन वाले अग्निदेव ! अन्धकार का नाश करने वाले उषा के प्रकाश के पहले ही तुम प्रवृद्ध होते हो। हे अश्विनीकुमारो ! तुम यजमान के घर में गमन करो। ऋत्विक् आदि को प्रेरणा देने वाले सूर्य अपने तेज सहित उषा काल में उदित होते हैं ॥१॥ सूर्यदेव किरणों को विकसित करते हैं। जब किरणें सूर्य को आकाश में चढ़ाती हैं तब वरुण, मित्र और अन्य सभी देवता अपने कर्मों के पीछे चलते हैं, उसी प्रकार, जिस प्रकार बलिष्ठ बैल गौओं की इच्छा कर धूल उड़ाता हुआ गौओं के पीछे चलता है ॥२॥ सृष्टि रचयिता देवताओं ने संसार के कार्य को न त्याग कर अन्धेरे को नष्ट करने के निमित्त जिस सूर्य की रचना की वह सूर्य समस्त प्राणियों को जानने वाले हैं। उन्हें सात घोड़े धारण करते हैं ॥३॥ हे प्रकाशवान् सूर्य ! तुम संसार का पालन करने वाले अन्न के निमित्त रश्मियों को बढ़ाते हो। तुम ही उस काले रङ्ग की शक्ति को भगाते हो और अत्यन्त बोझ को भी ढो लेने वाले घोड़ों द्वारा गमन करते हो। सूर्य की गतिमान् रश्मियाँ अन्तरिक्ष में स्थित अन्धकार को दूर करने वाली हों ।,। प्रत्यक्ष प्राप्त सूर्य को कोई बांध नहीं सकता। नीचे रहने वाले सूर्य की कोई हिंसा नहीं कर सकता। वे किस बल से ऊंचे उठते हुए चलते हैं ? आकाश में खम्भे के समान हुए सूर्य स्वर्ग को आश्रय देते हैं इसे कौन देखता है ? ॥५॥ (१३)

सूक्त १४

(ऋषि–वामदेवः । देवता–अग्निर्लिङ्गोक्ता वा । छन्द–पंक्तिः त्रिष्टुप्)

प्रत्यग्निरुषसो जातवेदा अख्यद्देवो रोचमाना महोभिः ।
आ नासत्योरुगाया रथेनेम यज्ञमुप नो यातमच्छ ॥१
ऊर्ध्वं केतुं सविता देवो अश्रेज्ज्योतिर्विश्वस्मैभुवनाय कृण्वन् ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं वि सूर्यो रश्मिभिश्चकितानः ॥२
आवहन्त्यरुणीर्ज्योतिषागान्मही चित्रा रश्मिभिश्चेकिताना ।
प्रबोधन्यती सुविताय देव्यु षा ईयते सुयुजा रथेन ॥३
आ वां वहिष्ठा इह ते वहन्तु रथा अश्वास उषसे व्युष्टौ ।
मे इहि वां मधुपेयाय सोमा अस्मिन्यज्ञे वृषणा मादयेथाम् ॥४
अनायतो अनिबद्धः कथायं न्यङ्ङुत्तानोऽव पद्यते न ।
कया याति स्वधया का ददर्श दिवः
स्कम्भः समृतः पातिनाकम् ॥५।१४

जैसे तेजवंत सूर्य स्वयं प्रकाशित हुआ उषा को प्रकाशवान् करता है, वैसे ही धनैश्वर्य के अधिपति अग्नि महान् सम्पत्तियों से प्रकाशित होने वाली अपनी किरणों को प्रकाशित करते हैं। अश्विद्वय ! तुम गमनशील हो। रथ पर चढ़कर तुम दोनों इस यज्ञ को आकर प्राप्त होओ ।१। प्रकाशवान् सूर्य सब लोकों को प्रकाशित करके किरणों के आश्रय पर चलते हैं। सबके द्रष्टा सूर्य ने अपनी रश्मियों द्वारा आकाश पृथिवी और अंतरिक्ष को पूर्ण किया है ।२। धनों को धारण करने वाली, महती, ज्योतिर्मयी अरुण वर्ण वाली उषा रश्मियों के द्वारा रूप वाली हुई प्रकट होती है। वह उषा जीवमात्र को चैतन्य करती हुई अपने सुशोभित रथ द्वारा कल्याण के निमित्त गमनशील होती है ।२। हे अश्विनीकुमारो ! उषा के उदय होने पर वहन करने की अत्यन्त क्षमता वाले गमनशील घोड़े तुमको इस यज्ञ-स्थान में पहुंचावें। तुम दोनों ही कामनाओं की वर्षा करने वाले हो। यह सोम तुम्हारे निमित्त प्रस्तुत है अतः इस यज्ञ में सोम पीकर पुष्टि को प्राप्त करो ।४। प्रत्यक्ष उपलब्ध सवितादेव को बांधने

में कोई भी समर्थ नहीं है ये नीचे रहें तब भी उनकी हिंसा किया जाना संभव नहीं । वे किस बल से ऊँचे उठते हुए चलते हैं ? वे ही आकाश में स्तम्भ के समान स्वर्ग के आश्रयभूत हैं । इसे कौन देखता है ? अर्थात् इस तत्व का ज्ञाता कोई नहीं है ।५। [१४]

सूक्त १५

(ऋषि–वामदेवः । देवता–अग्निः, सोमक और अश्विनो । छन्द–गायत्री

अग्निर्होता नो अध्वरे वाजी सन्परि णीयते ।
देवो देवेषु यज्ञियः ।।१
परि त्रिविष्टयध्वरं यात्यग्नी रथीरिव । आ देवेषु प्रयो दधत् ।।२
परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद्रत्नानि दाशुषे ।।२
अयं यः सृञ्जये पुरो दववाते समिध्यते । द्यु माँ अमिदत्रम्भनः।।४
अस्य घा वीर ईवतोऽग्नेरोशीत मर्त्यः
तिग्मजम्भस्य मीलहुषः ।।५।१५

यज्ञ का सम्पादन करने वाले देवताओं में यज्ञ के योग्य एवं प्रदीप्तिमान् अग्निदेव को हमारे यज्ञ में तेज चलने वाले घोड़े के समान लाया जाता है ।१। वे अग्निदेव, देवताओं के निमित्त हविरूप अन्न धारण करते हुए नित्य प्रति तीन बार गमनशील रथ के समान चलते हैं ।२। अन्नों की रक्षा करने वाले मेधावी अग्निदेव हविदाता यजमान को सुन्दर धन प्रदान करते हुए हविरन्न को सब और से व्याप्त करते हैं ।३। जो अग्निदेव वायु के सम्पर्क से अधिक प्रकाशित होते हुए शत्रुओं का नाश करने में समर्थ हैं, वह तेजस्वी अग्नि विद्वानों द्वारा प्राप्त होने योग्य हैं । वे शत्रु-विजय के कार्य में सब से आगे प्रदीप्तियुक्त होते हैं ।४। वीर स्तोता तेज वाले शत्रुओं पर अस्त्र शस्त्रादि की वर्षा करने में समर्थ एवं गमनशील अग्नि पर अपना अधिकार बनावें ।५। [१५]

तमर्वन्तं न सानसिमरुषं न दिवः शिशुम् । मर्मृज्यन्तेदिवेदिवे ।।६

बोधद्यन्मा हरिभ्यां कुमारः साहदेव्यः । अच्छा न हूत उदरम् ॥७
उत त्या यजता हरीकुमारात्साहदेव्यात् । प्रयता सद्य आ ददे ॥८
एष वां देवावश्विना कुमारः साहदेव्यः । दीर्घायुरस्तु सोमकः ॥९
तं युवं देवावश्विनाकुमारं साहदेव्यम् । दीर्घायुषंकृणोतन॥ १०।१६

वहनशील अश्व के समान हवि-वाहक,आकाश के पुत्र के समान, सूर्य की तरह प्रदीप्ति वाले तथा समान यजनीय अग्निदेव की यजमान गण बारम्बार सेवा करें ।६। "सहदेव" के पुत्र राजा "सोमक" ने इन दोनों अश्वों को हमको देने का विचार प्रकट किया, तब हम उनके पास जाकर इन दोनों को लेकर चले आये ।७। "सहदेव-पुत्र" राजा "सोमक" के पास से उन परिचर्या योग्य सुन्दर घोड़ों को हमने उसी दिन ले लिया ।८। हे अश्विनी कुमारो ! तुम दोनों उज्ज्वल तेज वाले हो । "सहदेव-पुत्र" राजा सोमक" ने तुम दोनों को तृप्त किया है, "सोमक" सौ वर्ष की आयु प्राप्त करें ।९। हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों उज्ज्वल कान्ति वाले हो । "सहदेव" के पुत्र राजा "सोमक" को तुम दीर्घ आयु प्रदान करो ।१०। (१६)

सूक्त १६

(ऋषि—वामदेवः । देवता—इन्द्रः । छन्द—पंक्तिः त्रिष्टुप्)

आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी द्रवन्त्वस्य हरय उप नः ।
तस्मा इदन्धः सुदक्षमिहाभिपित्वं करते गृणानः ॥१
अव स्य शूराध्वनो नान्तेऽस्मिन्नो अद्य सवने मन्दध्य ।
शंसात्युक्थमुशनेव वेधाश्चिकितुषे असुर्याय मन्म ॥२
कविन निण्यं विदथानि साधन्वृषा यत्सेक विपिपानो अर्चात् ।
दिव इत्था जोजनत्सप्त कारूनह्ना विच्चक्रुर्वयुना गृणन्तः ॥३
स्वर्यं द्वेदि सुदृशीकमर्कैर्महि ज्योती रुरुचुयद्ध वस्तोः ।
अन्धा तमांसि दुधिता विचक्षे नृभ्यश्चकार नृतमो अभिष्टौ ॥४
ववक्ष इन्द्रा अमितमृजीष्यु भेआपप्रौ रोदसी महित्वा ।

अतश्चिस्दत महिमा वि रेच्त्भि यो विश्वा भुवना वभूव ॥५।१७

सोम के स्वामी, सत्य से युक्त इन्द्र हमारे पास आवें। इनके घोड़े हमारे पास आवें। हम यजमान इन्द्र के निमित्त ही अन्न के सार रूप सोम को सिद्ध करेंगे। वे इन्द्र हमारे द्वारा पूजित होकर हमारी कामना को सिद्ध करें ।१। हे इन्द्र! तुम शत्रुओं को डराने वाले हो। दिन के इस मध्य सवन में, जैसे, अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुंच कर अश्वों को विमुक्त किया जाता है, वैसे ही तुम हमको विमुक्त करो, जिससे सवन में हम तुम्हें पुष्ट कर सकें। हे इन्द्र! तुम शत्रुओं का नाश करने वाले एवं सर्वज्ञाता हो। उशना के समान, यजमानगण तुम्हारे निमित्त सुन्दर स्तोत्र को कहते हैं ।२। गूढ़ अर्थों का सम्पादन करने वाले कवियों के समान, कामनाओं की वर्षा करने वाले इन्द्र कार्यों का सम्पादन करते हैं। जब सेवन के योग्य सोम को अधिक परिमाण में पीकर इन्द्र पुष्टि को प्राप्त करते हैं तब आकाश से सप्त रश्मियाँ मनुष्यों के लिए ज्ञानादात्री होती हैं ।३। जब प्रकाश स्वरूप आकाश रश्मियों के द्वारा उत्तम प्रकार से दर्शनीय होता है, तब देवतागण तेज से दमकते हुए, उस स्वर्ग में निवास करते हैं। सबका नेतृत्व करने वाले सवितादेव ने प्रकट होकर मनुष्यों के देखने के लिए गम्भीर अंधेरे का नाश कर डाला ।४। सोमवान् इन्द्र अत्यन्त महिमावान् हो जाते हैं, वे अपनी महिमा से आकाश और पृथिवी दोनों को सम्पन्न करते हैं। इन्द्र ने सब लोकों को व्याप्त किया है क्योंकि वे सब लोकों के महान् हैं ।५। (१७)

विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वानपो रिरेच सखिभिर्निकामैः।
अश्मान चिद्ये बिभिदुर्वचोभिव्रजं गोमन्तमुशिजो विवव्रुः॥६
अपो वृत्रं वव्रिवांस पराहन्प्रावत्ते वज्र पृथिवी सचेताः।
प्रार्णांसि समुद्रियाण्यैनोः पतिर्भवञ्छवसा शूर धृष्णो॥७
अपो यदद्रिं पुरुहूत दर्दराविर्भुवत्सरमा पूर्व्यं ते।
स नो नेता वाजमा दर्षि भूरि गोत्रा रुजन्नङ्गिरोभिर्गृणानः॥८
अच्छा कविंनृमणो गा अभिष्टौ स्वर्षाता मघवन्नाधमानम्।

ऊतिभिस्तमिषणो द्युम्नहूतौ नि मायावान्ब्रह्मा दस्युरर्त ॥९
आ दस्युघ्ना मनसा याह्यस्तं भुवत्ते कुत्सःसख्ये निकामः ।
स्वे योनौ नि षदतंसरूपा वि वां चिकित्सदृतचिद्ध नारी ॥१०।१८

वे इन्द्र मनुष्यों के लिए हितकारक सभी कार्यों को जानते हुए जल वर्षा आदि करते हैं। उन्होंने कामनायुक्त मित्र-भाव वाले मरुद्गण के लिए जल वर्षा की थी। जिन मरुद्गण ने वाणी की ध्वनि से ही पर्वतों को चीर डाला, उन्होंने इन्द्र की कामना करते हुए गौओं से पूर्ण गोष्ठ को खोल दिया।६। हे इन्द्र! तुम्हारा वज्र लोकों की रक्षा करने वाला है। उसने जलों के आवरण रूप मेघ को गतिमान् किया। यह चैतन्य पृथिवी तुमसे पूर्ण हुई है, तुम अत्यन्त वीर एवं वर्षणशील हो। हे इन्द्र। तुम अपनी ही शक्ति से लोकों का पालन करते हुए सामुद्रिक और आकाशस्थ जल को प्रेरित करो।७। हे इन्द्र! तुम बहुतों द्वारा बुलाये गये हो। जब तुमने वर्षा वाले जल को देखकर मेघ को चीरा था, जब तुम्हारे निमित्त 'सरमा'' ने पणियों द्वारा चुराई गई गौओं का रहस्योद्घाटन किया था। तुम अङ्गिराओं द्वारा स्तुत्य होकर हमको अन्न देते और हमारा कल्याण करते हो।८। हे धनेश्वरयुक्त इन्द्र। मनुष्य तुम्हारा आदर करते हैं। धन देने के निमित्त 'कुत्स'' के सामने गये थे। पुकारने पर तुमने शत्रुओं के उपद्रवों से उनको बचाकर आश्रय दिया था। अपनी सुमति से कपटी ऋत्विकों के कार्यों को तुमने जान लिया और 'कुत्स' के धन की इच्छा करने वाले शत्रु को नष्ट कर डाला।९। हे इन्द्र! तुमने शत्रुओं को मारने का निश्चय कर लिया और "कुत्स" के घर में जा पहुंचे। "कुत्स" भी तुम्हारी मित्रता के लिए आतुर था। तब तुम दोनों अपने स्थान पर अवस्थित हुए। सत्य को देखने वाली तुम्हारी पत्नी शची तुम दोनों का एक सा रूप देखकर अत्यन्त संशय में पड़ गई।१०।

१७

यासि कुत्सेन सरथमवस्युस्तोदो वातस्य हर्योरीशानः ।
ऋज्रा वाजं न गध्यं युयूषन्कविर्यदहन्पार्याय भूषात् ॥११
कुत्साय शुष्णमशुषं नि बर्हीः प्रपित्वे अह्नः कुयवं सहस्रा ।

सद्यो दस्युन्प्र मृण कुत्स्येन प्र सूरश्चक्रं वृहतादभीके ॥१२
त्वं पिप्रुं मृगयं शूशुवांसमृजिश्वने वंदथिकाय रन्धीः ।
पञ्चाशत्कृष्णा नि वपः सहस्रात्क न पुरो जनिमा वि दर्दः ॥१३
सूर उपाके तन्व दधानो वि यत्ते चेत्यमृतस्य वर्पः ।
मृगो न हस्तीतविषीमुषाणःसिंहो न भामः आयुधानिबिभ्रत् ॥१४
इन्द्रं कामा वसूयन्तो अग्मन्त्स्वर्मीलहे न सवने चकानाः ।
श्रवस्यवः शशमानास उक्थैरोको न रण्वा सुदृशीव पुष्टिः ॥१५।१६

जब ज्ञानी "कुत्स" ग्रहण करने योग्य अन्न के समान शीघ्रगामी दोनों घोड़ों को अपने रथ में जोड़कर संकटावस्था से छुटकारा पाने में समर्थ हुए तब हे इन्द्र ! तुमने उसके रथ पर उसकी रक्षा करने के लिए एक साथ गमन किया । तुम शत्रुओं का नाश करने वाले वायु के समान गति वाले अश्वों के स्वामी हो ।११। हे इन्द्र ! तुमने कुत्स के कारण शुष्ण को मार डाला । दिन के आरम्भ में तुमने कयव नामक दैत्य का वध किया । उसी समय तुमने अपने वज्र द्वारा बहुत से शत्रुओं का संहार किया । युद्ध में तुमने सूर्य के चक्र को भी तोड़ दिया ।१२। हे इन्द्र ! तुमने "विप्रु" और "प्रवृद्ध मृगय" नामक असुरों का वध किया । तुमने "विदीथ" के पुत्र "ऋजिस्वा" को बन्दी बनाया और पचास सहस्र वाले रङ्ग वाले दैत्यों को मार डाला । जैसे बुढ़ापा रूप का नाश कर देता है, वैसे ही तुमने शम्बर के नगरों का नाश कर डाला ।१३। हे इन्द्र ! तुम अविनाशी हो । तुम जब सूर्य के समीप प्रकट होते हो तब तुम्हारा रूप अत्यन्त दीप्तिमान होता है । सूर्य के सामने सभी फीके पड़ जाते हैं,परन्तु इन्द्र का रूप अधिक तेजोमय होता जाता है । हे इन्द्र ! तुम मृगया के समान शत्रु को जलाते और शस्त्र धारण करते हो तथा उस समय सिंह के समान विकराल हो जाते हो ।८४। दैत्यों द्वारा उत्पन्न भय को निवारण करने के निमित्त इन्द्र की आश्रय-कामना वालेएवं धन की अभिलाषा करने वाले युद्ध के समान यज्ञ में इन्द्र से अन्न मांगते हैं । वे स्तोत्रों द्वारा इन्द्र की स्तुति करते हुए उनके समीप जाते है । उस समय वे

इन्द्र उनके लिए आश्रयस्थान के समान रक्षक और रमणीय एवं दर्शनीय धन के समान ऐश्वर्य सम्पन्न होते हैं ॥१५॥

(१६)

तमिद्व इन्द्रं सुहवं हुवेश्न यस्ता चकार नर्या पुणिरू ।
यो मावते जरित्रे गध्यं चिन्मक्षू वाजं भरपि स्पार्हराधाः ॥१६
तिग्मा यदन्तरशनिः पताति कस्मिञ्चिच्छूर मुहुके जनानाम् ।
घोरा यदर्यं स्मृतिर्भवात्यध स्मा नस्तन्वो वाधि गोपाः ॥१७
भुवोऽविता वामदेवस्य धीनां भुवः सखावृको वाजसातौ ।
त्वामनु प्रमतिमा जगन्गोरुशसा जंरित्रे विश्वध स्याः ॥१८
एभिर्नृंभिरिन्द्र त्वायुभिष्ट्वा मघवद्भिर्मघवन्विश्व आजौ ।
द्यावो न द्युम्नैरभि सन्तो अर्यः क्षपो मदे शरदश्व पूर्वीः ॥१९
एवेदिन्द्राय वृषभाय वृष्णे ब्रह्माकर्म भृगवो न रथम् ।
नू चिद्यथा नः सख्या वियोषदसन्न उग्रोऽवित तनूपाः ॥२०
नू ष्टुत इन्द्र नु गृणान इषं जरित्रे न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्यामरथ्यः सदासाः ॥२१।२०

इन्द्र ने मनुष्यों के कल्याण के निमित्त अनेकों प्रसिद्ध कार्य किये हैं। वे इन्द्र धनैश्वर्य से युक्त एवं कामना के योग्य हैं। वे हमारे समान साधक के ग्रहण करने योग्य को शीघ्र ले जाते है। हे मनुष्यो! तुम्हारे निमित्त हम साधकगण उन इन्द्र का सुन्दर आह्वान करते हैं ॥१६॥ हे इन्द्र! तुम वीर हो। मनुष्यों द्वारा होने वाले युद्ध में यदि हमारे बीच तीक्ष्ण वज्रपात हो अथवा शत्रुओं से हमारा अत्यन्त घोर संग्राम हो तब तुम हमारे शरीरों को अपने नियन्त्रण में रखते हुए हर प्रकार से हमारी रक्षा करना ॥१७॥ हे इन्द्र! तुम वामदेव द्वारा किये जाने वाले यज्ञ-कार्य की रक्षा करो। तुम किसी के द्वारा हिंसित नहीं किये जा सकते। तुम संग्राम में हमारे प्रति सुहृदयता का व्यवहार करो। तुम अत्यन्त सुन्दर मति वाले हो। तुम हमारे समीप आओ। हे इन्द्र! तुम सदा स्तोताओं की प्रशंसा करने वाले बनो ॥ १८ ॥ हे इन्द्र! तुम ऐश्वर्य सम्पन्न हो। हम अपने शत्रुओं पर विजय

प्राप्त करने के लिए सभी संग्रामों में तुम्हारी कामना करते हैं। जैसे धनवान् अपने धन से दमकता है, वसे हम भी धन एवं पुत्र-पौत्रादि कुटुम्वियों के साथ दीप्तियुक्त हों। हम अपने शत्रुओं को हराकर रातों और वर्षों में प्रसन्नता से तुम्हारा स्तवन करते रहें ॥ १९ ॥ हम वही कार्य करेंगे जिससे इन्द्र के साथ हुई हमरी मैत्री का विच्छेद न हो और शरीरों की रक्षा करने वाले तेजस्वी इन्द्र हमारा पालन करते रहें। अनुभवी रथ निर्माता जैसे सुन्दर रथ बनाता है, वैसे ही हम भीं कामनाओं की वर्षा करने वाले, नित्य युवा इन्द्र के निमित्त सुन्दर स्तोत्रों को रचते हैं ॥ २० ॥ हे इन्द्र ! तुम पुरातन काल में ऋषियों द्वारा पूजित होकर और अब हमारे द्वारा नमस्कृत होकर, जल द्वारा नदी को पूर्ण करने के समान स्तुति करने वालों के अन्न-धन की वृद्धि करते हो। हम तुम्हारे निमित्त नवीन स्तोत्र बनाते हैं, जिससे हम रथादि से युक्त हुए स्तुति वचनों द्वारा तुम्हें सदा प्रसन्न करते रहें ॥२१॥ (२०

सूक्त १७

ऋषि—वामदेवः । देवता—इन्द्रः । छन्द—पंक्तिः,त्रिष्टुप्)

त्वं महाँ तुभ्यं ह क्षा अनु क्षनं मंहना मन्थत द्यौः ।
त्वं बृत्रं शवसा जघन्वान्त्सृजः सिन्धूँ रहिना जग्रसानान् ॥१
तव त्विषो जनिमन्रेजत द्यौ रेजद्भूमिर्भियसा स्वस्य मन्योः ।
ऋघायन्त सुभ्वः पर्वतास आर्दन्धन्वानि सरयन्त आपः ॥२
भिनद्गिरिं शवसा वज्रमिष्णन्नाविष्कृण्वानः सहसान ओजः ।
वधीद्वृत्रं वज्रेण मन्दसानः सरन्नापो जवसा हतबृष्णीः ॥३
सुवीरस्ते जनिता मन्यत द्योरिन्द्रस्य कर्ता स्वपस्पमो भूत् ।
य ईं जजान स्वर्यं सुवज्रमनपच्युतं सदमा न भूम ॥४
य एक इच्च्यावयति प्र भूमा राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः ।
सत्यमेनमनु विश्वेमदान्तिरातिं देवस्य गृणतो मघोनः ॥५॥२१

हे इन्द्र ! तुम महान् हो । महती पृथिवी ने तुम्हारी शक्ति का समर्थन किया और आकाश ने तुम्हारे बल का अनुमोदन किया । तुमने अपने बल से लोकों को ढक लेने वाले वृत्रासुर को मारा । वृत्र ने जिन नदियों को वशी-भूत किया, तुमने उनको मुक्त कर दिया ।१। हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त तेजस्वी हो । तुम्हारे प्राकट्य पर आकाश तुम्हारे क्रोध के भय से कांप गया । उस समय पृथिवी भी कांप गई और मेघ समूह को तुमने बाँध लिया । तुम्हारी प्रेरणा से प्राणियों की प्यास मिटाने के निमित्त उन मेघों ने मरुभूमि में जल वर्षा की ।२। शत्रुओं को हराने वाले इन्द्र ने अपने तेज के प्रकाश और शक्ति द्वारा वज्र को चलाकर पर्वतों को चीर डाला । सोम पीकर पुष्ट होने के पश्चात् इन्द्र ने अपने वज्र से वृत्र को मार दिया । उस वृत्र के नष्ट होने पर जल निरावरण हो वेग से गिरने लगा ।३। तुम अत्यन्त पूजा के योग्य, वज्र से युक्त, दिव्य स्थान के अधिपति एवं अविनाशी हो । तुम अत्यन्त महिमा वाले हो, जिन तेजस्वी प्रजापति ने तुम्हें प्रकट किया था, वे अपने को सुन्दर पुत्र वाले मानते थे । इन्द्र के जनक प्रजापति का कर्म अत्यन्त श्रेष्ठ और प्रशंसित था ।४। मनुष्यमात्र के स्वामी, बहुतों द्वारा बुलाये गये, देवताओं में मुख्य इन्द्र शत्रु द्वारा उत्पन्न किये गये भय को मिटाते हैं । वे ऐश्वर्यवान् प्रदीप्तिमान् हैं । उन सखा रूप इन्द्र के लिए सभी यजमान स्तोत्रों द्वारा नमस्कार करते हैं ।५। [२१]

सत्रा सोमा अभनन्नस्य विश्वे सत्रा मदासो बृहतो मदिष्ठाः ।
सत्राभवो वसुपतिर्वसूनां दत्रे विश्वा अधिथा इन्द्र कृष्टीः ॥६
त्वमध प्रथमं जायमानोऽमे विश्वा अधिथा इन्द्र कृष्टीः ।
त्वं प्रति प्रवत आशयानमहिं वज्रेण मघवन्वि वृश्चः ॥७
सत्राहणं दाधृषि तुम्रमिन्द्रं महामपारं वृषभ सुवज्रम् ।
हन्ता यो वृत्रं सनितोत वाजं दाता मघानि मघवा सुराधाः ॥८
अयं वृतश्चातयते समीचीर्यं आजिषु मघवा शृण्व एकः ।
अयं वाजं भरति यं सनोत्यस्य प्रियासः सख्ये स्याम ॥९

अयं शृण्वे अध जयन्नुत घ्नन्नयमुत प्र कृणुते युधा गाः ।
यदा सत्यं कृणते मन्युमिन्द्रो विश्वं दृलह भयत एजदस्मात्॥१०।२२

सभी सोम इन्द्र के निमित्त उत्पन्न होते हैं। यह सोम शक्ति उत्पन्न करने वाले हैं और उन महान् इन्द्र को प्रसन्नता देते हैं। हे इन्द्र! तुम ऐश्वर्यवान् सभी प्रजाओं का पालन पोषण करते हो।६। हे धनैश्वर्य सम्पन्न इन्द्र! तुमने उत्पन्न होते ही वृत्र के भय से बचाने के लिए प्रजाओं का रक्षण किया। तुमने सब प्रश्नों को जलयुक्त कर देने के उद्देश्य से जल को रोकने वाले वृत्र को छिन्न-भिन्न कर डाला।७। बहुत से शत्रुओं को मारने वाले, विकराल शत्रुओं को प्रेरणा देने वाले, महान् एवं अविनाशी इन्द्र का हम स्तवन करते हैं, वे इन्द्र अभीष्टों की वर्षा करने वाले और सुन्दर वज्र वाले हैं। उन्होंते वृत्र का संहार किया था। वे अन्न प्रदान करने वाले उज्ज्वल धनों के अधिपति हैं। सदा धन प्रदान करते रहते हैं। उन इन्द्र का हम स्तवन करते हैं।८। जो इन्द्र अत्यन्त धनवान् एवं युद्ध में अद्वितीय वीर सुने गये हैं, वे सुसंगत और विशाल शत्रु-सेना का संहार करने में भी समर्थ हैं। वे जिस अन्न-धन को धारण करते हैं, वही यजमान को प्रदान करते हैं। इन इन्द्र के साथ हमारा सख्य भाव अटूट रहे।९। वे इन्द्र शत्रुओं के पशुओं को छीन लेते हैं। जब वे क्रोधित होते हैं तब यह स्थावर जगम रूप अखिल विश्व इन्द्र के भय से नितांत भीत हो उठता है।१०। [२२

समिन्द्रो गा अजयत्सं हिरण्या समश्विया मघवा यो ह पूर्वीः ।
एभिर्नृभिर्नृतमो अस्य शाकै रायो विभक्ता सम्भरश्च वस्वः ॥११
कियत्स्विदिन्द्रो अध्येति मातुः कियत्पितुर्जनितुर्यो जजान ।
यो अस्य शुष्मं मुहुकैरियर्ति वातो न जूत स्तनयद्भिरभ्रैः ॥१२
क्षियन्तं त्वमक्षियन्तं कृणोतीयर्ति रेणुं मघवा समोहम् ।
विभञ्जनुरशनिमाँ इव द्यौरुत स्तोतारं मघवा वसौ धात् ॥१३
अयं चक्रमिषणत्सूर्यस्य न्येतश रोरममत्समृमाणम् ।
अयं कृष्ण ईं जुहुराणो जिघर्ति त्वचो बुध्ने रजसो अस्य योनौ॥१४

असिक्नयां यजमानो न होता ॥१५।२३

जिन ऐश्वर्यशाली इन्द्र ने दस्यों पर विजय प्राप्त की थी तथा शत्रुओं के महान् धन पर अधिकार किया था, जिन इन्द्र ने शत्रुओं को जीतकर उनके घोड़ों को छीन लिया था, वे सर्व समर्थ इन्द्र सर्व में अग्रणी और स्तुति करने वालों से पूजित होकर पशुओं को बाँटने और धनादि की रक्षा करने वाले हों ।११। इन्द्र ने अपने माता पिता से कितना बल प्राप्त किया ? जिन इन्द्र ने अपने पिता प्रजापति के पास से इस संसार को उत्पन्न कर संसार को शक्ति दी थी, उन इन्द्र का गर्जना करने वाले मेघ से प्रेरित वायु के समान आह्वान किया जाता है ।१२। धनवान् हैं, वे निर्धन मनुष्य को धन से पूर्ण करते हैं। अन्तरिक्ष के समान दृढ़ वज्रयुक्त, शत्रु-संहारक इन्द्र सब पापों को मिटाते हैं और स्तुति करने वाले को धन देते है ।१३। इन्द्र ने सूर्य के शस्त्र को प्रेरणा दी तथा संग्रामोद्यत एतश को निवारण किया, टेढ़ी गति और काले रङ्ग वाले मेघ ने तेज के आश्रयरूप और जलपूर्ण अन्तरिक्ष में वास करने वाले इन्द्र का अभिषेक किया था ।१४। जैसे यजमान अँधेरी रात में भी इन्द्र का आह्वान करता है, वैसे ही इन्द्र प्रजाओं को रात्रि में भी ऐश्वर्यादि प्रदान करते हैं ।१५। [२३]

गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो बृषणं वाजयन्तः ।
जनीयन्तो जनिदामक्षितोतिमा च्याक्यामोऽवते न कोशम् ॥१६
त्राता नो बोधि ददृशान आपिरभिख्याता मर्डिता सोम्यानाम् ।
सखा पिता पितृतमः पितृणां कर्तेमु लोकमुशते वयोधाः ॥१७
सखीयतामविता वोधि सखा गृणान इन्द्र स्तुवते वयोधाः ।
वयं ह्या ते चकृमा सबाधः आभिः शमीभिर्महयन्त इन्द्र ॥१८
स्तुत इन्द्रो मघवा युद्ध वृत्रा भरीण्येको अप्रीकीनि हन्ति ।
अस्य प्रियो जरिता यस्य शर्मन्नकिर्देवा वारयन्ते न मर्ताः । १९
एवा न इन्द्रो मघवा विरप्शी करत्सत्या चर्षणी धृदनर्वा ॥
त्वं राजा जनुषां धेह्यस्मे अधि श्रवो महिनं यज्जरित्रे ॥२०

नूष्टुत इन्द्र न गृधान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्य धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥२१।२४

हम बुद्धिमान् स्तोता गौ अश्व, अन्न और सुन्दर सन्तान उत्पन्न करने वाली स्त्री की अभिलाषा करते हैं। हम अभीष्ट पूर्ण करने वाले, सन्तानदात्री भार्या के देने वाले तथा सदा अक्षय रक्षा करने वाले इन्द्र के मित्र भाव को उसी प्रकार चाहते हैं,जिस प्रकार कूप से जल निकालने की इच्छा करने वाले व्यक्ति जल पात्र को प्राप्त करना चाहते हैं।१६। हे इन्द्र! तुम हमारे रक्षक, देखने वाले, वन्धु, उपदेशकर्त्ता एवं शोभन गुणों से युक्त हो तुम हमारे पूर्व पुरुषों के भी पिता तुल्य पूज्य, सन्तानों को सुख देने वाले मित्र, ज्ञान और बल के देने वाले हो। तुम उत्तम लोकों की अभिलाषा करने वाले को श्रेष्ठ पद देते हो।७। हे इन्द्र! हम तुम्हारा सख्य भाव चाहते हैं। तुम हमारे पालक बनो। तुम्हारी पूजा की जाती है तुम हमारे मित्र बनो। स्तुति करने वाले यजमानों को अन्न दो। हे इन्द्र! हमारे श्रेष्ठ कार्यों में विघ्न उपस्थित होने पर हम तुम्हें ही याद करते हैं। तुम हमारे आह्वान पर ध्यान देते हुए हमको जानो।१७। जब हम उन इन्द्र की स्तुति करते हैं तब वे अकेले ही बहुत से दैत्यों को नष्ट कर डालते हैं। उनको विद्वान् स्तोता अत्यन्त प्रिय हैं। उनके शरण में रहने वाले को देवता या मनुष्य कोई भी नहीं रोक सकता।६। वे इन्द्र अत्यन्त धनवान्, विविध शब्द वाले, सब प्रजाओं के रक्षक तथा शत्रुओं से शून्य हैं। वे हमारी इस प्रकार की स्तुति को सुनकर हमारी सत्य पूर्ण एवं श्रेष्ठ अभिलाषाओं को पूर्ण करें। हे इन्द्र! तुम सभी उत्पन्न प्राणियों के स्वामी हो। जिस महिमा वाले सुन्दर यश को स्तुति करने वाला प्राप्त करता है, वह अत्यन्त यश हमको प्रदान करो।२०। हे इन्द्र! तुम पूर्व काल में हुए ऋषियों के द्वारा पूजित हुए, हमारे द्वारा भी स्तुत्य होकर, जल द्वारा नदी को पूर्ण करने के समान, अन्न को बढ़ाते हो। हम तुम्हारे निमित्त नवीन स्तोत्र रचते हैं, जिससे हम रथयुक्त हुए सदा तुम्हारी स्तुति एवं पूजा करते रहें।२१।

सूक्त १८

(ऋषि—वामदेवः । देवता—इन्द्रादितोः । छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप)

अयं पन्था अनुवित्तः पुराणो यतो देवा उदजान्त विश्वे ।
अयश्चिदा जनिषीष्ट प्रवृद्धो मा मातरममुया पत्तवे कः ॥१
नाहमतो निरया दगहैतात्तिरश्चता पार्श्वान्निगमाणि ।
बहूनि मे अकृता कर्त्वानि युध्यं त्वेन सं त्वेन पृच्छै ॥२
परायतीं मातरमन्वचष्ट न नानु गान्यनु नू गमानि ।
त्वष्टुर्गृहे अपिबत्सोममिन्द्रः शतधन्यं चम्वोः सुतस्य ॥३
किं स ऋधक् कृणवद्यं सहस्रं मासो जभार शरदश्च पूर्वीः ।
नही न्वस्य प्रतिमानमस्त्यन्तर्जातेषूत ये जनिष्वाः ॥४
अवद्यमिव मन्यमाना गुहाकरिन्द्रं माता वीर्यणा न्यृष्टम् ।
अथोदस्थात्स्वयमत्कं वसान आ रोदसी अपृणाज्जायमानः ॥५।२५

यह मार्ग अनादि काल से चलता आ रहा है, जिसके द्वारा विभिन्न भोगों और एक-दूसरे को चाहने वाले स्त्री पुरुष, ज्ञानीजन आदि उत्पन्न होते हुए प्रबुद्ध होते हैं। उच्चपद वाले समर्थ व्यक्ति भी इसी परम्परागत मार्ग द्वारा ही उत्पन्न होते हैं। हे मनुष्य ! अपनी जनयित्री माता को अपमानित करने की चेष्टा न कर ।१। हम पूर्वोक्त योनि-मार्ग से बच नहीं सकते टेढ़े मार्ग से, पशु-पक्षी के रूप से जन्म लेकर भी जीवन बड़े कष्ट से व्यतीत होता है। मैं चाहता हूं कि, इस फन्दे से निकल जाऊं। मुझे बहुत से कर्म न करने पड़ें। परस्पर का विवाद सब झमेला मात्र है। हमको संसार-मार्ग के किनारे लगने का ही यत्न करना चाहिये ।२। जैसे अपनी माता के मरने पर कोई मनुष्य मोहवश कहता है कि मैं भी इसके पीछे ही चला जाऊं, अथवा न जाऊं। कालोपरांत वह ज्ञान, धैर्य आदि से शांत होकर पिता के घर में पुत्र बन कर रहता हुआ जीवन का उपभोग करता है। उसी प्रकार यह जीवात्मा विवेकी होकर त्वष्टा के घर सोम पान करता है।३। अदिति ने उस बलशाली इन्द्र को मासों और वर्षों तक धारण किया था। उस महान्

इन्द्र ने अनेक विशिष्ट कार्य किये । उनकी समानता उत्पन्न हुए अथवा आगे उत्पन्न होने वालों में से कोई नहीं कर सकता ।४। अदिति ने उन इन्द्र को गति देने में समर्थ मानते हुए अदृश्य रूप से धारण किया और फिर वह इन्द्र अपने ही सामर्थ्य से उत्पन्न तेज को धारण करते हुए सर्वोच्च बने आकाश-पृथिवी दोनों को परिपूर्ण किया ।५।

एता अर्ष॑न्त्यलाभवन्तीॠ॑तावरीरिव सङ्क्रोशमानाः ।
एता वि पृच्छि किमिदं भनन्ति कमापो अद्रिं परिधिं रुजन्ति ॥६
किमु ष्विदस्मै निविदो भतन्तेन्द्रस्यावद्यं दिधिषात आप ।
ममैतान्पुत्रो महता वधेन वृत्रं जघन्वाँ असृजद्धि सिन्धून् ॥७
ममच्चन त्वा युवतिः परास ममच्चन त्वा कुषवा जगार ।
ममच्चिदापः शिशवे ममृड्यु ममच्चिदिन्द्रः सहसोदतिष्ठत् ॥८
ममच्चन ते मघवन्व्यंसो निविविध्वाँ आप हनू जघान ।
अधा निविद्ध उत्तरो बभूवाञ्छिरो दासस्य स पिणग्वधेन ॥९
गृष्टिः ससूव स्थाविरं तवाभ्गामनाधृष्यं वृषभं तुम्रमिन्द्रम् ।
अरीलह् वत्स चरथाय माता स्वयं गातुं तन्व इच्छमानम् ॥१०
उत माता महिषमन्ववेनदमी त्वा जहति पुत्र देवाः ।
अथाब्रवीद्वृत्रमिन्द्रो हनिष्यन्त्सखे विष्णो वि क्रमस्व ॥११
कस्ते मातर विधवामचक्रच्छयुं कस्त्वामजिघांसच्चरन्तम् ।
कस्ते देवो अधि मार्डीक आसोद्यत्प्राक्षिणाः पितरं पादगृह्य ॥१२
अंवर्त्या शुत आन्त्राणि पेचे न देवेषु विवदे मर्डितारम् ।
अपश्य जायममहीयमान मघा मे श्येनो मध्वा जभार ॥१३॥२६

अव्यक्त ध्वनि करती हुई जल से पूर्ण नदियाँ इन्द्र के महत्त्व को प्रकट करती हुई बहती हैं । हे विज्ञ! यह नदियाँ क्या कहती हैं, यह इनसे पूछो। क्या यह इन्द्र का यश-गान करती हैं? इन्द्र ने ही जल को रोकने वाले मेघ को चीर कर जल वर्षा की थी ।६। वृत्र के नष्ट करने पर इन्द्र को ब्रह्महत्या का जो पाप लगा, उस सम्बन्ध में वेदवाणी क्या कहती है ? इन्द्र के उस पाप को जल ने फेन के रूप में धारण किया । इन्द्र ने अपने

महान् वज्र द्वारा वृत्र को विदीर्ण कर इन नदियों 'को प्रवाहित किया ।७। हे इन्द्र ! अत्यन्त हर्ष वाली युवती अदिति ने ममतामय होकर तुम्हें जन्म दिया। "कुषवा' नाम्नी राक्षसी ने तुम्हें अपना ग्रास बनाने की चेष्टा की। तुमको; उत्पन्न होते ही जलों ने सुख दिया। तुम अपनी सामर्थ्य से सूतिका गृह में ही राक्षसी का वध करने को उद्यत हुए ।८। हे ऐश्वर्य के स्वामी इन्द्र ! मदयुक्त होकर "व्यंस"नामक दत्य ने तुम्हारी ठोड़ी के अर्द्ध भाग को आघात पहुंचाया तब तुमने बल से "व्यंस" के सिर को वज्र से अच्छी प्रकार कुचल डाला ।९। जैसे गौ बलवान् बछड़े को उत्पन्न करती है, वैसे ही इन्द्र की माता अदिति अपनी इच्छा पर चलने वाले, सर्वशक्ति सम्पन्न सर्वविजेता इन्द्र को जन्म देती है। वह इन्द्र सबके प्रेरक, अविनाशी, सर्वव्याप्त, अभीष्टों की वर्षा करने वाले एवं कर्मों का फल देने में समर्थ हैं ।१०। माता अदिति महान् ऐश्वर्य वाले तुम इन्द्र की कामना करती हुई कहती है कि "हे पुत्र इन्द्र ! यह सब विजयाभिलाषी वीर तुम्हें प्राप्त होते हैं।" तब इन्द्र ने कहा—हे विष्णो ! तुम वृत्र को मारने की इच्छा करते हुए अत्यन्त पराक्रमी बनो ।११। हे इन्द्र ! तुम्हारा कौन-सा शत्रु पैरों को पकड़ कर तुम्हारे पिता की हत्या करके तुम्हारी माता को विधवा बना सकता है ? तुमको सोते या चलते में कौन मार सकता हैं ? तुम्हारे सिवाय ऐसा कौन देवता है जो उच्च पद पा सकता है ? ।१२। हमने दरिद्रतावश कुत्ते की अन्तड़ियों को भी पकाया तब हमारे लिए देवताओं में इन्द्र के सिवाय और कोई भी सुख देने वाला नहीं हुआ। जब हमने अपनी भार्या को असम्मानित होते हुए देखा, तब इन्द्र ने ही हमारी रक्षा की और मधुर रस प्रदान किया ।१३। [२६]

सूक्त १९

(ऋषि—वामदेव; । देवता—इन्द्रः । छन्द–त्रिष्टुप् पंक्तिः)

एवा त्वामिद्रः वज्रिन्नत्र विश्वे देवासः सुहवास ऊमाः ।

महामुभे रोदसी बृद्धमृष्व निरेकमिद्वृणते वृत्रहत्ये ॥१
अवासृजन्त जिव्रयो न देवा भुवः सम्रालिन्द सत्ययोनिः ।
अहन्नहिं परिशयानमर्णः प्र वर्तनोररदो विश्वधेनाः ॥२
अतृप्णुवन्तं वियतमबुध्यमबुध्य सुषुपाणमिन्द्र ।
सप्त प्रति प्रवत आशयानमहिं वज्रेण वि रिणा अपर्वन् ॥३
अक्षोदयच्छवसा क्षाम बुध्नं वातस्तवषीभिरिन्द्रः ।
दृलहान्यौस्नादुशमान ओजोऽवाभिनत्ककुभः पर्वतानाम् ॥४
अभि प्र दद्रर्जनयो न गर्भं रथाइव प्र ययुः साकमद्रयः ।
अतर्पयो विसृत उब्ज ऊर्मीन्त्व वृताँ अरिणा इन्द्र सिन्धून् ॥५ (१)

हे वज्रिन ! इस यज्ञ में सुन्दर आह्वान वाले तथा रक्षा सामर्थ्य वाले सभी देवता और आकाश पृथिवी वृत्र नाश के निमित्त केवल तुमको ही भजते हैं। तुम स्तुति योग्य एवं गुणों के उत्कर्ष से बढ़े हुए तथा दर्शनीय हो ।१। हे इन्द्र ! जैसे वृद्ध पिता अपने पुत्र को प्रेरणा देता है, वैसे ही देवतागण तुम्हें राक्षसों का संहार करने को प्रेरणा देते हैं। तुम सत्य के विकसित रूप हो। तुम समस्त भुवनों के स्वामी हो। जल को लक्ष्य कर सोते हुए वृत्र का तुमने संहार किया। सब को तृप्त करने वाली नदियों को तुमने बनाया था ।२। हे इन्द्र ! तुमने अतृप्त इच्छा वाले, अज्ञानी, निर्बल बुरे विचार वाले, सुप्त एवं शान्त जल ढक लेने वाले सोते हुए वृत्र का वज्र द्वारा वध किया ।३। वायु अपने बल से जैसे जल को क्षुब्ध करती है वैसे ही परम ऐश्वर्य से युक्त इन्द्र अपने बल से, आकाश को सूक्ष्म तेज से परिपूर्ण कर जल को छिन्न-भिन्न करते हैं। वे बल की कामना करने वाले इन्द्र मेघों और पर्वतों को तोड़ डालते हैं ।४। हे इन्द्र ! जैसे माताएं पुत्र के पास जाती हैं वैसे ही मरुत तुम्हारे पास गये थे। वैसे ही वृत्र वध के निमित्त तुम्हारे निकट रथ पहुंचा था। तुमने नदियों को जल से परिपूर्ण कर डाला। मेघ को विदीर्ण कर वृत्र द्वारा रोके हुए जल को गिरा दिया ।५। [१]

त्वं महीमवनिं विश्वधेनां तुर्वीतये वय्याय क्षरन्तीम् ।

अरमयो नमसैजदर्णः सुतरणाँ अकृणोरिन्द्र सिन्धून् ॥६
प्राग्रुवो नभन्वो न वक्वा ध्वस्रा अपिन्वद्यवतीर्ऋतज्ञाः ।
धन्वान्यज्राँ अपृणक्तृषाणां अधोगिन्द्रः स्तर्यो दंसुपत्नीः ॥७
पूर्वीरुषसः शरदश्च गूर्ता वृत्रं जघन्वाँ असृजद्वि सिन्धून् ।
परिष्ठिता अतृणद्बद्बधानाः सीरा इन्द्रः स्रवितवे पृथिव्या ॥८
वम्रीभिः पुत्रमग्रुवो अदानं निवेशनाद्धरिव आ जभर्थ ।
व्यन्धो अख्यदहिमाददानो निर्भुंदुःखच्छित्समरन्त पर्व ॥९
प्र ते पूर्वाणि करणानि विप्राविद्वाँ आह विदुषे करासि ।
यथायथा वृष्ण्यनि स्वगूर्ताऽपांसि राजन्नर्याविवेषीः ॥१०
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पापेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११॥२

हे इन्द्र ! तुमने सबको स्नेह करने वाली "तुवीत और राजा "वय्य" को इच्छित फलदात्री पृथिवी को अन्न से भर दिया और जल से परिपूर्ण किया था। हे इन्द्र ! तुमने जल को सुविधापूर्वक तैरने के योग्य कर दिया ।६। शत्रु का नाश करने वाली सेना के समान इन्द्र ने किनारे को तोड़ने वाली जल से पूर्ण, अन्नोत्पादिनी नदियों को परिपूर्ण किया उन्होंने जल-विहीन शुष्क देशों को वर्षा द्वारा पूर्ण किया और प्यासे पथिकों को शान्ति दी। जिन गौओं पर राक्षसों ने अधिकार कर लिया था, उन प्रसव से निवृत्त हुई गौओं को इन्द्र ने दुहा था ।७। तमिस्रा ढकी हुई अनेक उषाओं और वर्षों को इन्द्र ने वृत्र का बध करके विमुक्त किया और वृत्र द्वारा रोकी हुई नदियों को पृथिवी पर के चारों ओर ठहरी हुई और वृत्र द्वारा रोकी हुई नदियों को पृथिवी पर प्रवाहित होने के लिए छोड़ा ।८। हे श्रेष्ठ घोड़ों के स्वामी इन्द्र ! "उपजिह्वका" द्वारा भक्षण किये "अग्रू-पुत्र को तुमने दीमक के बिल से निकाला। निकालते समय वह 'अग्रू-पुत्र" अन्धा था तो भी उसने सर्प को भले प्रकार देखा। उपजिह्वका द्वारा अलग किये गये अङ्गों को इन्द्र ने जोड़ दिया था ।९। हे बुद्धिमान् इन्द्र ! तुम सब कुछ

जानने वाले हो। वर्षा के योग्य और मनुष्यों को सम्पन्न करने वाले वर्षा-सम्बन्धी कर्मों को जिस प्रकार तुमने किया था, उन सब कर्मों का वामदेव ने उल्लेख किया है ।१०। हे इन्द्र ! तुम पुरातन ऋषियों द्वारा पूजित हुए और हमारे द्वारा भी स्तुत हुए हो। तुम जल द्वारा नदी को पूर्ण करने के समान स्तुति करने वालों के अन्न को बढ़ाते हो। हे अश्ववान् इन्द्र ! हम तुम्हारे निमित्त नवीन स्तोत्र को करते हैं, जिनके द्वारा हम रथवान् हुए तुम्हारी स्तुति और परिचर्या करते रहें ।११। [२]

सूक्त २०

(ऋषि वामदेवः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

आ न इन्द्रो दूरादा न आसादभिष्टिकृदवसे यासदुग्रः ।
ओजिष्टेभिर्नृपतिर्वज्रबाहुः सङ्गे समत्सु तुर्वणिः पृतन्यून् ॥१
आ न इन्द्रो हरिभिर्यात्वच्छार्वाचीनोऽवसे राधसे च ।
तिष्ठति वज्री मघवा विरप्शीमं यज्ञमनु नो वाजसातौ ॥२
इमं यज्ञं त्वमस्माकमिन्द्र पुरो दधत्सनिष्यसि क्रतुं नः ।
श्वघ्नीव वज्रिन्त्सनये धनानां त्वया वयमर्य आजिं जयेम ॥३
उशन्नु षु णः सुमना उपाके सोमस्य नु सुषुतस्य स्वधावः ।
पा इन्द्र प्रतिभृतस्य मध्वः समन्धसा ममदः पृष्ठ्येन ॥४
वि यो ररप्श ऋषिभिर्नवेभिर्वृक्षो न पक्वः सृण्यो न जेता ।
मर्यो न योषामभिमन्यमानोऽच्छा विवक्मि पुरुहूतमिन्द्रम् ॥५।३

हे इन्द्र ! तुम कामनाओं के देने वाले और तेज से युक्त हो। तुम हम को शरण देने के निमित्त दूर हो तो भी आओ। पास हो तो भी आकर हमारी रक्षा करो। तुम युद्धस्थल में शत्रुओं का संहार करते हो। तुम वज्र धारण करने वाले हो तुम मनुष्यों का पालन करते और तेजस्वी मरुद्गण से युक्त हो ।१। हमारे सामने आने वाले इन्द्र शरण देने और धन देने के लिए अपने घोड़ों के सहित हमारे पास पधारें। वे इन्द्र वज्रधारी धनैश्वर्य से युक्त और महान् हैं, संग्राम का अवसर होने पर वे हमारे कार्यों में सहयोगी

हों ।२। हे इन्द्र ! हमारे साथ मैत्रीभाव रखते हुए हमारे द्वारा किये जाते हुए इस यज्ञ को परिपूर्ण करो । हे वज्रिन् ! हम तुम्हारी स्तुति करते हैं । जैसे शिकारी मृगों का शिकार करता है, वैसे हम तुम्हारे बल से धन प्राप्त करने के लिए संग्राम में विजेता हों ।३। हे इन्द्र ! तुम अन्नों के स्वामी हो । तुम हर्षयुक्त मन से हमारे पास आओ तथा हमको चाहते हुए उत्तम प्रकार से सिद्ध किये गये मदकारी सोम-रस को पीओ । दिन के मध्य सवन में उज्ज्वल स्तोत्र के साथ हर्षप्रदायक सोम का पान करो ।४। जो इन्द्र पके फल वाले वृक्ष के समान अनेक प्रकार से पूजित होते हैं, कें समान वीर हैं जो नवीन ऋषियों द्वारा अनेक प्रकार से पूजित होते हैं, उन इन्द्र के निमित्त हम प्रशंसायुक्त स्तोत्र उच्चारित करते हैं ।५। [५]

गिरिर्नं यः स्वतवाँ ऋष्व इन्द्रः सनादेव सहसे जात उग्रः ।
आदर्ता वज्रं स्थाविरं न भीम उद्नेव कोशं वसुना न्यृष्टम् ।।६
न यस्य वर्त्ता जनुषा न्वस्ति न राधस आमरीता मघस्य ।
उद्वावृषाणस्तविषीव उग्रास्मभ्यं दद्धि पुरुहूत रायः ।।७
ईक्षे रायः क्षयस्य चषणीनामुत व्रजमपवर्तासि गानाम् ।
शिक्षानरः समिथेषु प्रहावान्वस्वी राशिमभिनेतासि भूरिम् ।।८
कया तच्छृण्वे शच्या शचिष्ठो यवा कृणोति मुहु का चिद्दष्वः ।
पुरु दाशुषे श्विययिष्ठो अहोऽथा दधाति द्रविण जरित्रे ।।९
मा नो मर्धीरा भरा दद्धि तन्नः प्र दाशुषे दातवे भूरि यत्ते ।
नव्ये देष्णे शस्ते अस्मिन्त उक्थे प्र ब्रवाम वयमिन्द्र स्तुवन्तः ।।१०
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इष जरित्रे नद्यो न पापेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ।।११।४

जो पर्वत के समान विशाल हैं, जो तेज से तेजस्वी हैं, जो शत्रुओं को वश में करने के लिए प्राचीनकाल में उत्पन्न हुए, वे इन्द्र जल से भरे हुए पात्र के समान अत्यन्त तेजस्वी एवं महान् वज्र के धारण करने वाले हैं, ।६। हे इन्द्र ! तुम्हारे प्राकट्य काल से ही तुम्हें कोई रोकने वाला

नहीं हुआ। यज्ञादि शुभ कर्मों के निमित्त तुम्हारे द्वारा किये गये धन का नाश करने वाला भी कोई नहीं हुआ। हे शक्तिशालिन् ! तुम अत्यन्त तेजस्वी और कामनाओं की वर्षा करने वाले हो। हमारे लिए धन प्रदान करो।१७। हे इन्द्र ! तुम मनुष्यों के धन और घरों के पर्यवेक्षक हो। तुम बाधा देने वाले राक्षसों से गौओं के झुण्डों को मुक्त करते हो। तुम शैक्षणिक कार्यों में अग्रणी और युक्त-काल में नेतृत्व कर शत्रुओं पर प्रहार करते हो। तुम उत्पन्न धनों के सम्पन्नकर्त्ता बनो।८। वह सबसे अधिक बुद्धि वाले इन्द्र किस वाणी, शक्ति और बुद्धि से युक्त हैं ? किन कर्मों द्वारा वह महान् इन्द्र बारम्बार अनेक कार्यों को करते हैं ?वे मनुष्य के पापों को नष्ट करते हुए स्तुति करने वालों को धनैश्वर्य प्रदान करते हैं।९। हे इन्द्र ! हमारा विनाश न करो। तुम्हारे निमित्त जो मनुष्य अपने को समर्पित करते हैं, उनको अपना देने योग्य ऐश्वर्य प्रदान करो। हम तुम्हारी पूजा करते हैं।१०। हे इन्द्र ! तुम पुरातन कालीन ऋषियों एवं अब हमारे द्वारा भी स्तुत हुए हो। तुम नदी को पूर्ण करने वाले जलों के समान हम स्तोताओं के अन्न की वृद्धि करते हो। तुम अश्ववान् हो हम तुम्हारे निमित्त नवीन स्तोत्र की रचना करते हैं, जिसके द्वारा हम रथ से युक्त हुए तुम्हारी स्तुति और परिचर्या करते रहें।११।(४)

सूक्त २१

(ऋषि—वामदेवः । देवता—इन्द्रः । छन्द—पंक्तिः त्रिष्टुप)

आ यात्विन्द्रोऽवस उप न इह स्तुतः सधमादस्तु शूरः ।
वावृधानस्तविषीर्यस्थ पूर्वीर्द्यौर्न क्षत्रमभिभूति पुष्यात् ।।१
तस्तेदिह स्तवथ वृष्ण्यानि तुविद्युम्नस्य तुविराधहो नृन् ।
यस्य क्रतुर्विदथ्यो न सम्राट् साह्वान्तरुत्रो अभ्यस्ति क्रुष्टीः ।।२
आ यात्विन्द्रो दिव आ पृथिव्या मक्षु समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
स्वर्णरादवसे नो मरुत्वान् परावतो वा सदनादृतस्य ।।३
स्थूरस्य रायो बृहतो य ईशे तमु ष्टवाम विदथेष्विन्द्रम् ।
यो वायुना जयति मोमतीषु धृष्णुया नयति वस्यो अच्छ ।।४

उप यो नमो नमसि स्तभायन्नियर्ति वाचं जनयन्यजध्यै ।
ऋञ्जसानं पुरुवार उक्थैरेन्द्रं कृण्वीत सदनेषु होता ।।५

वीरवर इन्द्र स्तुतियों द्वारा हमारी रक्षा के लिए आवें। वह वृद्धि को प्राप्त हुए हमारी प्रसन्नता में ही प्रसन्नता मानें। जो बल कौशल में सम्पन्न और सूर्य के समान तेजस्वी हैं, वे इन्द्र सबको पराजित करने वाले होकर हमारा पालन करें ।१। हे मनुष्यो! यज्ञादि शुभ कर्म करने वाले सम्राट् के समान जिनका सबको पराजित करने वाला कर्म शत्रुओं की सेना को हराने के समर्थ है तथा हमारी रक्षा करता है, उन यशस्वी और ऐश्वर्यशाली इन्द्र के बल कारणरूप मरुद्गण का इस यज्ञ स्थान में स्तवन करो ।२। हे इन्द्र! हमको आश्रय प्रदान करने के लिए स्वर्ग, पृथिवी, अन्तरिक्ष, सूर्य मंडल, जल-स्थान मेघ मण्डल अथवा जिस दूर स्थान में भी हों, वहीं से मरुद्गण के साथ यहाँ आओ ।३। जो स्थिर और महान् ऐश्वर्य के स्वामी हैं जो प्राणरूप शक्ति से शत्रु की सेनाओं को पराजित करते हैं, जो अत्यन्त मेधावी हैं और स्तुति करने वालों को उत्तम धन प्रदान करते हैं, उन शत्रुहन्ता इन्द्र के निमित्त हम इस यज्ञ स्थान में स्तुति करते हैं ।४। जो सम्पूर्ण विश्व को स्तम्भित करते हुए गर्जन शब्द को उत्पन्न करने वाले हैं और हवियाँ ग्रहण कर वर्षा द्वारा अन्न देते हैं, जो उत्तम स्तोत्र द्वारा स्तुति के पात्र हैं, उन इन्द्र को हम यज्ञ-स्थान में बुलाते हैं ।५। ५]

धिया यदि धिषण्यान्तः सरण्यान्त्सदन्तो अद्रिमौशिजस्य गोहे ।
आ दुरोषाः पास्त्यस्य होता यो नो महान्त्संवरणेषु वह्निः ।।३
सत्रा यदीं भार्वरस्य वृष्णः सिषक्ति शुष्मः स्तुवते भराय ।
गुहा यदीमौशिजस्य गोहे प्र यद्धिये प्रायसे मदाय ।।७
वि यद्वरांसि पर्वतस्य वृण्वे पयोभिर्जिन्वे अपां जवांसि ।
विदद्गौरस्य गवयस्य गोहे यदी वाजाय सुध्यो वहन्ति ।।८
भद्रा ते हस्ता सुकृतोत प्रयन्तारा स्तुवते राध इन्द्र ।
का ते निषत्तिः किमु नो ममत्सि किं नोदुदु हर्षसे दातवा उ ।।९

एवा वस्व इन्द्रः सत्यः सम्राड्ढन्ता वृत्रं वरिवः पूरवे कः ।
पुरुष्टुत क्रत्वा नः शग्धि रायो भक्षीय तेऽवसा दैव्यस्य ॥१०
न ष्टत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे तद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११।६

जब इन्द्र की स्तुति कामना करने वाले, यजमान के घर में निवास करते हूए स्तोतागण इन्द्र के सामने स्तोत्र सहित उपस्थित हों, तब वे इन्द्र आगमन करें। वे संग्राम-भूमि में हमारे सहायक हों। वे इन्द्र अत्यन्त तेज वाले तथा यजमानों के होता रूप हैं।६। प्रजापति के पुत्र, संसार का भरण-पोषण करने वाले, कामनाओं की वर्षा करने वाले, इन्द्र की शक्ति स्तोता यजमान की रक्षा करती है। वह शक्ति यजमानों का पालन करने के लिए शरीर के गुफा रूप हृदय में प्रकट होती है। वह शक्ति यजमानों के घरों और कर्मों में व्याप्त होती हुई प्रसन्नता और अभीष्ट-प्राप्ति के निमित्त उत्पन्न होती हुई सदा पोषण करती है।७। इन्द्र ने मेघ के द्वार को खोल डाला। जल के वेग को परिपूर्ण किया। जब उत्तम कर्म वाले यजमान इन्द्र को हवियाँ देते हैं तब वे गवादि धन भी प्राप्त करते हैं।८। हे इन्द्र! तुम्हारे दोनों हाथ कल्याण करने वाले हैं। वे सदा श्रेष्ठ कर्मों को करते हुए यजमान को धन प्रदान करते हैं। हे इन्द्र। तुम्हारे उच्च पद की क्या स्थिति है? तुम हमको धन प्रदान करने के लिए प्रसन्न क्यों नहीं होते?।९। सत्य युक्त, धनों के स्वामी, वृत्र का संहार करने वाले इन्द्र की यह स्तुति किये जाने पर वे यजमानों को धन प्रदान करते हैं। हे इन्द्र! तुम बहुतों द्वारा पूजित हो। हमारी स्तुति सुनकर हमें धन प्रदान करो, जिससे हम दिव्य ऐश्वर्य का उपभोग कर सकें।१०। हे इन्द्र! तुम पूर्वकालीन ऋषियों द्वारा स्तुत हुए। अब हमारे द्वारा स्तूयमान होकर जल द्वारा नदी को पूर्ण करने के समान स्तुति करने वालों के अन्न को बढ़ाते हो। हे अश्ववान् इन्द्र! हम तुम्हारे लिये नूतन स्तोत्र रचते हैं, जिससे हम उत्तम रथ से युक्त हुए तुम्हारा स्तवन और परिचर्या करते रहें।११। [६]

२२ सूक्त [तीसरा अनुवाक]

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप् पंक्तिः)

यन्न इन्द्रो जुजुषे यच्च वष्टि तन्नो महान्करति शुष्म्या चित् ।
ब्रह्म स्तोम मघवा सोमनुक्था यो अश्मा शवमा बिभ्रदेति ॥१
वृषा वृषन्धि चतुरश्रिमस्यन्नुग्रो बाहुभ्यां नृतमः शचीवान् ।
श्रिये परुष्णीमुषमाण ऊर्णां यस्या पर्वाणि सख्याय विव्ये ॥२
यो देवो देवतमो जायमानो महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः ।
दधानो वज्रं वाह्वोरुशन्तं द्याममेन रेजयत्प्रभूम ॥३
विश्वा रोधांसि प्रवतश्च पूर्वीर्द्यौर्ऋष्वाज्जनिमन्‌रेजत क्षाः ।
आ मातरा भरति शुष्म्या गोनृं वत्परिज्मन्नोनुवन्त वाता ॥४
ता तू त इन्द्र महतो महानि विश्वेष्वित्सवनेषु प्रावच्या ।
यच्छूर घृष्णो धृषता दधृष्वानहिं वज्रेण शवसाविवेषीः ॥५।७

वे महाबली इन्द्र हमारा हव्यरूप अन्न भक्षण करते हैं । वे ऐश्वर्यवान् वज्र धारण कर, शक्तिशाली हुए आते हैं । हविरत्न, स्तुति, सोम तथा स्तोत्रों को ग्रहण करते हैं ।१। वे इन्द्र कामनाओं की वर्षा करने वाले हैं । वे अपनी दोनों भुजाओं से वर्षा करने वाले वज्र को शत्रुओं पर चलाते हैं । वे विकराल कर्म वाले, अग्रणी, कर्म करने वाले होकर "परुष्णी" नदी को शरण देने के लिये पूर्ण करते हैं । उन इन्द्र ने "परुष्णी" नदी के प्रदेशों को मंत्री-कर्म के निमित्त सम्पन्न किया ।२। जो अत्यन्त प्रकाशवान्, श्रेष्ठ दानी, उत्पन्न होते ही अन्न और अत्यंत शक्ति से युक्त हो गये, वे इन्द्र दोनों भुजाओं में वज्र उठा कर बल से आकाश और पृथिवी को कम्पायमान करते थे ।३। उन महान् इन्द्र के प्राकट्य पर सब पर्वत, सब समुद्र, आकाश और पृथिवी उनके डर से कांप गये । वे शक्तिशाली इन्द्र गतिमान् आदित्य के पिता माता आकाश पृथिवी को धारण करते हैं । इन्द्र द्वारा प्रेरणा प्राप्त वायु मनुष्य के समान शब्दकारी होता है ।४। हे इन्द्र ! तुम महान् हो

तुम्हारा कर्म महत्त्वशील है और तुम सभी सवनों में स्तुतियों के पात्र हो। तुम अत्यंत मेधावी एवं वीर हो। तुमने बलपूर्वक अपने वज्र से अहि का नाश किया था और सब लोकों को धारण किया था।५।   (७)

ता तू ते सत्या तुविनृम्ण विश्वा प्र धेनवः सिस्रते वृषण ऊध्नः।
अधा ह त्वद्वृषमणो भियनाः प्र सिन्धवो जवसा चक्रमन्त ॥६
अत्राह ते हरिवस्ता उ देवीरवोभिरिन्द्र स्तवन्त स्वसारः।
यत्सीमनु प्र मुचो बद्बधाना दीर्घामनु प्रसितिं स्यन्दयध्यै ॥७
पिपीले अंशुर्मद्यो न सिन्धुरा त्वा शमी शशमानस्य शक्तिः।
अस्मद्य्क्शुशुचानस्य यम्या आशुर्न रश्मिं तुष्योजसं गोः ॥८
अस्मे वर्षिष्ठा कृणुहि ज्येष्ठा नृम्णानि सत्रा सहुरे सहांसि।
अस्मभ्य वृत्रा सहनानि रन्धि जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्य ॥९
अस्माकमित्सु शृणुहि त्वमिन्द्रास्मभ्यं चित्राँ उप माहि वाजान्।
अस्मभ्यं विश्वा इषणः पुरन्धीरस्माकं सु मघवन्बोधि गोदाः ॥१०
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इष जरित्रे नद्यो न पीपेः।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिव्यं स्याम रथ्यः सदासाः ॥११।८

हे इन्द्र ! तुम अत्यंत बलशाली हो। तुम्हारे सभी कर्म सत्य से ओतप्रोत हैं। तुम अभीष्टों की वर्षा करने वाले हो। तुम्हारे डर से गौऐं दूध की रक्षा करती हैं। नदियाँ तुम्हारे डर से ही बहती हैं।६। हे अश्ववान् इन्द्र ! जब तुमने वृत्र द्वारा रोकी गई इन नदियों को बहुत कालोपरांत बहने के लिये छोड़ा, तब उसी समय वे सुंदर नदियाँ तुम्हारे आश्रय के लिए स्तुति करती थीं।७। हर्षोत्पादक सोम सिद्ध हुआ। वह गतिमान् होकर तुम्हारे पास पहुँचे। द्रुतगामी सवार चलने वाले घोड़े की लगाम पकड़ कर जैसे उसे प्रेरणा देता है, वैसे ही तुम शुभ कर्म वाले स्तोता की स्तुति को प्रेरणाप्रद बनाओ।८। हे इंद्र ! तुम शत्रुओं का सदा पराभव करने वाला, महान् बल हमको प्रदान करो मारने के योग्य शत्रुओं को हमारे वश

में करो और हिंसा करने वाले विरोधियो के हथियारों का नाश कर दो ॥९॥ हे इन्द्र ! हमारी स्तुति को सुनो । हमको विविध भाँति का अन्न-धन आदि प्रदान करो । हमारे निमित्त बुद्धियों को प्रेरणा दो और हमको गौऐं प्रदान करो ॥ १० ॥ हे इन्द्र ! तुम पूर्वज ऋषियों द्वारा पूजित हुए । अब हम भी तुम्हारा स्तवन करते हैं । तुम जल द्वारा नदी को पूर्ण करने के समान स्तुति करने वालों के अन्न की वृद्धि करते हो । हे इन्द्र ! तुम अश्वों के स्वामी हो । हप तुम्हारे निमित्त नूतन स्तोत्र की रचना करते हैं, जिससे हम रथ वाले होकर तुम्हारी स्तुति और परिचर्या करते रहें ॥११॥ [८]

सूक्त २३

(ऋषि—वामदेवः । देवता—-इन्द्र । छन्द–त्रिष्टुप् पंक्तिः)

कथा महामवृधत्कस्य होतुर्यज्ञं जुषाणो अभि सोममुघः ।
पिबन्नुशानो जुषमाणो अन्धो ववक्ष ऋष्वः शुचते धनाय ॥१
को अस्य वीरः सधमादमाप समानंस सुमतिभिः को अस्य ।
कदस्य चित्रं चिकिते कदूती वृधे भुवच्छशमानस्य यज्वोः ॥२
कथा शृणोति हूयमानमिन्द्रः कथा शृण्वन्नवसामस्य वेद ।
का अस्य पूर्वीरुपमातयो ह कथैनमाहुः पपुरिं जरित्रे ॥
कथा सबाधः शशमानो अस्य नशदभि द्रविण दीध्यमानः ।
देवो भुवन्नवेदा म ऋतानां नमो जगृभ्यां अभि यज्जुजोषत् ॥४
कथा कदस्या उषसो व्युष्टौ देवो मर्तस्य सख्यं जुजोष ।
कथा कदस्य सख्यं सखिभ्यो ये अस्मिन्काम सुयुज ततस्रे ॥५।६

हमारी स्तुति इन्द्र को किस प्रकार बढ़ायेगी?वे किस होता के यज्ञमें स्नेह भाव से आते हैं? इन्द्र महान् हैं वे सोम रस का स्वाद लेते हुए तथा हविरन्न की इच्छा करते हुए उज्ज्वल धन को किस यजमान के निमित्त धारण करते हैं ? ॥ १ ॥ इन्द्र के साथ कौन सोम पीयेगा ? कौन उनकी कृपा प्राप्त करेगा?उनका अद्भुत धन कब बाँटा जायेगा? वे अपने स्तोता

को बढ़ाने के लिए उसकी रक्षा करेंगे? ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम महान् ऐश्वर्य से युक्त होकर होता की बात कैसे सुनते हो ? तुम स्तोत्रों को सुनकर ही स्तुतिकर्त्ता होता की रक्षा की बात कैसे जानते हो ? तुम्हारे प्राचीन दान कौन से हैं ? तुम्हारे वे दान स्तोता की इच्छा को पूर्ण करने वाले क्यों कहे जाते हैं ? ॥ ३ ॥ जो यजमान कष्ट में पड़कर इन्द्र की स्तुति करते और यज्ञ द्वारा प्रकाश पाते हैं, वे इन्द्र के धन को कैसे प्राप्त करते हैं ? जब प्रकाशवान् इन्द्र हवि सेवन कर हम पर प्रसन्न होते हैं, तब वे हमारे स्तोत्र को ठीक प्रकार जानते हैं ॥४॥ प्रकाशवान् इन्द्र उषा वेला में कब और किस प्रकार मनुष्यों से बन्धुभाव बनाते हैं ? इन्द्र के निमित्त जो होता सुन्दर हव्य को बढ़ाते हैं उनके प्रति इन्द्र कब और कैसे अपना बन्धुभाव प्रकाशित करते हैं ? ॥५॥ [६]

किमादमत्रं सख्यं सखिभ्यः कदा नु ते भ्रात्र प्रब्रवाम ।
श्रिये सुदृशो वपुरस्य सर्गा स्वर्ण चित्रतममिष आ गोः ॥६
द्रुहं जिघांसन्ध्वरसमनिन्द्रां तेनिक्ते तिग्मा तुजसे अनीका ।
ऋणा चिद्यत्र ऋणया न उग्रो दूरे अज्ञाता उषसो बबाधे ॥७
ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीर्ऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति ।
ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द कर्णा बुधानः शुचमान आयोः॥८
ऋतस्य दृलहा धरुणानि सन्ति पुरूणि चन्द्रा वपुषे वपूंषि ।
ऋतेन दीर्घामिषणन्त पृक्ष ऋतेन गाव ऋतमा विवेशुः ॥९
ऋत येमान ऋतमिद्वनोत्यृतस्य शुष्मस्तुरया उ गव्युः ।
ऋताय पृथिवी बहुशे गभीरे ऋताय धेनू परमे दुहाते ॥१०
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इष जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवा ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः मदासाः ॥११॥१०

हे इन्द्र ! यजमान, शत्रु को हराने वाले तुम्हारे मित्रभाव को किस प्रकार स्तोताओं से कहेंगे ? कब हम तुम्हारे बन्धुभाव को प्रचारित करेंगे ? उत्तम दर्शन वाले इन्द्र के सभी कर्म स्तुति करने वालों के लिए सुखकारी होते हैं । सूर्य

के समान अत्यन्त दर्शनीय इन्द्र के शरीर की सब कामना करते हैं ॥ ६ ॥ द्रोह और हिंसा करने वाली, इन्द्र के पराक्रम को न जानने वाली राक्षसी के वध के लिए वे पहले से ही शस्त्रों को तेज करते हैं। जैसे ऋण सब धन को समाप्त कर देता है, वैसे ही इन्द्र उन उषाओं को पीडित करते हैं ॥ ७ ॥ ऋतदेव बहुत जल से युक्त हैं। उनकी स्तुति पापों को दूर करती हैं। उनकी ज्ञान देने वाली वाणी बहरे मनुष्यों के भी कान में पहुँच जाती है ॥८॥ ऋतदेव के अनेक रूप हैं। साधकगण उनसे अन्न की याचना करते है। उनके द्वारा गौएं दक्षिणा के रूप से यज्ञ में जाती हैं ॥ ९ ॥ स्तुति करने वाले ऋतदेव को वश में करने के लिए उनका यजन करते हैं। उनका बल जल की अभिलाषा करता है। पृथिवी ऋतदेव के लिए दूध दुहती हैं ॥ १० ॥ हे इन्द्र! तुम पूर्वज जल द्वारा नदी को पूर्ण करने के समान स्तोताओं के अन्न को बढ़ाते हो ऋषियों द्वारा स्तुत हुए। अब हम भी तुम्हारा स्तवन करते हैं। तुम हे इन्द्र! तुम अश्ववान् हो। हम तुम्हारे लिए नवीन स्तोत्र की रचना करते हैं, जिससे हम रथ वाले होकर तुम्हारी स्तुति और परिचर्या करते रहें ॥११॥

[१०]

सूक्त २४

(ऋषि—वामदेवः देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप् पंक्तिः)

का सुष्टुतिः शवसः सुनूमिन्द्रमर्वाचीन राधस आ ववर्तत् ।
दर्दिहि वीरो गृणते वसूनि स गोपतिर्निष्षिधाँ नो जनासः ॥१
स वृत्रहत्ये हव्यः स ईड्यः ज सुष्टुत इन्द्रः सत्यराधा ।
य यामन्ना मघवा मर्त्याय ब्रह्मण्यते सूष्वये वरिवो धात् ॥२
तमिन्नरो विह्वयन्ते समीके रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत त्राम् ।
मिथो यत्त्यागमुभयाबसो अग्मन्नरस्तोकस्य तनयस्य सातौ ॥३
क्रतूयन्ति क्षितयो योग उग्राशुषाणासो मिथो अर्णसातौ ।
सं यद्विशोऽववृत्रन्त युध्मा आविन्नेम इन्द्रयन्ते अभीके ॥४
आदिद्ध नेम इन्द्रियं यजन्त आदित्पक्तिः पुरोलाशं रिरिच्यात् ।

आदित्सोमो बि पपृच्यादसुष्वीनादिज्जुजोष वृषभं यजध्यै ॥५॥११

बल के पुत्र इन्द्र को, सुन्दर स्तुति द्वारा धन देने के निमित्त हम किस प्रकार बुलावें ? हे मनुष्यों ! पशुओं का पालन वाले वीर इन्द्र हमको शत्रुओं का धन प्रदान करें । हम उनका स्तवन करते हैं ॥ १ ॥ वृत्र के लिइ इन्द्र युद्ध में बुलाये जाते हैं । वे स्तुति के पात्र हैं । उत्तम प्रकार से स्तुति किये जाने पर वे यजमानो को धन देने के लिए सत्य स्वरूप बनते हैं । वे ऐश्वर्यवान् इन्द्र स्तोत्र की और सोम की कामना वाले, यजमान को धन देतें है ॥२॥ संग्राम में मनुष्य इन्द्र को आहूद करते हैं । तजमान और स्तोता दोनों मिलकर सन्तति लाभ के लिए इन्द्र के पास जाते हैं ॥ ३॥ हे इन्द्र ! तुम बलवान् हो । चारों दिशाओं में रहने वाले मनुष्य जल के निमित्त इकट्ठे होकर यज्ञ करते हैं । जब युद्ध करने वाले समर भूमि में इकट्ठे होते हैं तब इनमें से कौन इन्द्र की कामना करता है ? ॥ ४ ॥ उस समय कोई वीर सशक्त इन्द्र का पूजन करते और कोई पुरोडाल लाकर इन्द्र को देते हैं । उस समय सोम सिद्ध करने वाले यजमान, सोम सिद्ध न करने वाले यजमान को धन विहीन कर देते हैं । उस समय कामनाओं की वर्षा करने वाले इन्द्र के लिए कोई यज्ञ करने की इच्छा करते हैं ॥५॥ [११]

कृणोत्यस्मै वरिवो य इत्थेन्द्राय सोममुशते सुनोति ।
सध्रीचीनेन मनसाविवनन्तमित्सखायं कृणुत समत्सु ॥६
य इन्द्राय सुनवत्सोममद्य पचात्पक्तीरुत भृज्जाति धानाः ।
प्रति मनायोरुचथानि हर्यन्तस्मिन्दधद्वृषणं शुष्ममिंद्रः ॥७
यदा समयं व्यचेदृघावा दीर्घं यदाजिमभ्यख्यदर्यः ।
अचिक्रदद् वृषण पत्न्यच्छा दुरोण आ निशितं सोमसुद्भिः ॥८

भूयसा वस्नमचरत्कनीयोऽविक्रीतो अकानिषं पुनर्यन् ।
स भूयसा कनीयो नारिरेचीद्दीना दक्षा वि दुहन्ति प्र वाणम् ॥९
क इमं दशभिर्ममेन्द्रं क्रीणाति धेनुभिः ।
यदा वृत्राणि जंघनदथैनं मे पुनर्ददत् ॥१०

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपे: ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासः ॥११॥१२

दिव्यलोक में निवास करने वाले इन्द्र के लिए जो सोम की कामना वाले उसे सिद्ध करते हैं, उनको इन्द्र धन प्रदान करते हैं। एकाग्र भाव से इन्द्र को चाहने वाले तथा सोम सिद्ध करने वाले यजमान से वे इन्द्र युद्ध क्षेत्र में संख्य भाव स्थापित करते हैं। ६। आज जो इन्द्र के निमित्त सोमरस निकालते हैं, जो पुरोडाश लाते और भूनने योग्य जौ को भूनते हैं, उन स्तोत्र को ग्रहण करने वाले इन्द्र, यजमान की इच्छा पूर्ण करने वाले बल को धारण करते हैं। ७। जब वे शत्रु संहारक प्रभु इन्द्र शत्रुओं को जान लेते हैं और जब वे भीषण संग्राम में लगे होते हैं तब उनकी भार्या सोम सिद्ध करने वाले ऋत्विक् द्वारा सोम-पान से हृष्ट और कामनाओं की वर्षा करने वाले इन्द्र का आह्वान करती हैं ।८। कोई पुण्य करके थोड़ा धन पाता है, फिर खरीदने दाले के पास जाकर 'हमने बेचा नहीं' ऐसा कहकर शेष धन माँगता है। खरीदने वाले उससे अधिक धन नहीं देता ।९। इन्द्र को कौन दस गायों के समान धन से खरीद सकता है ? वह जब बढ़ते हुए शत्रुओं का वध कर डालते हैं, तब वह उनके गवादि धन को मुझे ही सौंप देते है ।१०। हे इन्द्र ! तुम पूर्वज ऋषियों द्वारा पूजित हुए। अब हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम जल से परिपूर्ण नदी के समान स्तुति करने वालों के अन्न की वृद्धि करते हो। हे इन्द्र ! तुम अश्वान् हो। हम तुम्हारे नूतन स्तोत्र रचते हैं, जिससे हम रथ वाले होकर तुम्हारी स्तुति और परिचर्या करते रहें ।११।   १२]

सूक्त ३५

(ऋषि—वामदेवः देवता—इन्द्रः । छन्द—पंक्तिः—त्रिष्टुप्)

को अद्य नर्यो देवकामः उषन्निन्द्रस्य सख्यं जुजोष ।
को वा महेऽवसे पार्याय समिद्धे अग्नौ सुतसोम ईट्टे ॥१
को नानाम वचसा सोम्याय मनायुर्वा भवति वस्त उस्राः ।

क इन्द्रस्य युज्यं कः सखिस्वं ओ भ्रात्रं वष्टि कवये क ऊतो ॥२
को देवानामवो अद्या घृणीते क आदित्याँ अदितिं ज्योतिरीट्टे ।
कस्याश्विनाविन्द्रो अग्निः सुतस्यांशोः पिबन्ति मनसाविवेनम् ॥३
तस्मा अग्निर्भारतः शर्म यंसज्ज्योक्पश्यात्सूर्यमुच्चरन्तम् ।
य इन्द्राय सुनवामेत्याह नरे नर्याय नृतमाय नृणाम् ॥४
न तं जिनन्ति बहवो न दभ्रा उर्वस्मा अदिति शर्म यसत् ।
प्रियः सुकृत्प्रियः इन्द्रे मनायुः प्रियः सुप्रावीः प्रियो अस्य सोमी॥५।१३

हितकारी, देवताओं की कामना वाला कौन-सा मनुष्य आज इन्द्र से मित्रता स्थापित करना चाहता है ? सोम का अभिषव करने वाला ऐसा कौन व्यक्ति है जो अग्नि प्रदीप्त होने पर इन्द्र की रक्षा करने वाले आश्रय की कामना से उनका स्तवन करता है ? ।१। कौन-सा यजमान इन्द्र के सामने स्तुति करता हुआ नत-मस्तक होता ? कौन इन्द्र की स्तुति की रक्षा करता है ? इन्द्र को दी हुई गौओं को कौन लेता है । इन्द्र की सहायता कौन चाहता है ? कौन उनसे मित्रता करने का अभिलाषी है ? कौन उससे वंधुत्व भाव करना चाहता है ? कौन उन तेजस्वी इंद्र के आश्रय की याचना करता है ? ।२। कौन यजमान इंद्र आदि देवताओं से रक्षा के लिए निवेदन करता है ? आदित्य, अदिति और उदक की स्तुति कौन करता है । अश्विनीकुमार, इंद्र और अग्नि किस यजमान के स्तोत्र से प्रसन्न होकर छने हुए सोमरस की इच्छानुसार पीते हैं ? ।३। जो यजमान मनुष्यों के सखा, श्रेष्ठ नेतृत्व वाले इन्द्र के निमित्त सोम सिद्ध करने का संकल्प करते हैं, ऐसे यजमानों को हवियों के स्वामी अग्नि सुखी करें और सदा से उदय होने वाले सूर्य के दर्शन करने वाला बनावें ।४। अदिति उनको सुखी वनावें सुंदर यज्ञादि शुभ कर्म करने वाले यजमानों को इंद्र स्नेह करें । इंद्र की स्तुति करने के इच्छुक उनके स्नेह भाजन हों । जो शील स्वभाव वाले एवं सोम की सिद्धि करने हैं वे सब इंद्र के स्नेही वनें ।५। [१३]

स्व॒ प्राव्यः प्राशुषालेष वीरः सुष्वे पंक्ति कृणुते केवलेन्द्रः ।
नासुष्वेरापिर्न सखा न जामिर्दुष्प्राव्योऽवहन्तेदवाचः ॥६
न रेवता पणिना सख्यमिन्द्रोसुन्वता सुतपाः स गृथीते ।
अस्य वेदः खिदति हन्ति नग्नं वि सुष्वये पंक्तये केवालो भूत् ॥७
इंद्रं परेऽवरे मध्यमास इंद्र यान्तोऽवासनास इंद्रम् ।
इंद्रं क्षियन्त उत युध्यमाना इंद्रं नरो वाज्यन्तो हुवन्ते ॥८।१४

इन्द्र के निकट जाने वाले और सोम सिद्ध करने वाले यजमान के पाप-कर्म को वीर इंद्र अस्वीकार करते हैं। सोम का अभिषव न करने वाले यजमान के लिए इंद्र व्याप्त नहीं होते। वे उससे सख्य और बंधुत्व नहीं रखते। इन्द्र के समीप न जाने वाला, उनकी स्तुति न करने वाला उनके द्वारा हिंसित किया जाता है।६। सिद्ध सोम को पीने वाले इंद्र सोम सिद्ध करने वाले कर्म से विहीन धनिक एवं लोलुप के साथ सख्य भाव नहीं बनाते। वे उनके किसी काम न आने वाले धन का नाश कर देते हैं। वे सोमाभिषवकर्ता तथा हविरन्न के पाक-कर्त्ता यजमान से अत्यंत बंधुत्व स्थापित्त करते हैं।७। ऊँच, नीच, मध्यम सभी प्रकार के मनुष्य इंद्र को आहूत करते हैं। गमनशील, उपविष्ट, घरों में रहने वाले, समरभूमि में जाने वाले तथा अन्न की कामना वाले सभी जीव इंद्र का आह्वान करते हैं।८। (१४)

सूक्त २६

(ऋषि—वामदेवः। देवता—इंद्रः। छंद-पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षीवां ऋषिरस्मि विप्रः ।
अहं कुत्समार्जुनेयं न्यृञ्जेऽहं कविरुशना पश्यता मा ॥१
अहं भूमिमददामार्यायाहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय ।
अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनु केतमायन् ॥२
अहं पुरो मन्दसानो व्यैरं नव साकं नवतीः शम्बरस्य ।
शततमं वेश्यं सर्वताता दिवोदासमतिथिग्वं यदावम् ॥३
प्र सु ष विभ्यो मरुतो विरस्तु प्र श्येनभ्यः आशुपत्वा ।

अचक्रया यत्स्वधया सुपर्णो हव्य भरन्मनवे देवजुष्टम् ॥४
भरद्यदि विरतो वेविजानः पथोरुणा मनोजवा असर्जि ।
तूयं ययौ मधुना सोम्येनोत श्रवो विविदे श्येनो अत्र ॥५
ऋजिपी श्येनो ददमानो अंशुं परावतः शकुनो मन्द्रं मदन् ।
सोमं भराद्दहाणो देवावान्दिवो अमुष्म दुतरादादाय ॥६
आदाय श्येनो अभरत्सोमं सहस्र सवाँ अयुत च साकम् ।
अत्रा पुरन्धिरजहादरातीर्मदे सोमस्य मूरा अमूरः ॥७।१५

हम प्रजापति, सबको प्रेरणा देने वाले सूर्य हैं एव हम ही 'दीर्घतमा' के विद्वान् पुत्र 'कक्षीवान्' ऋषि हैं। हम ही कवि 'उशना' हैं। हमने ही 'अर्जुनी' के पुत्र 'कुत्स' को भले प्रकार प्रशंसित किया था। हे मनुष्यो! हम ही क्रांतदर्शी और सर्वप्रिय हैं।१। मैंने ही शब्द को भूमि दी। मैंने ही सत्य की वृद्धि के लिए सृष्टि की। मैंने ही शब्द करते हुए जल को प्रेरित किया। मेरी इच्छा पर सभी देवता चलते हैं।२। सोम पीकर हृष्ट हुए मैंने 'शम्बर' के निन्यानवे नगरों को एक ही समय में विध्वंस कर डाला। जब मैं यज्ञ में 'राजर्षि' की रक्षा कर रहा था, तब मैंने उनके निवास के लिए सौ नगर प्रदान किये थे।३। हे मरुतो! तुम बाज पक्षियों में प्रधानत्व प्राप्त हो। दूसरों की अपेक्षा तुम शीघ्रगामी हो। देवताओं द्वारा सवन किये जाने वाले सोमरूप हव्य को सुपर्ण ने बिना पहिये के रथ द्वारा दिव्य लोक से लाकर मनुष्यों को दिया था।४। जब श्येन डरकर आकाश से सोम लाया तब वह विशाल अंतरिक्ष के पथ में मन के समान वेग वाला होकर उड़ा। सोमरूप अन्न के सहित वह शीघ्र गया और सोम लाने से उसका यश फैल गया।५। द्रुतगामी और यशस्वी श्येन देवताओं के साथ दूर से सोम को उठाकर स्तुत्य एवं हर्षदायक सोम को ऊँचे आकाश से लेकर दृढ़ता पूर्वक पृथिवी पर चला आया।६। श्येन ने हजारों लाखों यज्ञ-कर्मों द्वारा सोम को पाया और वह उसको ले आया। सोम के लाने पर बहुकर्मा एवं मेधावी इन्द्र ने सोम से उत्पन्न शक्ति से अज्ञानी शत्रुओं का संहार किया।७। (१५)

सूक्त २७

(ऋषि—वामदेवः । देवता—इन्द्रः । छंदः—त्रिष्टुप्, शक्वरी)

गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा ।
शतं मा पुर आयसीररक्षन्नध श्येनो जवसा निरदीयम् ॥१
न घा स मामप जोषं जभाराभीमास त्वक्षसा वीर्येण ।
ईर्मा पुरन्धिरजहादरातीरुत वातां अतरच्छूशुवानः ॥२
अव यच्छ्येनो अस्वनीदध द्योर्वि यद्यदि वात ऊहुः पुरन्धिम् ।
सृजद्यदस्मा अव ह क्षिपज्ज्यां कृशानुरस्ता मनसा भुरण्यन् ॥३
ऋजिप्य ईमिन्द्रावतो न भुज्युं श्येनो जभार बृहतो अधि ष्णोः ।
अन्तः पतत्पतत्र्यस्य पर्णमध यामनि प्रसितस्य तद्वेः ॥४
अध श्वेतं कलशं गोभिरक्तमापिप्यानं मघवा शुक्रमन्धः ।
अध्वर्युभिः प्रयतं मध्वो अग्रमिन्द्रो मदाय प्रति धत्पिबध्यै ।
शूरो मदाय प्रति धत्पिबध्यै ॥५।१६

गर्भ में रहते हुए ही हमने इन्द्रादि सब देवताओं के प्राकट्य को उत्तमता से जान लिया था । लौह की बनी हुई दृढ़ नगरियो में हमारा पालन हुआ था । हम ज्ञान से युक्त हो बाज के समान बड़े वेग से उड़ जाने वाले आत्मा को जाते हुए देह-बन्धन से निकल जानते हैं ।। १ ।। उस गर्भ में रहते हुए भी हमको मोह ने नहीं घेरा । हमने गर्भ के दुःखों को ज्ञान के बल से जीत लिया । सबको प्रेरणा देने वाले प्रभु ने गर्भ में स्थित शत्रु रूप कीटाणुओं को नष्ट किया और वृद्धि को प्राप्त होकर क्लेश पहुँचाने वाली वायु का शमन किया ।।२।। सोम लाते समय जब बाज ने आकाश के नीचे की ओर मुख करके शब्द किया, जब सोम के रक्षकों ने श्येन से सोम को छीन लिया, जब सोम रक्षक कृशानु ने मन के वेग से जाने वाले वाण के लिए धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाई और श्येन की ओर वाण चलाया, तब श्येन सोम को लेकर आया ।। ३ ।। जैसे अश्वनी-कुमारों ने इन्द्र के स्वामित्व वाले वंश से राजा भुज्य का अपहरण किया था, उसी प्रकार इन्द्र से रक्षित महान्

आकाश से ऋजुगामी श्येन सोम को लेकर आया । उस समय कृशनु से लड़ने के कारण उस गमनशील श्येन का एक पंख बाण से बिंध जाने के कारण गिर पड़ा ।४।। महा पराक्रमी इन्द्र पवित्र पात्र में सुरक्षित, गव्य मिश्रित, तृप्तिदायक, सार रूप सोम के अध्वर्युओं द्वारा दिये जाने पर उसके हर्षप्रदायक रस इस समय पान करें ।।५।। [१६]

सूक्त २८

(ऋषि—वामदेवः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

त्वां युजा तव तत्सोम सख्य इन्द्रो अपो मनवे सस्रुतस्कः ।
अहन्नहिमरिणात्सप्त सिन्धूनपावृणोदपिहितेव खानि ।।१
त्वा युजा नि खिदत्सूर्यस्येन्द्रश्चक्रं सहसा सद्य इन्दो ।
अधि ष्णुना बृहता वर्तमान महो द्रुहो अप विश्वायु घायि ।।२
अहन्निन्द्रा अदहदग्निरिन्दो पुरा दस्यून्मध्यन्दिनादभीके ।
दुर्गे दुरोणे क्रत्वा न यातां पुरू सहस्रा शर्वा नि बर्हीत ।।३
विश्वस्मात्सीमधमाँ इन्द्र दस्यून्विशो दासीरकृणोरप्रशस्ताः ।
अब्राधेथाममृणतं नि शत्रू नन्विन्देथामपचिति वधत्रैः ।।४
एवा सत्यं मघवाना युव तदिन्द्रश्च सोमोर्वमश्व्यं गोः ।
आनर्द्द तमपिहितान्यश्ना रिरिचथुः क्षाश्चित्ततृदान ।।५।१७

हे सोम! जब इन्द्र तुम्हारे मित्र हुए तब तुम्हारी सहायता से उन्होंने मनुष्यों के निमित्त जल को बहाया और वृत्र का संहार किया । वृत्र द्वारा रोके हुए द्वार को खोलकर जल का प्रेरणा किया ।।१।। हे सोम ! तुम्हारी सहायता से ही इन्द्र ने सूर्य के रथ के ऊपर स्थित दो चक्रों वाले रथ के एक चक्र को क्षण भर में छिन्न कर दिया । सूर्य सर्वत्र गतिमान चक्र को स्पर्धा के कारण इन्द्र ने ले लिया ।।२।। हे सोम ! तुमको पीकर पराक्रमी इन्द्र ने मध्यवाह्न काल से पूर्व ही शत्रुओं को युद्ध में नष्ट कर दिया और अग्नि नेभी अनेक शत्रुओं को भस्म किया । जैसे अरक्षित मार्ग से जाने वाले धनिका को चोर मार देता है वैसे ही असंख्य शत्रु सेनाओं को इन्द्र ने मार डाला ।३।

हे इन्द्र ! तुम सब दुष्टों से सद्गुणों को विहीन करते हो । तुम उन दस्युओं को निन्दा के योग्य करते हो । हे इन्द्र और सोम! तुम दोनों ही शत्रुओं के आक्रमण-कार्य में बाधक बनते हुए उनका संहार करो उनका बध करने के लिये की जाने वाली स्तुतियों को स्वीकार करो ।४। हे सोम ! तुम और इंद्र ने विशाल अश्वों और गौओं के झुण्ड को दान दिया था । हे इंद्र और सोम ! तुम दोनों ही अत्यंत ऐश्वर्यशाली हो । तुम दोनों शत्रुओं का सहार करने में समर्थ हो । तुम दोनों जो भी कर्म करते हो वह सब सत्य है ।।५।। (१७)

सूक्त २६

(ऋषि—वामदेवः । देवता—इंद्रः । छंद—त्रिष्टुप, पंक्तिः)

आ नः स्तुत उप वाजेभिरूती इन्द्र याहि हरिभिर्मन्दसानः ।
तिरश्चिदर्यः सवना पुरूण्वाङ् गूषेभिर्गृणानः सत्यराधाः ।।१
आ हि ष्मा याति नर्यश्चिकित्वान्हूयमानः सोतृभिरुप यज्ञम् ।
स्वश्वो यो अभीरुमन्यमानः सुष्वाणेभिमदति सं ह वीरैः ।।२
श्रावयेदस्य कर्णा वाजयध्यै जुष्टामानु प्र दिशं मन्दयध्यैः ।
उद्वावृषाणा राधसे तुविष्मान्करन्न इंद्र सुतीर्थाभयं च ।।३
अच्छा यो गन्ता नाधमानमूती इत्था विप्र हवमान गृणन्तम् ।
उप त्मनि दधानो धुर्या शून्त्सहस्राणि शतानि वज्रबाहुः ।।४
त्वोतासो मघवन्निन्द्र विप्रा वयं ते स्याम सूरयो गृणन्तः ।
भेजानासो बृहद्दिवस्य राय आकाय्यस्य दावने पुरुक्षीः ।।५।१८

हे इंद्र हमारे द्वारा स्तवन न करने पर हमारी रक्षा के निमित्त हविरन्न युक्त हमारे यज्ञों में अश्वों के सहित पधारो । तुम प्रसन्न मन वाले, स्तोत्रों द्वारा पूजित, सत्य स्वरूप एवं सबके स्वामी हो ।। १ ।। मनुष्यों का कल्याण करने वाले, सर्व ज्ञानों के जानने वाले इद्र सोम सिद्ध करने वालों द्वारा बुलाये जाने पर यज्ञ के लिए आवें । वे इंद्र शोभित अश्वों वाले निडर स्तुत तथा बीर मरुद्गण के साथ पुष्टि को प्राप्त करते हैं ।। २ ।। हे मनुष्यो !

इंद्र की बल वृद्धि के लिए तथा उन्हें हर प्रकार से पुष्ट करने के लिए उसके दोनों कानों स्तोत्रों को श्रवण कराओ। सोम रस से सींचे गये पराक्रमी इंद्र हमारे धन के लिए उत्तम स्थानों को भय से मुक्त करें ॥३॥ भुजाओं में वज्र धारण करने वाले इंद्र अपने बहुसंख्यक घोड़ों को रथ में चलने के लिए जोड़ते हैं और रक्षा करने के लिए बुद्धिमान्, प्रसन्न करने वाले, स्तवन करते हुए याचक यजमान के पास जाते है। हम स्तोता विद्वान तुम्हारे पास रक्षित हैं। तुम दीप्तमान्, अन्नवान् और स्तुतियों के पात्र हो। धन देने वाले समय में हम तुम्हारे यजन करें ।५॥ [१८]

सूक्त ३०

(ऋषि—वामदेः । देवता—इद्रः । छंद—गायत्री अनुष्टुप्)

नकिरिन्द्रत्वदुत्तरोनज्यायां अस्ति वृत्रहन् । नकिरेवा यथात्वम्॥१
सत्रा तेअनु कृष्टयोविश्वाचक्रेववावृतुः । सत्रा महाँ असि श्रुतः॥२
विश्वे चनेदना त्वा देवास इन्द्र युयुधुः । यदहा नक्तमातिरः ॥३
यत्रोत बाधितेभ्यश्चक्रं कुत्साय युध्यते । मुषाय इन्द्र सूर्यम् ॥४
यत्र देवाँ ऋघायतो विश्वाँ अयुध्य एक इद् ।
त्वमिन्द्रबनूँ रहन् ॥५॥१९

हे इन्द्र ! तुम वृत्र का नाश करने वाले हो। इस संसार में तुमसे बढ़कर कोई श्रेष्ठ नहीं। तुमसे बढ़कर बड़ा भी कोई नहीं है। तुम संसार में जितने प्रसिद्ध हो उतना प्रसिद्ध कोई नहीं ।१ हे इन्द्र ! सर्वव्यापी पहिया जैसे गाड़ी के पीछे चलता है वैसे ही प्रजाजन भी तुम्हारे पीछे चलते हैं। तुम सत्य हो मेधावी हो। तुम अपने गुणों द्वारा प्रसिद्ध हो ।२। हे इन्द्र ! विजय की कामना वाले सब देवताओं ने बल के रूप में तुम्हारी सहायता पाकर राक्षसों से संग्राम किया था। तब तुमने रात-दिन शत्रुओं का संहार किया था ।३। हे इन्द्र ! उस संग्राम में तुमने युद्ध रत 'कुत्स' और उसके सहायकों के निमित्त सूर्य पर चक्र को घुमाया और अपने जनों की रक्षा की थी ।४। हे इंद्र ! संग्राम में तुमने अकेले ही हिंसा

करने वाले तथा सभी देवताओं को बाधा देने वाले असुरों से युद्ध किया था, उसमें उन सभी का संहार किया था ॥५॥

यत्रोत मर्त्याय कमरिणा इन्द्र सूर्यम् । प्राव: शचाभिरेतशम् ॥६
किमादुतासि वृत्रहन्मघवन्मन्युमत्तम. अत्राह दानुमातिर: ॥७
एतद्घे तुदुत वीर्यं मिन्द्र चकर्थ पौंस्यम् ।
स्त्रियं यद्दुर्हणायुवं वधीर्दुहितरं दिव: ॥८
दिवश्चिद्घादुहितरंमहान्महीयमानाम् । उषासमिन्द्र सं पिणक्॥९
अपोषा अनसः सरत्संपिष्टादह बिभ्युषी ।
नि यत्सीं शिश्नथद्वृषा ॥१०।२०

हे इन्द्र ! तुवने जिस युद्ध में "एतश" के निमत्त सूर्य पर भी आक्रमण किया था, उस समय घोर संग्राभ द्वारा तुमने एतश ऋषि की भले प्रकार की रक्षा की थी।६।हे वृत रूप आवरणकारी अन्धकार को दूर करने वाले इन्द्र ! और तो क्या, तुम दुष्टों पर अत्यन्त क्रोध करने वाले हो। तुम प्रजाओं को छिन्न-भिन्न करने वाले असुर का वध करो ॥७॥ हे इन्द्र ! तुम पुरुषोचित वीर कर्मों को करने वाले हो। जैसे सूर्य अपने प्रकाश से उषा का नाश कर देता है वैसे ही तुम एकत्रित हुई शत्रु-सेना को नष्ट करो ।८। हे इन्द्र ! सूर्य जैसे प्रकाश का दोहन करने वाली उषा को छिन्न-भिन्न कर देता है, वैसे ही तुम विजय की कामना करने वाली शत्रु सेना को पीस डालो।९। कामनाओं के वर्षक इन्द्र ने जब उषा के रथ को छिन्न-भिन्न किया था, तब उषा डर कर इन्द्र द्वारा तोड़े हुए रथ के ऊपर से प्रकट हुई थी ॥१०॥ (२०)

एतदस्या अन:शये सुसम्पिष्टं विपाश्या । ससार सीपरावत: ॥११
उतसिन्धुःविवाल्यंवितस्थानामधिक्षमि । परिष्ठा इन्द्र मायया॥१२
उत शुष्णस्य धृष्णुया प्र मृक्षो अभि वेदनम् ।
पुरो यदस्य संपिणक् ॥१३
उत दास कौलितरं बृहत: पर्वतादधि: अवाहन्निन्द्र शम्बरम् ॥१४

उत दासस्य वर्चिनः सहस्राणि शतावधीः ।
अधि पञ्च प्रधींरिव ॥१५।२१

इन्द्र द्वारा तोड़ा गया उषा का वह रथ विपाशा नदी के किनारे जा पड़ा। रथ के भग्न होने पर उषा दूर देश में अचेत होकर जा पड़ी ।११। हे इन्द्र ! तुमने सभी जलों को तथा तिष्ठमाना नदी को इस भूमण्डल पर अपनी बुद्धि के बल से प्रकट किया था ।१२। हे इन्द्र ! तुम वृष्टि करने वाले हो। जब तुमते "शुष्ण" के नगरों को नष्ट किया था, तब तुमने उसके धन को भी लुटा था ॥१३॥ हे इन्द्र ! तुमने "कौलितर" के पुत्र "शम्बर" नामक असुर को पर्वत से नीचे गिरा कर मार डाला ।१४। हे इन्द्र ! चक्र के चारों ओर स्थित शंकु के समान 'वर्चि" नामक दस्यु के चारों ओर स्थित पाँच सौ सहस्र संख्यक दासों का तुमने वध किया था ॥१५॥ (२१)

उत त्यं पुत्रमग्रुव परावृक्तं शतक्रतुः । उक्थेष्विन्द्र आभजत् ॥१६
उतत्यातुर्वशायदूअस्नातारा शचीपतिः । इन्द्रो विद्वाँअपारयत्॥१७
उत त्या सद्य आर्यासरयोरिन्द्र पारतः । अर्णाचित्रतथावधीः ॥१८
अनु द्वा जहिता नयोऽन्धश्रोणं च वृत्रहन् । न तत्ते सुम्नमष्टवे॥ .९
शतमश्यन्मयीनांपुरामिन्द्रोव्यास्यत् । दिवोदासायदाशुषे॥२०।२२

हे इन्द्र ! तुमने प्रमंसनीय कार्यों में भी उस "अग्रु" पुत्रों को दुःखों से बचाकर यश-भागी बनाया ।१६। शचीपति इन्द्र ने "ययाति" के शाप से च्युत राजा "वदु" और "तुर्वश" को संकट से पार किया था ।७। हे इन्द्र ! तुमने तत्क्षण "सरयू" के पार रहने वाले "अर्ण" और "चित्ररथ" नामक राजा का संहार किया ।१८। हे वृत्र नाशक इन्द्र ! तुमने बन्धुओं द्वारा त्यागे गये अन्धे और लंगड़े पर कृपा की थी। तुम्हारे द्वारा दिये गये सुख को नष्ट करने में कोई भी समर्थ नहीं है। ६। इन्द्र ने हविर्दान करने वाले यजमान "दिवोदास" को "शम्बर" के पाषाण से बने सौ नगर दिये ॥२०॥ (२०)

अस्वापयद्दभीतये सहस्रात्रिंशतहथैः । दासानामिन्द्रो मायया॥२१

स घेदुतासिवृत्रहन्त्समानइन्द्रगोपतिः । यस्ताविश्वानि चिच्युषे।।२२
उत नूनं यदिन्द्रियकरिष्या इन्द्रपौंस्यम्ः अद्यानकिष्टदा मिनत्।।२३
वामंवामं त आदुरे देवो ददात्वर्यमा ।
वामं पूषा वामं भगो वामं देवः करूलती ।।२४।२३

इन्द्र ने अपनी माया से दस्युओं की तीन सो सहस्र सेना को नष्ट करने के लिए हनन करने वाले अस्त्रों से पृथिवी पर सुला दिया ।२१। हे इन्द्र ! तुम वृत्र के हननकर्त्ता हो । तुमने सभी शत्रु-सेनाओं को रण क्षेत्र में विचलित कर दिया । तुम गौओं के पालन कर्ता हो । तुम सब यजमानों के लिए समान रूप से वर्तते हो ।२२। हे इन्द्र ! तुम जिस सामर्थ्य और ऐश्वर्य को धारण करते हो, उसकी हिंसा आज भी कोई व्यक्ति करने में समर्थ नहीं है ।२३। हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं का नाश करने वाले हो, अर्यमा तुम्हें सुन्दर धन दें । दन्तविहीन पूषा और भग भी रमणीय धन प्रदान करें ।।२४।। [२३]

सूक्त ३१

(ऋषि—वामदेवः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

कया नश्चित्र आ भुवदूतीसदावृधः सखा । कयाशचिष्ठया वृता।।१
कस्त्वा सत्यो मदानां महिष्ठो मत्सदन्धसः दृलहा चिदारुजे वसु।।२
अभी षु णः सखीनामविता जरितृणाम् । शतं भवास्यूतिभिः ।।३
अभी न आ ववृत्स्व चक्रं न वृत्तमर्वतः। नियुद्भिश्चर्षणीनाम्।।४
प्रवता हि क्रतुनामा हा पदेव गच्छसि । अभक्षि सूर्ये सचा ।।५।२

वे सदा बढ़ने वाले, पूजा के पात्र, मित्र रूप इन्द्र किस पूजा द्वारा हमारे सामने आवेंगे ? किस बुद्धिमान् के श्रेष्ठ कर्म से प्रभावित हुए वे हमारे सामने पधारेंगे ? ।१। हे इन्द्र ! सत्य रूप और प्रसन्न करने वाले सोम रसों के बीच, शत्रुओं के धन का नाश करने के लिए तुम्हें कौन-सा सोमरस तुष्ट करेगा ? ।२। हे इन्द्र ! तुम मित्र रूप स्तुति करने वालों की रक्षा करते

हो अपने विभिन्न रक्षा-साधनों सहित हमारे सामने जाओ ।३। हे इन्द्र ! हम तुम्हारे मार्ग पर चलने वाले हैं । हम मनुष्यों की स्तुतियों से प्रसन्न होते हुए तुम हमारे सामने वृत्ताकार चक्र के समान आओ ।४। हे इन्द्र ! तुम यज्ञ में अपने स्थान को जानते हुए यहाँ पधारो । सूर्य के साथ हम तुम्हारा सदा यजन करते हैं ।।५।। [२४]

संयत्त इन्द्र मन्यवः सं चक्राणि दधिन्वरे । अध त्वो अध सूर्ये ।।६
उत स्मा हित्वामाहुरिन्मघवान शचीपते । दातारमविदीधयुम्।।७
उत स्मा सद्य इत्परि शशमानाय सुन्वते । पुरू चिमंहसे वसु ।।८
नहि ष्मा ते शतं चन राधो वरन्त आमुरः ।
न च्योत्स्नानि करिष्यतः ।।९
अस्मां अवन्तु ते शतमस्मान्त्सहस्रमूतयः ।
अस्मान्विश्वा अभिष्टयः ।।१०।।१५

हे इन्द्र ! तुम्हारे निमित्त सम्पादन की गई स्तुति तथा कर्म जब एक साथ ऊपर उठते हैं, तब वे प्रथम तुम्हारे और फिर सूर्य के होते हैं ।६। हे इन्द्र ! तुम कर्मों के रक्षक हो । तुमको धनवान् और स्तोता की इच्छा पूर्ण करने वाला तथा तेजस्वी कहा जाता है ।७। हे इन्द्र ! सोम सिद्धि करने वाले तथा स्तुति करने वाले यजमान को तुम तुरन्त ही बहुत साधन देते हो ।८। हे इन्द्र ! बाधा देने वाले दैत्य भी तुम्हारे सैकड़ों ऐश्वर्यों को रोक नहीं सकते । विभिन्न पराक्रम वाले वीरकर्मा भी तुम्हारे बलों को रोक नहीं सकते ।९। हे इन्द्र ! तुम्हारे सैकड़ों रक्षा-साधन हमारी रक्षा करें । तुम्हारे हजारों रक्षा-साधन हमारी रक्षा करें, तुम्हारी समस्त प्रेरणायें रक्षा में सहायक हों ।।१०।।

अस्मा इहा वृणीष्व सख्याय स्वस्तये । महो राये दिवित्मते ।।११
अस्मां अविड्ढि विश्वहेन्द्र राया परीणसा ।
अस्मान्विश्वाभिरूतिभः ।।१२

अस्मभ्यं ताँ अपा वृधि ब्रजाँ अस्तेव गोमतः ।
नवाभिरिन्द्रोतिभिः ॥१३
अस्माकं धृष्णुया रथो द्युमाँ इन्द्रानपच्युतः । गव्युरश्वयुरीयते ॥१४
अस्माकमुत्तमं कृधि श्रवो देवेषु सूर्य । वर्षिष्ठं द्यामिवोपरि॥१५।२६

हे इन्द्र ! हम यजमानों को इस यज्ञ में मित्र रूप, कभी नष्ट न होने वाला तथा प्रकाश से युक्त धन का अधिकारी बनाओ ।११। हे इन्द्र ! नित्यप्रति अपने महान् धन द्वारा हमारी रक्षा करो। तुम अपने सभी रक्षा-साधनों से हमारी रक्षा करो ।१२। हे इन्द्र ! वीर के समान अपने नवीन रक्षा-साधन द्वारा हमारे लिए गौओं के निवास स्थान को पुष्ट करो ।१३। हे इन्द्र ! तुम हमारे शत्रुओं को रगड़ने वाले, अत्यन्त तेजस्वी, अविनाशी, गौओं से युक्त, अश्वों वाले रथ में सब ओर जाने वाले हो। तुम उस रथ के सहित हमारी रक्षा करने वाले होओ ।१४। हे सूर्य ! तुम सबको प्रेरणा देने वाले हो। तुम वर्षा करने में समर्थ आकाश को जैसे ऊपर स्थापित किया है वैसे ही देवताओं के मध्य हमारे यज्ञ को बढ़ाओ ।१५।

[२६]

सूक्त ३२

(ऋषि—वामदेवः । देवता—इन्द्राश्वौ । छन्द—गायत्री)

आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्धमा गहि । महान्महीभिरूतिभिः ॥१
भूमिश्चिद्धासि तूतुजिरा चित्र चित्रणीष्वा चित्रं कृणोष्यूतये ॥२
दभ्रेभिश्चिच्छशीयांसं हंसि व्राधन्तमोजसा । सखिभिर्ये त्वे सचा॥३
वयमिन्द्र त्वे सचा वयं त्वाभि नोनुमः । अस्माँ अस्माँ इदुदव ॥४
स नश्चित्राभिरद्रिवोऽनवद्याभिरूतिभिः । अनाधृष्टाभिरागहि ॥५।२७

हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं के हननकर्त्ता हो। तुम शीघ्र हमारे सामने आओ। तुम महान् हो। अपनी महान् रक्षाओं सहित हमारे निकट पधारे ।१। हे इन्द्र ! तुम पूजा के योग्य हो। तुम भ्रमणशील हो। तुम हमको इच्छित फल प्रदान करते हो। अद्भुत कर्म वाली प्रजा को तुम पोषण के

निमित्त धन प्रदान करते हो ।२। हे इन्द्र ! जो यजमान तुम्हारे अनुकूल होते हैं, उन थोड़े यजमानों को साथ लेकर तुम उच्छृंखल बढ़े हुए शत्रुओं को अपने महान् पराक्रम से नष्ट करते हो ।३। हे इन्द्र ! हम यजमान तुम्हारे द्वारा सुसङ्गत हुए हैं। हम तुम्हारी अत्यन्त स्तुति करते हैं। तुम हमारा विशेष रूप से पालन करो ।४। हे वज्रिन् ! आनन्दित ! अद्भुत शत्रुओं द्वारा पराजित न होने वाले, तुम अपनी समृद्ध रक्षाओं सहित हमारे पास आओ ।५। [२७]

भूयामो षुत्वावतः सखायः इन्द्र गोमतः । युजो वाजाय धृष्वये ॥६
त्वं ह्येक ईषिप इन्द्र वाजस्य गोमतः । स नो यन्धि महीमिषम् ॥७
न त्वा वरन्ते अन्यथा यद्दित्ससि स्तुतो मघम् ।
स्तोतृभ्य इन्द्र गिर्वणः । ८
अभि त्वा गोतमा गिरानूषत प्र दावने । इन्द्र वाचाय धृष्वये ॥९
प्र ते वोचाम वीर्या या मन्दसान आरुजः । पुरो दासीरभीत्य॥१०।२८

हे इन्द्र ! हम तुम्हारे समान गौ युक्त पुरुष के सहयोगी हैं। हम श्रेष्ठ धन के निमित्त तुम्हारी सहायता चाहते हैं ।६। हे इन्द्र ! हम अकेले ही गौ, घोड़े आदि के स्वामी हैं। हमको बहुत सा अन्नादि धन प्रदान करो ।७। हे इन्द्र ! तुम स्तुति के पात्र हो। स्तुति करने वालों को धन देने की इच्छा करते हो तब तुम्हारे उस दान को रोकने की किसी में सामर्थ्य नहीं है ।८। हे इन्द्र ! तुम्हारे उद्देश्य से गौतम वंशज ऋषि धन और अन्न के निमित्त स्तोत्र द्वारा तुम्हारा स्तवन करते हैं ।९। हे इन्द्र ! तुम सोम पीकर पराक्रमी हुए "क्षेक" राक्षसों के सब नगरों में जाकर उन्हें ध्वस्त करते हो। हम स्तुति करने वाले तुम्हारे उसी पराक्रम का स्तवन करते हैं ।१०। [२८]

ता ते गृणान्ति वधसोयानि चकर्थ पौंस्या । सुतोष्विन्द्र गिर्वणः॥११
अवीवृधन्त गोतमा इन्द्र त्वे स्तोमवाहसः । ऐषु धा वीरवद्यशः॥१२
यच्चिद्धि शश्वतामसीन्द्र साधारणस्त्वम् । तंत्वा वयं हवामहे ॥१३
अर्वाचीनोवसोभवास्मे सु मत्स्वान्धसः । सोमानामिन्द्र सोमपाः॥१४
अस्माकं त्वा मतीनामास्तोइन्द्र यच्छतु । अर्वागा वर्तया हरी॥१५

पुरोलाशं च नो घसो जोषयासे गिरश्च नः ।
वधूयुरिव योषणाम् ।।१६।२९

हे इन्द्र ? तुम स्तुति के पात्र हो। तुम जिन बलों को प्रकट करते हो तुम्हारे उन्हीं बलों का मेधावी जन सोम के सिद्ध होने पर गान करते हैं ।।११। हे इन्द्र ! स्तोत्रों को वहन करने वाले गौतम वंशज स्तोत्र से तुम्हें बढ़ाते हैं, तुम उन्हें पुत्रादि से युक्त अन्न दो ।१२। हे इन्द्र ! तुम सब यजमानों के प्रसिद्ध देवता हो। हम स्तुति करने वाले तुम्हें बुलाते हैं ।१३। हे इन्द्र ! तुम उत्तम निवास देते हो। तुम हम यजमानों के सामने आओ। हे सोम-पान करने वाले इन्द्र ! तुम सोम-रूप अन्न से पुष्टि को प्राप्त होओ ।१४। हे इन्द्र ! हम तुम्हारी स्तुति करने वाले हैं। हमारा स्तोत्र तुम्हें हमारे पास लावे। तुम अपने दोनों घोड़ों को हमारे सामने मोड़ो ।१५। हे इन्द्र ! तुम हमारे पुरोडास को खाओ। जैसे पुरुष स्त्रियों के वचनों को सुनता है, उसी प्रकार तुम हमारे वचनों को ध्यान से सुनो ।१६।

[२९]

सहस्रं व्यतीनां युक्तानामिन्द्रमीमहे । शतं सोमस्य खार्यः ॥ १७
सहस्रा ते शता वयं गवामाच्यावयामसि । अस्मत्रा राधएतु ते।।१८
दश ते कलशानां हिरण्यानामधीमही। भूरिदा असि वृत्रहन् ।।१९
भूरिदा भूरि देहि नो मा दभ्रं भूर्या भर । भूरि घेदिन्द्र दित्ससि।।२०
भूरिदा ह्यसि श्रुतः पुरुत्रा शूरवृत्रहन् । आ नो भजस्व राधसि।।२१
प्रते बभ्रू विचक्षण शंसामि गोषणो नपात् ।
माभ्यां गा अनु शिश्रथः ।।२२
कनीनकेव विद्रधे नवे द्रुपदे अर्भके । बभ्रू यामेषु शोभते ।।२३
अरं म उस्रयाम्णेऽरमनुस्रयाम्णे बभ्रू यामेष्वस्रिधा ।।२४।३०

हम स्तुति करने वाले इन्द्र के समीप सीखे हुए, शीघ्र चलने वाले सहस्रों घोड़ों को माँगते हैं और सैकड़ों सोम कलशों की याचना करते हैं ।१७। हे इन्द्र ! हम तुम्हारी सैकड़ों अथवा हजारों गौओं को अपने सामने प्राप्त करें, हमारा धन तुम्हारे पास से यहाँ आवे ।१८। हे इन्द्र !

हम तुम्हारे द्वारा दस कलसों में सुवर्ण धारण करें । हे वृत्र के हवनकर्त्ता इन्द्र ! तुम अपरिमित्त दान करने वाले हो ।१९। हे इन्द्र तुम हमको बहुत सा धन देने की इच्छा करते हो । तुम बहुत धन के दाता होकर हमको अत्यन्त धन दो । स्वल्प धन मत दो । बहुत बहुत ऐश्वर्य प्रदान करो ।२०। हे वृत्र के हनन करने वाले वीर इन्द्र ! तुम बहुत देने वाले के रूप में यजमानों में प्रसिद्ध हो । तुम हमको धन का अधिकारी बनाओ ।२१। हे मेधावी इन्द्र ! हम तुम्हारे लाल रङ्ग वाले दोनों घोड़ों की स्तुति करते हैं । तुम गौओं के देने वाले हो । तुम स्तुति करने वालों को नष्ट नहीं करते । तुम अपने दोनों अश्वों द्वारा हमारी गौओं को पीड़ित न करना ।२२। हे इन्द्र ! जाने योग्य मार्ग में जैसे लाल रङ्ग के दो अश्व शोभा पाते हैं, उसी प्रकार दृढ़ नवीन खूंटे के समान कर्मों में स्थिर स्त्री पुरुष-रूप यजमान सुशोभित होते हैं ।२३। हे इन्द्र ! जब हम बैलों से जुते रथ में बैठ कर चलें अथवा पदयात्रा करें, तब तुम्हारे हिंसा रहित लाल वर्ण वाले दोनों घोड़े हमारे लिये कल्याणकारी हों ।२४। [३०]

३३ सूक्त (चौथा अनुवाक)

(ऋषि—वामदेवः । देवता–ऋभव । । छन्द–त्रिष्टुप् पंक्तिः)

प्र ऋभुभ्यो दूतमिव वाचमिष्य उपस्तिरे श्वैतरीं धेनुमीले ।
ये वातजूतास्तरणिभिरेवैः परि द्यां सद्यो अपसो बभूवुः ॥१
यदारमक्रन्नृभवः पितृभ्यां परिविष्टी वेषणा दसनाभिः ।
आदिद्देवानामुप सख्यमायन्धीरासः पुष्टिमवहन्मनायै ॥२
पुनर्ये चक्रुः पितरा युवाना सना यूपेव जरणा शयाना ।
ते वाजो विभ्वाँ ऋभुरिन्द्रवन्तो मधुप्सरसो नोऽवन्तु यज्ञम् ॥३
यत्संवत्समृभवो गामरक्षन्यत्संवत्समृभवो मा अपिशन् ।
यत्सवत्समभरन्भासो अस्यास्ताभिः शमीभिरमृतत्वमाशुः ॥४
ज्येष्ठ आह चमसा द्वा करेति कनीयान्त्रीन्कृणवामेत्याह ।

कनिष्ठ आह चतुरस्करेति त्वष्ट ऋभवस्तत्पनयद्वचो वः ॥५।१

हम यजमान ऋभुगण के निमित्त के के समान स्तुति रूप वाणी को प्रेरित करते हैं। हम उनके समीप सोम उपस्थित करने के लिये दूध वाली गाय की रचना करते हैं ऋभुगण वायु के समान चलने वाले हैं तथा संसार का उपकार करने वाले कर्मों को करते है। वे अपने वेगवान् अश्वों से क्षण भर में अन्तरिक्ष को व्याप्त करते हैं ।१। जब ऋभुगण ने अपने माता को युवावस्था दी और चमस बनाने आदि कार्यों को करते हुए यशवान् हुएं तब उसी समय [उनकी मित्रता इन्द्रादि देवताओं के साथ हो गई। वे मनस्वी और धैर्यवान् हैं तथा यजमानों के निमित्त बल धारण करते हैं ।२। ऋभुओं ने यूप रूप काष्ठ के समान जीर्ण और लुढ़के पड़ते हुए माता पिता को तरुणता दी वे बलवान विभु और ऋभु इन्द्र के साथ सोम पीते हुए हमारे यज्ञ के रक्षक हो ।३। ऋभुगण ने एक वर्ष तक मरी हुई धेनु की सेवा की। उन्होंने उस गाय के देह को अवयवों को सम्पन्न किया और वर्ष भर उसकी रक्षा की। अपने इन कार्यों से देवत्व को प्राप्त कर सके ।४। बड़े ऋभु ने एक चमस को दो करने की इच्छा प्रकट की। बीच के ऋभु ने तीन करने की और छोटे ऋभु ने चार करने को कहा। हे ऋभुगण! तुम्हारे गुरु त्वष्टा ने इस तुम्हारी 'चार करने' वाली बात को स्वीकार कर लिया ।५।   १]

सत्यमूचुर्नर एवा हि चक्रुरनु स्वधामृभवो जग्मुरेताम् ॥
विभ्राजमानाँश्चमसाँ अहेवावेनत्त्वष्टा चतुरो ददृश्वान् ॥६
द्वादश द्यून्यदगोह्यस्यातिथ्ये रणन्नृभवः ससन्तः।
सुक्षेत्राकृण्वन्नयन्त सिन्धन्वातिष्ठन्नोषधीर्निम्नमापः ॥७
रथं ये चक्रुः सुवृत नरेष्ठां ये धेनुं विश्वजुवं विश्वरूपाम्।
त आ तक्षन्त्वृभवो रयिं नः स्ववसः स्वपसः सुहस्ताः ॥८
अपो ह्येषामजुषन्त देवा अभि क्रत्वा मनसा दीध्यानाः।
वाजो देवानामभवत्सुकर्मेन्द्रस्य ऋभुक्षा वरुणस्य विभ्वा ॥९
ये हरी मेधयोक्था मदन्त इन्द्राय चक्रुः सुयुजा ये अश्वा।
ते रायस्पोषं द्रविणान्यस्मे धत्तऋभवः क्षेमयन्तो न मित्रम्।

इदाह्नः पीतिमुत वो मदं धुर्न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः ।
ते नूनमस्मे ऋभवो वसूनि तृतीये अस्मिन्त्सवने दधात ॥११।२

उन मनुष्य रूप वाले ऋभुओं ने जो कहा वही किया । उनका कथन सत्य हुआ । फिर वे ऋभुगण तीसरे सवन में स्वधा के अधिकारी हुए । दिन के समान प्रकाशवान् चार चमसों को देखकर त्वष्टा ने उसकी इच्छा करते हुए ग्रहण किया ।६। प्रत्यक्ष प्रकाशवान् सूर्य के लोक में जब वे ऋभुगण आर्द्रा से वर्षाकारक बारह नक्षत्रों तक अतिथि रूप में रहते हैं, तब वे वर्षा द्वारा कृषि को धान्य पूर्ण करते और नदियों को प्रवाहवान् बनाते हैं । जल से रहित स्थान में ओषधियाँ उत्पन्न होती और निचले स्थानों में जल भरा रहता है ।७। जिन्होंने सुन्दर पहिये वाले रथ को बनाया था, जिन्होंने संसार को प्रेरण देने वाली तथा अनेक रूपाणि गौ को प्रकट किया था, वे उत्तम कर्म वाले, सुन्दर अन्नवान् और सिद्धहस्त ऋभुगण हमारे धन का सम्पादन करें ।८। इन्द्रादि देवताओं ने वर देने जैसे कर्म द्वारा तथा प्रसन्न मन से तेजस्वी होकर ऋभुगण के घोड़े, रथ आदि निर्माण कार्य को स्वीकार किया । उत्तम कर्म वाले छोटे ऋभु 'वाज' सब देवताओं से सम्बन्धित हुए, मध्यम ऋभु वरुण से तथा बड़े ऋभु इन्द्र से सम्बन्धित हुए ।९। जिन ऋभुओं ने दो घोड़ों को बुद्धि और प्रशंसा द्वारा पुष्ट किया, जिन ऋभुओं ने उन दोनों घोड़ों को इन्द्र के रथ में जुतने योग्य किया, वे ऋभुगण हमारे निमित्त कल्याणकारी मित्र के समान धन, बल, गवादि और समस्त सुख प्रदान करें ।१०। चामस आदि के बनाने के पश्चात् देवताओं ने तीसरे सवन में तुम्हारे लिए सोम-पान से उत्पन्न हर्ष प्रदान किया था । देवगण तपस्वी के सिवाय किसी अन्य के मित्र नहीं बनते । हे ऋभुओ ! इस तीसरे सवन में तुम हमारे लिए अवश्य ही धन दो ।११। [२[

३४ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—ऋभवः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

ऋभूर्विभ्वा वाज इन्द्रो नो अच्छेमं यज्ञं रत्नधेयोप यात ।

इदा हि वो धिषणा देव्यह्नामधात्पीतिं सं मदा अग्मता वः ।।१
विदानासो जन्मनो वाजरत्ना उत ऋतु भिऋं भजो मादयध्वम् ।
सं वो मदा अग्मत सं पुरन्धिः सुवीरामस्मे रयिमेरयध्वम्।।२
अयं वो यज्ञ ऋभवोऽकारि यमा मनुष्वत्प्रदिवो दधिध्वे ।
प्र वोऽच्छा जुजुषाणासो अस्थुरभूत विश्वे अग्रियोत वाजाः ।।३
अभूदु वो विधते रत्नधेयमिदा नरो दाशुषे मर्त्याय ।
पिवत वाजा ऋभवो ददे वो महि तृतीयं सवनं मदाय ।।४
आ वाजा यातोप न ऋभुक्षा महो नरो द्रविणसो गृणानाः ।
चा वः पातयोऽभिपित्वे अह्नामिमा अस्तं नवस्व इव ग्मन्।।५।३

हे ऋभु, विभु, बाज और इन्द्र ! धन-दान के लिये हमारे इस यज्ञ में पधारो अभी दिवस में वाणी रूप स्तुति तुम्हारे निमित्त सोम सिद्ध करने सम्बन्धी प्रीति देती है । सोम से उत्पन्न हर्ष तुम्हारे साथ सुसङ्गत हो ।१। हे ऋभुओ ! तुम अन्न द्वारा सुशोभित हो । पूर्व में तुम मनुष्य थे, अब तुम देवता हुए हो । इस बात को ध्यान रखते हुए देवताओंके पास पुष्टि को प्राप्त होओ । हर्षकारी सोम ओर स्तोत्र तुम्हारे निमित सुसङ्गत हुए हैं । तुम हमारे लिये पुत्र-पौत्रादि से युक्त धन भेजो ।२। हे ऋभुगण ! यह यज्ञ तुम्हारे निमित्त किया गया है । तुम इसे मनुष्य के समान दीप्तिवान् होकर ग्रहण करो । सेवाकारी सोम तुम्हारे समीप उपस्थित है । तुम हमारे मुख्य साध्य हो ।३। हे अग्रगण्य ऋभुओ ! हविदाता यजमान के लिये इस तीसरे सवन में तुम्हारी कृपा से दान-योग्य रत्न प्राप्त हों । हम तुम्हारे निमित्त पुष्टिदायक सोम प्रदान करते हैं, तुम उसका पान करो ।४। हे नेतृ श्रेष्ठ ऋभुगण ! महान् ऐश्वर्य की प्रसंसा करते हुए तुम हमारे समीप आओ । दिन की समाप्ति में जैसे नवप्रसूता गौऐं अपने स्थान को लौटती हैं, उसी प्रकार यह सोमरस तुम्हारे पीने के निमित्त तुम्हारी ओर आता है ।५। [३]

आ नपातः शवसो यातनोपेमं यज्ञं नमसा हूयमानाः ।
सजोषसः सूरयो यस्य च स्थ मध्वः पात रत्नधा इन्द्रवन्तः ।।६

सजोषा इन्द्र वरुणेन सोमं जसोषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः ।
अग्रेपाभिॠ तुपाभिः सजोषा ग्नास्पत्नीभीः रत्नधाभिः सजोषा ॥७
सजोषसो आदित्यैर्मादयध्वं सजोषस ऋभवः पर्वतेभिः ।
सजोषसो दैव्येनाँ सवित्रा सजोषसः सिन्धुभी रत्नधेभिः ॥८
ये अश्विना ये पितरा य ऊती धेनुं ततक्षुॠभवो ये अश्वा ।
ये अंसत्रा य ऋधग्रोदसी वे विभ्वो नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥९
ये गोमन्तं वाजवन्तं सुवीरं रयिं धत्थ वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।
ते अग्रेपा ऋभवो मन्दसाना अस्मे धत्त ये च रातिं गृणन्ति ॥१०
नापाभूत न वोऽतीतृषामानिः शस्ता ऋभवो यज्ञे अस्मिन् ।
समिन्द्रेण मदथ सं मरुद्भिः स राजभो रत्नधेयाय देवाः ॥११।७

हे बल से युक्त ऋभुओ ! स्तोत्र द्वारा बुलाये जाने पर तुम इस यज्ञ में आओ। तुम इन्द्र के सखा रूप एवं बुद्धिमान हो, क्योंकि तुम इन्द्र के सम्बन्धी हो। तुम मधुर सोमरस को इन्द्र के साथ पीते हुए रत्नादि धन प्रदान करो।३। हे इन्द्र ! वरुण के साथ सम्यक् दीप्तिमान् होकर सोम-पान करो। तुम स्तुति के पात्र हो। मरुद्गण के साथ मिलकर तुम सोम को पीओ। प्रथम पीने वाले ऋभुओ, देवांगनाओं तथा रत्नदात्री साम वर्गों के साथ सोम पान करो।७। हे ऋभुओ ! आदित्यों के साथ मिलकर हर्ष को प्राप्त होओ। उपासनीय देवों के साथ मिलकर हर्ष प्राप्त करो। सवितादेव के साथ सुसङ्गत होकर हर्ष को प्राप्त करो। पर्वत के समान अचल एवं रत्नदाता देवताओं के साथ मिलकर हृष्ट-पुष्ट होओ।८। जिन्होंने अश्विनीकुमारों को रथ बनाने आदि कार्यों से अपने प्रति स्नेही बनाया, जिन्होंने जीर्ण माता-पिता को तारुण्य दिया, जिन्होंने गौ और अश्व को बनाया, जिन्होंने देवताओं के लिये अंसत्रा कवच बनाया, जिन्होंने आकाश पृथ्वीको पृथक् किया, जिन्होंने सुन्दर सन्तान उत्पन्न करने वाला कार्य किया और जो सबके नेता रूप हैं, वे ऋभु प्रथम सोम पान करने वाले हैं।९। गौ, अन्न, सन्तान तथा निवास योग्य गृहादि धनों से युक्त हैं, जो बहुत अन्न वाले धनों के पालक हैं, जो धनों की प्रसंशा करते वाले हैं, वे ऋभुगण प्रथम सोम-पान

द्वारा हृष्ट होकर हमको धनैश्वर्यं दें ।१०। हे ऋभुगण ! हमसे दूर मत जाना । हम तुमको अधिक समय तृषित नहीं रहने देंगे । तुम सुन्दर धन देने के निमित्त इन्द्र से साथ इस यज्ञ में हर्ष को प्राप्त होओ । मरुद्गण तथा अन्य तेजस्वी देवताओं के साथ पुष्ट होओ ।।११।। [४]

सूक्त ३५

(ऋषि—वामदेव । देवता—ऋभवः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

इहोप यात शवसो नपातः सौधन्वना ऋभवो माप भूत ।
अस्मिन्हि वः सवने रत्नधेयं गमन्त्विन्द्रमनु वो मदासः ।।१
आगन्नृभूणामिह रत्नधेयमभूत्सोमस्य सुषुतस्य पीतिः ।
सुकृत्यया यत्स्वपस्यया चँ एकं विचक्र चमस चतुर्धा ।।२
व्यकृणोत चमसं चतुर्धा सखे वि शिक्षेत्यब्रवीत ।
अथैत वाजा अमृतस्य पन्थाँ गणं देवानामृभवः सुहस्ताः ।।३
किंमयः स्विच्चमस एष आस यं काव्येन चतुरो विचक्र ।
अथा सुनुध्वं सवनं मदाय ऋभवो मधुनः सोम्यस्य ।।४
शच्याकर्त पितरा युवाना शच्याकर्त्त चमसं देवपानम् ।
अच्या हरी धनुतरावतष्टेन्द्रबाहावृभवो वाजरत्नाः ।।५।५

हे "सुन्धवा" के बलवान् पुत्रो ! हे ऋभुओ ! इस तृतीय सवन में यहां आओ, कहीं अन्यत्र गमन मत करो । हृष्टि कारक सोम इस सवन में, रत्नदान करने वाले इन्द्र के पश्चात् तुम्हारे निकट पहुंचे ।।१।। ऋभुओं द्वारा दिये जाने वाले रत्नों का दान इस तीसरे सवन में मेरे पास आवे । हे ऋभुगण ! तुमने अपनी हस्तकला द्वारा ही एक चमस के चार बना दिये थे और सुसिद्ध सोम का पान किया था ।।२।। हे ऋभुगण ! तुमने एक चमस के चार करते हुए कहा था— 'हे मित्र रूप अग्ने ! कृपा करो ।' तब अग्नि ने उत्तर दिया था—'हे ऋभुओ ! तुम हस्त-व्यापार में कुशल हो । तुम अमरत्व प्राप्ति के मार्ग पर जाओ ।३। जिस चमस के चतुरता पूर्वक चार बनाये गये, वह चमस कैसा था ? हे ऋत्विजो ! आनन्द के निमित्त सोम को सिद्ध

करो। हे ऋभुओ ! तुम मधुर सोम-रस को पीओ ।४। हे उत्तम सोमयुक्त ऋभुगण ! तुमने कला द्वारा अपने माता-पिता को तारुण्य प्रदान किया, एक चमस के चार बनाये और इन्द्र के शीघ्र चलने वाले दोनों घोड़ों को प्रकट किया ॥५॥ [५]

यो वः सुनोत्यभिपित्वे अह्नां तीव्रं वाजासः सवनं मदाय ।
तस्मै रयिमृभव-सर्ववीरमा तक्षत वृषणो मन्दसाना ॥६
प्रातः सुतमपिबो हर्यश्व माध्यन्दिनं सवनं केवल ते ।
समृभुभिः पिवस्व रत्नधेभिः सखीं यीं इन्द्र चकृषे सुकृत्या ॥७
ये देवासो अभवता सुकृत्या श्येना इवेदधि दिवि निषेद ।
ते रत्नं धात शवतो नपातः सौधन्वना अभवतामृतासः ॥८
यत्तृतीयं सवनं रत्नधेयमकृणुध्वं स्वपस्या सुहस्ताः ।
तदृभवः परिषिक्तं व एतत्सं मदेभिरिन्द्रियेभिः पिबध्वम् ॥९

हे ऋभुगण ? तुम अन्न के स्वामी हो । जो यजमान तुम्हारे आनन्द के निमित्त दिन के अन्तिम काल में सोम को छानता है उस यजमान के लिए तुम उत्तम अभीष्टवर्षी होते हुए अनेक सन्तानयुक्त धन के देने वाले होओ ।६ हे अश्ववान् इन्द्र ! तुम सुसिद्ध सोम को प्रातः सवन में पीओ । दिन के मध्यकाल वाला सवन केवल तुम्हारे निमित्त ही है । हे इन्द्र ! अपने उत्तम कार्य द्वारा तुमने जिनके साथ मित्रता स्थापित की, उन रत्न-दान करने वाले ऋभुगण सहित तीसरे सवन में सोम-पान करो ।७। हे ऋभुगण ! तुमने अपने उत्तमप कर्मों से देवत्व प्राप्त किया । तुम श्येन के समान आकाश में प्राप्त हो । हे सुधन्वा-पुत्रो ! तुम अमरत्व प्राप्त कर चुके हो । हम को धन प्रदान करो ।८। हे ऋभुओ ! तुम श्रेष्ठ हस्त-कला से युक्त हो । तुम सुन्दर सोमयुक्त तीसरे सवन को श्रेष्ठ कर्मों की कामना से सुसिद्ध करते हो । अतः तुम प्रसन्न मन से सोम को पीओ ॥९॥ [६]

सूक्त ३६

(ऋषि—वामदेवः । देवता—ऋभवः छन्द—त्रिष्टुप्, जगती ।)

अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो रथस्त्रिचक्रः परि वर्तते रजः ।

महत्तद्वो देव्यस्य प्रवाचनं द्यामृभवः पृथिवीं यच्च पुष्यथ ॥१
रथं ये चक्रुः सुवृतं सुचेतसोऽविह्वरन्तं मनसस्परि ध्यया ।
ताँ ऊ न्वस्य सवनस्य पीतय आ वो वाजा ऋभवो वेदयामसि ॥२
तद्वो वाजा ऋभवः सप्रवा चनं देवेषु विभ्वो अभवन्वमहित्वनमु ।
जिव्री यत्सन्ता पितरा सनाजुरा पुनर्युवाना चरथाय तक्षथ ॥३
एकं वि-चक्र चमसं चतुर्वयं निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिः ।
अथा देवेष्वमृतत्वमानश श्रुष्टी वाजा ऋभवस्तद्व उक्थ्यम् ॥४
ऋभुतो रयिः प्रथमश्रवस्तमो वाजश्रुतामो यमजीजनन्नरः ।
विभ्वतष्टो विदथेषु प्रवाच्यो यं देवासोऽवथा स विचर्षणिः ॥५।७

हे ऋभुओ ! तुम्हारे द्वारा किए जाने वाले कार्य प्रशंसा के योग्य हैं । तुम्हारे द्वारा दिया गया अश्विनीकुमारों का तीन पहिये वाला रथ घोड़े के बिना ही अन्तरिक्ष में घूमता है । जिसके द्वारा तुम आकाश और पृथिवी का पालन करते हो, वह रथ बनाने वाला महान् कार्य तुम्हारे देवत्व का साक्ष्य रूप है ।१। हे उत्तम हृदय वाले ऋभुगण ! तुमने अपने आंतरिक ध्यान से सुन्दर चाल वाला, पहिये से युक्त रथ बनाया था । हम साधारण तुम्हें सोमपान के लिये बुलाते हैं ।२। हे ऋभुओ ! तुम तीनों ने अपने वृद्ध माता-पिता को तारुण्य देकर चलने के योग्य बनाया था, तुम्हारा वह महान् कर्म देवताओं में प्रसिद्ध है ।३। हे ऋभुओ ! तुमने एक चमस के चार भाग किये । अपने उत्तम कर्म से गौ को चमड़े से ढका । इसलिये तुमने देवताओं का अविनांशी पद प्राप्त किया । तुम्हारे सभीं कर्म स्तुति के योग्य हैं ।४। ऋभुगण ने जिस धन को प्रकट किया था, वह अन्नयुक्त मुख्य धन ऋभुओं के पास आवे । यज्ञ स्थान में ऋभुगण द्वारा निर्मित रथ प्रशंसा करने के योग्य है । हे दीप्तिमान् ऋभुओ ! तुम जिसके रक्षक होते हो वह साधक देखने योग्य होता है ॥५॥ [७]

स वाज्यर्वा स ऋषिर्वचस्यया स शूरो अस्ता पृतनासु दुष्टरः ।
स रायस्पोषं स सुवीर्यं दधे यं वाजो विभ्वां ऋभवो यमाविषुः॥६

श्रेष्ठं वः पेशो अधि धायि दर्शतं स्तोमो वाज ऋभवस्तं जुजुष्टन ।
धीरासो हि ष्ठाकवयो विपश्चितस्तान्व एना ब्राह्मणा वेदयामसि ।।७
यूयमस्मभ्यं धिषणाभ्यस्परि विद्वांसो विश्वा नर्याणि भोजना ।
द्युमन्तं वाजं वृषशुष्ममुत्तममा नो रयिमृभवस्तक्षता वयः ।।८
इह प्रजामिह रयिं रराणा इह श्रवो वीरवत्तक्षता नः ।
येन वयं चितयेमात्यन्यान्तं वाजं चित्रमृभवो ददा नः ९।८

जिस व्यक्ति की ऋभुगण रक्षा करते हैं, वह व्यक्ति पराक्रमी एवं युद्ध कौशल में चतुर होता है। वह ऋषि होता हुआ स्तुतियों से सम्पन्न होता है। वह वीर शत्रुओं को हराकर संग्राम में ऊँचा उठता है तथा धनवान् सन्तानवान् और बलवान होता है ।६। हे ऋभुओ ! तुम अत्यन्त उत्कृष्ट और दर्शन के योग्य स्वरूप वाले हो। हमने यह सुन्दर स्तोत्र तुम्हारे लिए ही रचा है । तुम इसे ग्रहण करो। तुम मेधावी, ज्ञानी और कवि हो। स्तोत्र द्वारा हम तुम्हारी प्रार्थना करते हैं ।७। हे ऋभुओ ! हमारी स्तुति के निमित्त मनुष्यों का हित करने वाली सब भोग्य सामग्री को तुम ग्रहण करो और हमारे निमित्त अत्यन्त तेजस्वी तथा बल उत्पन्न करने वाला, शत्रुओं का पोषण करने वाला अन्न धन प्राप्त कराओ ।८। हे ऋभुगण ! तुम हमारे यश में प्रीतिमान् होकर पुत्र-पुत्रादि तथा धन, भृत्यादि से युक्त यश प्राप्त कराओ। हम जिस धन से दूसरों पर विजय पा सकें, वह सुन्दर धन हमको प्रदान करो ।।९।। [८]

सूक्त ३७

(ऋषि—वामदेवः । देवता—ऋभवः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति, अनुष्टुप)

उप नो वाजा अध्वरमृभुक्षा देवा यात पथिभिर्देवयानैः ।
यथा यज्ञं मनुषो मु दधिध्वे रण्वाः सुदिनेष्वह्नाम् । १
ते वो हृदे मनसे सन्तु यज्ञा जुष्टासो अद्य घृतनिर्णिजो गुः ।
प्र वः सुतासो हरयन्त पूर्णाः क्रत्वे दक्षाय हर्षयन्त पीताः ।।२

त्र्युदायं देवहितं यथा वः स्तोमो वाजा ऋभुक्षणो ददे वः ।
जुह्वे तनुष्वदुपरासु विक्षु युष्मे सचा बृहद्दिवेषु सोमम् ॥३
पीवो अश्वाः शुचद्रथा हि भूतायः शिप्रा वाजिनः सुनिष्काः ।
इन्द्रस्य सूनो शवसो नपातोऽनु वश्चेत्यग्रियं मदाय ॥४
ऋभुमृभुक्षणो रयिं वाजे वाजिन्तमं युजम् ।
इन्द्रस्वन्त हवामहे सदासातममश्विनम् ॥५॥६

हे ऋभुगण ! तुम जैसे दिनों को श्रेष्ठ दिन बनाने के लिये मनुष्यों के यज्ञ का पालन करते हो वैसे ही तुम देवताओं के श्रेष्ठ मार्ग से हमारे यज्ञ में आओ ।१। आज सब यज्ञ तुम्हारे अन्तःकरण को स्नेह प्रदान करें । घृत मिश्रित सोम रस पर्याप्त मात्र में तुम्हारे हृदय में प्रवेश करे । चमस में रखा हुआ सोम तुम्हारी इच्छा करता है, वह स्नेहमय होकर तुम्हें उत्तम कर्मों की प्रेरणा दे ।२। हे ऋभओ ! जो व्यक्ति तीनों सवनों में तुम्हारे निमित्त देवताओं का हित करने वाले सोम को धारण करते हैं, उनमें हम अत्यंत मनस्वी हुए तुम्हारे लिए सोम रस देते हैं ।३। हे ऋभुओ ! तुम्हारे घोड़े हृष्ट-पुष्ट है, तुम्हारे रथ देदीप्यमान हैं । तुम्हारी ठोड़ी लोहे के समान दृढ़ है । तुम अन्नों के स्वामी तथा उत्तम दान वाले हो । हे बलवानो ! तुम्हारी पुष्टि के निमित्त हम इस प्रथम सवन में अनुष्ठान करते हैं, ।४। हे ऋभुओ ! हम महान् बढ़े हुये धन की याचना करते हैं । युद्धकाल उपस्थिति होने पर अत्यंत शक्तिशाली रक्षक को बुलाते हैं तथा सदा दानशील, अश्वों के स्वामी तुम्हारे गणों को हम बुलाते हैं ।५। (६)

सेदृभवो यमवथ यूयमिन्द्रश्च मर्त्यम् ।
स धोभिरस्तु सनिता मेधसाता सो अवंता ॥६
वि नो वाजा ऋभुक्षणः पथश्चितन यष्टवे ।
अस्मभ्यं सूरयः स्तुता विश्वा आशास्तरीषणि ॥७
तं नो वाजा ऋभुक्षण इन्द्र नासत्या रयिम् ।
समश्वं चर्षणिभ्य आ पुरु शस्त मघत्तये ॥८॥१०

हे ऋभुओ ! तुम और इन्द्र जिसके रक्षक होते हो, वह मनुष्य सबमें श्रेष्ठ होता। वह अपने कार्य द्वारा धन-भाग प्राप्त करे तथा यज्ञ में घोड़े से युक्त हो ।६। हे ऋभुओ ! हमको यश-मार्ग गामी बनाओ । तुम मेधावी हो तुम पूजित होकर हमारे लिए सब दिशाओं में सफल होने की सामर्थ्य बाँटने वाले होओ ।७। हे ऋभुओ ! हे इन्द्र ! हे अश्विनीकुमारो ! हम स्तोताओं को तुम धन-दान के निमित्त श्रेष्ठ धन और घोड़ों के दान की प्रेरणा करो ।८। (१०)

सूक्त ३८

(ऋषि—वामदेवः। देवता—द्यावापृथिव्यौ, दधिक्राः । छंद—पंक्तिः, त्रिष्टुप)

उतो हि वां दात्रा सन्ति पूर्वा या पूरुभ्यस्त्रसदस्युर्नितोशे ।
क्षेत्रासां द्रदयुरुर्वसारासां घनं दस्युभ्यो अभिभूतिमुग्रम् ॥१
उत वाजिन पुरुनिष्षिध्वानं दधिक्रामु ददथुर्विश्वकृष्टिं ।
ऋजिप्यं श्येनं प्रुषितप्सुमाशुं चर्कृत्यमर्यो नृपतिं न शूरम् ॥२
यं सीमनु प्रवतेव द्रवन्तं विश्व पूरमंदति हर्षमाणः ।
षड्भिर्गृध्यन्तं मेधयुं न शूरं रथतुरं वातमिव ध्रजन्तम् ॥३
यः स्मारुन्धानो गध्या समत्सु सनुतरश्चरति गोषु गच्छन् ।
आविर्ऋजीको विदथा निचिक्यत्तिरो अरतिं पर्याप आयोः ॥४
उत स्मैन वस्त्रमथिं न तायुमनु क्रोशन्ति क्षितयो भरेषु ।
नीचायमान जसुरिं न श्येनं श्रवश्चाच्छा पशुमच्च यूथम् ॥५॥११

हे आकाश पृथिवी, "त्रसदस्यु" नामक दानी राजा तुमसे बहुत धन पाकर माँगने वालों को दिया । तुमने उनको घोड़ा और पुत्र प्रदान किया था तथा राक्षसों का संहार करने के लिए विपक्षियों को हनने वाला तीक्ष्ण अस्त्र दिया था ।१। अनेक शत्रुओं को रोकने वाले, सभी मनुष्यों की रक्षा करने वाले सुन्दर चाल वाले, विशेष प्रकाश वाले, द्रुतगामी, पराक्रमी, भूमिपति के समान शत्रुओं का नाश करने वाले दधिक्रादेव (अश्व-रूप अग्नि) को तुम दोनों धारण करने वाली हो । २ । सब मनुष्य प्रसन्न होकर जिस

दधिक्रा की पूजा करते हैं, वे नीचे जाने वाले के समान गमन करने वाले वीर के समान पैरों से दिशाओं को उलाँघने वाले, रथमें चलने वाले तथा वायु समान शीघ्र चाल वाले हैं ।३। जो युद्ध में एकत्र हुये पदार्थों को रोकते हुए सब दिशाओं में जाते हुए वेग से चलते हैं जिनकी शक्ति स्वयं प्रकट होती रहती है वे जानने योग्य कर्मों के ज्ञाता स्तोता यजमानों के शत्रुओं को यशस्वी नहीं होने देते ।४। जैसे लोग वस्त्र चुराने वाले चोर को देखकर चिल्लाते हैं, वैसे ही युद्ध-भूमि में दधिक्रादेव को देखकर शत्रुगण चीखते हैं । जैसे नीचे को ओर आते हुए भूखे बाज को देखकर पक्षी नहीं ठहराते, वैसे ही मनुष्य अन्न और पशुओं के निमित्त जाते हुए दधिक्रा देव को देखकर चीखते हैं ।५। (११)

उय स्मासु प्रथमः सरिष्यन्नि वेवेति श्रेणिभी रथानाम् ।
स्रजं कृण्वानो जन्यो न शुभ्वा रेणूं रेरिहत्किरणं ददश्वान् ।।६
उत स्य वाजो सहुरिऋतावा शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये ।
तुरं यतीषु तुरयन्नृजिप्योऽधि भ्रवोः किरते रेणुमृञ्जन् ।।७
उत स्मास्य तन्यतोरिव द्योऋघायतो अभियुजो भयन्ते ।
यदा सहस्रमभि पोमयोधीद्दु वंर्तुः स्मा भवति भीम ऋञ्जन् ।।८
उत स्मास्य पनयन्ति जना जूतिं कृष्टिप्रो अभिमूतिमाशोः ।
उतैनमाहुः समिथे वियन्तः परा दधिक्रा असरत्सहस्रैः ।।९
आ दधिक्राः शवसा पंच कृष्टीः सूर्यइव ज्योतिषापस्ततान ।
सहस्रसाः शतसा वाज्यर्वा पृणक्तू मध्वा समिमा वचांसि ।।१०।१२

वे राक्षम सेनाओं में जाने की इच्छा से रथों की पंक्ति के समान गमन करते हैं । वे सुशोभित हैं और मनुष्यों का हित करने वाले घोड़े के समान सुन्दर लगते हैं । वे मुख में पड़ी लगाम को चबाते और पाँव से उड़ती हुई धूल को चाटते हैं ।६। इस प्रकार वह घोड़ा अन्नवान् सहन शील और अपने देह द्वारा युद्ध कार्य को सिद्ध करता है । वह वेग से चलने वाला शत्रुओंकी सेनाओं में वेग से दौड़ता है । वह धूल को पाँव

से उड़ाकर अपनी भौंहों में धारण करता है ।७। युद्ध की कामना करने वाले व्यक्ति निनाद करने वाले उज्ज्वल वज्रके समान घातक दधिक्रा से डरते हैं। जब वे सब ओर प्रहार करते हैं। तब वे महापराक्रमी हो जाते हैं। उस समय उन्हें कोई रोक नहीं सकता ।८। मनुष्यों की इच्छा पूर्ण करने वाले, अत्यन्त वेग से युक्त दधिक्रादेव के विजयोल्लास युक्त वेग की स्तोता स्तुति करते हुए कहते हैं कि 'शत्रु हारेंगे' दधिक्रादेव हजार संख्यक सैन्य बल के साथ युद्ध में जाते हैं ।९। सूर्य अपने तेज से जैसे जल-वृद्धि करते हैं वैसे ही दधिक्रादेव जल द्वारा 'पञ्चकृष्टि' की वृद्धि करते हैं सैकड़ों तथा हजारों फलों के देने वाले दधिक्रादेव हमारे स्तुति रूप वचनों को अभिष्ट फल देते हुए सम्पादन करें ।१०। [१२;

सूक्त ३९

(ऋषि—वामदेवः । देवता—दधिक्राः । छन्द—त्रिष्टुप् पंक्ति, अनुष्टुप्)

आशु दक्षिक्रां तमु नु ष्टबाम दिवस्पृथिव्या उत चर्किराम् ।
उच्छन्तीमर्मामुषसः सूदयन्त्वति विश्वानि दुरितानि पर्षन् ॥१
महश्चर्कर्म्यर्वतः क्रतुप्रा दधिक्राव्णः पुरुवारस्य वृष्णः ।
यं पूरुभ्यो दीदिवांसं नाग्निं ददथुर्मित्रावरुणा ततुरिम् ॥२
यो अश्वस्य दधिक्राव्णो अकारीत्समिद्धे अग्ना उषसो व्युष्टौ ।
अनागस तमदितिः कृणोतु स मित्रेण वरुणेना सजोषाः ॥३
दधिक्राव्ण इष ऊर्जो महो यदमन्महि मरुतां नाम भद्रम् ।
स्वस्तये वरुणं मित्रमग्निं हवामह इन्द्रं वज्राबाहुम ॥४
इन्द्रमिवेदुभये वि ह्वयन्त उदीराणा यज्ञमुपप्रयन्तः ।
दधिकामु सूदनं मर्त्याय ददथुर्मित्रावरुणा नो अश्वम् ॥५
दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभि नो मुखा करत्प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥६

उन शीघ्रगामी दधिक्रादेव की हम मनुष्य शीघ्र ही पूजा करेंगे। आकाश पृथिवी के निकट से उनके सामने घास डालेंगे। अन्धकार को दूर

करने वाली उषा हमारी रक्षिका हों और वह सभी सङ्कट से हमको परिलगावें ॥ १ ॥ हम यज्ञ कार्य के सम्पादनकर्त्ता हैं। बहुतों द्वारा वरण किये जाने वाले, कामनाओं की वर्षा के करने वाले दधिक्रादेव का हम स्तवन करेंगे। हे मित्र वरुण ! तुम देदीप्यमान अग्नि के समान दुःखों से तारने वाले दधिक्रा को मनुष्यों के हितार्थ धारण करने वाले हो ॥२॥ जो यजमान उषा काल में अग्नि के प्रज्वलित होने पर अश्व रूप दधिक्रा का स्तवन करते हैं, उनको मित्र वरुण अदिति और दधिक्रा पापों से बचावें ॥ ३ ॥ अन्न का साधन करने वाले, बल सम्पादन करने वाले, स्तुति करने वालों का मङ्गल करने वाले महान् दधिक्रा देव का नाम संकीर्तन करते हैं। सुख प्राप्ति के निमित्त हम मित्र, वरुण, अग्नि और वाहु में वज्र धारण करने वाले इन्द्र को बुलाते हैं ॥ ४ ॥ जो युद्ध को तैयार करते हैं, और जो यज्ञ-कर्म करते हैं, यह दोनों ही इंद्र के समान दधिक्रादेव को बुलाते हैं। हे मित्रावरुण ! तुम मनुष्यों को प्रेरणा देने वाले, घोड़े के रूप वाले दधिक्रादेव को हमारे निमित्त धारण करो ॥५॥ विजय से युक्त, व्यापक और वेग वाले दधिक्रा का हम स्तवन करते हैं। वे हमारी नेत्रादि मुख इन्द्रियों को सुरभित करें और हमारी आयु को बढ़ावें ॥६॥

[१३]

सूक्त ४०

(ऋषि—वामदेवः। देवता—दधिक्रावा, सूर्यः। छन्द—त्रिष्टुप्)

दधिक्राव्ण इदु नु चर्किराम विश्वा इन्मामुषसः सूदयन्तु।
अपामग्नेरुषसः सूर्यस्य बृहस्पतेराङ्गिरसस्य जिष्णोः ॥१
सत्वा भरिषो गविषो दुवन्यसच्छ्रवस्यादिष उषसस्तुरण्य सत्।
सत्यो द्रवो द्रवरः पतङ्गरो दधिक्रावेषमूर्जं स्वर्जनत् ॥२
उत स्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः पर्णं न वेरनु वाति प्रगर्धिनः।
श्येनस्येव ध्रजतो अङ्कसं परि दधिक्राव्णः सहोर्जा तरित्रतः॥३
उत स्य वाजी क्षिपणि तुरण्यति ग्रीवायां बद्धो अपिकक्ष आसनि।
क्रतुं दधिक्रा अनु संतवीत्वत्पथामङ्कांस्यन्वापनीफणत् ॥४
हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्ष सद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।

नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम् ।।५।।१४

उन दधिक्रादेव का हम बारम्बार पूजन करेंगे । सभी उषायें हमको कर्मों में लगावें । जल, अग्नि, उषा, सूर्य, बृहस्पति और अङ्गिरा वंशज विष्णु का हम स्तवन करेंगे ।। १ ।। भरण-पोषण कार्य, चतुर, गमनशील गौओं को प्रेरणा देने वाले, परिचारकों के साथ रहने वाले दधिक्रा इच्छा करने योग्य उषा वेला में अन्न की कामना करें । वे वेगवान्, शीघ्र चलने वाले दधिक्रा अन्न, बल और दिव्य गुणों के प्रकट करने वाले हो ।।२।। जैसे सभी पक्षी, पक्षियों की परम्परागत चाल पर चलते हैं वैसे ही सब भगवान् जीव शीघ्रता से युक्त एवं कामना वाले दधिक्रा की चाल पर चलते हैं । श्येन के समान शीघ्रगामी एवं रक्षा करने वाले दधिक्रा के सब ओर एकत्र होकर सभी अन्न के निमित्त जाते हैं ।।३।। यह देवता घोड़े के रूप वाले हैं । यह कण्ठ, कक्ष और मुख में बंधे हुए होते हैं और पैदल ही तेजी से चलते हैं । वे दधिक्रा अत्यन्त पराक्रमी होकर टेढ़े मार्गों को भी पार करते हुए यज्ञ के सामने मुख करके सब ओर जाते हैं ।। ४ ।। आदित्य आकाश में, वायु अन्तरिक्ष में और होता रूप यज्ञादि वेदी पर अवस्थित होते हैं, अतिथि के समान पूजनीय होकर घर में वास करते हैं । ऋतु मनुष्यों मे वरणीय स्थान तथा यज्ञस्थल में रहते हैं । वे जल, रश्मि, सत्य और पर्वतों में उत्पन्न हुए हैं ।।५।।

१४]

४१ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—इन्द्रावरुणोः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः,)

इन्द्र को वाँ वरुणा सुम्नमाप स्तोमो हविष्माँ अमृतो न होता ।
यो वां हृदि क्रतुमाँ अस्मदुक्तः पस्पर्शदिन्द्रावरुणा नमस्वान् ।।१
इन्द्रा ह यो वरुण चक्र आपी देवौ मर्तः सख्याय प्रसस्वान् ।
स हन्ति वृत्रा समिथेषु शत्रूनवोभिर्वा महद्भिः स प्र शृण्वे ।।२
इन्द्रा ह रत्नं वरुण धेष्ठेत्था नृभ्यः शशमानेभ्यस्ता ।
यदीं सखाय सख्याय सोमैः सुतेभिः सुप्रयसा मादयेते ।।३
इन्द्रा युवं वरुणा विद्युमस्मिन्नोजिष्ठमुग्रानि वधिष्टं वज्रम् ।

यो नो दुरेवो वृकतिर्दभीतिस्तस्मिन्मिमाथमभिभूत्योजः ॥४
इन्द्रा युवं वरुणा भूतमस्या धियः प्रेतारा वृषभेव धेनोः ।
सा नो दुहीयद्यवसेव गत्वी सहस्रधारा पयसा मही गौः ॥५।१५

हे इन्द्र ! हे वरुण ! हे अमरत्व प्राप्त होता ! अग्नि के समान हवियुक्त कौन सा स्तोत्र तुम दोनों की कृपा प्राप्त कर सकता है ? वह स्तोत्र हमारे द्वारा अर्पित हुआ हवियों से युक्त होकर तुम दोनों के अन्तःकरण में घुस जाय ॥ १ ॥ हे इन्द्रावरुण ! तुम दोनों प्रसिद्ध हो । जो मनुष्य तुम्हारे निमित्त हविरत्न से युक्त बन्धुत्व प्रदर्शित करता है, वह मनुष्य पापों को नष्ट करने में समर्थ है । वह युद्ध में शत्रु का संहार करता है और विशाल रक्षा साधनों द्वारा प्रसिद्धि प्राप्त करता है ॥ २ ॥ हे प्रख्यात इन्द्र और वरुण ! तुम दोनों देवता हम स्तोताओं को सुन्दर धन प्रदान करने वाले बनो । यदि तुम यजमान के सखा रूप हो तो मित्र भाव के निमित्त सिद्ध किये गये इस सोम रस से पुष्टि को प्राप्त होओ और धन देने वाले बनो ॥३॥ हे इन्द्र और वरुण ! तुम दोनों विकराल कर्म वाले हो । इस शत्रु पर तुम दोनों ही अत्यन्त तेज वाले वज्र का प्रहार करो । जो शत्रु अदानशील, हिंसक तथा हमारे द्वारा दमन किये जाने योग्य नहीं है, उस शत्रु के विरुद्ध तुम दोनों उसे हराने वाली शक्ति से हराओ ॥ ४ ॥ हे इन्द्र और वरुण ! जैसे बैल गौ को प्रेम करता है वैसे ही तुम दोनों स्तुतियों को प्रेम करने वाले हो । तृणादि को खाकर जैसे धेनु दूध देती है, वैसे ही तुम्हारी स्तुति रूप धेनु हमारी कामनाओं को सदा देती रहे ॥५॥ [१५]

तोके हिते तनय उर्वरासु सूरो दृशीके वृषणश्च पौंस्ये ।
इन्द्रा ना अत्र वरुणा स्यातामवोभिर्दस्मा परितक्म्यायाम् ॥६
युवामिद्ध्यवसे पूर्व्याय परि प्रभूती गविषः स्वापी ।
वृणीमहे सख्याय प्रियाय शूरा मंहिष्ठा पितरेव शम्भू ॥७
ता वां धियोऽवसे वाजयन्तीराजिं न जग्मुर्युवयूः सुदानू ।
श्रिये न गाव उप सोममस्युरिन्द्रं गिरो वरुणं मे मनीषाः ॥८

इमा इन्द्रं वरुणं मे मनीषा अग्मन्नुप द्रविणमिच्छमानाः ।
उपेमस्थुर्जोष्टार इव वस्वो रघ्वीरिव श्रवसो भिक्षमाणाः ॥९
अश्व्यस्य त्मनाः रथ्यस्य पुष्टेर्नित्यस्य रायः पतयः स्याम ।
ता चक्राणा ऊतिभिर्नव्यसीभिरस्मत्रा रायो नियुतः सचन्ताम् ॥१०

आ नो वृहन्ता वृहतीभिरूती इन्द्र यातं वरुण वाजसातौ ।
यद्दिद्यवः पृतनासु प्रक्रीलान्तस्य वां स्याम सवितार आजेः ॥११॥१६

हे इन्द्र और वरुण ! रात्रि काल से तुम दोनों अपने रक्षा-साधनों से पूर्ण होकर शत्रुओं का संहार करने के लिए चल दो, जिससे हम संतानादि धन एवं उर्वरा पृथिवी को पा सकें और आयु पर्यन्त सूर्य के दर्शन करते रहें ॥६॥ हे इन्द्र वरुण ! गाय की कामना करने वाले हम, तुमसे, हमारे प्राचीन काल से चले आ रहे पोषण-सामर्थ्य की याचना करते हैं । तुम दोनों ही सब कार्यों के करने में समर्थ, मित्र रूप और अत्यन्त पूजनीय हो । तुम दोनों से हम पुत्र को देने वाले पिता के समान अत्यन्त स्नेह प्रदान करने की याचना करते हैं ॥७॥ हे इन्द्रावरुण ! तुम दोनों देवता सुन्दर फल प्रदान करने वाले हो । जैसे वीर पुरुष युद्ध की इच्छा करते रहते हैं, वैसे ही हमारी स्तुतियाँ रत्नादि धन की अभिलाषा से रक्षा प्राप्ति के निमित्त तुम्हारे पास जाती हैं । जैसे गोऐं दूध दही आदि सुन्दर पदार्थों के निमित्त सोम के पास रहती हैं, वैसे ही हमारी हार्दिक प्रार्थनाऐं इन्द्र के पास पहुंचती हैं ॥८॥ जैसे सेवक गण धन के निमित्त धनिकों की सेवा करने को जाते हैं वैसे ही हमारी स्तुतियाँ धन की कामना करती हुई इन्द्र और वरुण के पास जावें । वे स्तुतियाँ अन्न की भीख माँगने वाले भिखारियों के समान इन्द्र के पास पहुंचे ॥९॥ वे इन्द्र-वरुण दोनों देवता गमनशील हैं अपने अभिनव रक्षा-साधनों सहित हमारे सामने अश्वादि पशु एवं धन सम्पादित करें । तब हम बिना प्रयत्न किए ही घोड़ा, रथा, बलों और स्थिर धनों के अधीश्वर होंगे ॥१०॥ हे इन्द्रावरुण ! तुम महान् हो । तुम अपने महान् रक्षा-साधनों सहित आओ । अन्न प्राप्ति वाले जिस संग्राम में शत्रु-सेना के हथियार आघात करते हैं, उस संग्राम में हम साधकगण तुम दोनों देवताओं की कृपा से विजय प्राप्त करें ॥११॥

[१६]

सूक्त ४२

(ऋषि—त्रसदस्युः, पौरुकुत्स्यः। देवता—आत्माः, इन्द्रावरुणः।

छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

मम द्विता राष्ट्रं क्षत्रियस्य विश्वोयोर्विश्वे अमृतः यथा नः।
क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवा राजामि कृष्टेरुपमस्य वव्रेः॥१
अहं राजा वरुणो मह्यं तान्यसुर्वाणि प्रथमा धारयन्त।
क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवा राजामि कृष्टेरुपमस्य वव्रेः॥२
अहमिन्द्रो वरुणस्ते महित्वोर्वी गभीरे रजसी सुमेके।
त्वष्टेव विश्वा भुवनानि विद्वान्त्समैरयं रोदसी धारयं च॥३
अहमपो अपिन्वमुक्षमाणा धारयं दिवं सदनं ऋतस्य।
ऋतेन पुत्रौ अदितेर्ऋतावोत त्रिधातु प्रथयद्वि भूम॥४
मां नरः स्वश्वा वाजयन्तो मां वृताः समरणे हवन्ते।
कृणोम्याजिं मघवाहमिन्द्र इयर्मि रेणुमभिभूत्योजा॥५॥१७

हम क्षत्रिय हैं। सब मनुष्यों के हम स्वामी हैं हमारा राष्ट्र दो प्रकार का है। जैसे सब देवता हमारे हैं, वैसे ही सम्पूर्ण प्रजाजन हमारे ही हैं। हम सुन्दर रूप वाले एवं वरुण के समान यशस्वी हैं। देवता हमारे यज्ञ की रक्षा करते हैं॥१॥ हम वरुण तेजस्वी राजा हैं। देवता हमारे निमित्त ही राक्षसों का संहार करने वाला पराक्रम धारण करते हैं। हम सुन्दर रूप वाले वरुण अन्तकस्थ हैं। हमारे यज्ञ की देवता रक्षा करते हैं और हम मनुष्यों के भी स्वामी हैं॥ २॥ हम इन्द्र और वरुण हैं। महत्त्व के कारण विशालता को प्राप्त, सुन्दर रूप वाले आकाश और पृथिवी भी हम हैं। हम प्राणीमात्र को प्रजापति के समान प्रेरणा देने वाले हैं हम आकाश और पृथिवी के धारण करने वाले तथा प्रज्ञावान् हैं। ॥ ३ ॥ हमने ही वृष्टिरूप जल को सींचा है सूर्य के आश्रय स्थान आकाश को हमने ही धारण किया है। हम अदिति पुत्र जल के निमित्त यज्ञवान् हुए हैं। हमने ही व्यापक आकाश को तीन लोकों के रूप

में परिवर्तित किया है ॥४॥ युद्ध में नेतृत्व करने वाले, सुन्दर अश्ववान् वीर हमारे ही पीछे चलते हैं। वे सब सङ्कल्पवान् हुए युद्ध में हमको ही बुलाते हैं। हम ऐश्वर्यवाली इन्द्र के रूप में युद्ध करते हैं। हम शत्रु को हराने वाले बल से परिपूर्ण हैं। हमारे प्रबल वेग से युद्धस्थल में धूल उड़कर आकाश में छा जाती है ।५। [१७]

अहं तां विश्व चकरं नकिर्मा दैव्यं सहो वरते अप्रतीतम् ।
यन्मा सोमासो ममदन्यदुक्थोभे भयेते रजसी अपारे ॥६
विदुष्टे विश्वा भुवनानि तस्म ता प्र ब्रवीषि वरुणाय वेधः ।
त्वं वृत्राणि शृण्विषे जघन्वान्त्व वृताँ अरिणा इन्द्र सिन्धून् ॥७
अस्माकमत्र पितरस्यत आसन्त्सप्त ऋषयो दौर्गहे बध्यमाने ।
त आयजन्त त्रसदस्युमस्या इन्द्रं न बृत्रतुरमर्धदेवम् ॥८
पुरुकुत्सानी हि वामदाशद्धव्येभिरिन्द्रावरुण नमोभिः ।
अथा राजानं त्रसदस्युमस्या वृत्रहणं ददथुरर्धदेवम् ॥९
राया वयं ससवांसो मदेम हव्येन देवा यवसेन गावः ।
तां धेनुमिन्द्रावरुणा युवं नोविश्वाहाधत्तमनपस्फुरन्तीम् ॥१०।१८

हम दिव्य बल से परिपूर्ण हैं। हमको हमारे कार्यों से कोई नहीं रोक सकता। हमने उन सब कार्यों को पूर्ण किया है। जब सोमरस और स्तोत्र हमको पुष्ट करते हैं तब हमारे बल को देखकर विशाल आकाश और भू-मण्डल दोनों ही चलायमान हो जाते हैं ।६। हे वरुण ! तुम्हारे कार्य को सभी प्राणी जानते हैं। हे स्तुति करने वालो ! वरुण की स्तुति करो। हे इन्द्र ! तुमने शत्रुओं का संहार किया है—तुम्हारे इस कर्म को सभी जानते हैं। तुमने रुकी हुई नदियों को भी छोड़ा—प्रवाहित किया है ।७। 'पुरुकुत्स' के बन्धन में पड़ने पर सप्तर्षि ने इस पृथिवी का पालन किया था। उन्होंने इन्द्रावरुण की कृपा से पुरुकुत्स की पत्नी के निमित्त यज्ञ किया और 'त्रसदस्यु' को प्राप्त किया था। वह त्रसदस्यु इन्द्र के समान शत्रुओं का नाशक हुआ और वह अर्द्ध देवत्व का भी अधिकारी हुआ ॥ ८ ॥ हे इन्द्रावरुण ! ऋषि की प्रेरणा से "पुरुकुत्स" की भार्या ने तुम दोनों को हविरन्न

अर्द्ध स्तुतियों द्वारा प्रसन्न किया। फिर तुम दोनों ने उसे अर्द्ध देवत्व प्राप्त शत्रुओं का नाश करने वाले त्रसदस्यु को प्रदान किया ।।९।। तुम दोनों की स्तुति करके हम धन प्राप्त कर सन्तुष्ट होंगे। देवता हविन्न से तथा गायें तृणादि से तृप्ति को प्राप्त होती हैं। हे इंद्रावरुण ! तुम दोनों विश्व की उत्पत्ति और संहारकर्त्ता हो हमको स्थिर धन प्रदान करो ।।१०।। [१८]

सूक्त ४३

(ऋषि-पुरमीहलाजमीहलौ सौहत्रौ। देवता-अश्विनौ:। छन्द–त्रिष्टुप्,पंक्ति)

क उ श्रवत्कतम यज्ञियानां वन्दारु देवः कतमो जुषाते।
कस्येमां देवीममृतेषु प्रेष्टां हृदि श्रेषाम सुष्टुतिं सुहव्याम् ।।१
को मृलाति कतम आगमिष्ठो देवानामु कतमः शम्भविष्ठः।
रथं कमाहुर्द्रवदश्वमाशुं यं सूर्यस्य दुहितावृणीत ।।२
मक्षू हि ष्मा गच्छथ ईवतो द्यून्निन्द्रो न शक्ति परितक्म्यायाम्।
दिव आजाता दिव्या सुहर्णा कया शचीनां भवथः शचिष्ठा ।।३
का वां भूदुपमातिः कया न आश्विना गमथो हूयमाना।
को वां महश्चित्त्यजसो अभीक उरुष्यतं माध्वी दस्रान ऊती ।।४
उरु वां रथः परि नक्षति द्यामा यत्समुद्रादधि वर्तते वाम्।
मध्वा माध्वी मधु वां प्रुपायन्यत्सीं वां पृक्षो युरजन्त पक्वाः ।।५
सिन्धुर्ह वां रसया सिञ्चदश्वान्घृणा वयोऽरुषासः परिग्मन्।
तदू षु वामजिरं चेति यानं येन पती भवथः सूर्यायाः ।।६
इहेह यद्वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना।
उरुष्यतं जरितारं युव ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ।।७।१९

यज्ञ के देवताओं में कौन से देवता इस स्तुति को सुनेंगे ? कौनसे देवता इस पूजा के योग्य स्तोत्र को ग्रहण करेंगे ? देवताओं में ऐसे किस देवता को हम अपनी स्नेहमयी, उज्ज्वल, हविन्न वाली सुन्दर स्तुति को सुनावें जो इसके अधिकारी हों ।।१।। हमको कौन से देवता सुख प्रदान करेंगे ? हमारे यज्ञ में कौन से देवता सर्वाधिक आते हैं ? देवताओं में

कौन से देवता हमको कल्याणकारी होंगे ? किसका रथ सुन्दर घोड़ों से युक्त और अधिक वेगवान् है, जिसका सूर्य की पुत्री सूर्या ने आदर किया था ? उपर्युक्त कार्यों के करने वाले दोनों अश्विनीकुमार ही हैं ।।२।। हे अश्विनीकुमारो ! रात्रि के अवसान होने पर इन्द्र जैसे अपने पराक्रम दिखाते हैं, वैसे ही तुम दोनों सोमाभिषव के समय आओ । तुम दोनों आकाश मार्ग से आते हो । तुम सुन्दर गति वाले तथा दिव्य गुण वाले हो । तुम्हारे कार्यों में कौन-सा कार्य सबसे अधिक उत्तम है ? ।।३।। तुम दोनों के उपयुक्त कौन-सी स्तुति है ? तुम किस स्तोत्र द्वारा बुलाये जाने पर आओगे ? तुम दोनों के विकराल क्रोध को सहन करने की सामर्थ्य किस में है ? हे मीठे जल के उत्पन्न करने वालो ! तुम शत्रुओं का नाश करने वाले हो । तुम अपना आश्रय प्रदान करते हुए हमारी रक्षा करो ।।४।। हे अश्विनीकुमारो ! तुम्हारा रथ आकाश में चतुर्दिक् अधिकाधिक गमनशील है । वह समुद्र में भी चलता है । तुम्हारे निमित्त परिपक्व जौ के साथ सोमरस मिश्रित हुआ है । तुम मधुर जल के उत्पन्न करने वाले हो और शत्रुओं का नाश करने में समर्थ हो । यह अध्वर्यु तुम्हारे निमित्त सोमरस में दूध मिला रहे हैं ।। ५ ।। मेघ द्वारा तुम्हारे अश्वों को अभिषिक्त किया गया है । दीप्ति से प्रकाशवान् हुए तुम्हारे अश्व पक्षियों के समान चलते हैं । जिस रथ द्वारा तुम दोनों ने सूर्या की रक्षा की थी, तुम दोनों का वह प्रसिद्धि प्राप्त रथ शीघ्रता से चलने वाला है ।।६।। हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों एक समान हो । इस यज्ञ में हम स्तुति द्वारा तुम दोनों को समान मानते हुए एकत्र आहूत करते हैं । यह सुन्दर स्तुति हमको उत्तम फल देने वाली हो । हे अश्विद्वय ! तुम शोभन अन्न से युक्त हो । हम स्तोताओं के रक्षक होओ । हमारी कामना तुम्हारे पास पहुंचते ही पूर्ण हो जाती हैं ।७। [११]

सूक्त ४४

(ऋषि-पुरुमीह्लाजमीह्लौ सोहोत्रौ । देवता-अश्विनौ । छन्द-त्रिष्टुप्,पंक्तिः)

तं वां रथं वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना सङ्गति गोः ।

य: सूर्यां वहति बन्धुरायुर्गिर्वाहंस पुरुतमं वसूयुम् ॥१
युवं श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथः शचीभिः ।
युवोर्वंपुरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत्ककुहासो रथे वाम् ॥२
को वामद्या करते रात हव्य ऊतये वा सुतपेयाय वार्कैः ।
ऋतस्य वा वनुषे पूर्व्याय नमो येमानो अश्विना ववर्तत् ॥३
हिरण्ययेन पुरुभू रथेनेमं यज्ञं नासत्योप यातम् ।
पिवाय इन्मधुनः सोम्यस्य दधथो रत्नं विधते जनाय ॥४
आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या हिरण्ययेन सुवृता रथेन ।
मा वामन्ये नि यमन्देवयन्तः सं यद्दे नाभिः पूर्व्या वाम् ॥५
नू नो रयिं पुरवीरं बृहन्तं दस्रा मिमाथामुभयेष्वस्मे ।
नरो यद्वामश्विना स्तोममावन्त्सधस्तुतिमाजमीलहासोः अग्मन्॥ ६
इहेह यद्वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यत जरितारं युवं ह श्रितः कामो नातत्या युवद्रिक ॥७।२०

हे अश्विद्वय ! हम तुम्हारे गोदाता एवं प्रसिद्ध वेगवान् रथ को बुलाते हैं । वह रथ सूर्या को आश्रय दे चुका है । उसमें बैठने का स्थान काठ का बना है । तुम्हारा वह रथ स्तुतियों को वहन करने वाला तथा अन्न-धन से युक्त परमैश्वर्य वाला है ।१। हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों ही देवता हो । तुम दोनों ही अपने उत्तम कर्म द्वारा सुशोभित होते हो । तुम दोनों के शरीर में सोम-रस व्याप्त होता है । तुम्हारे रथ को उत्तम अश्व ढोते हैं ।२। हे अश्विद्वय ! सोम प्रदान करने वाला कौनसा यजमान सोम-पान के निमित्त और अपनी रक्षा-कामना करता हुआ तुम्हारा स्तवन करता है ? कौनसा नमस्कार कर्ता यजमान तुम दोनों को यज्ञ की ओर बुलाता है ।३। हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों अनेक कर्म वाले हो । तुम अपने स्वर्ण युक्त रथ सहित इस यज्ञ में आओ और मधुर सोम रस को पीओ । हम साधकों को सुन्दर धन प्रदान करो ।४। हे अश्विद्वय ! तुम अपने स्वर्णिम रथ से आकाश से हमारे पास आओ । तुम्हें आहूत करने वाले अन्य यजमान तुम्हें यहां आने से

कहीं न रोक न लें इसलिए हमने अपनी स्तुतियों को पहिले ही निवेदन कर दिया है ।५। हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों हमको बहुत संतानयुक्त धन दो । मुझ "पुरमीह्ल" के ऋत्विकों ने अपने स्तोत्र की शक्ति से तुम्हें यहाँ बुलाया और "अजमीह्ल" के ऋत्विकों ने जो स्तोत्र-पाठ किया है, उनकी शक्ति भी उसी के साथ मिली हुई है ।६। हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों इस यज्ञ में समान मन वाले होओ । हम जिस स्तोत्र द्वारा तुम दोनों को एक करते हैं, वह सुन्दर स्तोत्र हमारे निमित्त उत्तम फल वाला हो । तुन दोनों श्रेष्ठ अन्न वाले हो । मुझ स्तुति करने वाले के तुम रक्षक बनो । हमारी कामना तुम्हारे पास पहुंचने से पूरी हो जाती हैं ।७। (२०)

सूक्त ४५

(ऋषि—वामदेवः देवता—अश्विनौ । छन्द—जगती,त्रिष्टुप्)

एष स्य भानुरुदियर्ति युज्यते रथः परिज्मा दिवो अस्य सानवि ।
वृक्षातो अस्मिन्मिथुना अधित्रयो दृतिस्तुरीयो मधुनोविरप्शते ॥१
उद्वां पृक्षासा मधुमन्त ईरते रथा अश्वास उषसो व्युष्टिषु ।
अपोर्णवन्तस्तम आ परीवृतं स्वर्ण शुक्रं तन्वन्त आ रजः ॥२
मध्वः पिवतं ममूपेभिरासभिरुत प्रियं मधुने युञ्जाथां रथम् ।
आ वर्तनिं मधुना जिन्वथस्पथो दृतिं वहेथे मधुमन्तमश्विना ॥३
हंसायो ये वां मधुमन्तो अस्रिधो हिरण्यपर्णा उहुव उषर्बुधः ।
उदप्रुतो मन्दिनोमन्दिनिस्पृशोमध्वो न मक्षःसवनानि गच्छथः॥४
स्वध्वरासो मधुमन्तो अग्नय उस्रा जरन्ते प्रति वस्तोरश्विना ।
यन्निक्तहस्तस्तरणिर्विचक्षणः सोमं सुषाव मधुमन्तमद्रिभिः ॥५
आकेनिपासो अहभिर्दविध्वतः स्वर्ण शुक्रं तन्वन्त सा रजः ।
सूरश्चिदश्वान्युयुजान ईयते विश्वां अनु स्वधया चेतथस्पथः ॥६
प्र वाममवोचमश्विना धियन्धा रथः स्त्रश्वो अजरो यो अस्ति ।
येन सद्यः परि रजांसि याथो हविस्मन्तं तरणि भोजमच्छ॥७।२१

प्रकाशवान् सूर्य उदय हो रहे हैं। अश्विनीकुमारों का श्रेष्ठ रथ सब ओर गमन करता है। वह तेजस्वी रथ से जड़ा हुआ है। इस रथ के ऊपर की ओर त्रिविध अन्न हैं तथा सोम रस से भरा हुआ चमस चतुर्थ रूप से सुशोभित है ।१। हे अश्विद्वय ! उषारम्भ में तुम्हारा सुन्दर त्रिविध अन्न और सोम रस से युक्त रथ सब ओर व्याप्त अंधेरे को मिटाता हुआ सूर्य के समान उज्ज्वल प्रकाश को फैलाता हुआ ऊपर की ओर चलता है ।२। हे अश्विद्वय ! तुम अपने सोम पीने के अभ्यस्त मुख द्वारा सोम-रस पीओ। सोम रस पीने के लिये अपने रथ को जोड़कर यजमान के घर में आओ। अपने गमन मार्ग को सोम की कामना करते हुए शीघ्र पूरा कर लो और सोम पूर्ण पात्र को ग्रहण करो ।३। हे अश्विद्वय ! तुम्हारे पास तेज चाल वाले, मधुरिमा से युक्त, द्वेष से शून्य, सुवर्ण के समान तेज वाले, पङ्ख से युक्त उषा काल में चैतन्य होने वाले जलों को प्रेरित करने वाले एवं सोम को स्पर्श करने की इच्छा वाले सुन्दर अश्व हैं, जिनके द्वारा तुम मधुमक्खी के मधु के पास जाने के समान हमारे यज्ञों में आगमन करते हो ।४। कर्मवान् अध्वर्यु जब अभिमन्त्रित जल द्वारा हाथ धोकर पाषण से मधुर सोम कूटते हैं तब यज्ञ के साधन रूप गार्हपत्यादि अग्नि अश्विनीकुमारों का स्तवन करते हैं ।५। पास में ही पड़ती हुई किरणें दिन के द्वारा अंधेरे को नष्ट करती और सूर्य के समान प्रकाश को फैलाती हैं। उस समय सूर्य अपने घोड़ों पर चढ़कर चलते हैं। हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों सोम रस सहित उनके चलते हुए सम्पूर्ण मार्ग को पूरा करो ।६। हे अश्विद्वय ! हम याज्ञिकगण तुम दोनों का स्तवन करते हैं। जो तुम्हारा सुन्दर घोड़े से युक्त नित्य नवीन रथ है तथा जिस रथ द्वारा तुम तीनों लोकों का भ्रमण करते हो, अपने उसी रथ के सहित तुम हविरत्न वाले हमारे यज्ञ में आओ ।७। [२१]

सूक्त ४६ [पांचवाँ अनुवाक]

(ऋषि वामदेवः। देवता—इन्द्रः। छन्द—गायत्री)

अग्रं पिबा मधूमां सुत वायो दिविष्टिषु। त्वं हि पूर्वपा असि ॥१
शतेनाधोअभिष्टुभिर्नियुत्वाँइन्द्रसारथिः। वायोसुतस्यतृम्पतम् ॥२

आ वां सहस्रं हरय इन्द्रवायू अभि प्रयः । वहन्तु सोमपीतये ॥३
रथं हिरण्यवन्धुरमिन्द्रवायूस्वध्वरम् । आहिस्थाथोदिविस्पृशम् ॥४
रथेनपृथुपाजसा दाश्वांसमुप गच्छतम् । इन्द्रवायू इहा गतम् ॥५
इन्द्रवायू अयं सुतस्तं देवेभिः सजोषसा । पिबत दाशुषो गृहे ॥६
इहप्रयाणमस्तुवामिन्द्रवायविमोचनम् । इहवांसोमपीतये ॥७।२२

हे वायो ! स्वर्ग में स्थान बनाने वाले यज्ञ में इस अभिषुत सोम-रस को आकर पीओ, क्योंकि तुम सबसे पहले सोम-रस का पान करने वाले हो ।१। हे वायो ! हे इन्द्र ! तुम दोनों सोम-पान द्वारा तृप्ति को प्राप्त होओ । हे वायो ! तुम लोक के कल्याणकारी कर्म में नियुक्त किये हो । तुम इन्द्र के सारथि होकर हमारी बलवती इच्छाओं को पूर्ण करने के लिये यहाँ आगमन करो ।२। हे इन्द्र और वायो ! तुम दोनों को हजारों घोड़े शीघ्रतापूर्वक सोमपान के निमित्त यहाँ ले आवें ।३। हे इन्द्र और वायो ! तुम दोनों सुवर्ण के उज्ज्वल काठ के आधार वाले तथा आकाश को स्पर्श करते रहने वाले सुन्दर रथ पर चढ़ो ।४। हे इन्द्र और वायो ! तुम दोनों ही श्रेष्ठ शक्ति वाले रथ से ही हवि देने वाले यजमान के समीप आओ । तुम दोनों, यजमान के लिए ही इस श्रेष्ठ यज्ञ में पधारो ।५। हे इन्द्र ! हे वायो ! यह सुसिद्ध सोम रखा है । तुम दोनों समान प्रीति वाले होकर हविदाता यजमान के यज्ञ-स्थान में आकर सोमरस का पान करो ।६। हे इन्द्र ! हे वायो ! इस यज्ञ में तुमको सोमपान कराने के निमित्त अश्व खोल दिए जावें । तुम दोनों इस यज्ञ-स्थान में आओ ।७। [२२]

सूक्त ४७

(ऋषि—वामदेवः । देवता—वायु । छन्द—अनुष्टुप्, उष्णिक्)

वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु ।
आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥१
इन्द्रश्च वायवेषां सोमानां पीतिमर्हथः ।
युवां हि यन्तीन्दवो निम्नमापो न सध्र्यक् ॥२

वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथं शवसस्पती ।
नियुत्वन्ता न ऊतयः आ यतं सोमपीतये ॥ ३
या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा ।
अस्मे ता यज्ञवाहसेन्द्रवायू नि यच्छतम् ॥४।२३

हे वायो! श्रेष्ठ कर्मानुष्ठानों द्वारा पवित्र हुए हम दिव्यलोक प्राप्ति कामना करते हुए पहले तुम्हारे लिए ही सोम रस को लाते हैं। तुम कामना के योग्य हो। अपने वाहन सहित, सोम पीने के निमित्त इस स्थान में पधारो।१। हे वायो! इस ग्रहण किये गये सोम को पीने के पात्र तुम हो और इन्द्र हैं। जैसे जल गड्ढे की ओर जाता है, वैसे ही सब प्रकार के सोम तुम्हारे पास जाते हैं। इस प्रकार तुम दोनों ही सोम को प्राप्त करने वाले हो।२। हे वायो! हे इन्द्र! तुम दोनों ही शक्ति के अधिपति हो, तुम दोनों अत्यन्त पराक्रम वाले एवं घोड़ों से युक्त हो। तुम दोनों एक ही रथ पर बैठकर सोम पीने तथा हमको शरण देने के निमित्त यहाँ आगमन करो।३। हे इन्द्र और वायो! तुम दोनों ही यज्ञ वहन करने वाले एवं सब देवताओं में अग्रणी हो। हम तुमको हविरत्न प्रदान करने वाले यजमान हैं। तुम्हारे पास कामना के योग्य जो अश्व हैं, वह हमको प्रदान करो।४। [२३

सूक्त ४८

(ऋषि—वामदेवः। देवता—वायुः। छन्द—अनुष्टुप्)

विहि होत्रा अवीता विपो न राया अर्यः ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥१
नियुंवाणो अश तीर्नियुत्वाँ इन्द्र सारथिः ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥२
अनु कृष्णो वसुधिती ये माते विश्वपेशाऽसा ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥३
वहन्तु त्वा मनोयुजो युक्तासो नवतिनव ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥४
वायो शतं हरीणां युवस्य पोष्याणाम् ।

उत वा ते सहस्रिणो रथ आ यातु पाजसा ।।५।२४

हे वायो ! हे शत्रुओं को कम्पायमान करने वाले राजा के समान तुम अन्य के द्वारा न पिये गये सोमरस को पहले ही पी लो और स्तुति करने वालों के लिए धनों को प्राप्त कराओ । तुम अपने कल्याणकारी रथ द्वारा सोम पीने के लिये यहाँ आओ ।१। हे वायो ! तुम इन्द्र के साथ ही सारथि रूप में सुवर्णमय रथ द्वारा अश्वादि से युक्त होकर सौम्य होकर स्वभाव वाले बलवान् व्यक्तियों से युक्त तथा अनेक दुष्ट व्यक्तियों से रहित रहते हो । तुम हर्षकारी सोम का पान करने के लिये यहाँ पधारो ।२। हे वायो ! काले वर्ण वाली, वसुओं को धारण करने वाली, विश्वरूपा आकाश-पृथिवी तुम्हारे पद चिह्न पर चलती है । तुम अपने प्रसन्नतादायक रथ के द्वारा सोम पीने के लिये यहां आओ ।३। हे वायो ! मन के समान वेगवान्,परस्पर मिले हुए निन्यानवे अश्व तुम्हारे लिये यहाँ लाते हैं । तुम सोम पीने के निमित्त सुन्दर प्रसन्नताप्रद रथ पर पधारो ।४। हे वायो ! तुम सैकड़ों घोड़ों को रथ में जोड़ो और उनके सहित यहाँ आगमन करो ।५। [२४]

सूक्त ४९

(ऋषि—वामदेवः । देवता—इन्द्र वृहस्पति । छन्द गायत्री)

इदं वामास्ये हविः प्रितमिन्द्राबृहस्पती । उक्थं मदश्च शस्यते ।।१
अयं वां वरि षिच्यते सो इन्द्रा बृहस्पती । चारुर्मदाय पीतयें ।।२
आ न इन्द्रा बृहस्पतीगृहमिन्द्रश्चगच्छतम् । सोमपासोमपीतये ।।३
अस्मेइन्द्राबृहस्पतीरयिधत्तंशतग्विनम् । आश्वावन्तंसहस्रिणम् ।।४
इन्द्रा बृहस्पतो वयं सुतेगीर्भिर्हवामहे । अस्य सामस्य पीतये ।।५
सोममिन्द्रा वृहस्पती पिबतंदाशुषो गृहे । मादयेथांतदो सा।।६।२५

हे इन्द्र और वृहस्पति ! इस परम प्रिय सोम रूप हविरत्न को हम तुम दोनों के मुख में डालते हैं । तुम दोनों को हम हर्षकारी सोम रस प्रदान

करते हैं ।१। हे इन्द्र और बृहस्पति ! तुम दोनों की हृष्टि के निमित्त तथा पीने के लिये वह सुस्वादु सोम-रस हम तुम्हारे मुख में डालते हैं ।२। हे इन्द्र और बृहस्पति ! तुम दोनों सोम पान करने वाले हो । तुम दोनों हमारे यज्ञ गृह में सोम पीने के लिये आओ ।३। हे इन्द्र और बृहस्पति ! तुम दोनों ही हमको सैकड़ों गायों और हजारों घोड़ों से युक्त धन प्रदान करो ।४। हे इन्द्र और बृहस्पते ! सोम के सिद्ध किये जाने पर हम दोनों अपने स्तोत्र द्वारा तुम दोनों को सोम रस पीने के लिए बुलाते हैं ।५। हे इन्द्र ! हे बृहस्पते ! हवि देने वाले यजमान के घर में निवास करते हुए तुम दोनों सोम पीकर हृष्ट होओ ।६।   [२५]

सूक्त ५०

(ऋषि—वामदेव । देवता—बृहस्पतिः, इन्द्राबृहस्पति । छन्द—त्रिष्टुप्)

यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान्बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण ।
तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम् ।।१
धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तो बृहस्पते अभि ये नस्ततस्रे ।
पृषन्तं सुप्रमदब्धमूर्वं बृहस्पते रक्षतादस्य योनिम् ।।२
बृहस्पते या परमा परावदत आ त ऋतस्पृशो नि षेदुः ।
तुभ्यं खाता अवता अद्रिदुग्धाः मध्वः श्चोतन्त्यभितोविरप्शम् ।।३
बृहस्पतिः प्रथम जायमानो महा ज्योतिषः परमे व्योमन् ।
सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत्तमांसि ।।४
स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेत बलं रुरोज फलिगं रवेण ।
बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद्वावतीरुदाजत् ।।५।२५

वेद-रक्षक बृहस्पति ने अपने बल से पृथिवी की दशों दिशाओं को अपने वश में किया । वे शब्द द्वारा तीनों लोकों में व्याप्त हैं । उन विशिष्ट जिह्वा वाले, प्रसन्नता देने वाले बृहस्पति को प्राचीन ऋषियों ने पुरोहित पद पर स्थापित किया ।१। हे मेधावी बृहस्पतिदेव ! तुम्हारी चाल से शत्रुगण काँपने लगते हैं । जो तुमको पुष्ट करने के निमित्त स्तुति करते हैं,

तुम उनके लिये फलदायक, बढ़ाने वाले तथा हिंसा रहित होते हो और तुम उनके महान् यज्ञ के पालन करने वाले हो ।२। हे बृहस्पतिदेव ! जो दूरस्थ दिव्य लोक हैं, वह अत्यन्त उत्कृष्ट हैं । वहाँ से तुम्हारे घोड़े इस यज्ञ में आते हैं । जैसे खाद से भरे हुए कुए के चारों ओर जल उबलता है, वैसे ही पाषाण द्वारा निष्पन्न मधुर सोम रस स्तुतियों के द्वारा तुम्हें चारों ओर से सींचता है ।३। जब वे मन्त्रज्ञ बृहस्पति सूर्य मण्डल में प्रथम बार प्रकट हुए तब मुख से सप्त छन्दोमय तथा शब्द से युक्त होकर उन गमनशील बृहस्पति ने अपने तेज से अँधेरे को नष्ट किया ।४। उन बृहस्पति ने स्तुति करती हुई अङ्गिराओं के साथ घोर शब्द द्वारा "बल" नामक दैत्य का नाश किया। उन्होंने शब्द से ही उत्तम दूध देने वाली गौओं को गुफा से निकाला था ।५। [२६]

एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।
बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयाणाम् ॥६
स इन्द्रजा प्रतिजन्यानि विश्वा शुष्मेण तस्थावभि वीर्यैण ।
बृहस्पतिं यः सुभृतं बिभर्ति वल्गूयति वन्दते पूर्वभाजम् ॥७
स इत्क्षेति सुधित ओकसि स्वे तस्मा इला पिन्वते विश्वदानीम् ।
तस्मै बिशः स्वयमेवा नमन्ते यस्मिन्ब्रह्मा राजनि पूर्व एति ॥८
अप्रतीतो जयति सं धनानि प्रतिजन्यान्युत सजन्या ।
अवस्यवे यो वरिवः कृणोति ब्रह्मणे राजा तमवन्ति देवाः ॥९
इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पतेऽस्मिन्यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू ।
आ वां वि शन्त्विन्दवः स्वाभुवोऽस्मे रयिंसर्ववीरंनियच्छतम्॥१०
वृहस्पत इन्द्र बर्धतं नः सचा सा वां सुमसिर्भूत्वस्मे ।
अविष्टं धियो जिगृतं पूरन्धीर्जंजस्तमर्यो मनुषामरातोः ॥११।२७

वे बृहस्पति सबके देवता स्वरूप. पालन करने वाले कामनाओं की वर्षा करने वाले हैं, हम यज्ञ में हविरत्न द्वारा स्तुति करते हुए उनकी पूजा करेंगे, जिससे हम सन्तान तथा बलयुक्त ऐश्वर्य का स्वामित्व प्राप्त कर

सकें ।।६।। जो राजा वृहस्पति की भले प्रकार रक्षा करता है तथा प्रथम हव्य ग्रहण करने वाला मानकर उनको हवि देता हुआ नमस्कारयुक्त स्तुति करता है, वह राजा अपनी शक्ति से शत्रुओं की शक्ति को निरर्थक करता हुआ उसे हरा देता है ।। ७ ।। जिसके पास वृहस्पति सबसे पहले जाते हैं, वह राजा सन्तुष्ट होकर अपने स्थान में रहता है । उसके लिए पृथिवी भी हर ऋतु में फल देने वाली होती है । उसकी प्रजा उसके सामने सदा सिर झुकाये रहती है ।। ८ ।। जो राजा रक्षा चाहने वाले धनहीन विद्वान् को धन देता है, वह शत्रुओं के धन का विजेता होता है । देवता सदा उसके रक्षक रहते हैं ।।६।। हे वृहस्पते ! तुम और इन्द्र दोनों ही इस यज्ञ में प्रसन्न होकर यजमानों को धन दो । यह सोमरस सर्वव्यापक है यह तुम्हारे शरीरों में प्रविष्ट हो । तुम दोनों ही हमारे निमित्त संतान से युक्त रमणीय धन प्रदान करो ।। १० ।। हे वृहस्पते ! हे इन्द्र ! तुम दोनों ही हमको हर प्रकार से बढ़ाओ । हमारे प्रति तुम दोनों की कृपा एक साथ ही प्रेरित हो । हमारे इस यज्ञ की तुम दोनों ही रक्षा करो । स्तुति करने वालों के शत्रुओं से युद्ध करो । तुम दोनों ही हमारी स्तुति से चैतन्यता को प्राप्त हो जाओ ।।११।। [२७]

सूक्त ५१

(ऋषि — वामदेवः । देवता—उषा । छन्द—त्रिष्टुप् पंक्तिः)

इदमु त्यत्पुरुतम पुरस्ताज्ज्योतिस्तमसो वयुनावदस्थात् ।
नूनं दिवो दुहितरो विभातोर्गातुं कृण्वन्नुषसो जनाय ।।१
अस्थुरु चित्रा उषसः पुरस्तान्मिता इव स्वरवोध्वरेषु ।
व्यू व्रजस्य तमसो द्वारोच्छन्तीरव्रञ्छुचयः पावकाः ।।२
उच्छन्तीरद्य चिरयन्त भोजान्राधोदेयायोषसो मघोनीः ।
अचित्रे अन्तः पणयः ससन्त्वबुध्यमानास्तमसो विमध्ये ।।३
कुवित्स देवी सनयो नवो वा वामो बभूयादुषसो वो अद्य ।
येना नवग्वे अङ्गिरे दशग्वे सप्तास्ये रेवतो रेवदूष ।।४

यूयं हि देवीर्ऋतयुग्भिरश्वैः परिप्रयाथ भुवनानि सद्यः ।
प्रवोधयन्तीरुषसः ससन्तं द्विपाच्चतुष्पाच्च रथाय जीवम् ।।५।१

जो तेज हमारे द्वारा स्तुति है, वह सर्व विख्यात अत्यन्त प्रकाशवान् तेज अन्धकार को चीरता हुआ पूर्व दिशा में प्रकट होता है। सूर्य की पुत्री, प्रकाश से पूर्ण उषा यजमानों के चलने के कार्य में सहायता देने में सर्वथा समर्थ हैं।१। जैसे यज्ञ में गढ़े हुए यूपांश स्थिर होते हैं, वैसे ही सुशोभित उषाऐं पूर्व दिशा में व्याप्त होती हैं। वे बाधा देने वाले अन्धकार को खोलकर पवित्र उज्ज्वल हुई प्रकाश देती हैं।।२।। अन्धकार को मिटाने वाली, ऐश्वर्य से युक्त उषाऐं हवि देने वाले यजमान को सोमादि अन्न देने के निमित्त प्रेरित करती हैं। उसी प्रकार श्रीसम्पन्न गृहणियाँ अपने गुणों को प्रकट करती हुई प्रगाढ़ अन्धकार के अन्त होने पर अपने पतियों को सचेत करती हैं। ३। हे प्रकाशवान् उषाओ ! जिस रथ से तुमने नवग्व अर्थात् सदा तरुण और दशग्व अर्थात् दशों इन्द्रियों को जीतने वाले अङ्गिराओं को तेजस्वी बनाया था, तुम्हारा वही प्राचीन रथ हमारे इस यज्ञ स्थान में आकर प्राप्त हो।।४।। हे प्रकाशवान् उषाओ ! तुम सोते हुए चौपायों को अपने चलने-फिरने आदि कर्मों में प्रेरित करती हुई अपने गतिमान् अश्व द्वारा घरों के चारों ओर क्षण भर में घूमती हो।५। [१]

क्व स्विदासां कतमा पुराणी यया विधाना विदधुर्ऋभूणाम् ।
शुभं यच्छुभ्रा उषसश्चरन्ति न वि ज्ञायन्ते सदृशीरजुर्या ।।६
ता घा ता भद्रा उषसः पुरासुरभिष्टिद्युम्ना ऋतजातसत्याः ।
यास्वीजानः शशमान उक्थं स्तुवञ्छंसन्द्रविणं सद्य आप ।।७
ता आचरन्ति समना पुरस्तात्समानतः समना पप्रथानाः ।
ऋतस्य देवीः सदसो बुधाना गवां न सर्गा उषसो जरन्ते ।।८
त इन्न्वेव समना समानीरमीतवर्णा उषसश्चरन्ति ।
गूहन्तीरभ्वमसितं रुशद्भिः शुक्रास्तनूभिः शुचयो रुचानाः ।।९
रयिं दिवो दुहितरो विभातीः प्रजावन्तं यच्छतास्मासु देवीः ।

स्योनादा व प्रतिबुध्यमानाः सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥१०.
तद्वो दिवो दुहितरो विभातीरूप ब्रुव उषसो यज्ञकेतुः ।
वयं स्याम यशसो जनेषु तद्. द्यौश्च धत्तां पृथिवीचदेवी ॥११॥२

ऋभुगण ने जिन उषाओं के निमित्त चमस आदि बनाये थे, वे प्राचीन उषायें अब कहाँ हैं ? प्रकाशवान्, नवीन सुन्दर रूप वाली उषायें जब उज्ज्वल प्रकाश करती हैं, तब वे एक रूप रहती हैं । उस समय वे प्राचीन हैं या नवीन, यह बात पहचानने में नहीं आती ॥६॥ यज्ञ करने वाले यजमान जिन उषाओं का स्तोत्रों द्वारा पूजन करते हुए धन प्राप्त करते हैं, वे उषायें कल्याण करने वाली हैं । वे प्राचीन काल से आने वाली उषायें यजमान को धन दें । वे यज्ञ के निमित्त प्रकट हुई हैं । वें उषायें सत्य फल प्रदान करने वाली हैं ॥ ७ ॥ एक रूप वाली समान उषायें अन्तरिक्ष से पूर्व दिशा में अवतरित होती हुई सर्वत्र जाती हैं । प्रकाश से पूर्ण उषायें यज्ञ स्थान को लक्ष्य करती हुई किरणों के समान पूजी जाती हैं ॥८॥ वे उषायें एक रूप वाली समान, सुन्दर वर्ण वाली उज्ज्वल तथा कान्तिमती हैं । वे अपने शरीर द्वारा प्रकाशवान् हैं और अन्धकार को छुपाकर सर्वत्र घूमती हैं ॥ ९ ॥ हे प्रकाशवान् सूर्य की पुत्रियो ! तुम हमको सन्तान और धन से परिपूर्ण करो । हम अपने सुख के निमित्त तुम से निवेदन करते हैं, जिससे हम सन्तान से युक्त ऐश्वर्य के अधिपति हो सकें ।१०। हे प्रकाशवान् सूर्य की पुत्रियो ! हम याज्ञिक तुमसे प्रार्थना करते हैं कि हम सब मनुष्यों के मध्य में यशस्वी और ऐश्वर्यवान् बनें आकाश और कान्ति से परिपूर्ण पृथिवी हमारे निमित्त सुख को धारण करने वाली हो ॥११॥

[२]

सूक्त ५४

(ऋषि—वामदेवः । देवता—उषा । छन्द—गायत्री)

प्रतिष्या सुनरीजनीव्युच्छन्ती परिस्वसुः । दिवोआदर्शिदुहिता ॥१
अश्वेव चित्रारुषी माता गवामृतावरी । सखाभूदश्विनोरुषाः ॥२
उत सखास्यश्विनोरुत माता गवामसि । उतोषो वस्व ईशिषे ॥३

यावयद् द्वेवस त्वा चिकित्वत्सूनृतावरि । प्रति स्तोमैरभृत्स्महि ॥४
प्रति भद्रा अदृक्षत गवां सर्गा न रश्मयः ओषा अप्रा उरुज्रयः ॥५
आपप्रुषी विभावरि व्यावर्ज्योतिषा तमः । उषो अनु स्वधामव ॥६
आ द्या तनोषि रश्मिभिरान्तरिक्षमुरु प्रियम् ।
उषः शुक्रेण शोचिषा ॥ ।३

वह सूर्य की पुत्री उषा दिखाई देती है। वह स्तुति के योग्य, प्राणियों का नेतृत्व करने वाली और सुन्दर फलों को उत्पन्न करने वाली है। यह अपनी बहिन स्वरूपा रात्रि की समाप्ति पर अँधेरे को नष्ट करती है ॥ १ ॥ घोड़े के समान सुन्दर देखने वाली, प्रकाशमयी, किरणों की माता और यज्ञ को सम्पन्न करने वाली उषा अश्विनीकुमारों से बन्धु-भाव स्थापित करती है ॥२॥ हे उषे ! तुम अश्विनीकुमारों से बन्धुत्व रखने वाली और किरणों की जननी हो। तुम ऐश्वर्य की अधीश्वरी हो ॥३॥ हे सत्य वचन वाली उषे ! तुम शत्रुओं को भगा दो। तुम हमको ज्ञान प्रदान करो। हम स्तुतियों से तुमको नमस्कार करते हैं ॥४॥ वर्षा की धारा के समान महान् तेज वाली उषा ने संसार को परिपूर्ण किया है। स्तुति के योग्य किरणें दर्शनीय होती हैं ॥५॥ हे उषे ! तुम सुन्दर प्रकाश वाली हो अपने तेज से अन्धकार को नष्ट करती हुई संसार को सम्पन्न बनाओ। तुम इस हविरत्न का पालन करो ॥६॥ हे उषे ! तुम अपने प्रकाशवान् तेज से परिपूर्ण होकर किरणों द्वारा आकाश और विस्तृत अन्तरिक्ष में व्याप्त होओ ॥७॥ ३

सूक्त ५३

(ऋषि—वामदेव । देवता—सविताः । छन्द—जगती)

तद्देवस्व सवितुर्वार्यं महद्वृणीमहे असुरस्य प्रचेतसः ।
छर्दिर्येन दाशुषे यच्छति त्मना तन्नो महाँ उदयान्देवो अक्तुभिः ॥१
दिवो धत्तां भुवनस्य प्रजापतिः पिशङ्गं द्रापिं प्रति मुञ्चते कवि ॥
विचक्षणः प्रथयन्नापृणन्नुवजीजनत्सविता सुम्नमुक्थ्यम् ॥२
आप्रा रजांसि दिव्यानि पार्थिवा श्लोकं देवः कृणुते स्वाय धर्मणे ।

प्र बाहू अस्राक्सविता सवीमनि निवेशयन्प्रसुवन्नक्तुभिर्जगत् ॥३
अदाभ्यो भुवनानि प्रचाकशद् व्रतानि देवः सविताभि रक्षते ।
प्रास्राग्बाहू भुवनस्य प्रजाभ्यो धृतव्रतो महो अज्मस्य राजति ॥४
तिरन्तरिक्षं सविता महित्वना त्री रजांसि परिभूस्त्रीणि रोचना ।
तिस्रो दिवः पृथिवास्तिस्र इन्वति त्रिभिर्व्रतैरभि नो रक्षतित्मना॥५
बृहत्सुम्नः प्रसवीता निवेशनो जगतः स्थातुरुभयस्य यो वशी ।
स नो देवः सविता शर्म यच्छत्वस्मे क्षवाय त्रिवरूथ महसः ॥६
आगन्देव ऋतुभिर्वर्धतु क्षयं दधातु नः सविता सुप्रजाभिषम् ।
सं नः क्षपाभिरहभिश्च जिन्वतु प्रजावन्तं रयिमस्मे समिन्वतु ॥७।४

सवितादेव बलवान् एवं मेधावी हैं । हम उनसे वरण करने योग्य और पूजनीय धन की याचना करते हैं, उस धन को वे हविदान करने वाले यजमान को अपने इच्छा से प्रदान करें ॥१॥ आकाश तथा सभी लोकों को धारण करने वाले प्राणियों को प्रकाश और वर्षा आदि द्वारा पालन करने वाले मेधावी सवितादेव सुवर्ण कवच को धारण करते हुए अपने तेज से संसार को भली प्रकार परिपूर्ण करते और प्रशंसा के योग्य श्रेष्ठ सुख प्रकट करते हैं ॥ २ ॥ वे सविसादेव अपने तेज से आकाश और पृथिवी को परिपूर्ण करते हुए अपने उत्तम कार्यों द्वारा प्रशंसा को प्राप्त करते हैं । वे नित्य-प्रति संसार को कार्य की ओर प्रेरित करते तथा सृष्टि के निर्माण कार्य के लिए भुजा फैलाते हैं ॥ ३ ॥ वे सवितादेव अहिंसा भावना सहित लोकों को प्रकाशित करते हैं और सङ्कल्पों का पालन करते हैं । वे सब लोकों में रहने वाले प्राणियों की रक्षा के लिए अपनी भुजा फैलाते हैं । व्रतों को धारण करने वाले हैं और इस विशाल संसार के स्वामी हैं ॥ ४ ॥ अपनी महिमा द्वारा सवितादेव तीनों अन्तरिक्षों को व्याप्त करते हैं । वे लोकत्रय में भी व्याप्त हैं । वे प्रकाशवान् सवितादेव अग्निवायु और आदित्य को तथा तीनों आकाशों और तीनों पृथिवियों को व्याप्त करते हैं । वे तीनों व्रतों द्वारा हमारी कृपा पूर्वक रक्षा करें ॥५॥ जो कर्मों को निर्धारित करते हैं, जिनके पास महान् ऐश्वर्य है

जो सबके जानने योग्य तथा सब प्राणियों को वृश में रखने वाले हैं, वे सवितादेव हमारे पापों को नष्ट करें और तीनों लोकों में स्थित महान् सुख के प्रदान करने वाले हों।६। वे प्रकाशवान् सवितादेव ऋतुओं द्वारा संसार का पालन करें, हमारे ऐश्वर्य को बढ़ावें हमको सन्तानयुक्त धन प्रदान करें। वे दिन में तथा रात्रि में भी हम पर स्नेह रखें। वे हमको पुत्र-पौत्रादि से युक्त ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हों ।।७।। [४]

सूक्त ६

(ऋषि—वामदेवः। देवता—सविता। छन्द—त्रिष्टुप्)

अभद्देव सविता वन्द्यो नु न इदीनीमह्न उपयाच्मो नृभिः।
वि यो रत्ना भजति मानवेभ्यः श्रेष्टनो अत्र द्रविणं यथा दधत्।।१
देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्योऽमृतत्वं सुवसि भगमुत्तमम्।
आदिद्दामाम सवितर्व्युर्णुषेऽनूचोना जीविता मानुषेभ्यः।।२
आवित्ती यच्चकृमा दैव्ये जने दीनैर्दक्षं प्रभूती पुरुषत्वता।
देवेषु च सवितिर्मानुषेषु च त्वं नो अत्रसुवतदानागसः।।३
न प्रमिये सवितुर्दैयस्य तद्यथा विश्वं भुवनं धारयिष्यति।
यत्पृथिव्या वरिमन्ना स्वङ्गुरिवंर्ष्मन्दियः सुबति सत्यमस्य तत्।।४
इन्द्रज्येष्ठान्वृहद्भ्य पर्वतेभ्यः क्षयाँ एभ्यः सुवसि पस्त्यावतः।
यथायथा पतयन्तो वियेमिर एतैव तस्थुः सवितः सवाय ते।।५
ये ते त्रिरहन्त्सवितः सवासो दिवेदिवे सौभगसासुवन्ति।
इन्द्रो द्यावापृथिवी सिन्धुरद्भिरादित्यैर्वो अदितिःशर्मयंसत्।।६।५

सवितादेव प्रकट हो गये। हम शीघ्र ही उनको नमस्कार करेंगे। तीसरे सवन में होताओं द्वारा उनकी स्तुति की जाय। जो मनुष्यों को रत्नादि धन प्रदान करते हैं, वे इस यज्ञ में हमारे लिए उत्तम धन प्रदाता हों।। १ ।। तुम पहले यज्ञ में श्रेष्ठ साधन रूप अमरत्व सोम के श्रेष्ठ भाग को प्रकट करो। हे सवितादेव ! तुम हविदाता यजमान को प्रकाश से युक्त करो और पिता, पुत्र – पौत्रादि के क्रम से मनुष्यों को दीर्घ आयु प्रदान करो।। २ ।। हे सवितादेव !

अज्ञानवश अथवा धन के मद में प्रमादी होकर या बल और कुटुम्ब के अहङ्कार से हमने तुम्हारा या अन्य देवताओं और विद्वान् मनुष्यों का कोई अपराध किया हो तो तुम हमको इस यज्ञ में उसके पाप से मुक्त करो। ३। वे सवितादेव संसार के धारण करने वाले हैं। उनके सभी कर्म अहिंसकीय हैं। वे भूमण्डल तथा आकाश को विस्तृत होने के निमित्त प्रेरित करते हैं। उनका वह कर्म किसी के द्वारा नष्ट नहीं किया जा सकता ॥४॥ हे सवितादेव ! महान् ऐश्वर्यशाला इन्द्र हममें पूजित होते हैं। तुम हमको पर्वतों से भी अधिक उन्नत करो। इन सब यजमानों को घरों से युक्त निवास स्थान दो। तुम अपने द्वारा नियत सभी गमना-गमन कालों को नियमित करो। ५। हे सवितादेव ! तुम्हारी प्रीति से जो यजमान तीनों सवनों में तुम्हारे निमित्त शोभनीय सोम को सिद्ध करते हैं, उन यजमानों को आकाश पृथिवी महान् एवं गम्भीर सिन्धु, देवता और आदित्यों के साथ अदिति श्रेष्ठ सुख प्रदान करें और हमको भी सुखी बनावें ।६। [५]

५४ सूक्त

(ऋषि–वामदेवः। देवता–विश्वेदेवः। छन्द–त्रिष्टुप्, गायत्री)

को वस्त्राता वसवः को बरूता द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां नः।
सहीयसो वरुण मित्र मर्तात्को वोऽध्वरे वरिवो धाति देवाः ॥१
प्र ये धामानि पूर्व्याण्यमर्चान्वि यदुच्छान्वियोतारो अमूराः।
विधातारो वि ते दधुरजस्रा ऋतधीतयो रुरुचन्त दस्माः ॥२
प्र पस्त्यामदितिं सिन्धुमर्कैः स्वस्तिमीले सख्याय देवीम्।
उभे यथा नो अहनी निपात उषासानक्ता करतामदब्धे ॥३
व्यर्यमा वरुणश्चेति पन्थामिषस्पतिः सुवितं गातुमग्निः।
इन्द्राविष्णु नृवदु षु स्तवाना शर्म नो यन्तममवद्वरूथम् ॥४
आ पर्वतस्य मरुतामवांसि देवस्य त्रातुरव्रि भगस्य।
पात्पतिर्जन्यादंहसो नो मित्रो मित्रियादुत न उरुष्येत् ॥५।६

हे वसुओ ! तुममें कौन दुःखों से छुड़ाने वाला है ? कौन रक्षा करने वाला है ? हे आकाश-पृथिवी, तुम भी खण्डत्त होने योग्य नहीं हो। तुम

हमारी रक्षा करो । हे मित्रावरुण ! हमारे रक्षक बनो । हे देवताओ ! तुममें से कौनसा देवता यज्ञ में धन प्रदान करने वाला है ? ॥ १ ॥ जो देवगण स्तुति करने वालों को प्राचीन स्थान देते हैं, जो दुःखों को हटाते हैं, जो अज्ञान और अँधेरे को नष्ट करने वाले हैं, वही देवता मनुष्यों के कर्मों के विधायक एवं कामनाओं को परिपूर्ण करने वाले हैं । वे सत्य कर्मों से युक्त एवं सुन्दर और सुशोभित हैं ॥२॥ सबके लिए स्नेह देने वाली माता अदिति की हम सुख एवं कल्याण प्राप्ति के लिए स्तुति करते हैं जिससे आकाश और पृथिवी दोनों ही हमारी रक्षा करें । दिवस, रात्रि और उषा हमारी कामनाओं को सम्पादन करने वाली हों ॥३॥ अर्यमा और वरुण उचित मार्ग दिखाते हैं । हविरत्न के स्वामी अग्निदेव ने कल्याणकारी यज्ञमार्ग को दिखाया है । इन्द्र और विष्णु सुशोभित हुए हमारे द्वारा पूजित होने पर सन्तान, बल और रमणीय धनयुक्त सुख प्रदान करें ॥ ४ ॥ इन्द्र के मित्र मरुद्गण, पर्वत और भगदेवता से हम रक्षा की याचना करते हैं । वरुणदेव हमको पाप से बचावें और मित्र देवता हमारे सखा होते हुए हमारा पालन करें ॥५॥ [६]

नू रोदसी अहिना बुध्नयेन स्तुवीत देवी अप्येभिरिष्टैः ।
समद्रं न सचरणे सनिष्यवो धर्मस्वरसो नद्यो अप व्रन् ॥६
देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्राधतामप्रयुच्छन् ।
नहि मित्रस्य वरुणस्य धासिऽर्हामसि प्रमियं सान्वग्नेः ॥७
अग्निरीशे वसव्यस्याग्निर्महः सोभगस्य तान्यस्मभ्यं रासते ॥८
उषो मघोन्वा वह सूनते वार्या पुरु । अस्मम्यं वाजिनीवति ॥९
तत्सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
इन्द्रो न राधसा गमत् ॥१०॥७

हे आकाश-पृथिवी रूप देवियो ! जैसे धन की कामना वाला मनुष्य समुद्र यात्रा में जाने के लिए समुद्र का स्तवन करता है, वैसे ही हम भी अपने इच्छित कार्य के लिए तुम दोनों की स्तुति करते हैं ॥६॥देवमाता अदिति अन्य देवताओं के साथ हमारी रक्षा करें । दुःखों से छुड़ाने वाले इंद्र हमारे रक्षक हों । मित्र,वरुण और अग्नि से सोम रूप अन्नको हम रोक नहीं

सकते, बल्कि यज्ञानुष्ठानों द्वारा इन्हें प्रबुद्ध कर सकते हैं ।७। अग्निदेव धन और महान् सौभाग्य के स्वामी हैं । इसलिये वे हमको श्रेष्ठ धन और सौभाग्य से सम्पन्न करें ।८। हे सत्य वाणी रूपिणी, धन और अन्न की स्वामिनी उषा देवी ! हमको अत्यन्त शोभायुक्त धन प्रदान करो ।९। जिस धन सहित सविता, भग, वरुण, मित्र, अर्यमा और इन्द्र यज्ञ-स्थान में आते हैं, वे अपने उस धन को हमारे लिए प्रदान करें ।१०।

सूक्त ५६

(ऋषि—वाम.देवः । देवता—द्यावापृथिव्यौ । छन्द–त्रिष्टुप्, गायत्री)

महो द्यावागृथिवी इह ज्येष्ठे रुचा भवतां शुचयद्भिरर्कैः ।
यत्सीं वरिष्ठे बृहती विमिन्विनुरुवद्धोक्षा पप्रथानेभिरवैः ।।१
देवी देवेभिर्यजते यजत्रैरमिनती तस्थतुरुक्षमाणे ।
ऋतावारी अद्रुहा देवपुत्रे यज्ञस्य नेत्री शुचयद्भिरर्कैः ।।२
स इत्स्वपा भुवनेष्वास य इमे द्यावापृथिवी जजान ।
उर्वी गभीरे रजसी सुमेके अवंशे धीरः शच्या समैरत ।।३
नू रोदसी बृहद्भिर्नो वरूथैः पत्नीवद्भिरिषयन्ती सजोषाः ।
उरूची विश्वे यजते निपातं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ।।४
प्र वां महि द्यवी अभ्युपस्तुतिं भरामहे । शुची उप प्रशस्तये ।।५
पुनाने तन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजथः । ऊह्याथे सनादृतम् ।।६
मही मित्रस्य साधथस्तरन्ती पिप्रती ऋतम् ।
परि यज्ञं नि षेदथुः ।।७।८

सुश्रेष्ठ, महत्त्ववंती आकाश-पृथिवी इस यज्ञ में शोभन स्तोत्र और सोम रस से परिपूर्ण होकर प्रकाश से युक्त हों । इस कार्यके निमित्त सिंचन कर्म में समर्थ पर्जन्य विस्तृत और महत्त्ववती आकाश-पृथिवी को स्थापना करते हुए मरुद्गण के साथ विशेष शब्द करते हैं ।१। यज्ञ के योग्य,

कामनाओं के वर्षक, हिंसा से शून्य द्रोह से शून्य, सत्य से युक्त, देवताओं के अभिभूतकर्त्ता, यज्ञ–सम्पादक आकाश पृथिवी रूप दोनों देव अन्य देवताओं से सुसंगत हो हविरत्नों से परिपूर्ण हों ।२। जिन्होंने इस आकाश-पृथिवी को बनाया, जिन्होंने इस विस्तृत, अविचलित, सुन्दर रूप वाली, आधार से शून्य आकाश पृथिवी को समान रूप से सुन्दर ढङ्ग से चला रहा है, वे इस समस्त लोकों के मध्य में शोभा पाने वाले हैं ।३। हे आकाश-पृथिवी ! तुम दोनों ही हमको अन्न प्रदान करने की कामना करती हो तथा परस्पर सुसंगत हो । तुम व्याप्त, विस्तृत और यज्ञ के योग्य होती हुई हमको गृहिणीयुक्त घर प्रदान करो और हमारी रक्षा करो । हम अपने श्रेष्ठ कर्मों द्वारा रथयुक्त सेवकों को प्राप्त करें ।४। हे आकाश पृथिवी ! तुम कान्तिमती हो । हम तुम्हारे निमित्त इस महान् स्तोत्र को प्रस्तुत करते हैं । तुम दोनों ही पवित्र हो हम तुम्हारी स्तुति के लिए तुम्हारे पास आते हैं ।५। हे देवियो ! तुम दोनों अपने तेज और जल से परस्परएक दूसरी को पवित्र करती हुई सुशोभित होओ और सदा ही यज्ञ को वहन करने वाली बनो ।५। हे आकाश–पृथिवी ! तुम महत्त्ववती हो · तुम मित्र रूप स्तुति करने वाले की सहायक बनो । तुम अन्नादि धनों को धारण करती हुई, यज्ञ-स्थान की परिक्रमा करती हुई विराजमान होओ ।७। [७]

सूक्त १६

(ऋषि वामदेवः । देवता–क्षेत्रपतिः आदि । छन्द–अनुष्टुप्, उष्णिक्)

क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामसि ।
गामश्वं पोषयित्न्वा स नो मृलातीदृशे ।।१
क्षेत्रस्य पते मधमन्तमूर्मिधेनुरिब पयो अस्मासू धुक्ष्व ।
मधुश्चुतं घृतमिव सुपुतमृतस्य नः पतयो मृलयन्त् ।।२
मधुमतीरोषधोर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य पतिमंधुमान्नो अस्वत्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ।।३
शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम् ।

शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय ॥४

शुनासीराविमां वाचं जुषेथां यद्दिवि चक्रथुः पयः ।
तेनेमामुप सिञ्चतम् ॥५

अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा
यथा न सुभगाससि यथा नः सुफलाससि ॥६

इन्द्रः सीतां न गृह्णातु तां पूषानु यच्छतु ।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥७

शुनं नः फाला वि कृषन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभि यन्तु वाहैः ।
शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम् ॥८॥९

बंधु के समान क्षेत्रपति के साथ हम यजमानगण क्षेत्र को जीतेंगे । वे क्षेत्रपति हमारी गौओं और घोड़ों को पुष्ट करें । वे हमको देने योग्य धन देकर हमारा कल्याण करें ।१। हे क्षेत्रपते ! जैसे गौ दूध देती है, वैसे ही तुम मीठा, शुद्ध, घृत के समान सुस्वादु जल हमको दो । तुम जलों के स्वामी हमको हर प्रकार से सुखी बनाओ ।२। औषधियां हमारे लिये मधुर गुण वाली हों, पृथिवी अन्नों से युक्त हो, नदियाँ मीठे जल वाली हों । अन्तरिक्ष मधुर जलवर्षक हो । क्षेत्रपति मधुर अन्न से युक्त हों । हम किसी की हिंसा न करते हुए उनके अनुकूल रहें ।३। हल चलाने वाले पशु सुखी हों । मनुष्य भी सुखपूर्वक हल चलावें । हल भी सुख से खेत को खोदें । रस्सियां सुख से पशुओं को बांधे । चाबुक को भी सुख पूर्वक चलाया जावे ।४। हे अन्नपति और स्वामिन् ! तुम दोनों ही हमारी स्तुतियों को सुनो । तुमने आकाश में जिस जल की रचना की है, उसके द्वारा ही इस पृथिवी को सीचो ।५। हे सीते ! तुम सौभाग्यवती दो । तुम पृथिवी के नीचे जाने वाली हो । तुम्हारे गुणों की हम प्रशंसा करते हैं, क्योंकि तुम सुंदर सोभाग्य को प्रदान करती हो । सुंदर फल तुम देने में समर्थ हो (सीता हल के अग्र भाग अर्थात् फाली को कहते हैं) । ६ । इन्द्रदेव सीता को ग्रहण करें । पूषा उसे भली प्रकार

पकड़ें, जिससे पृथिवी जल और अन्न से सम्पन्न होकर उत्तरोत्तर समृद्धि को प्राप्त हो ।।७। वह हल की फाली मुख पूर्वक भूमि को खोदे । कृषक जन सुख पूर्वक बैलों को चलावें। मेघ मधुर जल की वृष्टि करता हुआ पृथिवी को जल से परिपूर्ण करे। हे अन्न और क्षेत्र के अधिपतियो ! हमको सुखी करो ।८। (६)

सूक्त ५८

(ऋषि—वामदेवाः । देवता—अग्निः सूर्यो वाऽयो वा गावो वा घृतं वा ।
छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः, अनुष्टुप्, उष्णिक्)

ससुद्रादूर्मिर्मधुमाँ उदारदुपांशुना सममृतत्वमानट् ।
घृतस्व नाम गुह्य यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः ।।१
वयं नाम प्र ब्रवामा घृतस्यास्मिन्यज्ञे धारयामा नमोभिः ।
उप ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानं चतुः शृङ्ग गोऽब्रमीद्गौर एतत् ।।२
चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तापो अस्य ।
त्रिधा वद्धो वृषभो रोरवीति मले देवो मर्त्यां आ विवेश ।।३
त्रिधा हितं पणिभगुंह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन् ।
इन्द्र एकं सूर्यं एकं जजान वेनादेकं स्वध्या निष्टतक्षुः ।।४
एता अर्षन्ति हृद्यात्समद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे ।
घृतस्य धारा अभि चाकशीमि हिरण्ययो देतसो मध्य आसाम्।।५।१०

समुद्र से माधुर्यवती किरणें आविर्भूत हुई हैं। मनुष्य उनके द्वारा अमृतत्व प्राप्त करते हैं। घृत का जो व्यापक रूप है वह देवताओं की जिह्वा और अमृत का आश्रय रूप है ।१। हम यजमान घृत की प्रशंसा करते हुए उसे नमस्कार पूर्वक इस यज्ञ में ग्रहण करते हैं। ब्रह्मा इस वाक्य को श्रवण करें। चार सींग वाले मृग के समान चारों वेदों का ज्ञाता विद्वान् वेद वाणी का निर्वाह करने वाला हैं ।२। यज्ञात्मक अग्नि के चार सींग, सवन रूप तीन पाद, ब्रह्मोदन और प्रवर्ग्य रूप दो शिर तथा छन्द रूप सात हाथ हैं। वह सब कामनाओं के वर्षक हैं। यह

मन्त्र; कल्प और ब्राह्मण द्वारा तीन प्रकार से बँधे हुए अत्यन्त शब्द करते हैं। वे देवरूप से मरणधर्मा मनुष्यों के बीच विद्यमान हैं ।३। पाणियों ने गौओं के मध्य दुग्ध, दधि और घृत इन तीन पदार्थों को रखा। देवताओं ने उन्हें ढूँढ़कर प्राप्त किया। इन्द्र ने एक पदार्थ क्षीर को तथा सूर्य ने एक पदार्थ को उत्पन्न किया। देवताओं ने दीप्तिमान् अग्नि के पास से अन्न के द्वारा एक पदार्थ को घृत को प्राप्त किया था ।४। अपार गति वाला यह जल अन्तरिक्ष से नीचे गिरता हैं। शत्रु उसे देखने में समर्थ नहीं है। उस सम्पूर्ण घृतधारा को देखने में समर्थ हैं तथा इसके मध्य में हम अग्नि को भी देख सकते हैं ।५। [१०

सम्यक्स्रवन्ति सरितो न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः।
एते अर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगा इव क्षिपणोरीषमाणाः ॥६
सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः।
घृतस्य धारा अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः ॥७
अभि प्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्यः स्मयमानासो अग्निम्।
घृतस्य धाराः समिधो नसंत ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः ॥८
कन्या इव वहतुमेतवा उ अञ्ज्यंजना अभि चाकशीमि।
यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा अभि तत्पवन्ते ॥९
अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त।
इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ते ॥१०
धामन्ते विश्वं भुक्नमधि श्रितमन्तः समुद्रे हृद्यन्तरायुषि।
अपामनीके समिथे य आभृतस्तमश्याम मधुमन्तं तं ऊर्मिम्॥११॥११

स्नेहदायिनी नदी के समान यह घृतधाराऐं अथवा वाणिया अन्तःकरण में चित्त द्वारा पवित्र होती हुई बाहर आती हैं जल की तरङ्गों के समान यह वेगपूर्वक दौड़ती है, जैसे व्याघ्र के डर से मृग दौड़ते हैं ।६। जैसे नदी का जल नीचे स्थान की ओर वेगपूर्वक जाता है, वैसे ही घृत धारा भी वेगपूर्वक निकलती हुई जाती हैं यह घृत राशि

सीमाओं को पार करती हुई तरङ्गित होती हुई बढ़ती है, जैसे स्वाभिमानी अश्व तरङ्ग में बढ़ता जाता है ।७। जैसे श्रेष्ठ आचरण वाली मङ्गलमयी प्रसन्नवदना नारी एक चित्त से पति से ही प्रेम करती है, वैसे ही घृत की धारा अग्नि से प्रेम करती हुई उनकी ओर जाती है और समान रूप से प्रदीप्तियुक्त होकर मिल जाती है । वे मेधावी अग्नि उन घृतधाराओं की सदा इच्छा करते हैं ।८। जैसे कन्या अपने सुन्दर रूप और वेश-विन्यास को प्रकट करती हुई पति को प्राप्त करने के लिए जाती है, वैसे ही घृतधारायें गमन करती हैं । जहां सोम-योग होता है वहाँ कान्तिमय एवं उज्ज्वल घृतधाराऐं अग्नि को प्राप्त होती हैं ।९। हे ऋत्विजो ! गौओं के समीप जाओ और उनकी स्तुति करो । हम यजमानों के निमित्त ये स्तुतियाँ ऐश्वर्य धारण करने वाली हों और हमारे यज्ञ को देवताओ के पास पहुंचावें । घृत धारायें माधुर्यमयी होती हुई गमन करें ।१०। हे अग्ने ! सम्पूर्ण विश्व तुम्हारे आश्रय पर टिका है । तुम्हारा महान् बल समुद्र में, हृदय में, प्राण में, जलों के मथन रूप विद्युत में, जीवन-युद्ध में प्रकट होता है । हम तुम्हारे उस मधुर रस को प्राप्त करने में समर्थ हों ।११। ।११।

।। इति चतुर्थं मण्डलं समाप्तम् ।।

।। अथ पञ्चमं मण्डलम् ।।

सूक्त १

(ऋषि—बुधगविष्ठिरात्रेयो । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप् पंक्तिः)

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ।।१
अबोधि होता यजथाय देवानूर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातस्थात् ।
समिद्धस्य रुशददर्शि पाजो महान्देवस्तमसो निरमोचि ।।२
यदीं गणस्य रशनामजीगः शुचिर ङ्क्ते शुचिभिर्गोभिरग्निः ।
आद्दक्षिणा युज्यते वाज्यन्त्युत्तानामूर्ध्वो अधयज्जुहूभिः ।।३

अग्निमच्छा देवयतां मनांसि चक्षूंषीव सूर्यें सं चरन्ति ।
यदीं सुवाते उषसा विरूपे श्वेतो वाजी जायते अग्रे अह्नाम् ॥४
जनिष्ट हि जेन्यो अग्रे अह्नां हितो हितेष्वरुषो वनषु ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधानोऽग्निर्होता न षसादा यजीयान् ॥५
अग्निर्होता न्यसीदद्यजीयानुपस्थे मातुः सुरभा उलोके ।
युवा कविः पुरुनिःष्ठ ऋतावा धर्ता कृष्टीनामुत मध्य इद्धः ॥६।११

गौ के समान आने वाली उषा के प्रकट होने पर अग्नि अध्वर्युओं के काष्ठ से प्रदीप्त होते हुए बढ़ते हैं। उनकी शिखायें ऊँची फैलती हुईं विस्तृत वृक्ष के समान अन्तरिक्ष की ओर बढ़ती जाती हैं।१। होता रूप अग्निदेव देवताओं के यजन के निमित्त बढ़ते हैं। वे उषाकाल में प्रसन्न-चित्त से ऊँचे की ओर उठते हैं। समृद्ध हुए अग्नि का प्रकाशित बल दिखाई देता है। वे महान् देवता अन्धकार से स्वयं मुक्त होते हुए अन्यों को भी मुक्त करते हैं।२। जब वे अग्नि विश्व के अन्धकार को दूर करते हैं, तब प्रदीप्त होकर अपनी किरणों द्वारा संसार को प्रकाश देते हैं। फिर वे बढ़ी हुई एवं कामनायुक्त घृत-धाराओं से युक्त हुए ऊँचे उठकर उन घृत-धाराओं का पान करते हैं।३। प्रकाशयुक्त किरणों की कामना करने वाले मनुष्य के नेत्र जैसे सूर्य के दर्शन के लिए बढ़ते हैं। वैसे ही यजमानों के हृदय अग्नि के सामने बढ़ते हैं। जब विभिन्न रूप वाली आकाश पृथिवी उषाकाल में अग्नि को प्रकट करती हैं, तब वे उज्ज्वल वर्ण वाले एवं बलयुक्त अग्नि उत्पन्न होते हैं।४।। प्रादुर्भाव होने के सामर्थ्य से युक्त अग्नि उदयकाल में प्रकट होते हैं। ये दीप्ति से युक्त हुए वनों में अवस्थित रहते हैं। वे सप्त ज्वालायें धारण कर यज्ञ के योग्य होता होकर यज्ञ-स्थान में विराजमान होते हैं।५। यज्ञ योग्य होता होकर माता पृथिवी की गोद में सुन्दर वेदी पर अग्नि देवता प्रतिष्ठित होते हैं। वे युवा, विद्वान, निष्ठावान् जनों के मध्य स्थिर होकर सबका पालन करते हैं।६। १२]

प्रणुत्यं विप्रमध्वरेषु साधुमग्नि होतारमीलते नमोभिः ।
आ यस्तान रादसा ऋतेन नित्यं मृजन्ति वाजिनं घृतेन ॥७

मार्जाल्यो मृज्यते स्वे दमूनाः कविप्रशस्तो अतिथिः शिवो नः ।
सहस्रश्रृङ्गो वृषभस्तदोजा विश्वाँ अग्ने सहसा प्रास्यन्यान् ॥८
प्र सद्यो अग्ने अत्येष्यन्यानाविर्यस्मै चारुतमो बभूथ ।
ईलन्यो वपुष्यो विभावा प्रियो विशामतिथिर्मानुषीणाम् ॥९
तुभ्यं भरन्ति क्षितयो यविष्ठ बलिमग्ने अन्तित ओत दूरात् ।
आ भन्दिष्ठस्य सुमतिं चिकिद्धि बृहन्ते अग्ने महि शर्म भद्रम् ॥१०
आद्य रथं भानुमो भानुमन्तमग्ने तिष्ठ यजतेभिः समन्तम् ।
विद्वान्पथीनामुर्वन्तरिक्षमेह देवान्हविरद्याय वाक्ष ॥११
अवोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे ।
गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नो दिवीव रुक्ममुरुव्यंचमश्रेत् ॥१२।९३

जो आकाश पृथिवी को परिपूर्ण करते हैं,उन ज्ञानी, यज्ञ के फल को सिद्ध करने वाले, होता रूप अग्नि का स्तोत्र द्वारा यजमान स्तवन करते हैं। यजमान उन अन्न के स्वामी अग्नि की घृत सिंचन द्वारा नित्य प्रति पूजा करते हैं ।७। सबको पवित्र करने वाले अग्निदेव अपने स्थान में पूजे जाते हैं । वे ज्ञानी हैं । विद्वज्जन उनका स्तवन करते हैं । उनकी हम अतिथि के समान पूजा करतें हुए सुख पाते हैं । उनकी शिखाएं सीमा रहित हैं । वे विश्वविहित बल वाले एवं कामनाओं की वर्षा से तृप्त करने वाले हैं । हे अग्निदेव ! तुम सबको अपनी शक्ति से परिपूर्ण करते हो ।८। हे अग्ने ! तुम यज्ञ को प्राप्त करते हुए अत्यन्त सुन्दर रूप से प्रकट होते हो । तुम शीघ्र ही अन्यों को पार कर उनसे बढ़ते और अग्रसर होते हो । तुम स्तुति के पात्र, प्रकाश देने वाले एवं प्रकाशवान् हो । तुम सभी प्राणियों के लिये पूजनीय तथा अतिथि रूप हो ।९। हे अत्यन्त युवा अग्निदेव ! साधकगण पास से तथा दूर से तुम्हारी परिचर्या करते हैं । अधिक स्तुति करने वाले उपासक की स्तुतियों को तुम ग्रहण करते हो । तुम्हारा दिया हुआ सुख सदा स्थिर रहने वाला तथा प्रशंसनीय होता है ।१०। हे अग्ने ! तुम अत्यन्त प्रकाशवान् हो। तुम सर्वांग सुन्दर रथ पर देवताओं के साथ सवार होओ । तुम विभिन्न मार्गों को जानकर उन्हें अतिक्रमण करने में समर्थ हो तथा देवगण

को हवि ग्रहण करने के निमित्त यज्ञ स्थान में लाते हो ॥ ११ ॥ हम मेधावीजन कामनाओं की वर्षा करने वाले, पवित्र अग्नि के लिए स्तुति योग्य श्रेष्ठ स्तोत्र को कहते हैं। स्थिर चित्त वाले ऋषिजन आकाशस्थ गतिमान् प्रकाशवान् और विस्तीर्ण सूर्य रूप अग्नि के लिए नमस्कारयुक्त स्तुति करते हैं ॥१२॥

सूक्त २

(ऋषि-कुमार आत्रेयो वृशो । देवता—अग्निः । छन्द-त्रिष्टुप्,पंक्तिः,जगती)

कुमारं माता युवतिः समुब्धं गुहा विभर्ति न ददाति पित्रे ।
अनीकमस्य न मिनज्जनासः पुरः पश्यन्ति निहितमरतौ ॥१
कमेतं त्वं युवते कुमार पेषी विभर्षि महिषी जजान ।
पूर्वीर्हि गर्भः शरदो ववर्धापश्यं जातं यदसूत माता ॥२
हिरण्यदन्तं शुचिवर्णमारात्क्षेत्रादपश्यमायुधा मिमानम् ।
ददानो अस्मा अमृतं पिपृक्वत्किं मामनिन्द्राः कृणवन्ननुक्थाः ॥३
क्षेत्रादपश्यं सनुतश्चरन्त सुमद्यूथं न पुरं शोभामानम्
न ता अगृभ्रन्नजनिष्टं हिं षः पलिक्नीरिद्युवतयो भवन्ति ॥४
के मे मर्यकं वि यवन्त गोभिर्न येषां गोपा अरणश्चिदास ।
य ईं जगृभुरव ते सृजन्त्वाजाति पश्व उप नश्चिकित्वान् ॥५
वसां राजानं वसतिं जनानामरातयो नि दधुर्मर्त्येषु ।
ब्रह्माण्यत्रेरव सृजन्तु निन्दितारो निन्द्यासो भवन्तु ॥६॥१४

बालक को जन्म देने वाली माता गर्भ में धारण करती है और उत्पन्न होने पर स्वयं पालती है और उसके पिता को नहीं देती। उस सुरक्षित बालक को द्वेषी जन विनष्ट नहीं कर सकते और उसके अरणि स्थान में स्थिर होने पर देखते हैं।१। हे रमणी ! तुम बालक को गर्भमें धारण करती और फिर उसका पोषण करती हो। तब उस उत्पन्न हुए बालक को सभी जान जाते हैं। वह बालक प्रारम्भिक वर्षों में बढ़ता है। उसी प्रकार

माता रूप अरणि जिस बालक को उत्पन्न करती है, उसे हम देखते हैं ।।२।। हमने निकटवर्ती स्थान से सुवर्ण के समान ज्वाला वाले, प्रदीप्त अग्निदेव को देखा । हमने उन्हें सर्वत्र व्याप्त तथा अमरत्व से युक्त स्तोत्र निवेदन किया । जो व्यक्ति इन्द्र को आराध्य नहीं मानते अथवा उनका पूजन नहीं करते वे हमारा क्या बिगाड़ सकते हैं । ३ । गौओं के झुण्ड के समान निश्चत भाव से वन में विचरते हुए तथा विभिन्न प्रकार से सुशोभित एवं प्रकाशवान् अग्नि के हमने दर्शन किये । उनकी ज्वालायें प्रदीप्त होती हुई युवतियों के बालक जनते-जनते वृद्धा हो जाने के समान ही निर्वीर्य होने लगती है, तब हविरत्न प्राप्त करती हुई वे वृद्धाओं के समान निर्बल ज्वाला भी युवतियों के समान हृष्ट-पुष्ट हो जाती हैं ।।४।। जो सदाचारी पुरुष नहीं होते, वे सम्पत्तियों से हीन होते हैं । जिनमें कोई नायक या स्वामी नहीं हैं, वे कौन मुझ राष्ट्रवासी के रक्षक को भूमिहीन कर सकता है ? उसे पकड़ने वाले शत्रु, उसे मुक्त करें । वे अग्नि हमारे पशुओं के रक्षक होते हुए हमारे निकट रहें ।। ५ ।। अग्निदेव सब जीवों के ईश्वर तथा आश्रयदाता हैं । शत्रु लोग मरण-धर्माओं में उनको छिपा देते हैं । अत्रि वंशियों की स्तुति उन्हें बन्धन से छुड़ावे । निन्दा करने वालों की निन्दा हो ।।६।। [१४]

शुनश्चिच्छेपं निदिपं सहस्राद्यू पादमुञ्चो अशमिष्ट हि षः ।
एवास्मदग्ने वि मुमुग्धि पाशान्होतश्चिकित्व इह तू निषद्य ।।७

हृणीयमानो अप हि मदैयेः प्र मे देवानाँ व्रतापा उवाच ।
इन्द्रो विद्वां अनु हि त्वा चचक्षतेनाहमग्ने अनुशिष्ट आगाम् ।।८

वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि कृणुते महित्वा ।
प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः शिशीते शृङ्गे रक्षसे विनिक्षे ।।९
उत स्वानासो दिवि षन्त्वग्नेहितग्मायायुधारक्षसे हन्तवा उ ।
मदे चिदस्य प्र रुजन्ति भामा न वरन्ते परिबाधो अदेवीः ।।१०

एतं ते स्तोमं तुविजात विप्रो रथं न धीरः स्वपा अतक्षम् ।
यदीदग्ने प्रति त्वं देव हर्याः स्वर्वतीरप एना जयेम ।।११

तुवग्रीवो वृषभो वावृधानोऽशत्र्वर्यः समजाति वेदः ।
इतीममग्निममृता अवोचन्वर्हिष्मते मनवे शर्म यंसद्धविष्मते
मनवे शर्म यंसत् ।।१२।१५

हे अग्ने ! तुमने शुनःशेप को सहस्र यूप से छुड़ाया, क्योंकि उन्होंने तुम्हारी स्तुति की थी। हे होतारूप अग्निदेव ! तुम मेधावी हो। इस वेदी पर प्रतिष्ठित होओ। हम साधकों को भी बन्धन से छुड़ाने की कृपा करो। हे अग्ने ! जब तुम क्रोधित होते हो, तब हमसे दूर चले जाते हो। देवताओं के कार्यों को सिद्ध करने वाले इन्द्र ने मुझे उपदेश दिया था। वे मेधावी हैं, उन्होंने तुम्हें प्रेरित किया था। उनके द्वारा अनुशासित होने वाले हम तुम्हारे समक्ष उपस्थित होते हैं ।८। वे अग्निदेव अपने महान् तेज द्वारा अत्यन्त प्रकाशवान् होते हैं। वे अपनी महानता से ही सब पदार्थों को प्रकट करते हैं। वे अग्निदेव वृद्धि पाकर असुरों की कष्टकर योजना को विनष्ट करते हैं। असुरों का नाश करने के लिए वे अपनी ज्वालाओं को दीप्ति विशिष्ट करते हैं। ९। अग्नि की शब्दमयी ज्वाला तेज धार वाले हथियारों के समान असुरों का नाश करने के लिए आकाश में प्रकट होती हैं। वे जब पुष्ट होकर विकराल रूप धारण करते हैं, तब उनका क्रोध दुष्टों को सन्तापजनक होता है। दुष्टों की सेनायें उनके किसी कार्य में बाधक नहीं हो सकती ।१०। हे बहुकर्मा अग्निदेव ! हम तुम्हारी स्तुति करने वाले साधक हैं। जैसे चतुर व्यक्ति रथ को बनाता है, वैसे ही हम तुम्हारे उद्देश्य से स्तोत्र को बनाते हैं। हे अग्ने ! हमारे स्तोत्र को स्वीकार करो जिससे हम विजय प्राप्त कर सकें ।११। बहुत ज्वालाओं वाले, कामनाओं के वर्षक, प्रवृद्ध अग्निदेव निर्बाध रूप से शत्रुओं के धन को छीन कर देते हैं। इसी कारण देवगण तुम्हें अग्नि कहते हैं। वे याज्ञिकों को सुख दें तथा हविदाता यजमान को भी सुख प्रदान करें ।१२। [१५]

सूक्त ३

(ऋषि—वसुश्रुत आत्रेयः। देवता—अग्नि। छन्द—पंक्तिः त्रिष्टुप्)

त्वमग्ने वरुणो जायसे यत्त्वं मित्रो भवसि यत्समिद्धः।

त्वे विश्वे सहसस्पुत्र देवास्त्वमिन्द्रो दाशुषे मर्त्याय ॥१
त्वमर्यमा भवसि यत्कनीनां नाम स्वधावन्गुह्यं विभर्षि ।
अञ्जन्ति मित्रं सुधितं न गोभिर्यद्दम्पती मनसा कृणोषि ॥२
तव श्रिये मरुतो मजयन्त रुद्र यत्ते जनि चारु चित्रम् ।
पदं यद्विष्णोरुपमं निधायि तेन पासि गुह्यं नाम गोनाम् ॥३
तव श्रिया सुदृशो देव देवां पुरू दधाना अमृतं सपन्त ।
होतारमग्निं मनुषो नि षेदुर्दशस्तन्त उशिज शंसमायोः ॥४
न त्वद्धोता पूर्वो अग्ने यजीयान्न काव्यैः परो अस्ति स्वधावः ।
विशस्च यस्या अतिथिर्भवासि स यज्ञेन वनवद्देव मर्तान् ॥५
वयमग्ने वनुयाम त्वोता वसूयवो हविषा बुध्यमानाः ।
वयं समर्ये विदथेष्वह्नां वयं राया सहसस्पुत्र मर्तान् ॥६।१९

हे अग्ने ! तुम प्रकट होते ही वरुण के समान होते हो। समृद्ध होकर मित्र के समान होते हो। सब देवता तुम्हारे पद-चिह्नों पर चलते हैं। हे बल के पुत्र अग्निदेव ! तुम हविदाता यजमान के लिए इन्द्र के समान ही पूजनीय हो। १। हे अग्ने ! तुम कन्याओं के अर्यमा अर्थात् विधानकर्त्ता के तुल्य हो। गोपनीय नाम धारण करने वाले हो। तुम जब पति-पत्नी को समान मन वाला बनाते हो, तब वे तुम्हें घृत, दुग्ध द्वारा बन्धु के समान सींचते हैं। २। हे अग्ने ! मरुद्गण तुम्हारे आश्रय हेतु अन्तरिक्ष का शोधन करते है। हे रुद्र रूप ! विष्णु का व्यापक पद तुम्हारे निमित्त अवस्थित हुआ है, उसके द्वारा तुम प्रजाओं के बल का पालन करो। ३। हे अग्ने ! इन्द्रादि देवता भी तुम्हारे समृद्ध होने पर ही दर्शनीय होते हैं। वे देवता लोग तुमसे अनन्य स्नेह करते हुए अमृत को प्राप्त करते हैं। फल की कामना करने वाले यजमान के निमित्त ऋत्विग्गण हवियाँ देते हुए होता रूप अग्नि की सेवा करते हैं।४। हे अग्ने ! तुम्हारे सिवाय अन्य कोई होता नहीं है। कोई यज्ञ करने वाला भी तुम्हारे समान प्राचीन नहीं है। हे अन्नवान् अग्ने ! भविष्य में तुम्हारे सिवाय कोई अन्य स्तुति का पात्र नहीं होगा। तुम जिसके अतिथि रूप होते हो, वह

ऋत्विक् यज्ञ कर्म द्वारा अपने शत्रुओं का नाश करने में समर्थ होता है ।२। हे अग्ने ! हम जब तुम्हारा आश्रय प्राप्त कर लेंगे तब शत्रुओं को पीड़ित करेंगे। हम धन की इच्छा करते हैं। हम तुम्हें हविरत्न द्वारा बढ़ाते हैं। हम युद्ध में विजय प्राप्त करें और नित्य प्रति यज्ञ द्वारा बल लाभ करें। हे बल के पुत्र अग्ने ! हम धन तथा सन्तान प्राप्त करें ॥ ६ ॥ [१६]

योन आगे अग्येनो भरात्यधीदघमघशंसे दधात ।
जही चिकित्वो अभिशस्तिमेतामग्ने यो नो मर्चयति द्वयेन ॥७
त्वामस्या व्युषि देव पूर्वे दूतं कृण्वाना अयजन्त हव्यैः ।
संस्थे यदग्न ईंयसे रयीणां देवो मर्तैर्वसुभिरिध्यमानः ॥८
अव स्पृधि पितरं योधि विद्वान्पुत्रो यस्ते सहसः सून ऊहे ।
कदा चिकित्वो अभि चक्षसे नोऽग्ने कदाँ ऋतचिद्यातयासे ॥९
भूरि नाम वन्दमानो दधाति पिता वसो यदि यज्जोषयासे ।
कुविद्देवस्य सहसा चकानः सुम्नमग्निर्वनते वावृधानः ॥१०
त्वमङ्ग जरितारं यविष्ट विश्वान्यग्ने दुरताति पर्षि ।
स्तेना अदृश्रन्रिपवो जनासोऽज्ञातकेता वृजिना अभूवन् ॥११
इमे यामसस्त्वद्रिगभूवन्वसवे वा तदिदागो अवाचि ।
नाहायमग्निरभिशस्तये नो न रीषते वावृधानः परा दात्॥१२॥१७॥

जो मनुष्य हमारा अपराध करता है या हमारे प्रति पाप व्यवहार है, उस पापी मनुष्य के प्रति अग्निदेव पाप-पुण्य के व्यवहार को न देखें। हे अग्ने ! तुम मेधावी हो। जो हमको पाप-कर्म अथवा अपराध द्वारा शुभ कर्मों से रोके, उसे नष्ट कर दो। ७। हे अग्ने ! प्राचीन यजमान उषा-काल में यज्ञ करते हुए तुम्हें देवदूत बनाते हैं। तुम हवि ग्रहण करने के पश्चात् यजमानों द्वारा प्रवृद्ध होते हुए चलते हो। ८। हे बल के पुत्र ! तुम सबके पिता समान हो। जो मेधावी पुत्र तुमको हविदान करता है तुम उसे सङ्कट से पार करते हुए पाप से हटाते हो। हे अग्ने ! तुम हमको कब

देखोगे और कब श्रेष्ठ मार्ग में प्रेरित करोगे ? ॥ ९ ॥ हे अग्ने ! तुम उत्तम वास देने वाले हो । तुम पालनकर्त्ता हो । तुम्हारे नाम की स्तुति करने पर दी जाने वाली हवियों को तुम भक्षण करते हो । यजमान उससे पुत्रवान् होता है । यजमान के बहुत हविरत्न के इच्छुक तथा बढ़ाने वाले अग्निदेव शक्तिशाली होकर सुख देते हैं । १० । हे अत्यन्त युवा अग्निदेव ! तुम सबके स्वामी हो । तुम स्तुति करने वालों पर कृपा करने के लिए सभी विघ्नों से बचाते हो । चोर और शत्रु रूप मनुष्य सब हमारे द्वारा रोके जाते हैं ॥११॥ यह स्तोत्र तुम्हारे सामने पहुंचाते हैं । हम अपने अपराधों को तुम्हारे सम्मुख निवेदन करते हैं । हमारी स्तुति से प्रबुद्ध हुए अग्निदेव हमको हिंसकों के साथ जाने से बचावें ॥ १२ ॥ [१७]

सूक्त ४

(ऋषि—बसुश्रुत आत्रेयः । देवता—अग्निः । छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप)

त्वामग्ने वसुपतिं वसूनामभि प्र मन्दे अध्वरेषु राजन् ।
त्वया वाजं वाजयन्तो जयमाभि ष्याम पृत्सुतीर्मर्त्यानाम् ॥१
हव्यवालग्निरजरः पिता नो विभुर्विभावा सुदृशीको अस्मे ।
सुगार्हपत्याः समिषो दिदीह्यस्मद्र्यक्सं मिमीह श्रवांसि । २
विशां कविं विश्पतिं मानुषीणां शुचिं पावकं घृतपृष्ठमग्निम् ।
नि होतारं विश्वविदं दधिध्वे स देवेषु वनते वार्य्याणि ॥३
जुषस्वाग्न इलया सजोषा यतमानो रश्मिभिः सूर्यस्य ।
जुषस्व नः समिधं जातवेद आ च देवान्हविरद्याय वक्षि ॥४
जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोण इमं नो यज्ञमुप याहि विद्वान् ।
विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्या शत्रुयतामा भरा भोजनानि ॥५॥१८

हे अग्निदेव ! तुम धनों के स्वामी हो । इस यज्ञ में हम तुम्हारी स्तुति करते हैं । हम अन्न की कामना करने वाले हैं, तुम्हारे अनुकूल होनेसे हमको अन्न का लाभ होगा और हम शत्रु सेना को भगा सकेंगे ।१। हवियों को हवन

करने वाले अग्नि हमारी रक्षा करें । वे हमारे सामने सर्वव्यापक रूप से तथा प्रकाशयुक्त होते हुए श्रेष्ठ दर्शन करने वाले हों । हे अग्ने ! तुम सुन्दर अन्न को प्रकट करो । हमको प्रचुर अन्न प्रदान करो ।। २ ।। हे ऋत्विजो ! तुम मनुष्यों के ईश्वर, पवित्र, मेघावी तथा मनुष्यों को पवित्र करने वाले, यज्ञसम्पादक, सर्वज्ञानी और घृत की कामना वाले अग्नि को धारण करो । वे अग्नि हमारे बीच एकत्रित धन को हमारे लिए समान भाव से बाँटते हैं । ३ । हे अग्ने ! इला से प्रीतिमान् हुए तुम सूर्य की किरणों द्वारा क्रियावान् होते हुए स्तुति को ग्रहण करो । हमारी समिधा को ग्रहण करते हुए हविर्भक्षण के निमित्त देवताओं को बुलाओ तथा हवियों के वहन करने वाले होओ ।।४।। हे अग्ने ! तुम विद्वान् हो । तुम घर आये हुए अतिथि के समान पूजनीय होकर हमारे इस यज्ञ स्थान में आओ । तुम सब शत्रुओं का नाश करते हुए शत्रुता का व्यवहार करने वाले सब मनुष्यों के धन को छीन लो ।५। [१८]

वधेन दस्युं प्र हि चातयस्व वयः कृण्वानस्तन्वे स्वायै ।
पिपर्षि यत्सहसस्पुत्र देवान्त्सो अग्ने पाहि नृतम वाजे अस्मान् ।।६
वयं ते अग्न उक्थैर्विधेम वयं हव्यैः पावक भद्रशोचे ।
अस्मे रयिं विश्ववरं समिन्वास्मे विश्वानि द्रविणानि धेहि ।।७
अस्माकमग्ने अध्वरं जुषस्व सहसः सूनो त्रिषधस्य हव्यम् ।
वयं देवेषु सुकृतः स्याम शर्मणा नस्त्रिवरूथेन पाहि ।।८
विश्वानि नो दुर्गहा जातवेदः सिन्धुं न नावा दुरितातिपर्षि ।
अग्ने अत्रिवन्नमसा गृणानो स्माकं बोध्यविता तनूनाम् ।।९
यस्य हृदा कीरिणा मन्यमानोऽमर्त्यं मर्त्यो जोहवीमि ।
जातवेदो यशो अस्मासु धेहि प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्याम् ।।१०
यस्मै त्वं सुकृते जातवेद उ लोकमग्ने कृणवः स्योनम् ।
अश्विनं स पुत्रिणं वीरवन्तं गोमन्तं रयिं नशते स्वस्ति ।।११।१९

हे अग्ने ! तुम अपने पुत्र स्वरूप यजमान को अन्न देते और शस्त्रों द्वारा असुरों का नाश करते हो । तुम बल के पुत्र हो तुम जिस कारण देव-

ताओं को वढ़ाते हो, हे श्रेष्ठदेव ! उसी कारण हम साधकों की रणभूमि में रक्षा करो ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! हम श्रेष्ठ वचनों द्वारा तुम्हारी स्तुति करेंगे । हे पवित्र करने वाले ! हम हविदान द्वारा तुम्हारी परिचर्या करेंगे । हे कल्याणकारी एवं अत्यन्त तेज से युक्त अग्निदेव ! तुम हमको सबको वरण करने योग्य ऐश्वर्य प्राप्त कराओ । हमको सब प्रकार के धन प्रदान करो ।७। हे अग्ने ! हमारे यज्ञ-स्थान में रक्षक पद को ग्रहण करो । जल, स्थल, पर्वत इन तीन स्थानों में निवास करने वाले तुम हमारे हविरत्न का सेवन करो । हम देवताओं के निमित्त श्रेष्ठ कर्मों के करने वाले बनें । तुम हमारी तीनों तापों से रक्षा करो । सुन्दर आवासयुक्त घर देकर हमारा पोषण करो । ८ । हे सम्पूर्ण ऐश्वर्यों के स्वामी अग्निदेव ! जैसे मल्लाह नाव द्वारा सबको नदी के पार लगाता है, वैसे ही तुम हमको समस्त वाधाओं से पार लगाओ । तुम अत्रि के समान हमारे स्तोत्र द्वारा नमस्कृत होकर हमारे शरीरों की रक्षा करने वाले बनो ॥९॥ हे अमर अग्ने ! हम मनुष्य मरणधर्मा हैं । हम स्तुतियों से परिपूर्ण हृदय द्वारा नमस्कार करते हुए बारम्बार तुम्हारा आह्वान करते हैं । हे ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! हमको अन्न और यश प्रदान करो । हे अग्ने ! हम तुम्हारे अविनाशी स्वरूप का ध्यान करते हुए सन्तानों से युक्त होकर सदा स्थिर मन वाले रहें । १० । हे ऐश्वर्यों के उत्पन्न करने वाले अग्निदेव ! जिस उत्तम कर्म करने वाले यजमान पर तुम कल्याणमय कृपा करते हो, वह यजमान अश्व, सन्तान, बल, गौ तथा ऐश्वर्य को प्राप्त करता है ॥११॥ [१६]

सूक्त ५

(ऋषि-वसुश्रुत आत्रेयः । देवता-आप्रीम् । छन्द—गायत्री, उष्णिक्)

रसभिद्धाय शोचिषे घृत तीव्रं जुहोतन अग्नये जावेदसे ॥१
नराशंसः सुषुदतीमं यज्ञसदाभ्यः । कविर्हि मधुहस्त्यः ॥२
ईलितो अग्न आ वहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम् । सुखै रथेभिरूतये ॥३
ऊर्णम्रदा वि प्रथस्वाभ्यर्का अनूषत । भवा वः शुभ्र सातये ॥४
देवीर्द्वारोवि श्रयध्वं सुप्रायणा न ऊतये । प्रप्र यज्ञ पृणीतन ॥५॥२२

हे ऋत्विजो ! ऐश्वर्योत्पादक,तेजस्वी एवं प्रकाशवान् अग्नि के निमित्त

घृतयुक्त अन्न से यज्ञ करो ।१। सब मनुष्यों में प्रशंसा के योग्य अग्नि हमारे इस यज्ञ को प्रज्वलित करें। वे अग्नि कर्म-कुशल, विद्वान् तथा कभी भी पीड़ित न होने वाले हैं।२। हे अग्ने ! तुम स्तुति के पात्र हो। तुम इस लोक में हमारी रक्षा के निमित्त अद्भुत एवं सबके प्रिय इन्द्र को सुखकारी रथ द्वारा इस यज्ञ स्थान में ले आओ।३। हे अग्ने ! तुम उनके समान मृदु एवं सुखकारक होते हुए रक्षक बनो । हे शुभ्र ! हम स्तोतागण तुम्हारा स्तवन करते हैं तुम विविध प्रकार से वृद्धि को प्राप्त होते हुए हमको धनैश्वर्य प्राप्त कराओ।४। हे हवियो ! तुम उत्तम गतिवाली, यज्ञ-द्वार की रक्षिका एवं श्रेष्ठ कर्म वाली हो। तुम सब हमारी रक्षा के निमित्त अपने विविध कार्यों द्वारा यज्ञ की परिचर्या करो ॥५॥ [२०]

सुप्रतीके वयोवृधा यह्वी ऋतस्व मातरा। दोषामुषासमीमहे ॥६
वातस्यपत्मन्नीलितादेव्याहोतारा मनुषः। इमनोयज्ञमागतम् ॥७
इला सरस्वती महीतिस्त्रो देवीमयोभुवः। बर्हिः सीदन्त्वस्त्रिधः॥८
शिवस्त्वष्ठरिहा गहि त्रिभुः पोष उतत्मना। यज्ञे यज्ञे न उदव॥९
यव वेत्थ वनस्पते देवानां गुह्या नामानि। तत्र हव्यानि गामय॥१०
स्वाहाग्नयेवरुणायस्वाहेन्द्रायमरुद्भ्यः।स्वाहादेवेभ्योहविः ॥११।१२

सुन्दर रूप वाली, अन्नों को बढ़ाने वाली, महान् कर्मों के करने में सामर्थ्यवती जल की निर्मात्री रात्रि और उषा देवियों की हम उत्तम स्तुति द्वारा पूजा करते हैं।६। हे अग्नि-आदित्य रूप दो होताओ ! तुम दोनों हमारे द्वारा पूजित हुए वायु-मार्ग से चलते हो। तुम दोनों हमारे इस यज्ञ स्थान को प्राप्त होओ।७। इला, सरस्वती, मही, तीनों देवियां सुख उत्पन्न करने वाली हों और वे हिंसा आदि कर्मों को न करती हुई, वृद्धिपूर्वक हमारे यज्ञस्थान में स्थापित हो।८। त्वष्टादेव ! तुम व्यापक सामर्थ्य वाले, कल्याणकारी और सर्वपोषक होकर यहां आगमन करो और हमारे श्रेष्ठ यज्ञादि कर्मों में उत्तम पद पर प्रतिष्ठित होकर हमारे रक्षक बनो।९। हे वनस्पते ! तुम जहां कहीं भी हो देवताओं के गुप्त चिह्नों को बुद्धिपूर्वक जानते हो, वहीं हव्यादि यज्ञ-साधनों को प्राप्त कराओ।१०। यह स्वाहाकारयुक्त हवि

अग्नि और वरुण को दी गई है। यह हवि स्वाहा रूप से मरुद्गण के निमित्त दी गई है। स्वाहाकारयुक्त हवि देवताओं को दी गई है ॥११॥ [२१]

सूक्त ६

(ऋषि—वसुश्रुत आत्रेयः। देवता—अग्निः। छन्द-त्रिष्टुप्,पंक्तिः)

अग्नि तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः।
अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासोवाजिन इषं स्तोतृभ्य आभर ॥१
सो अग्निर्यो वसुगृ॑णे स यमायन्ति धेनवः।
समर्वन्तो रघुद्रुवः स सुजातासः सूरय इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥२
अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः।
अग्नी राये स्वाभुव स प्रीतो वीर्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥३
आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम्।
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य आ भर ॥४
आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य शोचिषस्पते।
सुश्चन्द्रदस्मविश्पतेहव्यवाट्तुभ्यंहूयतइषंस्तोतृभ्य आ भर ॥५॥२२

जो उत्तम निवास देने वाले हैं जो सबको घर के समान आश्रय यजमान आहुत करते हैं उन अग्नि की हम पूजा करते हैं। हे अग्ने! स्तोताओं के लिये तुम अन्न और कामना योग्य धन प्राप्त कराओ।१। जो अग्नि निवासदाता के रूप आहूत होते हैं जिनके समीप गौएं और शीघ्रगामी अश्व एकत्र होकर आते हैं जिनके सत्संग के निमित्त विद्वज्जन भी उपस्थित होते हैं, वे देवता अग्नि ही हैं, हे अग्ने! तुम स्तुति करने वालों को अभिलषित अन्नादि प्राप्त कराओ।१। सबके कर्मों के देखने वाले अग्नि मनुष्यों को अन्न और सन्तान देते हैं। वे प्रसन्न होकर सबके द्वारा ग्रहण करने योग्य धन प्रदान करने के लिये प्रस्थान करते हैं। हे अग्ने! स्तुतिकर्त्ता के लिये अभिलषित अन्नादि पदार्थ प्राप्त

कराओ ।३। हे अग्ने ! तुम अजर एवं प्रकाश से पूर्ण हो। हम तुम्हें सभी श्रेष्ठ भावों द्वारा प्रज्वलित करते हैं। तुम्हारा प्रकाश पूजनीय है। वह आकाश प्रकाशित होता है। हे अग्ने ! स्तुति करने वालों को इच्छित धनादि पदार्थ प्राप्त कराओ ।४। हे अग्ने ! तुम तेज-पुंजों के अधीश्वर हो। तुम शत्रुओं को नष्ट करने वाले, प्रजाओं के पालनकर्ता, प्रसन्नताप्रद हवियों के वहन करने वाले तथा प्रकाशवान् हो। तुम्हारे निमित्त मन्त्रों द्वारा हवियां दी जाती हैं। हे अग्ने ! तुम स्तुति करने वाले श्रेष्ठ जनों को अभिलषित अन्न धन प्राप्त कराओ ।।५।। [२३।

प्रो त्ये अग्नयोऽग्निषु विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
ते हिन्विरे त इन्विरे त इषण्यन्त्यानुषगिष स्तोतृभ्य आ भर ।।६
तव त्ये अग्ने अर्चयो महि व्राध त वाजिनः ।
ये पत्वभिः शफानाँ व्रजा भुरन्त गोनामिषं स्तोतृभ्य आ भर ।।७
नवा नो अग्न आ भर स्तोतृभ्यः सुक्षितीरिषः ।
ते स्याम य आनृवुस्त्वादूतासो दमेदम इषं स्तोतृभ्य आ भर ।।८
उसे सुश्चन्द्र सर्पिसो दर्वी श्रीणीष आसनि ।
उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषं स्तोतृभ्य आ भर ।।९
एवाँ अग्निमजुर्यमुर्गीर्भिर्यज्ञेभिरानुषक ।
दधदस्मे सुवीर्यमुत त्यद श्वश्व्यमिष स्तोतृभ्य आ भर ।।१०।२३

यह लौकिक अग्नि गार्हपत्यादि अग्नि में सभी वरण करने योग्य धनों को पुष्ट करते हैं। यह अग्नि प्रीतिपूर्वक सब ओर व्याप्त होते हैं और हविरन्न की कामना करते हैं। हे अग्ने! स्तुति करने वालों को अभिलषित अन्नादि प्राप्त कराओ ।६। हे अग्ने ! तुम्हारी किरणें अन्नवान् होकर बढ़ें। तुम्हारी किरणें हवन की अभिलाषा करने वाली हों। हे अग्ने ! तुम स्तुतिसाधकों के लिए अभिषित अन्नादि प्राप्त कराओ ।७। हे अग्ने ! हम तुम्हारी स्तुति करने वाले हैं। तुम हमको अन्नयुक्त नवीन घर प्रदान करो, जिससे हम सभी यज्ञों में पूजा करें और दूत रूप से तुम्हें प्राप्त करें। हे अग्ने ! स्तुतिसाधकों को अभिलषित धनादि प्राप्त कराने वाले होओ ।८। हे अग्ने ! तुम

प्रसन्नता प्रदान करते हो । तुम शत्रुओं का नाश करने के लिए दर्वीद्वय को मुख में रखते हो । तुम बल के रक्षक हो । इस यज्ञ में हमको फल देते हुए भरिपूर्ण करो । हे अग्ने ! स्तुति-साधकों के लिए इच्छित अन्न-धन लाभ कराओ ।९। इस प्रकार विद्वान् उत्तम वाणियों द्वारा अग्नि के समक्ष उपस्थित होकर उन्हें प्रतिष्ठित करते हैं । वे अग्नि हम साधकों को सुन्दर सन्तान और द्रुतगति वाले अश्व प्रदान करें । हे अग्ने ! स्तुति वालों को तुम अभिलषित धन प्राप्त कराओ ॥१०॥ (२३)

सूक्त ७

(ऋषि—इषः । देवता—अग्निः । छन्द—अनुष्टुप्,)

सखायः सं वः सम्यंचमिषं स्तोमं चाग्नये ।
वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो नप्त्रे सहस्वते ॥१
कुत्रा चिद्यस्य समृतो रण्वा नरो नृषदने ।
अहन्तश्चिद्यमिन्धते सजनयन्ति जन्तयः ॥२
सं यदिषो वनामहे सं हव्या मानुषाणाभ् ।
उत द्युम्नस्य शवस ऋतस्य रश्मिमा ददे ॥३
सः स्मा कृणोति केतुमा नक्तं चिद्दूर आ सते ।
पावको यद्वनस्पतीन्प्रस्मा मिनात्यजरः ॥४
अव स्म यस्य वेषणे स्वेदं पथिषु जुह्वति ।
अभीमह स्वजेन्यं भूमा पृष्ठेव रुरुहः ॥५।२४

हे समान भाव वाले मित्रो ! तुम यजमानों के लिए अत्यन्त बढ़े हुए, शक्तिशाली, बल के पुत्र अग्नि को, पूजन के योग्य हविरन्न देते हुए उनकी स्तुति करो ।१। जिन्हें पाकर ऋत्विग्गण प्रसन्न होते हैं जिन्हें यज्ञ गृह में पूजते हुए प्रज्वलित करते हैं, जिन्हें सर्वजन मिलकर प्रधान कर्म वाले मानते हैं, वे अग्नि हैं ।२। जब हम अग्नि के निमित्त हव्य देते हैं और जब वे हमारे हव्य को भक्षण करते हैं, तब वे प्रकाशवान् अग्नि अन्न के बल से रश्मियों को ग्रहण करते हैं ।३। जब अजर और पवित्र अग्नि वनस्पतियों को

भस्म करते हैं, तब वे रात्रि के समय भी अंधकार को दूर करते हुए सब ओर प्रकाश को फैलाते हैं ।४। अग्नि की परिचर्या में सींचे जाने वाले घृत को अध्वर्युगण ज्वालाओं में अवस्थित करते हैं । जैसे पुत्र पिता के अङ्क को प्राप्त होता है, वैसे ही घृतधारा अग्नि की गोद में गिरती है ।५।

[२४]

यं मर्त्यः पुरुस्पृहं विद्विश्वस्य धायसे ।
प्र स्वादनं पितूनामस्ततातिं चिदायवे ॥६
स हि ष्मा धन्वाक्षितं दाता न दात्या पशुः ।
हिरिश्मश्रुः शुत्रिदन्नृभुरनिभृष्टतविषिः ॥७
शुचिः ष्म यस्मा अत्रिवत्प्र स्वधितीव रीयते ।
सुष्रूरसूत माता क्राणा यदानशे भगम् ॥८
आ यस्ते सर्पिरासुतेऽग्ने शमस्ति धायसे ।
ऐषु द्युम्नमुत श्रव आ चित्तं मर्त्येषु धाः ॥९
इति चिन्मन्युमध्रिजस्त्वादातमा पशुं ददे ।
आदग्ने अपृणतोऽत्रिः सासह्याद्दस्यूनिषः सासह्यान्नॄन् ॥१०।२५

अग्निदेव अनेकों द्वारा कामना के योग्य, सबके धारण करने वाले, अन्नों को चखने वाले एवं यजमानों को सुन्दर निवास देने वाले हैं । यजमान उनके गुणों को भली प्रकार जानते हैं ।६। तृणों को उखड़ने वाले पशुओं के समान अग्नि जल से रहित तथा तिनके और काठ से परिपूर्ण प्रदेश को पृथक् करते हैं । वे सुवर्ण वर्ण की मूँछो वाले, उज्ज्वल दाँतों वाले महान् हैं । उनका बल किसी के सामने भी फीका नहीं पड़ता ।७। जो कुल्हाड़े के समान वृक्षादि को विनष्ट कर देते हैं जिनके निकट लोग अत्रि के समान जाते हैं, वे अग्नि हैं । वे दीप्तिमान् अग्नि हविरत्न को ग्रहण करते तथा संसार का कल्याण करने वाले हैं । माता रूप अरणि ने उन्हीं अग्नि को उत्पन्न किया था ।८। हे अग्ने ! तुम हवि भक्षण करने वाले हो । तुम सबके धारणकर्त्ता हो । हमारी स्तुतियाँ तुमको प्रसन्न करने वाली हों । तुम स्तुति करने वालों को मन, अन्न और हार्दिक स्नेह प्रदान करो ।९। हे अग्ने ! अन्यों द्वारा न

किये गये स्तोत्रों को उच्चारण करने वाले ऋषिगण तुमसे पशु प्राप्त करते हैं जो अग्नि को हवियां नहीं देता उस दुष्ट को अग्नि अपने वश करें तथा अन्य विद्वेषियों को भी वशीभूत कर लें। १०। [२५]

सूक्त ८

(ऋषि--इष आत्रेयः देवता—अग्निः । छन्द–त्रिष्टुप्, जगती)

त्वामग्न ऋतायवः समीधिरे प्रत्न प्रत्नास ऊतये सहस्कृत।
पुरुश्चन्द्रं विश्वधायसं दमूनसं गृहपति वरेण्यम् ।।१
त्वामग्ने अतिथिं पूर्व्यं विशः शोचिष्केशं गृहपतिं नि षे दिरे।
बृहत्केतुं पुरुरूप धनस्पृत सुशर्माणं स्ववसं जरद्विषम् ।।२
त्वामग्ने मानुषीरीलते विशो होत्राविदं विविचिं रत्नधातमम् ।
गुहा सन्त सुभगं विश्ववर्शतं तुविष्वणसं सुयजं घृतश्रियम् ।।३
त्वामग्ने धर्णसिं विश्वधा वयं गीर्भिर्गृणन्तो नमसोप सेदिम ।
स नो जुषस्व समिधानो अङ्गिरो देवो मर्तस्य यशसा सुदीतिभिः।।४
त्वामग्ने पुरुरूपो विशे विशे वयो दधासि प्रत्नथा पुरुष्टुत ।
पुरूण्यन्ना सहसाविराजसि त्विषिः सा ते तित्विषाणस्यनाधृषे।।५
त्वामग्ने समिधानं यविष्ठय देवा दूतं चक्रिरे हव्यवाहनम् ।
उरुज्रयसं घृतयोनिमाहुतं त्वेषं चक्षुर्दधिरे चोदयमन्मति ।।६
त्वामग्ने प्रदिव आहुतं घृतैः सुम्नायवः सुषमिधा समीधिरे ।
सं वावृधानओषधीभिरुक्षितोभिज्रयांसि पार्थिवा वि तिष्ठसे।।७।

हे अग्ने ! प्राचीन हो। तुम बलकारक हो प्राचीन यज्ञ करने वाले तुम्हारा आश्रय प्राप्त करने के निमित्त तुम्हें भले प्रकार प्रज्वलित करते हैं। तुम अत्यन्त स्नेह देने वाले, यज्ञ के योग्य वरण करने योग्य, अन्नवान् गृर स्वामी हो।१। हे अग्ने ! तुम्हें यजमानों ने गृहपति के रूप से स्थापित किया है तुम अतिथि के समान पूजनीय हो। तुम दीप्तियुक्त शिखा वाले, प्राचीन, ज्वालामय, धन दने व ले, बहुरूप, सुख देने वाले मनुष्यों के रक्षक

एवं जीर्ण वृक्षों को भस्म करने वाले हों ।२। हे अग्ने ! तुम शोभन धन के स्वामी हो। मनुष्य तुम्हारी पूजा करते हैं । तुम यज्ञ-कर्मके ज्ञाता, रत्नदान करने वालों में श्रेष्ठ, गुफा में अवस्थित, प्रच्छन्न रहने वाले, सबके लिये दर्शनीय, शब्दयुक्त यज्ञ करने वाले तथा घृत के ग्रहण करने वाले हो ।३। हे अग्ने ! तुम सबके धारणकर्त्ता हो । हम बहुत स्तोत्र और नमस्कार द्वारा पूजन करते हुए तुम्हारे समक्ष उपस्थित होते हैं । तुम हमको धन देते हुए प्रसन्न होओ । हे अग्ने ! तुम भले प्रकार प्रज्वलित होते हुए यजमानों को हवियों से प्रीति करने वाले होओ ।४। हे अग्ने ! तुम विभिन्न रूप वाले होकर सभी यजमानों को पहले के समान अन्न देते हो । तुम बहुत बार पूजित हो । तुम अपने बल से ही बहुत अन्नों के अधीश्वर हो । तुम प्रकाश से युक्त हो तथा तुम्हारे प्रकाश को कोई रोक नहीं सकता ।५। हे अग्ने ! तुम अत्यन्त युवा हो । तुम समान रूप से प्रज्वलित होते हो । देवताओं ने तुम्हें हवि वहन करने वाला बताया । देवताओं तथा मनुष्यों ने अत्यन्त वेगवान् अग्नि को दर्शनीय, प्रदीप्त एवं बुद्धि का प्रेरक मानकर स्थापित किया ।६। हे अग्ने ! घृताहुति द्वारा सुख के इच्छुक यजमान तुम्हें प्रदीप्त करते हैं । सुन्दर काष्ठों द्वारा तुम्हें बढ़ाते हैं । तुम औषधियों द्वारा सींचे जाकर पृथिवी पर के अन्नों में व्याप्त होते हुए विविध बलयुक्त कर्मों को करते हो ।७।

।। तृतीय अष्टक समाप्तम् ।।

चतुर्थ अष्टक

प्रथम अध्याय

सूक्त ९

(ऋषि—गय आत्रेयः । देवता—अग्निः । छन्द—उष्णिक्, अनुष्टुप्,
वृहती, पंक्तिः)

त्वामग्ने हविष्मन्तो देवं मर्तास ईलते ।
मन्ये त्वा जातवेदसं स हव्या वक्ष्यानुषक ॥१
अग्निर्होता दास्वतः क्षयस्य वृक्तबर्हि
सं यज्ञासश्चरन्ति यं स वाजासः श्रवस्यवः ॥२
उत स्म यं शिशुं यथा नवं जनिष्टारणी ।
धर्तारं मानुषीणां विशामग्नि स्वध्वरम् ॥३
उत स्म दुर्गृभीयसे पुत्रो न ह्वार्याणाम् ।
पुरू या दग्धासि वनाग्ने पशुर्न यवसे ॥४
अध स्म यस्यार्चयः सम्यक्संयन्ति धूमिनः ।
यदीमह त्रितो दिव्युप ध्मातेव धमति शिणीते ध्मातरी यथा ॥५
तवाहमग्न ऊतिभिर्मित्रस्य च प्रशस्तिभिः ।
द्वेषोयुतो न दुरिता तुर्याम मर्त्यानाम् ॥६
तं नो अग्ने अभी नरो रयिं सहस्व आ भर ।
स क्षेपयत्स पोषद्भुवद्वाजस्य सातय उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥७॥१

हे अग्ने ? तुम देवता हो । तुम प्रकाशवान् हो । यज्ञ-साधन करने वाले पदार्थों से युक्त हुए मनुस्य तुम्हारा स्तवन करते हैं। तुम जीव मात्रके जानने वाले हो । हम तुम्हारी स्तुति करते हैं । तुम यज्ञ-साधक हवियों के बहन करने वाले हो ।१। सभी यज्ञ अग्नि का अनुगमन करते हैं,यजमानके

यज्ञ का सम्पादन करने वाले हव्य जिन अग्नि को प्राप्त होते हैं, वह अग्नि कुश उखाड़ने वाले यजमान के यज्ञ के निमित्त देवताओं को बुलाने वाले बनते हैं ।२। भोजनादि को पकाकर मनुष्यों का पोषण करने वाले तथा यज्ञ को सुशोभित करने वाले अग्नि को दो अरणियाँ शिशु के समान उत्पन्न करती हैं ।३। हे अग्ने ! तुम टेढ़ी चाल वाले सर्प या अश्व के बालक के समान कठिनाई से धारण किये जाते हो । जैसे घास के ढेर पर छोड़ा हुआ पशु घास को खाता है, वैसे ही वन में छोड़े जाने पर तुम वन को भक्षण करते हो ।४। अग्नि की शिखायें धूम्रयुक्त होते हैं। वे सुन्दर रूप वाली सब ओर व्यापती हैं । सर्वत्र व्याप्त अग्नि अपनी ज्वालाओं को अन्तरिक्ष की ओर उठाते हैं । जैसे कर्मकार भट्टी में अग्नि को बढ़ाते हैं, वैसे ही कर्मकार द्वारा प्रकट किए गए अग्नि के समान अग्निदेव स्वयं अपने को तीक्ष्ण करते हैं ।५। हे अग्ने ! तुम सब से मैत्री-भाव रखते हो। स्तुति करने पर तुम्हारे आश्रय द्वारा हम शत्रु-भाव रखने वाले व्यक्तियों के पाप षड़यन्त्रों पर विजय प्राप्त करें । तुम्हारे रक्षा-साधनों के बल पर हम बाहरी और भीतरी शत्रुओं को जीतें ।६। हे अग्ने ! तुम हवियों के वहन करने वाले एवं सशक्त हो । तुम हमारे पास प्रसिद्ध धनों को ले आओ । हमारे शत्रुओं को हराकर हमारा पालन करो । युद्ध में हमारी समृद्धि के साधन उपलब्ध करते हुए हमको शोभन अन्न प्रदान करो ।७। (१)

सूक्त १०

(ऋषि—गय अत्रेयः । देवता—अग्निः । छन्द—अनुष्टुप्
उष्णिक् बृहती, पंक्तिः)

अग्न ओजिष्ठमा भरं द्युम्नयस्यभ्यमध्रिगो ।
प्र नो राया परीणसा रत्सि वाजाय पन्थाम् ॥१
त्व नो अग्ने अद्भुत दक्षस्य महना ।
त्वे असुयं मारुहत्क्राणा मित्रो न यज्ञियः ॥२
त्वं नो अग्न एषां गयं पुष्टिं च वर्धय ।
ये स्तोमेभिः प्रसूरयो नरो मघान्यानशुः ॥२

ये अग्ने चन्द्र ते गिरः शुम्भन्त्यश्वराधसः ।
शुष्मेभिः शुष्मणो नरो दिवश्चिद्येषाँ बृहत्सुकीर्तिर्बोधतित्मना ॥४
त्वे त्ये अग्ने अर्चयो भ्राजन्तो यन्ति घृष्णुया ।
परिज्मानो न विद्युतः स्वानो रथो न वाजयुः ॥५
नूनो अग्न ऊतये सबाधसश्च रातये ।
अस्माकासश्च सूरयो विश्वा आशास्तरीषणि ॥६
त्वं न अग्ने अङ्गिरः स्तुतः स्तवान आ भर ।
होतर्विभ्वासहंरयिं स्तोतृभ्यःस्तवसे च न उतैधि पृत्सु नो वृधे।७।२

हे अग्ने हमारे लिए अत्यन्त श्रेष्ठ धन लेकर आओ। तुम्हारी गति कभी मन्द नहीं होती । तुम हमको सब जगह उपलब्ध होने वाले धन से परिपूर्ण करो। अन्न प्राप्त कराने के लिए हमारे लिए उत्तम मार्ग बनाओ ।१। हे अग्ने ! तुम सबसे अद्भुत हो । तुम हमारे यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों से प्रसन्न होते हुए हमको श्रेष्ठ धन प्रदान करो । तुम्हारा बल राक्षसों को संहार करने में समर्थ है। तुम आदित्य के समान उत्तम-कर्म को नित्य पूर्ण करते हो ।२। हे अग्ने ! प्रसिद्ध स्तोत्र द्वारा तुम्हारी पूजा करने वाले साधकगण तुम्हारी स्तुति द्वारा उत्तम धन प्राप्त करते हैं। इसलिए हमारे निमित्त भी धन की वृद्धि करते हुए हमारा पोषण करो। अग्ने ! हम साधक भी तुम्हारी स्तुति करते है ।३। हे अग्ने ! तुम सुखदाता हो। जो साधक तुम्हारी स्तुतियों का उच्चारण करते हैं वे अश्वयुक्त ऐश्वर्य-लाभ करते हैं। वे साधक अत्यन्त शक्तिशाली होकर अपनी शक्ति से शत्रुओं को मारते हैं। उन्हें स्वर्ग से भी अधिक यश प्राप्त होता है। हे अग्ने तुमको गय नारुक ऋषि ने चैतन्य किया था ।४। हे अग्ने ! तुम्हारी चंचल गति वाली ज्वालाऐं, सर्वत्र स्थित विद्युत् के समान तथा शब्द करते हुए रथ के समान एवं अन्न की कामना से गमन करने वाले मनुष्यों के समान सर्वत्र जाती हैं ।५। हे अग्ने ! तुम हमारी शीघ्र रक्षा करो। हमको धन देकर हमारे दारिद्रय को दूर करो। हमारे पुत्रादि एवं वांधवा तुम्हारी स्तुति करते हुए अपनी कामनाओं का प्राप्त हों ।६। हे अग्ने ! प्राचीन ऋषियों ने तुम्हारा स्तवन किया है

और अब के ऋषिगण भी तुम्हारा स्तवन करते हैं। जो धन ऐश्वर्यशाली व्यक्तियों को महान् बनाता है, वह धन हमारे लिये प्राप्त कराओ। तुम देवताओं को बुलाने वाले हो। हमको स्तुति करने में समर्थ करो। हम तुम्हारी पूजा करते हैं। तुम हमको समृद्ध बनाओ।७। [२]

११ सूक्त

(ऋषि—सुतम्भर आत्रेयः। देवता—अग्निः। छन्द—जगती)

जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे।
घृतप्रीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्वि भाति भरतेभ्यः शुचिः ॥१
यज्ञस्यस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरस्त्रिषधस्थे समीधिरे।
इन्द्रेण देवैः सरथं स बर्हिषि सीदन्नि होता यजथाय सुक्रतुः ॥२
असामृष्टो जायसे मात्रोः शुचिर्मन्द्रः कविरुदतिष्ठो विवस्वतः।
घृतेन त्वावर्धयन्नग्न आहुत धूमस्ते केतुरभवद्दिवि श्रितः ॥३
अग्निर्नो यज्ञमुप वेतु साधुयाग्निं नरो वि भरन्ते गृहेगृहे।
अग्निर्दूतो अभवद्धव्यवाहनोऽग्निं वृणाना वृणते कविक्रतुम् ॥४
तुभ्येदमग्ने मधुमत्तमं वचस्तुभ्यं मनीषा इयमस्तु शं हृदे।
त्वां गिरः सिन्धु मवावनीर्महीरा पृणन्ति शवसा वर्धयन्ति च ॥५
त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दञ्छिश्रियाणं वनेवने।
स जायसे मथ्यमानः सहो महत्वामाहुः सहस्पुत्रमङ्गिरः ॥६।३

बलशाली अग्नि सदा प्रवृद्ध रहते है। वे सबकी रक्षा करने वाले हैं वे जन-कल्याण के निमित्त प्रादुर्भूत हुए हैं। घृत द्वारा प्रज्वलित होने पर वे तेज से युक्त होते हैं तथा ऋत्वियों के लिये पवित्र दीप्ति से प्रकाशवान् हैं।१। अग्नि यजमानों द्वारा स्थापित होते हैं। वे यज्ञ के ध्वज रूप हैं। वे इन्द्रादि देवताओं के समान ही प्रभुता सम्पन्न हैं। ऋत्विओं ने तीन स्थानों में उन्हें स्थापित किया था वे देवताओं को बुलाने वाले तथा शुभ कर्मों के कर्त्ता हैं वे यज्ञ-कर्म के लिये कुश पर स्थापित किये जाते हैं।२। हे

अग्ने ! माता रूप दो अरणियों से तुम जन्म लेते हो। तुम विद्वान् एवं पवित्र कर्मा हो। तुम यजमानों द्वारा प्रज्वलित किये जाते हो। तुम्हें प्राचीनकालीन ऋषियों ने भी घृत द्वारा प्रवृद्ध किया था। तुम हवियों के वहन करने वाले हो। अन्तरिक्ष तक जाने वाला तुम्हारा धूम्र ध्वज के समान महत्वशाली है ।३। यज्ञ-स्थान में मनुष्य अग्नि की स्थापना करते हैं वे सब कार्यों को सिद्ध करने वाले हमारे यज्ञ में पधारें। वे हवियों के वहन करने वाले तथा देवताओं के दूत स्वरूप हैं। स्तोतागण उन्हें यज्ञ का सम्पादन करने वाले मानते हैं ।४। हे अग्ने ! यह मधुर स्तोत्र तुम्हारे निमित्त प्रयुक्त है। यह स्तोत्र तुम्हारे हृदय को सुखी करे। जैसे समुद्र को नदियाँ परिपूर्ण करती हैं, वैसे ही हमारी स्तुतियाँ उन्हें बलवान् बनाती हुई परिपूर्ण करती हैं ।५। हे अग्ने तुम गुफा में रहते हुए वन के आश्रय में अवस्थान करते हो। तुम्हें अङ्गिराओं ने प्रकट किया था। तुम मन्थन द्वारा महान् बल के सहित प्रकट होते हो, इसी कारण तुम बल के पुत्र कहे जाते हो ।६। [३]

सूक्त १२

(ऋषि—सुतम्भर आत्रेयः। देवता—अग्निः। छन्द—पंक्ति, त्रिष्टुप्)

प्राग्नये बृहते यज्ञियाय ऋतस्य वृष्णे असुराय मन्म।
घृतं न यज्ञ आस्ये सुपूतं गिरं भरे वृषभाय प्रतीचीम् ।।१
ऋतं चिकित्व ऋतमिच्चिकिद्धयृतस्य धारा अनु तृन्धि पुर्वीः।
नाह यातुं सहसा न द्वयेन ऋतं सपाम्यरुषस्य वृष्णः ।।२
शया नो अग्न ऋतयनृतेन भुवो नवेदा उचथस्य नव्यः।
वेदा मे देव ऋतूपा ऋतूनां नाह पतिं सुनितुरस्य रायः ।।३
के ते अग्ने रिपवे बन्धनासः के पायवः सनिषन्त द्युमन्तः।
के धासिमग्ने अनृतस्य पान्ति क आसतो वचसः सन्ति गोपः ।।४
सखायस्ते विषुणा अग्न एते शिवासः सन्तो अशिवा अभूवन्।
अधूर्षंत स्वयमेते वचोभिॠंजूयते बृजनानि बुवन्तः ।।५
यस्ते अग्ने नमसा यज्ञमीट्ट ऋतं स पात्यरुषय बृष्णः।

तस्य क्षयः पृथुरा साधुरेतु प्रसर्स्राणन्य नहुषस्य शेषः ॥६।४

अग्निदेव अपने सामर्थ्य से अत्यन्त महान् कामनाओं के पूर्ण करने वाले वृष्टि करने में कारणभूत तथा यज्ञ के योग्य हैं। यज्ञ में डाले गये पवित्र घी के समान हमारी स्तुतियाँ भी अग्नि को प्रसन्न करने वाली हों ।१। हे अग्ने ! हमारी स्तुतियों को जानो और इन्हें ग्रहण करो । तुम प्रचुर जल-वर्षा के लिये हमारे अनुकूल होओ। हम यज्ञ में विघ्न उपस्थित करने वाला कोई कार्य नहीं करते और न विधान के विरुद्ध ही कोई कार्य करते हैं। हे अग्ने ! तुम अभीष्टपूरक एव प्रकाशवान् हो। हम तुम्हारा स्तवन करते हैं ।२। हे अग्ने ! तुम जल वर्षा करने वाले हो, तुम स्तुति के पात्र हो,तुम हमारे किस श्रेष्ठ अनुष्ठान द्वारा हमारी स्तुतियों को जानोगे ? तुम ऋभुओं की रक्षा करने वाले हो। हमको जानने वाले होओ हम तुम्हारा यजन करते हैं। क्या हम हमने पशु आदि धनों के रक्षक अग्निदेव को नहीं जानते ? ।३। हे अग्ने ! लोकों की रक्षा करने वाला कौन है ? शत्रुओं को बांधने वाला कौन है ? प्रकाशवान् एवं प्रदाता कौन है ? असत्य व्यवहार करने वाले से रक्षक कौन है ? अर्थात् इपका विवेचन करते हुए शुभाचरण करने वाले की रक्षा करो ।४। हे अग्ने !·तुम्हारे यह मित्रजन पहले तुम्हारी स्तुति नहीं करते थे, इसलिए दुःख पाते थे। फिर तुम्हारी उपासना करके हृष्ट सुखी हुए। हम सर्वदा सत्य आचारण करने में तत्पर रहते हैं। फिर जो भी व्यक्ति अपने अविवेक से हमको बुरा कहें, वे स्वयं अपने ही वचनों द्वारा विनष्ट हो जांय ।५। हे अग्ने ! तुम प्रकाशवान् हो। तुम इच्छाओं की पूर्ति करने वाले हो। जो साधक अन्तःकरण द्वारा तुम्हारे यज्ञ का पालन करता हुआ तुम्हें पूजता है, उसका घर सम्पन्न हो जाता है। जो तुम्हारी भले प्रकार सेवा करता है वह यजमान अभीष्ट सिद्ध करने वाला पुत्र-रत्न प्राप्त करता है ॥६॥ (४)

१३ सूक्त

(ऋषि—सुतम्भर आत्रेयः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्)

अर्चन्तस्त्वा हवामहेऽर्चन्तः समिधीमहि । अग्ने अर्चन्त ऊतये ॥१

अग्ने स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिविस्पृशः । देवस्य द्रविणस्य वः॥२
अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा । सयक्षद्दैव्यं जनम्।।३
त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः । त्वया यज्ञं वि तन्वते।।४
त्वामग्ने वाजसातम विप्रा वर्धन्ति सुष्टुत् । स नो रास्व सुवीर्यम्।।५
अग्ने नेमिरराँ इवा देवाँस्त्वं परिभूरसि । आ राधश्चित्रमृञ्जसे।।६।५

हे अग्ने ! हम तुम्हारा पूजन करते हुए तुम्हें बुलाते हैं यथा स्तुति करते हुए साधक अपनी रक्षा के निमित्त तुम्हें चैतन्य करते हैं ।१। हम धन के इच्छुक होकर आकाश को छूने वाले एवं प्रकाशवान् अग्नि की बल प्रदात्री स्तुति का उच्चारण करते हैं ।२। मनुष्यों के मुख्य स्थापित हुए जो अग्नि देवताओं को आहुत करते हैं, वे अग्नि हमारी स्तोत्रों को स्वीकार करें । वे अग्नि यज्ञ साधक द्रव्यों के ज्ञाता देवताओं के साथ हमारी स्तुतियों को पहुंचावें ।३। हे अग्ने ! तुम यशस्वी और महान् हो । तुम स्तुति के पात्र एवं अन्न प्रदान करने वाले हो । स्तुति करने वाले विद्वान् तुम्हें सुन्दर स्तोत्र द्वारा बढ़ाते हैं । हे अग्ने ! तुम हमको श्रेष्ठ पराक्रम के प्रदाता होओ ।५। हे अग्ने ! जिस प्रकार परिधि चक्र के अरों से सब ओर लगी रहती है, उसी प्रकार तुम देवताओं के पालक हो तुम हमको सब प्रकार के अद्भुत ऐश्वर्यों को प्रदान करो ।।६।। (५)

१४ सूक्त

(ऋषि—सुतम्भरः आत्रेयः देवता—अग्नि । छन्द—गायत्री)

अग्नि स्तोमेद बोधय समिधानो अमर्त्यम् । हव्या देवेषु नो दधत्॥१
तमध्वरेष्वीलते देवं मर्ता अमत्यम् । यजिष्ठं मानुषे जने ॥२
तं हि शश्वन्त ईलते स्रुचादेवंघृतश्चुता । अग्निहव्यायवो लहवे ॥३
अग्निर्जातो अरोचत घ्यन्दस्यूञ्ज्योतिषा तमः ।
अविन्दद् गा अपः स्वः ।।४

अग्निमीलेन्यं कवि घृतपृष्टं सपर्यंत । वेतु मे शृणवद्धवम् ॥५
अग्निं घृतेन वावृधुः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणिम् ।
स्वाधीभिर्वचस्युभिः ॥६॥६

हे मनुष्यो ! अविनाशी गुण वाले अग्नि को स्तोत्र द्वारा चैतन्य करो। प्रज्वलित होने पर वे दिव्य पदार्थों के धारण करने वाले होते हैं वे हमारे लिये हव्य वहन करते हैं।१। प्रकाशवान्, अविनाशी, मनुष्यों में आराधना करने के योग्य अग्नि की साधकगण यज्ञ स्थान में स्तुति करते हैं।२। अनेक स्तुति करने वाले साधक घृतयुक्त स्रुक सहित देवताओं को हवियाँ पहुँचाने के निमित्त प्रकाशवान् अग्नि का स्तवन करते हैं।२। अग्नि अरणियों के मन्थन से आविर्भूत होते हैं। वे अपने प्रकाण से अँधेरे को दूर करते हैं तथा यज्ञ में अनिष्ट करने वाले राक्षसों का नाश करते हुए प्रदीप्त होते हैं। किरण, जल और आकाश अग्नि के द्वारा ही प्रकट हुए हैं।४। हे साधको ! उन मेधावी तथा आराधन करने के योग्य अग्नि देव का पूजन करो। वे घृत की आहुति से प्रदीप्त होते हुए ऊँचे उठते हैं। वे अग्नि हमारे स्तुति वचनों का श्रवण करें।५। घृत तथा स्तोत्रों द्वारा ऋत्विग्गण स्तुतियों की कामना वाले, सब के द्रष्टा अग्नि को संवर्द्धित करें॥६॥ (६)

१५ सूक्त दूसरा अनुवाक

(ऋषि—वरुण आङ्गिरसः। देवता—अग्निः। छन्द–त्रिष्टुप्,पंक्ति)

प्र वेधसे कवये वंद्याय गिरं भरे यशते पूर्व्याय ।
गृतप्रसत्तो असुरः सशवो रायो धर्त्ता धरुणो वस्वो अग्निः ॥१
ऋतेन ऋतं धरुणं धारायन्त यज्ञस्य शाके परमे व्योमन् ।
दिवो धर्मन्धरुणे सेदुषो नृञ्जातैंरजातौँ अभि ये ननक्षुः ॥२
अंहोयुवस्तस्तन्वते विवयोमहद्दुष्टरं पूर्व्याय ।
स सवतो नवजातस्तुतुर्यात्सिहं न क्रुद्धमभितः परिष्ठुः ॥३

मातेव यद्भरसे पप्रथानो जनञ्जनं धायसे चक्षसे च ।
वयोवयो करसे यद्दधानः परित्मना विषुरूपो जिगासि ॥४
वाजो नु ते शवसस्पात्वन्तमुरुं दीर्घं धरुणं देव रायः ।
पदं न तायुर्गुहा दधानो महो राये चितयन्नत्रिमस्पः॥५।७

घृत रूप हविसे अग्नि प्रसन्न होते हैं । वे अत्यन्त बलशाली, कल्याण रूप, धनों के स्वामी, निवासप्रद, हवियों के वहन करने वाले, स्तुतियों के पात्र, उज्वलदर्शी, श्रेष्ठ एवं तेजस्वी हैं । उन अग्निदेव के निमित्त हम स्तोत्र रचते हैं ।१। जो यजमान आकाश के धारण करने वाले, यज्ञ स्थल में स्थापित होने वाले, नेता रूप देवगण को ऋत्विजों द्वारा आहूत करते हैं, वे यजमान यज्ञ के धारण करने वाले सत्य स्वरूप अग्नि को यज्ञस्थान में श्रेष्ठपद पर स्थापित करते हैं ।२। जो यजमान दैत्यों द्वारा दुष्प्राप्य हव्य अग्नि के लिये देते हैं, वे यजमान पवित्र होते हैं। नवोत्पन्न अग्नि क्रोधित सिंह के समान शत्रुओं को भगावे । जो शत्रु मेरे चारों ओर वर्तमान हैं, वे मुझसे दूर चले जाँय ।३। अग्नि सर्वत्र प्रसिद्ध है । वे प्राणीमात्र को माता के समान पालन करते हैं । उनकी रक्षा तथा दर्शन के लिये सभी उनकी स्तुति करते हैं । जब वे धारण करने में समर्थ होते हैं तब सब अन्नों को जीर्ण करते हैं । वे हर प्रकार के बल को पुष्ट करते हैं ।४। हे अग्ने ! तुम प्रकाशवान् हो । कामनाओं की पूर्ति करने वाले तथा धन के धारण करने वाले हविरन्न तुम्हारे बल को पुष्ट करें । जैसे कोई अपहृत धन को छिपाकर उसकी रक्षा करता है, वैसे ही तुम प्रचुर परिमाण में धन प्राप्त कराने के लिए सुन्दर मार्ग दिखाओ ।।५।। (७)

सूक्त १६

(ऋषि—पुरुरात्रेय । देवता—-अग्निः । छन्द–त्रिष्टुप्, उष्णिकब्रृहती)

बृहद्वयो हि भानवेऽर्चा देवायाग्नये ।
यमित्रं न प्रशस्तिभिर्मर्तासो दधिरे पुरः ॥१
स हि द्यु निर्जनानां होता दक्षस्य बाह्वोः ।

वि हव्यमग्निचानुषग्भगो न वारमृण्वति ॥२
अस्य स्तोमे मघोनः सख्ये वृद्धशोचिषः ।
विश्वा यस्मिन्तुविष्वणि समर्ये शुष्ममादधुः॥३
अधा ह्यग्न एषां सुवीर्यस्य मंहना ।
तमिद्यह्वं न रोदसी परि श्रवो वभूवतुः ॥४
नू न एहि बार्यमग्ने गृणान आ भर।
ये वयं ये च सूरयःस्वस्ति धामहे संचैतैधि पृत्सु नो वृधे ॥५।८

जिन मित्रभूत अग्नि की उत्तम स्तुतियों द्वारा साधकगण, स्तुति करते हैं और उन्हें वेदी में स्थापित करते हैं, उन प्रकाशवान् अग्नि के लिए हवियां दी जाती हैं ।१। जो अग्नि अपने भुजबल के तेज से युक्त हैं तथा जो देवताओं के लिये हवि बहन करते हैं वे यज्ञ यजमानों के लिये देवताओं को बुलाते हैं ।२। वे साधकों को सूर्य के समान, वरण करने योग्य धनों को प्रदान करते हैं ।३। सभी ऋत्विक हवि और स्ततियों के दान द्वारा, शब्द करने वाले अग्नि को भले प्रकार पुष्ट करते हैं, उन्हीं बढ़े हुए तेज बाले ऐश्वर्यं सम्पन्न अग्नि की हम स्तुति करते हैं। उन अग्नि के साथ हम संख्य भाव रखते हैं ।३। हे अग्ने ! सब के द्वारा कामना किया हुआ धन हम यजमानों को दो। जैसे महान् सूर्य पर पृथिवी और आकाश आश्रित हैं, वैसे ही तम महान् के आश्रय से हम अन्न और धन प्राप्त करते हैं ।४। हे अग्ने ! हम यजमान तुम्हारा स्तवन करते हैं। हमारे यज्ञ में तुम शीघ्र आगमन करो। हमारे लिंये वरण करने योष्य धनों को प्राप्त कराओ। हम यजमान स्तोताओं को तुम युद्ध क्षेत्र में रक्षा साधनों से सम्पन्न करो। हम तुम्हारी स्तुति करते हैं ।६। [६]

सूक्त १७

(ऋषि—पुरुरोत्रेयः । देवता—अग्निः । छन्द–अनुष्टुप्बृहती)

या यज्ञै र्देव मर्त्यं इत्था तव्यांसमुतये ।
अग्नि कृत्ते स्वध्वरे पुरुरीलीतावसे ॥१

अस्य हि स्वयशस्तर आसा विधर्मन्मन्यसे ।
तं नाकं चित्रशोचिषं मन्द्रं परो मनीषया ॥२
अस्य वासा उ अर्चिषा य आयुक्त तुजा गिरा ।
दिवो न यस्य रेतसा बृहच्छोचन्त्यर्चयः ॥३
अस्य क्रत्वा विचेतसो दस्मस्य वसु रथ आ ।
अधा विश्वासु हव्योऽग्निर्विक्षु प्र शस्यते ॥४
नू न इद्धि वार्यमासा सचन्त सूरयः ।
ऊर्जो नपादभिष्टये पाहि शग्धि स्वस्तय उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥५।६

हे देव ! मनुष्यगण रक्षा और ज्ञान के निमित्त उत्तम बल वाले अग्निदेव की स्तुति करते हैं और ऋत्विगण ! अपने तेज से प्रवुद्ध अग्नि को स्तुतियों से सन्तुष्ट करने के लिये यज्ञ में बुलाते हैं।१। हे धर्म का अनुष्ठान करने वाले स्तोतागण ! तुम्हारा यज्ञ-कार्य श्रेष्ठ है, जिन अग्नि का अद्भुत तेज है, जो स्तुति के योग्य हैं तथा जो सदा दुःखों से दूर रहते हैं, उन अग्नि की तुम अपनी श्रेष्ठ बुद्धि और सुन्दर वचन द्वारा स्तुति करते हों।२। जो संसार की रक्षा करने वाले बल से परिपूर्ण हैं, जो सूर्य के समान प्रकाशवान् हैं, जिनकी प्रदीप्ति संसार में व्याप्त है, जिन अग्नि की कान्ति संसार में प्रकाशित होते हैं, उन अग्नि के तेज से ही सूर्य भी प्रकाशमय होने हैं।३। श्रेष्ठ बुद्धि वाले ऋत्विग्गण उन तेजस्वी अग्नि का ही पूजन करते हुए रथयुक्त धन-लाभ करते हैं। यज्ञ के लिये आहूत किये जाने वाले अग्नि आविर्भूत होते ही सब मनुष्यों द्वारा पूजित होते हैं।४। हे अग्ने ! जिस धन को साधकगण तुम्हारी पूजा करते हुए प्राप्त करते हैं,वह वरणीय धन को हमको भी शीघ्र प्रदान करो। हमको कामना किया हुआ अन्न दो। हमारी रक्षा करो। कल्याणकारी सुन्दर पशुओं की हम तुमसे कामना करते हैं। हे अग्ने ! युद्ध भूमि में उपस्थित रहते हुए तुम हमारी रक्षा करो।५। [६]

१८ सूक्त

(ऋषि---वामदेवः। देवता---अग्निः। छन्द---अनुष्टुप् उष्णिक्, वृहती)

प्रातरग्निः पुरुप्रियो विशः स्तवेतातिथिः ।

विश्वानि यो अमर्त्यो हव्या मर्तेषु रण्यति ॥१
द्विताय मृक्तवाहसे स्वस्य दक्षस्य मंहना ।
इन्दुं स धत्त आनुषक्स्तोता चित्ते अमर्त्य ॥२
तं वो दीर्घायुशोचिषं गिरा हुवे मघोनाम् ।
अरिष्टो येषाँ रथो व्यश्वदावन्नीयते ॥३
चित्रा वा येषु दीधितिरासन्नुक्था पान्ति ये ।
स्तीर्णं बर्हिः स्वर्णरे श्रवाँसि दधिरे परि ॥४
ये मे पञ्चाशतं ददुरश्वानां सधस्तुति ।
द्युमदग्ने महि श्रवो बृहत्कृधि मघोनां नृवदमृत नृणाम् ॥५॥१०

हे अग्ने ! तुम बहुतों के प्रिय हो। यजमानों को धन देने के लिए उनके घरों में जाते हो। इन अग्नि को प्रातः सवन में प्रज्वलित किया जाता है। अमरत्व गुण वाले अग्नि यजमानों में प्रतिष्ठित होकर हविरन्न की इच्छा करते हैं ।१। हे अग्ने ! अत्रि-पुत्र द्वित तुम्हारे लिए पवित्र हवि पहुंचाते हैं। तुम उनको अपने समान बल दो। क्योंकि वे सदैव ही तुम्हारे लिए सोमरस लेकर उपस्थित होते और तुम्हारी पूजा करते हैं ।२। हे अग्ने ! तुम अश्व देने वाले, लम्बी चाल वाले तथा तेजस्वी हो। हम अपने सम्पन्न यजमानों के लिये तुम्हें स्तोत्र द्वारा बुलाते हैं, जिससे उन यजमानों का रथ अहिंसित होता हुआ रणक्षेत्र में बढ़ता चला जाय ।३। जो ऋत्विक् अनेक यज्ञ कार्यों को सम्पन्न करते हैं. जो स्तोत्रों का उच्चारण करते हुए उनकी रक्षा करते हैं (अर्थात् उन्हें भूलते नहीं), उन ऋत्विजों द्वारा यजमानों को स्वर्ग प्राप्त कराने वाले यज्ञ में कुश के आसनों पर श्रेष्ठ हविरन्न स्थापित किया जाता है ।४। हे अग्ने ! तुम अविनाशी हो। तुम्हारी स्तुति के पश्चात् जो यजमान मुझे स्तोता को पचास घड़े दान स्वरूप दे तुम उस दानी मनुष्य को दासादि से युक्त यशस्वी अन्न-धन दो ।५। [१०

सूक्त १९

(ऋषि—वव्रिरात्रेयः। देवता—अग्निः। छन्द—गायत्री, अनुष्टुप्
उष्णिक्, पंक्तिः)

अभ्यवस्थाः प्र जायन्ते प्र वव्रेर्वव्रिश्चिकेत । उपस्थेमातुर्वि चष्टे॥ १

जुहुरे वि चितयन्तोऽनिमिषं नृम्णं पान्ति । दृलाहां पुदं विविशुः॥२
आ श्वैत्रेयस्य जन्तवो द्युमद्वर्धन्त कृष्टयः ।
निष्कग्रीवो बृहदुक्थ एना मध्वा न वाजयुः ॥३
प्रियं दुग्धं न काम्यमजामि जाम्योः सचा ।
धर्मो न वाजजठरोऽदब्धः शश्वतो दभाः ॥४
क्रीळन्नो रश्म आ भुवः सं भस्मना वायुना बेविदानः ।
ता अस्य सन्धृषजो न तिग्माः सुसंशिता वक्ष्यो वक्षणेस्याः ॥५।११

पृथिवी रूप माता के निकट अवस्थित होकर जो अग्नि पदार्थ मात्र को देखते हैं, वे अग्नि वब्रि ऋषि की संकटमय दशा को जानते हुए उनकी हवियाँ ग्रहण करें और उन पर कृपा करें ।१। हे अग्ने ! जो साधक तुम्हारे प्रभाव को जानकर यज्ञ के लिए तुम्हें बुलाते हैं । एवं जो साधक हविरन्न देते हुए स्तुतियों द्वारा तुम्हारे बल को पुष्ट करते हैं, वे शत्रुओं के दुर्गम दुर्गों में निःशङ्क घुस जाते हैं ।२। स्तोत्र रचयिता मेधावीजन, अग्नि की कामना करने वाले, कण्ठ में सुवर्ण-रत्नादि के अलंकार धारण करने वाले जन्म लेने वाले विद्वान् मनुष्य अन्तरिक्ष में स्थित विद्युत रूप अग्नि की शक्ति को स्तोत्र द्वारा बढ़ाते हैं ।३। दूध-मिश्रित हविरन्न को जठरथ करने वाले अग्नि शत्रुओं द्वारा अहिंसित हैं और शत्रुओं की हिंसा करने में समर्थ हैं । आकाश और पृथिवी के सहायक वे अग्नि दूध के समान उज्ज्वल और दोष-रहित होते हुए हमारी स्तुति श्रवण करें ।४। हे अग्ने ! तुम प्रदीप्तमय हो । तुम अपने भस्म वाले गुण से घन में क्रीड़ा करते हो । तुम वायु के प्रेरणा से प्रवृद्ध होकर हमारे सामने प्रतिष्ठित होओ । तुम्हारी जो ज्वालायें शत्रु का नाश करने वाली हैं, वे हम यजमानों के लिए शीतल हों ।५।

सूक्त २०

(ऋषि—प्रयस्वन्त आत्रेयः । देवता—अग्निः । छन्द —अनुष्टुप्, पंक्ति)

यमग्ने वाजसातम त्वं चिन्मन्यसे रयिम् ।

तं नो गीर्भिः श्रवाय्यं देवत्रा पनया युजम् ॥१
ये अग्ने नेरयन्ति ते वृद्धा उग्रस्य शवसः ।
अप द्वेषो ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिरे ॥२
होतार त्वा वृणीमहेऽग्ने दक्षस्य साधनम् ।
यज्ञेषु पूर्व्यं गिरा प्रयस्वस्तो हवामहे ॥३
इत्था यथा त ऊतये सहसावन्दिवेदिवे ।
राय ऋताय सुक्रतो गोभिःष्याम सधमादो
वीरः स्याम सधमादः ॥४॥१२

हे अग्ने ! तुम अत्यन्त अन्न दान करने वाले हो। हमारा दिया हुआ जो हविरन्न तुम्हारे पास है, उसे हमारी स्तुतियों सहित देवताओं के पास ले जाओ ।१। हे अग्ने ! जो व्यक्ति पशु आदि धन से सम्पन्न होकर भी तुम को हवि नहीं देता वह अन्न और बल से विहीन होता है। जो व्यक्ति वेदविरुद्ध कार्य करता है, वह तुम्हारा विरोधी बन कर तुम्हारे द्वारा विनष्ट हो जाता है ।२। हे अग्ने ! तुम बल का साधन करने वाले तथा देवताओं के बुलाने वाले हो। हम अन्न से सम्पन्न हुये मनुष्य तुम्हारा वरण करते हैं। हम अपने यज्ञ-कर्म में तुम श्रेष्ठ अग्निदेव की स्तोत्रों द्वारा स्तुति करते हैं ।३। हे अग्ने ! तुम शक्तिशाली हो। जिस कार्य द्वारा हम नित्यप्रति तुम्हारा आश्रय प्राप्त करते रहें वही कार्य करो। हे सुन्दर कर्म वाले अग्निदेव ! जिससे हम यज्ञ कर सकें और धन-लाभ करें वह कार्य करो। हम गौ तथा वीर पुत्रों को प्राप्त करें, ऐसी कृपा करो ।४। [१२]

सूक्त २१

(ऋषि—सप्तआत्रेयः । देवता अग्निः । छन्दःअनुष्टुप, उष्णिक् बृहती)

मनुष्वत्त्वा नि धीमहि मनुष्वत्समिधीमहि ।
अग्ने मनुष्वदङ्गिरो देवान्देवयते यज ॥१
त्वं हि मानुषे जनेऽग्ने सुप्रीत इध्यसे ।
स्रुचस्त्वा यन्त्यानुषक्सुजात सर्पिरासुते ॥२

त्वां विश्वे सजोषसो देवासो दूतमक्रत ।
सपर्यन्तस्त्वा कवे यज्ञेषु देवमीलते ॥३
देवं वो देवयज्ययाग्निमीलीत मर्त्यः ।
समिद्धः शुक्र दीदिह्यृतस्य योनिमासदः समस्य योनिमासदः॥४॥१३

हे अग्ने ! हम तुम्हें मनु के समान स्थापित करते हुए प्रज्वलित करते हैं। तुम देवताओं की कामना करने वाले मनुष्य के निमित्त देव-यज्ञ का सम्पन्न करो ।१। हे अग्ने ! तुम स्तोत्रों द्वारा प्रज्वलित होते हुए मनुष्यों के लिए तेजस्वी बनते हो। घृत से युक्त हवियों तथा घृतयुक्त पात्र तुमको निरन्तर पुष्ट करते है ।२। हे अग्निदेव ! तुम सुन्दर कान्ति वाले हो। सब देवताओं ने प्रसन्नता-पूर्वक तुम्हें अपना दूत नियुक्त किया था, इसीलिये यज्ञानुष्ठान करने वाले साधक देवताओं का आह्वान करने के लिए तुम्हारा यज्ञ करते हैं ।३ हे अग्ने ! तुम प्रकाशवान् हो। देवताओं के यज्ञ में तुम्हारी स्तुति की जाती है। तुम हव्य द्वारा बढ़ कर प्रदीप्तियुक्त होओ। "सस" ऋषि के स्वर्ण कामना वाले यज्ञ में तुम प्रतिष्ठित होओ ।४। [१३]

२२ सूक्त

(ऋषि—विश्वसामा आत्रेयः। देवता—अग्निः। छन्द - अनुष्टुप उष्णिक्, बृहती)

प्र विश्वसामन्नत्रिवदर्चा पावकशोचिषे ।
यो अध्वरेष्वीड्यो होता मन्द्रतमो विशि ॥१
न्याग्निं जातवेदसं दधाता देवमृत्विजम् ।
प्र यज्ञ एत्वानुषगद्या देवव्यचस्तमः ॥२
चिकित्विन्मनस त्वा देवं मर्तास ऊतये ।
वरेण्यस्य तेऽवस इयानासो अमन्महि ॥३
अग्ने चिकिद्ध्यस्य न इदं वचः सहस्य ।
तं त्वासुशिप्रदम्पतेस्तोमैर्वर्धन्त्यत्रयो गीर्भिः शुम्भन्त्यत्रयः ॥४॥१४

हे विश्व भर के साम के ज्ञाता ऋषि! तुम अत्रि के समान पवित्र दीप्ति

वाले अग्नि का पूजन करो। वे सब ऋत्विजों द्वारा यज्ञ में स्तुति के पात्र हैं। वे देवताओं को बुलाने वाले तथा पूजनीय हैं।१। हे मनुष्यो! सब ज्ञानों के ज्ञाता, तेजस्वी यज्ञकर्त्ता अग्नि के वरण करो, जिससे देवताओं के लिए प्रिय तथा यश के साधन रूप हव्य को हम अग्नि के लिए प्रदान करें।२। हे अग्ने! तुम तेजस्वी हो। तुम ज्ञान से युक्त हो, हम तुम्हारी रक्षा की याचना के लिए उपस्थित हैं। हम तुम्हें सन्तुष्ट करने के लिये तुम्हारी पूजा करते हैं। ३। हे अग्ने! तुम बली हो। तुम हमारी सेवा रूप स्तोत्र को जानो। हम सुन्दर ठोड़ी,नासिका से युक्त हों। तुम गृहपति के समान हो। तुम्हें अत्रि वंशज स्तोत्रों से बढ़ाते और वाणी से विभूषित करते हैं। ४। [१४]

सूक्त २३

(ऋषि—द्युम्नो विश्वचर्षणिः। देवता—अग्नि। छन्द—अनुष्टुप् पंक्तिः)

अग्ने सहन्तमा भर द्युम्नस्य प्रासहा रयिम्।
विश्वा यश्चर्षणीरभ्यासा वाजषु सासहत् ॥१
तमग्ने पृतनाषहं रयिं सहस्व आ भर।
त्वं हि सत्यो अद्भुतो दाता वाजस्य गोमतः ॥२
विश्वे हि त्वा सजोषसो जनासो वृक्तबर्हिषः।
होतारं सद्मसु प्रियं व्यन्ति वार्या पुरु ॥३
स हि ष्मा विश्वचर्षणिरभिमाति सहो दधे।
अग्न एषु क्षयेष्वा रेत्रन्नः शुक्र दीदिहि द्युमप्पावक दीदिहि॥४।१५

हे अग्ने! मुझ "द्युम्न" ऋषि को शत्रुओं को जीतने वाला एक वीर पुत्र प्रदान करो। वह पुत्र स्तुतियों से पूर्ण होकर रणक्षेत्र में समस्त शत्रुओं को वशीभूत करें। १। हे अग्ने! तुम शक्तिशाली हो। तुम सत्य के कारण रूप तथा गवादियुक्त धनों के देने वाले हो। तुम ऐसा एक पुत्र दो जो सभी सेनाओं को वश में कर सके। २। हे अग्ने! तुम देवताओं का आह्वान करने वाले तथा सबका कल्याण करने वाले हो। कुश को 'उखाड़ने' वाले, समान प्रीति वाले ऋत्विक् यज्ञ स्थान मे तुम से, वरण

करने योग्य धन मांगते हैं। ३। हे अग्ने! विश्वर्चर्षिणि ऋषि शत्रुओं का संहार करने वाले बल को धारण करें। हे तेजस्विन्! तुम हमारे घर में धन से सम्पन्न तेज फैलाओ। हे अग्ने! तुम पापों का नाश करने वाले हो। तुम तेज और यश से युक्त हुए सर्वत्र प्रकाशित होओ।४। [१५]

सूक्त २४

(ऋषि—बन्धुः सुबन्धुः। देवता—अग्निः। छन्द—बृहती)

अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ॥१
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमं रयिं दाः ॥२
य नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णो अघायतः समस्मात् ॥३
तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥४।१६

हे अग्ने! तुम हमारे समीप रहने वाले होओ। तुम सम्भजनीय हो। हमारी रक्षा करने वाले तथा पमारा कल्याण करने वाले हो। हे अग्ने! तुम उत्तम घर और अन्न के देने वाले हो। तुम हमारे अनुकूल होओ। तुम अत्यन्त उज्ज्वल एवं पशु युक्त सुन्दर धन हमको दो। १-२। हे अग्ने! हमको जानने वाले होओ। हमारे आह्वान को सुनो। सब पापाचार करने वाले दुष्टों से हमारी रक्षा करो। हे अग्ने! तुम अपने ही तेज से प्रकाशवान् हो। हम अपने सुख के लिए तथा सुन्दर पुत्र के लिए तुम से याचना करते हैं। --४। [१६]

२५ सूक्त

(ऋषि—वसूयव आत्रेयः देवता—अग्निः। छन्द—अनुष्टुप्, उष्णिक)

अच्छा वो अग्निमवसे देव गासि स नो वसुः।
रासत्पुत्र ऋषूणामृतावा पर्षति द्विषः ॥१
स हि सत्यो यं पूर्वे चिद्देवासश्चिद्यमीधिरे।
होतारं मन्द्रजिह्वमित्सुदीतिभिर्विभावभावसुम् ॥२
स नो धीती वरिष्ठया श्रेष्ठया च सुमत्या।

अग्ने रायो दिदीहि नः सुवृक्तिभिर्वरेण्य ॥३
अग्निर्देवेषु राजत्यग्निर्मर्तेष्वाविशन ।
अग्निर्नो हव्यवाहनोऽग्निं धीभिः सपर्यत ॥४
अग्निस्तुविश्रवस्तम तुविब्रह्माणमुत्तमम् ।
अतूर्तं श्रावयत्पतिं पुत्रं ददाति दाशुषे ॥५।१७

हे ऋषियो ! आश्रय प्रप्ति के लिए अग्नि की स्तुति करो । यज्ञ के लिए यजमानों के गृह में निवास करने वाले अग्नि हमारी अभिलाषा पूरी करें । सत्य से युक्त अग्निदेव शत्रुओं से हमारी रक्षा करें ।१। प्राचीन कालीन ऋषियों और देवताओं ने जिन अग्नि को प्रज्वलित किया था, जो अग्नि मोमन-जिह्व,अत्यन्त आभा वाले,शोभायमान प्रकाश वाले तथा देवताओं के बुलाने वाले हैं, वे अग्नि सत्य संकल्प से परिपूर्ण हैं ।२। हे अग्ने ! तुम स्तोत्रों द्वारा स्तुत तथा वरण करने योग्य हो। तुम हमारे अनुष्ठानादि श्रेष्ठ कर्म और स्तोत्र से प्रसन्न होते हुए हमको ऐश्वर्य प्रदान करो ।३। जो अग्नि देवताओं में देव-रूप से प्रकाशित होते हैं, जो मनुष्यों में आहूत होकर आते हैं तथा जो हमारे यज्ञों में देवताओं को हवि पहुंचाते हैं, उन अग्नि की स्तुति द्वारा पूजा करनी चाहिये ।४। वे अग्नि हविदाता यजमानों को ऐसा पुत्र दें, जो विभिन्न अन्नों से युक्त, बहुत स्तोत्रों का कर्त्ता, शत्रुओं द्वारा हिंसित न होने वाली तथा अपने श्रेष्ठ कर्म से पित्रजनों के यश को फैलाने वाला हो ।५। [१७]

अग्निर्ददाति सत्पतिं सासाह यो युधा नृभिः ।
अग्निरत्यं रघुष्यदं जेतारमपराजितम् ॥६

यद्वाहिष्ठं तदग्नये वृहदर्च विभावसो ।
महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजा उदीरते ॥७
तव द्युमन्तो अर्चयो ग्रावेवोच्यते बृहत् ।
उतो ते तन्यतुर्यथा स्वानो अर्त त्मना दिवः ॥८
एवाँ अग्नि वसूयवः सहसानं ववन्दिम् ।
स नो विश्वा अति द्विष पर्यन्नावेव सुक्रतुः ॥९।१८

अग्नि हमको सत्य-पालक, शत्रुओं को वशीभूत करने वाला तथा कुटुम्बियों का साथ निभाने वाला एक पुत्र दें और शत्रुओं को जीतने वाला शीघ्रगामी एक अश्व भी प्रदान करें ।६। अग्नि के निमित्त सर्व श्रेष्ठ स्तोत्र ही निवेदन किया जाता है । हे अग्ने ! तुम तेजोमय ऐश्वर्य से युक्त हो । हमको प्रचुर धन दो, क्योंकि समस्त धन और अन्न तुम्हारे द्वारा ही उत्पन्न हुए हैं ।७। तुम्हारी शिखायें प्रदीप्ति से युक्त हैं । तुम शत्रुओं को शिला के समान चूर्ण करने में समर्थ हो । तुम प्रकाश से पूर्ण हो । तुम्हारा शब्द मेघ के समान गर्जनशील हैं ।८। धन की कामना करने वाले हम मनुष्य बलशाली अग्नि की भली प्रकार स्तुति करते हैं । सुन्दर कर्म वाले अग्नि हमको सब शत्रुओं से बचावें, जैसे नदी को नाव पर करती है ।९। [१८]

सूक्त २६

(ऋषि—वसुयव आत्रेयः । देवता—अग्निः । छन्द—गायत्री)

अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया । आ देवान्वक्षि यक्षिच।।
तंत्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम् । देवाँ आ वीतये वह ।।२
वीतिहोत्रंत्वा कवेद्युमन्तं समिधीमहि । अग्ने बृहन्तमध्वरे ।।३
अग्ने विश्वेभिरा गहि देवेभिर्हव्यदातये । होतारं त्वा वृणीमहे ।।४
यजमानाय सुन्वत आग्ने सुवीर्यं वह । देवैरा सत्सि बर्हिषि।।२१।१

हे अग्ने ! तुम पवित्र करने वाले प्रदीप्तिमान् हो । तुम देवताओं को पुष्ट करने वाली जिह्वा और अपनी प्रदीप्ति सहित प्रकाशवान् होते हुए देवताओं को यज्ञ में लाओ तथा उनके निमित्त यज्ञ करो ।१। हे अग्ने ! तुम घृत से प्रदीप्ति होने वाली किरणों से युक्त हो । तुम सबके देखने वाले हो । हव्य-ग्रहण करने के लिये देवताओं को बुलाने की हम तुमसे स्तुति करते हैं ।२। हे अग्ने ! तुम ज्ञान से सम्पन्न हवियों को भक्षण करने वाले, प्रदीप्तियुक्त एवं महान् हो । हम तुम्हें अपने यज्ञ स्थान में उत्तम प्रकार से प्रज्वलित करते हैं ।३। हे अग्ने ! तुम हविदाता साधक के यज्ञ

में सब देवताओं के साथ पधारो । तुम देवताओं को बुलाने में समर्थ हो, इसलिये हम तुम से देवाह्वान की याचना करते हैं ।४। हे अग्ने ! तुम यज्ञ करने वाले यजमान के लिए श्रेष्ठ पराक्रम को धारण करो और विद्वज्जनों के मध्य श्रेष्ठ आसन पर आदर पूर्वक विराजमान होओ ।५। [१९]

समिधानः सहस्रजिदग्ने धर्माणि तुष्यसि । देवानाँ दूत उक्थ्यः ॥६
न्यग्निं जातवेदसं होत्रवाहं यविष्ठ्यम् । दधाता देवमृत्विजम् ॥७
प्र यज्ञ एत्वानुषगद्या देधव्यचस्तमः । स्तृणीत बर्हिरासदे ॥८
एदं मरुतो अश्विना मित्रः सीदन्तु वरुणः ।
देवासः सर्वया विशा ॥६।२०

हे अग्ने ! तुम सहस्रों को पराजित करने में समर्थ हो । हव्य द्वारा प्रदीप्त और प्रवृद्ध होकर तथा देवताओं के दूत होते हुए तुम हमारे यज्ञानुष्ठान को सम्पुष्ट करने वाले हो ।६। हे यजमानो ! अग्नि की स्थापना करो । वे जीवमात्र के ज्ञाता, यज्ञ के साधनभूत तथा युवा पुरुषों में श्रेष्ठ, अत्यन्त तेजस्वी है ।७। स्तोताओं द्वारा दी जाने वाली हवियों आज देवताओं के पास पहुंचे । हे ऋत्विगण ! तुम उन अग्निदेव के विराजमान होने के लिये पवित्र कुश को बिछाओ ।८। मरुद्गण अश्विद्वय, मित्र, वरुण इस श्रेष्ठ आसन पर प्रतिष्ठित हों और सभी देवता अपने परिजनों सहित यहां आकर विराजमान हों ।९। [२०]

२७ सूक्त

(ऋषि—त्र्यरुण, त्रसदस्य, पौरकुत्स, अश्वमेध । देवता—अग्निः ।
छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्,)

अनस्वन्ता सत्पतिर्मामहे मे गावा चेतिष्ठो असुरो मघोनः ।
त्रैवृष्णो अग्ने दशभिः सहस्रैर्वैश्वानर त्र्यरुणश्चिकेत ॥१
यो मे शता च विंशतिं च गोनां हरी च युक्ता सुधुरा ददाति ।
वैश्वानर सुष्टुतो वावृधानोऽग्ने यच्छ त्र्यरुणाय शर्म । २
एवा ते अग्ने सुमतिं चकानो नविष्ठाय नवमं त्रसदस्युः ।

यो मे गिरस्तुविजातस्य पूर्वीर्युक्तेनाभि त्र्यरुणो गृणाति ।।२
यो म इति प्रवोचत्यश्वमेधाय सूरये ।
दद्दृचा सनिं यते ददन्मेधा मृतायते ।।३
यस्य मा पुरुषाः शतमुद्धर्षयन्त्युक्षणः ।
अश्वमेधस्य दानाः सोमा इव त्र्याशिरः ।।५

इन्द्राग्ना शतदान्यश्वमेधे सुवीर्यम् ।
क्षत्रं धारयतं बृहद्दिवि सूयमिवाजरम् ।।६।२१

हे मनुष्यों में अग्र पुरुष अग्ने ! तुम सज्जनों के पालनकर्त्ता, ज्ञानवान्, बलवान् और ऐश्वर्यवान् हो। "त्रिवृष्ण" के पुत्र "त्र्यरुथ नामक ऋषि ने दो बैल जुड़ी गाड़ी में दस हजार सुवर्ण मुद्रा रख कर मुझे जिस 'त्र्यरुण" ने शत सुवर्ण, वीस धेनु और रथ संयुक्त दो सुन्दर अश्व प्रदान किये थे उसके लिए तुम हमारी स्तुति से प्रसन्न होकर हव्य द्वारा बढ़ते हुए सुख प्रदान करो ।२। हे अग्ने ! हम अधिक सन्तान वालों की स्तुतियों से प्रसन्न हुए त्र्यरुण ने हमको 'यह लेलो, वह लेलो' कहा था, उसी प्रकार तुम्हारी स्तुति की इच्छा करने वाले 'त्रसदस्यु' ने भी 'यह ले लो' वह ले लो' कहते हुए दान ग्रहण करने की प्रार्थना की थी ।३। हे अग्ने ! जब कोई भिक्षा माँगने वाला तुम्हारा स्तोत्र पढ़ता हुआ धन-दान देने वाले राजर्षि अश्वमेघ से धन माँगता है, तभी वे उसे धन प्रदान करते हैं। हे अग्ने ! यज्ञ की कामना करने वाले अश्वमेध को तुम यज्ञ-कर्म में प्रेरित करो ।४। राजर्षि अश्वमेध द्वारा दिये हुई सौ बैलों को पाकर हम प्रसन्न हो गये। हे अग्ने ! दही, सत्तू और दुग्धादि तीनों द्रव्यों से युक्त सोम के समान वे बैल उपभोग करने के योग्य हों ।५। हे इन्द्र ! हे अग्ने ! माँगने वाले को असीमित धन प्रदान करने वाले राजर्षि अश्वमेध को अन्तरिक्ष में अवस्थित आदित्य के समान सुन्दर पराक्रम, उज्वल यश और कभी भी क्षीण न होने वाला धन देकर महान् बनाओ ।६।

[२१]

सूक्त २८

(ऋषि–बिश्ववारात्रेयी । देवता–अग्निः । छन्द–त्रिष्टुप्)

समिद्धो अग्निर्दिवि शोचिरश्रेत्प्रत्यङ्ङुषसमुर्विया वि,भाति
एति प्राची वश्ववारा नभोभिर्देवाँ ईलाना हविषा घृताची ।
समिध्यमानो अमृतस्य राजसि हविष्कृण्वन्तं सचसे स्वस्तये ।
विश्वं स धत्ते द्रविणं यमिन्वस्यातिथ्यमग्ने नि च धत्त इत्पुरः ॥२
अग्ने शध महते सौभगाय तव द्युन्नान्युत्तमानि सन्तु ।
स जा स्पत्यं सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि निष्ठा महोसि ॥३
समिद्धस्य प्रमहसोऽग्ने वन्दे तव श्रियम् ।
वृषभो द्युम्नवाँ असि समध्वरेष्विध्यसे ॥४
समिद्धो अग्न आहुत देवान्यक्षि स्वध्वर ॥त्वं हि हव्यवालसि॥५
आ जुहोता दुवस्यताग्निं प्रयत्यध्वरे । वृणीध्वंहव्यवाहनम् ॥६।२२

भले प्रकार प्रकाशित हुए अग्निदेव उज्ज्वल अन्तरिक्ष में अपने तेज से प्रकाश फैलाते हैं और उषा के सामने ही बढ़ते हुए हुए अत्यन्त सुशोभित होते हैं। इन्द्रादि देवताओं को नमन करती हुए पुरोडाश आदि से युक्त, घृतादि पदार्थ को देह मलने के समान आभायुक्त उषा ऐश्वर्य से युक्त हुई प्राची की ओर से झांकती हुई निकलती है ।१। हे अग्ने ! तुम भले प्रकार प्रदीप्त होकर अमृत पर प्रभुत्व करने वाले होते हो । तुम हवि प्रदान करने वाले यजमान के द्वारा सुखकारी कार्यों की इच्छा से बुलाये जाते हो। तुम जिस यजमान पर अनुग्रह करते हो उसके लिये पशु आदि से युक्त धन के धारण करने वाले हो। हे अग्ने ! तुम्हारे सत्कार के योग्य हविरन्न को यजमान तुम्हारे लिए अर्पित करता है ।२। हे अग्ने ! तुम हमारे धन और ऐश्वर्य की रक्षा के लिए शत्रुओं को पराजित करो। तुम्हारा तेज अत्यन्त उत्कृष्ट है। हे अग्ने ! तुम स्त्री-पुरुषों के दाम्पत्य-सम्बन्ध को सुदृढ़ करने के लिए श्रेष्ठ संस्कार करो तुम शत्रुओं के तेज को पराभूत करो ।३ हे अग्ने ! जब तुम प्रज्वलित होकर तेजोमय होते हो, तब मैं तुम्हारे उस तेज की सुन्दर स्तुति

करता हूं। तुम बलवान एवं प्रजाओं के निमित्त सुखों की वर्षा करने वाले हो। तुम हमारे यज्ञानुष्ठान में अत्यन्त प्रकाशित होओ।४। हे अग्ने! तुम यजमानों द्वारा बुलाये जाते हो, तुम श्रेष्ठ यज्ञों के साधक हो। तुम भले प्रकार प्रदीप्त होकर इन्द्रादि देवताओं के निमित्त यज्ञ करो तुम हव्य वहन करने में समर्थ हो।५। हे ऋत्विजो! तुम हमारे यज्ञ-कार्य में लगकर हवि वहन करने वाले अग्नि के लिए यज्ञ करो, और उनकी सेवा करते हुए स्तुति करो। देवताओं को हवि पहुँचाने के लिए उन्हें वरण करो।।५।। [२२]

सूक्त २६

(ऋषि– गौरवीतिः। देवता–इन्द्रः, उशना। छन्द––पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

त्र्यर्यमा मनुषो देवताता त्री रोचना दिव्या धारयन्त ।
अर्चन्ति त्वा मरुतः पूतदक्षास्त्वमेषामृषिरिन्द्रासि धीरः ।।१
अनु यदीं मरुतो मन्दसानमार्चन्निन्द्रं पपिवांस सुतस्य ।
आदत्त वज्रमभि यदहिं हन्नपो यह्वीरसृजत्सर्तवा उ ।।२
उत ब्रह्माणो मरुतो मे अस्येन्द्रः सोमस्य सुषुतस्य पेयाः ।
तद्धि हव्यंमनुषे गा अविन्ददहन्नहिं पपिवां इन्द्रो अस्य ।।३
आद्रोदसी वितरं वि ष्कभायत्संविव्यानश्चिद्भियसे मृगां कः ।
जिगर्तिमिन्द्रो अपजर्गुराण प्रति श्वसन्तमव दानवं हन् ।।४
अध क्रत्वा मघवन्तुभ्यं देवा अनु विश्वे अददः सोमपेयम् ।
यत्सूर्यस्य हरितः हतन्तीः पुरः सतीरुपरा एतशे कः ।।५।२६

हे इन्द्र! सुन्दर बल वाले मरुद्गण तुम्हारा स्तवन करते हैं। तुम मेधावी हो। मनु-सम्बन्धी यज्ञ में जो तीन गुण और तीन साधन हैं, उनको देवताओं के कार्य में धारण करें।१। वे इन्द्र जब सुसिद्ध सोम को पीकर तृप्त होगये, तब मरुद्गण ने उसकी स्तुति की। फिर इन्द्र ने वज्र उठाकर वृत्र का संहार किया और उसके द्वारा रोके गये महान् जल-समूह को स्वेच्छा से प्रवाहित होने के लिए छोड़ दिया।२। हे महान् मरुद्गण! तुम सब और इन्द्र

हमारे इस स्वच्छ सोम-रस को भले प्रकार पान करो। तुम इस सोमयुक्त हवि का सेवन करते हुए यजमान को गौऐं प्राप्त कराओ। इसी सोमरस का पान करके हृष्ट हुए इन्द्र ने वृत्र का संहार किया था।३। सोम पीने के पश्चात् ही इन्द्र ने आकाश और पृथिवी को अचल किया, इन्द्र ने मृग के समान भागते हुए वृत्र को डराया। उस समय वह छिपा हुआ, भयभीत होकर श्वांस छोड़ रहा था। तब इन्द्र ने उसे माया रहित करके मार डाला।४। हे ऐश्वर्यशाली इन्द्र! तुम्हारे इस कर्म से प्रसन्न हुए देवताओं ने तुम्हें सोम-रस पीने को प्रदान किया। तुमने 'एतश' के लिये, सामने आये हुए सूर्य के घोड़ों का चलना रोक दिया॥५॥ (२३)

नव यदस्त नवतिं च भोगान्त्साकं वज्रेण मघवा विवृश्चत्।
अर्चन्तीन्द्र मरुतः सधस्थे त्रैष्टुभेन बचसा बाधत द्याम्॥६
सखा सख्ये अपचत्त यमग्निरस्य क्रत्वा महिषा त्री शतानि।
त्री साकमिन्द्रो मनषः सरांसि सुतं पिबद्वृत्रहत्याय सोमम्॥७
त्रीयच्छता महिषाणामघो मास्त्री सरांसि मघवा सोम्यापा।
कारं न विश्वे अह्वन्त देवा भर्मासिन्द्राय यदहिं जघान॥८
उसना यत्सहस्यै रयातं गृहमिन्द्र जूजुवानेभिरश्वैः।
वन्वानो अत्र सरथं ययाथ कुत्सेन देवैरवनोर्ह शुष्णम्॥९
प्रान्यच्चक्रमवृहः सूर्यस्य कुत्सात्यान्यद्वरिवो यातवेऽकः।
अनासो दस्यूंरमृणो वधेन नि दुर्योण आवृणङ्मृध्रवचः॥१०।२४

जब महा पराक्रमी इन्द्र ने 'शम्बर' के निन्यानवे पुरों को एक समय में ही ध्वंस कर डाला, तब रणक्षेत्र में ही मरुद्गण ने त्रिष्टुप् छन्द में इन्द्र की स्तुति की। इस प्रकार मरुद्गण के स्तोत्र द्वारा पूजित होने पर इन्द्र ने 'शम्बर' को वशीभूत किया।६। इन्द्र के सखा रूप अग्नि ने तीन सौ शक्तिशाली महिषों को कार्यक्षम बनाया और परम ऐश्वर्यवान् इन्द्र ने वृत्र-नाश के लिये मनुष्यों द्वारा तीन पात्रों में रखे हुए सोम-रस को एक समय में ही पान कर लिया।७। हे इन्द्र! जब तुमने तीन सौ महिषों को स्वीकार किया और पराक्रम से युक्त होकर तीन पात्रों में रखे सोम-र

का पान किया, तब तुमने वृत्र का हनन किया। उस समय जब देवताओं ने सोम पान से हृष्ट हुए इन्द्र को युद्ध के लिये बुलाया, जैसे स्वामी अपने कार्यकर्त्ता को बुलाते हैं ।८। हे इन्द्र ! तुम और 'उशना' दोनों ही जब द्रुतगामी घोड़ों पर चढ़कर 'कुत्स' के घर गये थें, तब तुमनें शत्रुओं को मारा और 'कुत्स' तथा देवताओं के साथ एक रथ पर चढ़े थे। इन्द्र ! तुमने ही दैत्य 'शुष्ण' हनन किया था ।९। हे इन्द्र ! तुमने ही प्रथम सूर्य के रथ के दो पहियों में से एक को अलग किया और दूसरे पहिये को धन प्राप्ति के निमित्त 'कुत्स' को प्रदान किया। तुमने चुपचाप खड़े हुए हतश्रता राक्षसों को युद्ध क्षेत्र में अपने वज्र से मार डाला ।१०। [२४]

स्तोमसास्त्वा गौरिवीतेरवर्धन्नरन्धयो वैदथिनाय पिप्रुम् ।
आत्वामृजिश्वा सख्याय चक्रे पचन्पक्तीरपिवः सोममस्य ॥११
नवग्वास सुतसोमास इन्द्रं दशग्वासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
गव्यं चिदूर्वमपिधानवन्तं त चिन्नरः शशमाना अप व्रन् ॥१२
कथो नु ते परि चराणि विद्वा वीर्या मघवन्या चकर्थ ।
या चो नु नव्या कृणवः शविष्ठ प्रेदु ता ते विदथेषु ब्रवाम ॥१३
एता विश्वा चकृवां इन्द्र भूर्यपरोता जनुषा वीर्येण ।
या चिन्नुवज्रिकृणवो दधृष्वान्न ते वर्ता तविष्या अस्ति तस्याः॥१४
इन्द्र ब्रह्म क्रियमाणा जुषस्व या ते शविष्ठ नव्या अकर्म ।
वस्त्रेव भद्रा सुकृता रथं न धीरःस्वपा अतक्षम् ॥१५।२५

हे इन्द्र ! 'गौरिवीती' ऋषि के स्तोत्र से तुम बढ़ा तुमने विदथिपुत्र ऋजिश्वा' के लिये 'विप्र' नामक दैत्य को हराया। 'ऋजिश्वा' ने तुम्हारी मित्रता के लिये पुरोडाश परिपक्व कर उपस्थित किया था और तुमने 'ऋजिश्व' द्वारा समर्पित सोम का पान किया था ।११। नौ अथवा दस महीनों में सम्पूर्ण होने वाले यज्ञ के करने वाले अङ्गिरा ऋषि सोम सिद्ध करके पूजन के योग्य स्तोत्र से इन्द्र का स्तवन करते हैं। स्तव करते हुए अंगिराओं ने असुरों द्वारा छिपाई हुई गौओं को छुड़ाया था

॥१२॥ हे इन्द्र ! तुम ऐश्वर्यशाली हो। तुमने जिस पराक्रम को प्रकट किया था, उसे जानते हुए भी हम किस वाणी से कहें ? तुम जिस नवीन बल को प्रकट करोगे, उसका कीर्तन हम अपने यज्ञ में करेंगे ॥१३॥ हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं द्वारा नहीं रोके जा सकते। तुमने अपनी शक्ति से लोकों को दृश्यमान किया है। तुम वज्रधारी हो, शत्रुओं का नाश करते हुए जिस बल को दिखाते हो उस बल का निवारण करने में कोई समर्थ नहीं है।१४। हे अत्यन्त पराक्रमी इन्द्र ! हमने आज तुम्हारे जिन नवीन स्तोत्रों की रचना की है, उन सब स्तोत्रों को स्वीकार करो। हम सुन्दर कर्म वाले स्तोता धन की अभिलाषा करते हैं। हम वस्त्र और रथ की तरह अपने सुन्दर स्तोत्रों को तुम्हारे निमित्त समर्पित करते हैं।१५। २५

सूक्त ३०

(ऋषि—बभ्रुरात्रेयः। देवता—इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप् पंक्तिः)

ववस्य वीरः को अपश्यदिन्द्रं सुखरथमीयमानं हरिभ्याम् ।
यो राया वज्री सुतसोममिच्छन्तदोको गन्ता पुरुहूत ऊती ॥१
अवाचचक्षं पदमस्य सस्वरुग्रं विधातुरन्वायमिच्छन् ।
अपृच्छमन्याँ उत ते म आहूरिन्द्रं नरो बुबुधाना अशेम ॥२
प्र नु वयं सुते या ते कृतानीन्द्र ब्रवाम यानि नो जुजोषः ।
वेददविद्वाञ्छृणवच्च विद्वान्वहतेऽयं मघवा सर्वसेनः ॥३
स्थिर मनश्चकृषे जात इन्द्र वेषोदेको युधये भूयसश्चित् ।
अश्मानं चिच्छवसा दिद्युतो वि विदो गयामूर्वमुस्रियाणाम् ॥४
परो यत्त्व परम आजनिष्ठाः परावति श्रुत्यं नाम विभ्रत् ।
अतश्चिदिन्द्रादभयन्त देवा विश्वा अपो अजयद्दासपत्नीः ॥५।२६

बहुतों द्वारा बुलाये जाने वाले वज्रधारी इंद्र देने योग्य धनों के साथ सोम सिद्ध करने वाले यजमान की कामना करते हुए, रक्षा-साधनों सहित उसके घर में जाते हैं। वे बलवान् इन्द्र कहाँ हैं ? अपने दोनों अश्वों को रथ से जोड़कर जाने वाले इंद्र को कौन देखता है ? ।१। हमने इंद्र के सब

स्थानों को देखा है । खोज करते हुए हम आश्रय रूप इंद्र के स्थान में पहुँचे । हमने इन्द्र के सम्बन्ध में अन्य विद्वानों से भी जानकारी प्राप्त की । ज्ञान की कामना करने वाले याज्ञिकों ने बतलाया कि हमने इन्द्र को प्राप्त कर लिया है ।२। हे इन्द्र ! तुमने जिन कामों को किया, उनका वर्णन सोम सिद्ध करने पर स्तुति करने वाले करते हैं । तुमने हमारे निमित्त जिन कर्मों को किया है, उन कर्मों को भी सभी जान लें । जो जानते हैं, वह अनजान व्यक्तियों को श्रवण करावें । सब सेनाओं से परिपूर्ण हुए इन्द्र उन जानने वाले तथा सुनने वाले मनुष्यों के पास अश्व पर चढ़ कर पहुंचे ।३। हे इन्द्र ! तुमने प्रकट होते ही शत्रुओं को विजय करने का दृढ़ सङ्कल्प किया और तुम अकेले ही असंख्य असुरों से संग्राम करने के लिये गये । गौओं को ढकने वाले पर्वत को तुमने अपने बल से चीर डाला और दुग्ध देने वाली गौओं को प्राप्त किया ।। ४ ।। हे इन्द्र ! तुम सब में मुख्य और श्रेष्ठतम हो । जब तुम सुनने योग्य नाम को धारण कर प्रकट हुए तब अग्नि आदि देव भी भयभीत हो गये । वृत्र द्वारा रक्षित जल को तुमने अधिकार में किया था ।।५।। ·२६]

तुभ्येदेते मरुत सुशेवा: अर्चन्त्यर्कं सुन्वन्त्यन्धः ।
अहिमोहानमप अशायानं प्र मायाभिर्मायिन सक्षदिन्द्रः ।।६
वि षू मृधो जनुषा दानमिन्वन्नहन्गवा मघवन्त्सञ्चकानः ।
अत्रा दासस्य नमुचेः शिरो यदवर्तयो मनवे गातेमिच्छन् ।।७
युजं हि मामकृथा आदिदिन्द्र शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
अश्मान चित्स्वर्यं वर्तमानं प्र चक्रियेव रोदसी मरुद्भ्यः ।।८
स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे कि मा करन्नबला अस्य सेनाः ।
अन्तर्ह्यख्यदुभे अस्य धेने अथोप प्रैद्युधये दस्युमिन्द्रः ।।९
समत्र गावोऽभितोऽनवन्तेहेह वत्सैर्वियुता यदासन् ।
सं ता इन्द्रोअसृजदस्य शाकैर्यदीं सोमासःसुषुता अमन्दन् ।।१०।२७

यह स्तुति करने वाले मरुद्गण स्तोत्र-पाठ करते हुए तुम्हें सुखी करते हैं । हे इन्द्र ! यह तुम्हारी ही स्तुति करते हैं और सोम युक्त अन्न देते

हैं। जो वृत्र समस्त जल राशि को छिपाकर सो रहा था, उस कपटी और देवताओं के कार्य में बाधक को इन्द्र ने अपनी शक्ति से वशीभूत किया था ॥ ६ ॥ हे ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम देवताओं को दुःख देने वाले वृत्र को वज्र से दुःखी करो। तुमने उत्पन्न होते ही शत्रुओं का हनन किया था। इस संग्राम में हमारे कल्याण के लिये तुम 'नमुचि' नामक दस्यु के शीश को चूर्ण कर डालो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुमने गर्जन करते हुए गतिशील मेघ के समान 'नमुचि' के शीश को चूर्ण कर हमारे साथ मैत्री-भाव प्रदर्शित किया था, उस समय आकाश पृथिवी मरुद्गण के प्रभाव से चक्र के समान घूमने लगी ॥८॥ 'नमुचि' ने स्त्रियों को युद्ध का साधन बनाया। इन्द्र ने सोचा कि असुर की यह स्त्री-सेना मेरा क्या बिगाड़ सकेगी ? और सेनाओं के बीच से दो स्त्रियों को पकड़ कर बन्दी बनाया और तब 'नमुचि' से युद्ध करने के लिये चल पड़े ॥९॥ जब गौओं को 'नमुचि' ने चुराया, तब वे बछड़ों से बिछड़ी हुई गायें इधर-उधर भटकने लगी। 'बभ्रु' ऋषि प्रदत्त सोमरस से जब इन्द्र पुष्ट हुए तब उन्होंने मरुतों की सहायता से 'बभ्रु' की गायों को उनके बछड़ों से मिलाया ॥१०॥ [२७]

यदीं सोमा बभ्रुधूता अमन्दन्नरोरवींद्वृषभः सादनेषु ।
पुरन्दरः पपिवाँ इन्द्रो अस्य पुनर्गवामददादुस्त्रियाणाम् ॥११

भद्रमिद रुशमा अग्ने अक्रन्तवां चत्वारि ददतः सहस्रा ।
ऋणञ्चयस्य प्रयता मघानि प्रत्यग्रभोष्म नृतमस्य नृणाम् ॥१२

सुपेशसं माव सृजन्त्यस्तं गवां सहस्रं रुशमासो अग्ने ।
तीव्रा इन्द्रममन्दुः सुतासोऽक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्याः ॥१३

औच्छत्सा रात्री परितक्म्यायां ऋणञ्चये राजनि रुशमानाम् ।
अत्यो न वाजी रघुरज्यमानो बभ्रुश्चत्वार्यसनत्सहस्रा ॥१४

चतुः सहस्रं गव्यस्य पश्वः प्रत्यग्रभीष्म रुशमेष्वग्ने ।
घर्मश्चित्तप्तः प्रवृजे ये आसोदयस्मयस्तम्वादाम विप्राः ॥१५॥२८

जब 'बभ्रु" के सोमरस द्वारा इन्द्र हृष्ट हो गये, तब उन्होंने रणक्षेत्र में घोर गर्जन किया। पुरन्दर इन्द्र ने सोम पान के पश्चात् "बभ्रु" को दुग्ध देने वाली गायें पुनः लाकर दी ॥११॥ हे अग्ने! 'ऋणञ्चय' नामक राजा के सेवक 'रुशम' देश वालों ने मुझे चार हजार गौऐं देकर कल्याणकारी कार्य किया था। अग्रगण्यों में भी अग्रणीं 'ऋणञ्चय राजा' द्वारा दिये गये गौ रूप धन को मैंने प्राप्त किया था ॥१२॥ हे अग्ने! 'ऋणञ्चय' राजा के सेवक 'रुशम' देश वालों ने मुझे वस्त्रालङ्कार आदि से सजा हुआ घर तथा सहस्र धेनु प्रदान की हैं। रात्रि के अवमान काल में मधुर रस मिश्रित सोम द्वारा इन्द्र को प्रसन्न किया गया ॥१३॥ 'रुशम' देश के नरेश 'ऋणञ्चय' के पास ही सर्वत्र जाने वाली रात्रि व्यतीत हो गई बुलाये जाने पर 'बभ्रु' ऋषि ने वेग वाले अश्व के समान चार सहस्र द्रुतगामिनी धेनुओं को पाया।१४। हे अग्ने! हम मेधावी हैं। हमने रुशम देश वालों से चार हजार धेनु प्राप्त की हैं। हमने सुन्दर सुवर्णमय कलश को रुशम देश वालों से यज्ञ-कर्म में दूध दुहने के निमित्त प्राप्त किया है ॥१५॥ [२८]

सूक्त ३१

(ऋषि—अवस्युरात्रेयः। देवता—इन्द्रः कुत्सो वा। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

इन्द्रो रथाय प्रवतं कृणोति यमध्यस्थान्मघवा वाजयन्तम्।
यूथेव पश्वो व्युनोति गोपा अरिष्टो याति प्रथमः सिषासन् ॥१
आ प्र द्रव हरिवो मा वि वेनः पिशङ्गराते अभि नः सचस्व।
नहिं त्वदिन्द्र वस्यो अन्यदस्त्यमेनाश्चिज्जनिवतश्चकर्थ ॥२
उत्द्यसह सहस आजनिष्ट इन्द्र इन्द्रियाणि विश्वा।
प्राप्रोदयत्सुदुधा वव्रे अन्तर्वि ज्योतिषा संववृत्वत्तमोऽत्रः ॥३
अनवस्ते रथमश्वाय तक्षन्त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम्।
ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उत ।४
वृष्णे यत्ते वृषणो अर्कमर्चानिन्द्र ग्रावाणो अदितिः सजोषाः।
अनश्वासो ये पवयोऽरथा इन्द्रेषिता अभ्यवर्तन्त दस्यन् ॥५।२६

इन्द्र ऐश्वर्यशाली हैं। वे रथ पर बैठते हैं वैसे ही इन्द्र भी हैं। गौओं को जानने वाले जैसे पशुओं को प्रेरणा देते हैं, वैसे ही इन्द्र सेनाओं को प्रेरणा देते हैं। देवताओं में उत्कृष्ट इन्द्र शत्रुओं द्वारा कभी भी हिंसित न होते हुए शत्रुओं के धन की इच्छा से जाते हैं।१। हे अस्त्रवान् इन्द्र ! तुम हमारे सामने से निकलो। परन्तु हमारे लिए मनोरथ से रहित मत बनो। तुम विविध ऐश्वर्य वाले हो हमारी सेनाओं को स्वीकार करो। तुम भार्याहीनों को भार्या प्रदान करते हो। तुमसे श्रेष्ठ अन्य कोई नहीं है।२। उषा के प्रकाश से जब आदित्य का प्रकाश बढ़ जाता है, तब इन्द्र यजमानों को सभी धन देते हैं। वे छिपाने वाले पर्वत के बीच से दूध देने वाली गायों को निकालते और अपने तेज से सर्वत्र व्याप्त अन्धकार को हटाते हैं। ३। हे इन्द्र ! तुम बहुतों द्वारा बुलाये जाते हो। तुम्हारे रथ को अश्वों से युक्त होने के योग्य ऋभुओं ने किया है। त्वष्टा ने तुम्हारे वज्र को तीक्ष्णता दी है। इन्द्र के पूजक मरुद्गण ने वृत्र का नाश करने के लिए इन्द्र को स्तोत्रों द्वारा बढ़ाया है। ४। हे इन्द्र ! तुम कामनाओं को पूर्ण करने वाले हो। सेंचन कर्म वाले मरुद्गण ने जब तुम्हारा स्तवन किया था तब सोम कूटने वाले पाषाण भी प्रसन्नता से मिल गये थे। इन्द्र द्वारा भेजे जाने पर घोड़े और रथ से विहीन मरुद्गण ने जाकर शत्रुओं को वशीभूत किया था। ५। [२९

प्र ते पूर्वाणि करणानि वोचं प्र नूतना मघवन्या चकर्थ ।
शक्तीवो यद्विभरा रोदसी उभे जयन्नपो मनवे दानुचित्राः । ६
तदिन्नु ते करणं दस्म विप्राहिं यद् घ्नन्नोजो अत्रामिमीथाः ।
शुष्णस्य चित्परि माया अगृभ्णाः प्रपित्व यन्नप दस्यूँरसेधः ॥७
त्वमपो यदवे तुर्वशायारमयः सुदुघाः पार इन्द्र ।
उग्र मयातमवहो ह कुत्सं सं ह यद्वामुशनारन्त देवा ॥८
इन्द्राकुत्सा वहमाना रथेना वामत्या अपि कर्णे वहन्तु ।
निः षीमद्भ्यो धमथो निः षधस्थान्मघोनो हृदो वरथस्तमांसि॥९
वातस्य युक्तान्त्सुयुजश्चिदश्वान्कविश्चिदेषो अजगन्नवस्युः ।
विश्वे ते अत्र मरुतः सखाय इन्द्र ब्रह्माणि तविषीमवर्धन् ॥१०

हे इन्द्र ! हम तुम्हारे प्राचीन या नवीन कर्मों का कीर्तन करते हैं। हे ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! तुमने जो कार्य किये हैं, हम उनका वखान करते हैं। हे वज्रिन् ! तुम आकाश और पृथिवी को अपने वश में रखते हुए मनुष्यों के निमित्त अद्भुत जलों को धारण करते हो। ६। हे इन्द्र ! तुम मेधावी एवं दर्शनीय हो। तुमने वृत्र का हनन कर जो वल इस लोक को दिखाया है, वह तुम्हारे लिये ही सम्भव था। तुमने 'शुष्ण' की युवती स्त्री को बन्दी बनाया और रणक्षेत्र में जाकर राक्षसों को नष्ट किया। ७। हे इन्द्र ! 'यदु' और 'तुर्वश' राजाओं को तुमने नदी किनारे अवस्थित होकर वनस्पतियों की वृद्धि करने वाला जल प्रदान किया था। 'कुत्स' पर आक्रमण करने वाले विकराल असुर 'शुष्ण' का हनन करके 'कुत्स' को उसका गृह प्राप्त कराया। तब 'उशना' और सब देवताओं ने तुम्हारी स्तुति की। ८। हे इन्द्र ! हे 'कुत्स' ! तुम दोनों एक रथ पर सवार होओ और तुम्हें घोड़े यजमानों के समीप पहुंचावें। तुम दोनों ने 'शुष्ण' को उसके आश्रय रूप से जल से पृथक् किया। तुम दोनों ने धनिक यजमानों के अन्धकारयुक्त अन्तःकरण को शुद्ध किया था। ९। मेधावी 'अवस्यु' ऋषि ने रथ में उत्तम प्रकार से जोड़ने के योग्य तथा वायु के समान वेग वाले घोड़ों को प्राप्त किया। हे इन्द्र ! 'अवस्यु' के सखा सभी स्तुति करने वालों ने अपने सुन्दर स्तोत्रों द्वारा तुम्हारे पराक्रम को बढ़ाया। १०। [३०]

सूरश्चिद्रथं परितक्म्यायां पूर्वं करदुपरं जुजुवांसम् ।
भरच्चक्रमेतपूः सं रिणाति पुरो दधत्सनिष्यति क्रतुं नः ।।११
आयं जना अभिचक्षे जगामेन्द्रः सखायं सुतसोमिमिच्छन् ।
वदन्ग्रावाव वेदिं भ्रियाते यस्य जीरमध्वर्यवश्चरन्ति ।।१२
ये चाकनन्त नू ते मर्ता अमृत मो ते अंह आरन् ।
वावन्धि यज्यूँरुत तेषु धेह्योजो जनेषु येषु ते स्याम ।।१३।३१

प्राचीन काल में जब 'एतश' ऋषि के साथ सूर्य का युद्ध हुआ था, तब सूर्य के वेगवान् रथ की गति को इन्द्र ने रोक दिया। उस रथ के दोपहियों

में से एक पहिये को इन्द्र ने ले लिया। उसी पहिये के द्वारा इन्द्र शत्रुओं का संहार करते हैं। हम पर प्रसन्न होने वाले इन्द्र हमारे यज्ञ की कामना की करें। ११। हे मनुष्यो! सोम सिद्ध करने वाले सखा के समान यजमानों की कामना करते हुए इन्द्र तुमको दर्शन देने के लिए पधारे हैं। अध्वर्यु लोग जिस प्रस्तर को उठाते हैं, वह सोम कूटने वाला प्रस्तर शब्द करता हुआ वेदी पर चढ़ता है। १२। हे इन्द्र! तुम अविनाशी हो। जो तुमको चाहता है शीघ्रता से तुम्हारी कामना करता है उस मरणधर्म वाले मनुष्य का कोई अनिष्ट न हो। तुम यजमानों पर प्रसन्न होते हुए उनकी कामना करो। जिन मनुष्यों के मध्य हम स्तुति करने वाले बैठे हैं, वे सब मनुष्य यजमान तुम्हारे ही हैं। तुम उनको बल प्रदान करो। १३।

सूक्त ३२

(ऋषि—गातुरात्रेयः । । देवता—इन्द्रः । छन्द–त्रिष्टुप् पंक्तिः)

अददंरुत्समसृजो वि खानि त्वमर्णवान्वद्‌बधानाँ अरम्णाः ।
महान्तमिन्द्र पर्वं त वि यद्वः सृजो विधारा अव दानवं हन् ।।१
त्वमुत्साँ ऋतुभिव द्वधानाँ अरह ऊधः पर्वतस्य वज्रिन् ।
अहिं चिदुग्र प्रयुतं शयानं जघन्वां इन्द्र यविषीमधत्थाः ।।२
त्यस्य चिन्महतो निर्मृगस्य वधजंघान तोविषीभिरिन्द्रः ।
य एक इदप्रमिर्मन्त्यमान आदस्मादन्यो अजनिष्ट तव्यान् ।।३
त्यं विदेषां स्वधया मदन्तं मिहो नपात सुवृधं तमोगाम् ।
वृषप्रभर्मा दानवस्य भाम वज्रेज्रण वो नि जघाद शुष्णम् ।।४
त्यं चिदस्य ऋतुभिर्निशत्तमर्मणो विददिदस्य मम ।
यदीं सुक्षत्र प्रभृता मदस्य युयुत्सन्त तमसि हर्म्ये धाः ।।५
त्यं चिदित्था कत्पयं शयानमसूर्ये तममि वावृधानम् ।
त चिन्मदानो वृषभः सुतस्योच्चैरिन्द्रो अपगूर्या जघार ।।६।३२

हे इन्द्र! तुमने वर्षा करने वाले मेघ को चीरकर उसमें अवस्थित जल के द्वार को बनाया है। हे इन्द्र! तुमने मेघ को खोलकर जल वृष्टि की

और वृत्र का हनन किया। १। हे वज्रिन ! वर्षा ऋतु में रुके हुए मेघों को छोड़ो। उनकी शक्ति को बढ़ाओ। तुम विकराल कर्म वाले हो। तुमने जल में सोने वाले वृत्र का हनन करके अपने बल की प्रसिद्धि की है। २। इन्द्र का कोई प्रतिद्वन्दी नहीं है उन्होंने वृत्र के द्रुतवेग वाले शस्त्रों को अपने पराक्रम से नष्ट कर दिया। उस समय वृत्र के देह से एक अत्यन्त बलवान् दैत्य प्रकट हुआ। ३। मेघ पर वज्र प्रहार करने वाले इन्द्र ने वज्र द्वारा पराक्रमी 'शुष्ण' का संहार किया। वृत्रासुर के क्रोध से उत्पन्न हुआ 'शुष्ण' अँधेरे में घूमता हुआ मेघ की रक्षा करता था। वह असुर सभी प्राणियों के खाद्यान्न को स्वयं भक्षण कर पुष्ट हो जाता था। ४। हे पराक्रमी इन्द्र! हर्षकारी सोम रस को पीकर हृष्ट हुए तुमने युद्ध की इच्छा वाले वृत्र को अँधेरे में ही खोज लिया। अपने को न मारा जाने योग्य समझने वाले वृत्र के प्राण कहाँ हैं, यह बात तुम उसके द्वारा किये जाने वाले कार्यों से जान सके थे। ५। वह वृत्र जल में सोता हुआ अँधेरे में ही बढ़ रहा था। सुसिद्ध सोम को पीकर पुष्ट होने के पश्चात् कामनाओं के पूर्ण करने वाले इन्द्र ने वज्र प्रहार द्वारा उसका वध किया था।६। [३२]

उद्यदिन्द्रो महते दानवाय दधर्यमिष्ट सहो अप्रतीतम्।
यदीं वज्रस्य प्रभृतौ ददाभ विश्वस्य जन्तोरधमं चकार ॥७
त्यं चिदर्णं मधुप शयानमसिन्व वव्रं मह्याददुग्रः।
अपादमत्रं महता वधेन नि दुर्योग आवृणङ्‌मृध्रवाचम् ॥८
को अस्य शुष्मं तविषीं वरात एको धना भरते अप्रतीतः।
इमे चिदस्य ज्रयसो नु देवी इन्द्रस्यौजसो भियसा जिहाते ॥९
न्यस्मै देवी स्वधितिर्जिहीत इन्द्राय गातुरुशतीव येमे।
सं यदोजो युवते विश्वमाभिरनु स्वधाव्ना क्षितयो नमन्त ॥१०
एकं नु त्वा सत्पतिं पाञ्चजन्यं जातं शृणोमि यशसं जनेषु।
तं मे जगृभ्र आशसो नविष्ठं दोषा वस्तोर्हवमामास इन्द्रम् ॥११
एवा हि त्वामृतुथा यातयन्तं मघा विप्रेभ्यो ददतं शृणोमि।
किं ते ब्रह्माणो गृहते सखायो ये त्वाया निदधुः काममिन्द्र १२।३३

उस दैत्य-वृत्ति वाले वृत्र पर जब इन्द्र ने अपने विजयशील वज्र को प्रेरित कर उस पर प्रहार किया, तब सभी जीवों के सामने उसे नीचे गिरा दिया ।७। विकराल कर्म वाले इन्द्र ने चलते हुए मेघ को रोक कर सोते हुए, जल की रक्षा करने वाले, सबको ढक लेने वाले वृत्र को पकड़ लिया और फिर उस पैर रहित एवं परिमाण रहित वृत्र को अपने वज्र प्रहार से छिन्न-भिन्न कर दिया ।।८।। इन्द्र की शक्ति शत्रुओं का शोषण करने वाली है, उसका निवारण करने में कोई समर्थ नहीं । इन्द्र अकेले ही असंख्य शत्रुओं के धनों को छीन लेते हैं । आकाश और पृथिवी इन्द्र के पराक्रम से प्रभावित हुई गति करती हैं ।९। सबका धारक और प्रकाश से पूर्ण आकाश इन्द्र के सामने झुकता हुआ गति करता है । कामना वाली सुन्दरी के समान पृथिवी इन्द्र के लिये समर्पित होती है । जब वे इन्द्र सब प्राणियों में अपने बल को स्थापित करते हैं, तब सभी प्रजा उनके सामने नमस्कार पूर्वक झुक जाती है ।१०। हे इन्द्र ! ऋषियों द्वारा सुना है कि तुम मनुष्यों के स्वामी हो । तुम सज्जनों का पालन करने वाले हो । मनुष्यों के कल्याण के लिए तुम्हारा आविर्भाव हुआ है । रात-दिन स्तुति में लीन, अपनी अभिलाषों को प्रकट करती हुई हमारी सन्तति स्तुति के पात्र इन्द्र का आश्रय प्राप्त करे ।११। हे इन्द्र ! तुम प्राणियों को प्रेरित करते तथा स्तुति करने वालों को धन देते हो । हे इन्द्र ! जो स्तुति करने वाले अपनी अभिलाषा तुम्हारे प्रति निवेदन करते हैं, तुम्हारे वे अनन्य मित्र तुम से क्या पाते हैं ? ।१२। [३२].

सूक्त ३३ [तीसरा अनुवाक]

(ऋषि–संवरण । प्राजापत्यः । देवता—इन्द्रः । छन्द–पंक्तिः त्रिष्टुप्)

महि महे तवसे दीध्य नृनिन्द्रायेत्था तवसे अतव्यान् ।
यो अस्मं सुमति वाजसातौ स्तुतो जने समयश्चिकेत ।।१
स त्वं न इन्द्र धियसानो अर्कैर्हरीणां वृषन्योक्त्रमश्रेः ।
या इत्था मघन्ननु जोष वक्षो अभि प्रायः सक्षि जनान् ।।२
न ते त इन्द्राभ्य स्मद्दष्वायुक्तासो अब्रह्मता यदसन् ।

तिष्टा रथमधि तं वज्रहस्ता रश्मिं देव यमसे स्वश्वः ।।३
पुरू यत इन्द्र सन्त्युक्था गवे च कर्थोर्वरासु युध्यन् ।
ततक्षे सूर्याय चिदोकसि स्वे वृषा समत्सु दासस्य नाम चित् ।।४
वयं ते त इन्द्र ये च नरः शर्धो जज्ञाना यताश्च रथाः ।
आस्माञ्जगम्यादहिशुष्म सत्वा भगो न हव्यः प्रभृथेषु चारुः।।५।।

जो इन्द्र पराक्रम सम्बन्धी कर्मों को करने में वीर पुरुषों से युक्त हैं एवं श्रेष्ठ बुद्धि से सभी पर शासन करने में समर्थ हैं, ऐसे तथा ऐश्वर्यशाली इन्द्र के स्तोता, निर्बल होते हुए भी महान् बल का सम्पादन करने में समर्थ हैं। वे इन्द्र अन्न-लाभ के निमित्त स्तुत होकर हम पर कृपा करने वाले हों ।।१।। हे इंद्र! हे कामनाओं को पूर्ण करने वाले! तुम हमारी कामना पूर्ण करते हुए प्रसन्न करने वाले स्तोत्रों से रथ में संयुक्त अश्वों की लगाम पकड़ते हो। हे इन्द्र! हे मघवन्! इस प्रकार तुम हमारे शत्रुओं को वशीभूत करने में समर्थ हो ।२। हे तेजस्वी इन्द्र! जो मनुष्य तुम्हारे भक्त नहीं हैं, जो तुम्हारे साथ नहीं रहते, वे मनुष्य श्रेष्ठ कर्मों से हीन होने के कारण तुम्हारे नहीं हो सकते। हे वज्रिन्! तुम हमारे यज्ञ को प्राप्त होने के लिये उस रथ पर चढ़ो, जिसको तुम स्वयं चलाते हो। । हे इन्द्र! तुम्हारे अपने से सम्बन्धित बहुत स्तोत्र हैं। इसी कारण उर्वरा भूखण्डों पर वर्षा करने की इच्छा से वृष्टि के अवरोधकों को छिन्न-भिन्न करते हो। तुम कामनाओं को पूर्ण करने वाले हो। तुम सूर्य स्थान में वृष्टि को रोकने वाले दस्युओं से संग्राम करके उनके नाम को भी मिटा देते हो ।। ४।। हे इन्द्र! हम ऋत्विक् और यजमान आदि सब तुम्हारे ही हैं। यज्ञानुष्ठान द्वारा हम तुम्हारे बल को बढ़ाते हैं और आहुति देने के लिये तुम्हारे समीप जाते हैं। हे इन्द्र! तुम्हारा बल सब में व्याप्त है। तुम्हारी कृपा से भग के समान प्रशंसा करने योग्य विश्वस्त भृत्यादि हमको कार्य-क्षेत्र में प्राप्त हों ।।५।। [१]

पपृक्षेण्यमिन्द्र त्वे ह्योजो नम्णानि च नृतमाना अमतः ।
स न एनीं वसवानो रयिं दा प्रार्यः स्तुषे तुविमघस्य दानम् ।।६

एवा न इन्द्रोतिभिरव पाहि गृणतः शूर कारून् ।
उत त्वच्च ददतो वाजसातौ पिप्रीहि मध्वः सुषुतस्य चारोः ॥७
उत त्ये मा पौरुकुत्स्यस्य सूरेस्त्रसदस्योर्हिरणिनो रराणाः ।
वहन्तु मा दश श्येतासो अस्य गैरिक्षितस्य क्रतुभिर्नु सश्चे ॥८
उत त्ये मा मारुताश्वस्य शोणाः क्रत्वामघासो विदथस्य रातौ ।
सहस्रा मे च्यवतानो ददान आनूकमर्यो वपुषे नार्चत् ॥९
उत त्ये मा ध्वन्यस्य जुष्टा लक्ष्मण्यस्य सुरुचो यतानाः ।
मह्ना रायः सवरणस्य ऋषेर्व्रजं न गावः प्रयता अपि ग्मन्॥१०।२

हे इन्द्र ! तुम्हारी शक्ति पूजा करने के योग्य है, तुम अविनाशी एवं सर्वत्र व्याप्त हो । तुम अपने तेज से संसार को आच्छादित करते हुए हमको उज्ज्वल धन प्रदान करो । हम ऐश्वर्यशाली दाता इन्द्र के दान के प्रशंसक हैं ।६। हे पराक्रमी इन्द्र ! हम तुम्हारा स्तवन करते हैं और यज्ञ करते हैं । तुम अपने रक्षा-साधनों द्वारा हमारी रक्षा करो । युद्ध में तुम अपने आश्रय को प्रदान करते हुए हमारे सुसिद्ध सोमरस का पान करो और हृष्ट होओ ॥ ७ ॥ गैरिक्षित "पुरुकुत्स" के पुत्र "त्रसदस्यु" वीर, सुवर्णादि ऐश्वर्य के स्वामी हैं । उन्होंने दस घोड़े हमको दिये थे, वे श्वेत रङ्ग के हैं । वे घोड़े हमको वहन करें । उनको रथ में जोड़कर हम शीघ्र ही चलें ॥ ८ ॥ "मरुताश्व" के पुत्र विदथ ने जो लाल रङ्ग के द्रुतगामी घोड़े हमको दिये थे, वे हमको वहन करने वाले हों । उन्होंने हमको पूजनीय मानकर असंख्य धन तथा शरीर के आभूषण प्रदान किये हैं ॥ ९ ॥ "लक्ष्मण" के पुत्र "ध्वन्य" ने हमको जो उज्ज्वल वर्ण का तथा अपने कर्म में क्षमतावान् घोड़ा दिया था, वह हमको वहन करे । गौओं द्वारा गोशाला को प्राप्त करने के समान "ध्वन्य" द्वारा दिया हुआ महान् ऐश्वर्य सम्वरण ऋषि के आश्रम को प्राप्त हो ॥१०॥

सूक्त ३४

(ऋषि–संवरणः प्राजापत्यः । देवता–इन्द्रः । छन्द- त्रिष्टुप्, जगती)

अजातशत्रुमजरा स्वर्वत्यनु स्वधामिता दस्ममीयते ।

सुनोतन पचत ब्रह्मब हसे पुरुष्टुताय प्रतरं दधातन ॥१
आ यः सोमेन उठरमपिप्रतामन्दत मघवा मध्वो अन्धसः ।
यदीं मृगाय हन्तवे महावधः सहस्रभृष्टिमुशना वधं यमत् ॥२
यो अस्मै घ्रंस उत वा य ऊधनिसोमंसुनोति भवति द्युमां ग्रह ।
अपाप शक्रस्ततनुष्टिमहृति तनूशुभ्रं मघवा यः कवासखः ॥३
यस्यावधीत्पितरं यस्य मातरं यस्य शक्रो भ्रातरं नात ईषते ।
वेतीद्वस्य प्रयता यतङ्करो न किल्विषादीषते वस्व अकरः॥४
न पञ्चभिर्दशभिर्वष्ट्यारभं नासुन्वत सचते पुष्यता चन ।
जिनाति वेदमुया हन्ति वा धुनिरा देवयुं भजति गोमति व्रजे ॥५।३

जिससे शत्रुता करने का कोइ साहस नहीं करता तथा जो शत्रुओं का संहार करने वाले हैं, उनको कभी भी क्षीण न होने वाली, स्वर्गदायिनी, प्रचुर हवियाँ प्राप्त हों। हे ऋत्विगण ! उन इन्द्र के निमित्त पुरोडाश परिपक्व करो और श्रेष्ठ कर्मों में लगो। इन्द्र बहुतों द्वारा पूजित तथा स्तोत्रों के वहन करने वाले हैं ॥१॥ इन्द्र ने अपने उदर को सोम रस से परिपूर्ण कर लिया और सुमधुर सोमरस को पीकर मुदित हो गये। फिर मृव नामक असुर को हनन करने की इच्छा से उन्होंने अपने अत्यन्त तेजस्वी वज्र को हाथ में उठा लिया ॥ २ ॥ जो यजमान इन्द्र के निमित्त दिन-रात सोम सिद्ध करते हैं वे अत्यन्त तेजस्वी होते हैं। जो यजमान यज्ञ नहीं करते तो वे भी धर्म और सन्तान की इच्छा करते हैं सुन्दर आभूषणों को धारण करते हैं और विरुद्ध आचरण वाले व्यक्तियों की सहायता करते हैं, उन यजमानों को सामर्थ्यवान् इन्द्र त्याग देते हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम जिसके पिता, माता अथवा भाई को दण्ड देते हो, उससे भी भयभीत नहीं होते और उसे सदैव नियन्त्रण में रखने का प्रयत्न करते हो। अपने ऐश्वर्य को सब ओर से संग्रह करने में कुशल इन्द्र पापी से भी भयभीत नहीं होते वरन् सदैव उसके नाश को ही प्रस्तुत रहते हैं। शत्रुओं का संहार

करने के लिए इन्द्र, पाँच, दस सहायकों को भी नहीं चाहते । जो व्यक्ति सोम सिद्ध नहीं करता तथा कुटुम्बियों का भी पालन नहीं करता, उसके साथ इन्द्र मेल नहीं रखते । शत्रुओं का कम्पायमान करने वाले इन्द्र उसका वध कर देते हैं । याज्ञिकों के गोष्ठ को इन्द्र गौओं से युक्त करते हैं ।५। (३)

वित्वक्षण: समृतौ चक्रमासजोऽसुन्वतो विषुण: सुन्वतो वृध: ।
इन्द्रो विश्वस्य दमिता विभीषणो यथावशं नयति दासमार्य: ।।६
समीं पणेरजति भोजनं मुषे वि दाशुषे भजति सूनरं वसु ।
दुर्गे चन ध्रियते विश्व आ पुरु जनोयो यस्य तविषीमचुक्रुधत् ।।७
सं यज्जनौ विश्वशर्धं सावर्वेदिन्द्रो मघवा गोषु शुभ्रिषु ।
युजं ह्यन्यमकृत प्रवेपन्युदीं गव्यं सृजते सत्वभिर्धुनि: ।।८
सहस्रसामाग्निवेशिं गृणीषे शत्रिमग्न उपमां केतुमर्य: ।
तस्मा आप: संयत: पीपयन्त तस्मिन्क्षत्रममवत्त्वेषमस्तु ।।९।४

शत्रुओं को युद्ध में क्षीण करने वाले इन्द्र रथ के पहिये को तेज होने की शक्ति देते हैं । वे सोम सिद्ध करने वाले से दूर रहते और सोमवान् को बढ़ाते हैं । वे इन्द्र संसार के प्रेरक तथा भय के उत्पादक हैं । वे दस्युओं को अपने वशीभूत करते हैं ।६। इन्द्र वणिकों के समान धन-लाभ के लिए गमन करते हैं । मनुष्यों की प्रतिष्ठा बढ़ाने वाले उस धन को यज्ञ करने वाले यजमानों को प्रदान करते हैं । जो इन्द्र को कुपित करता है, वह मनुष्य घोर संकट में पड़ जाता है ।७। सुन्दर ना वाले तथा महान् सामर्थ्य वाले दो व्यक्ति जब परस्पर विद्वेष करते हैं, तब उनमें जो यजमान यज्ञ करने वाला होता है, इन्द्र उसकी सहायता करते हैं । मेघों को कम्पायमान करने वाले इन्द्र उस याज्ञिक यजमान को गौऐं प्रदान करते हैं ।८। हे इन्द्र ! असंख्य धनों के देने वाले "अग्निवेश पुत्र शत्रि ऋषि" की हम प्रशंसा करते हैं । वे अनुपमेय तथा प्रसिद्ध हैं । जल-राशि उन्हें भले प्रकार पुष्ट करे । उनका धन बल तथा प्रकाश से पूर्ण हो ।९। [४]

३५ सूक्त

(ऋषि–प्रभूवसुराङ्गिरसः । देवता–इन्द्रः । छन्द—अनुष्टुप्,
उष्णिक्)

यस्ते साधिष्ठोऽवस इन्द्र क्रतुष्टमा भर ।
अस्मभ्यं चषणीसहं सस्नि वानेषु दुष्टरम् ॥१
यदिन्द्र ते चतस्रो यच्छूर सन्ति तिस्रः ।
यद्वा पंच क्षितीनामवस्तत्सु न आ भर ॥२
आ तेऽवो वरेण्यं वृषन्तमस्य हूमहे ।
वृषजूतिर्हि जज्ञिष आभूभिरिन्द्र तुर्वणिः ॥३
वषा ह्यष राधसे जज्ञिषे वृष्णि ते शवः ।
स्वक्षत्रं ते धृषन्मनः सत्राहमिन्द्र पौंस्यम् ॥४
त्वं तमिन्द्र मर्त्यममित्रयंतमद्रिवः ।
सर्वरथा शतक्रतो नि याहि शवसस्पते ॥५।५

हे इन्द्र तुम्हारा अत्यन्त, कार्य साधक कर्म हमारी रक्षा करने वाला हो । तुम्हारा कर्म सब मनुष्यों को पवित्र करने वाला तथा शुद्ध है । युद्धस्थल में वह किसी के द्वारा फीका नहीं किया जा सकता ।१। हे इन्द्र ! तुम्हारे जो रक्षा-साधन चार वर्गों में हैं तथा जो रक्षा साधन तीन लोकों में विद्यमान हैं, उन सब रक्षा-साधनों को तुम हमारे लिए भले प्रकार प्राप्त कराओ ।२। हे इन्द्र ! तुम इच्छित फल के सिद्ध करने वाले हो । तुम्हारे रक्षा-साधन ग्रहण करने योग्य हैं, हम उनकी याचना करते हैं । उन्हें तुम मरुद्गण सहित हमको प्राप्त कराने वाले होओ ।३। हे इन्द्र ! तुम इच्छित फलों की वर्षा करने वाले हो । तुम यजमानों को धन प्रदान करने के लिए ही उत्पन्न हुए हो । तुम्हारा बल फलों की वृष्टि करने में समर्थ हैं । तुम स्वभाव से पराक्रमी हो । विरोधियों का तुम सदा दमन करते हो । तुम्हारा पुरुषार्थ शत्रु-संघ को भी नाश करने में समर्थ है ।४। हे वज्रिन् ! तुम्हारे रथ की चाल कभी मन्द नहीं पड़ती । तुम शक्ति के स्वामी एवं सैकड़ों शुभ कर्मों के करने वाले हो । जो मनुष्य तुमसे शत्रुता का व्यवहार करने को उद्यत होता है, उसे लक्ष्य कर तुम अपने बल सहित प्रयान करते हो ।५।   [२]

त्वामिद्वृत्रहन्तम जनासो वृक्तबर्हिषः ।
उग्रं पूर्वीषु पूर्व्यं हवन्ते वाजसातये ॥६
अस्माकमिन्द्र दुष्टरं पुरोयावानमाजिषु ।
सयावानं धनेधने वाजयन्तमवा रथम् ॥७
अस्म कमिन्द्रेहि नो रथमवा पुरन्ध्या ।
वयं शविष्ठ वार्यं दिवि श्रवो दधीमहि दिवि स्तोम मनामहे ॥८॥६

हे इन्द्र ! हे शत्रुओं के हनन कर्त्ता !,युद्धकाल उपस्थित होने पर मनुष्य तुम्हारा ही आह्वान करते हैं, क्योंकि तुम्हारे अस्त्र युद्ध के लिए सदा उद्यत रहते हैं। तुम अपनी प्रजाओं में प्राचीन हो ।६। हे इन्द्र ! रथ के रक्षक होओ। वह रथ रणक्षेत्र में सब प्रकार के धनों की कामना करता है और दासों के साथ चलता है। उसे कोई रोक नहीं सकता। यह युद्ध क्षेत्र में घुसा चला जाता है।७। हे इन्द्र ! हमारे प्रति आत्मीयता का भाव रखते हुए पधारो। अपने श्रेष्ठ रक्षा-साधनों से हमारे रथ की रक्षा करो। तुम अत्यन्त बलवान् एवं प्रकाशवान् हो। तुम्हारी कृपा से हम वरण करने योग्य धनों को तुम्हारे द्वारा स्थापित करावें। तुम तेजस्वी हो। हम तुम्हारा भले प्रकार स्तवन करते हैं।८।

३६ सूक्त

(ऋषि—प्रभूवसुराङ्गिरसः। देवता—इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप्, जगती)

स आ गमदिन्द्रो यो वसूनां चिकेतद्दातुं दामनो रयीणाम् ।
धन्वचरो न वंसगस्तृषाणश्चकमानः पिबतु दुग्धमंशुम् ॥१
आ ते हनू हरिवः शूर शिप्रे रुहत्सोमो न पर्वतस्य पृष्ठे ।
अनु त्वा राजन्नर्वतो न हिन्वन् गीर्भिर्मदेम पुरुहूत विश्वे ॥२
चक्रं न वृत्तं पुरुहूत वेपते मनो भिया मे अमतेरिदद्रिवः ।
रथादधि त्वा जरिता सदावृध कुविन्नु स्तोषन्मघवन् पुरूवसुः ॥३

एष ग्रावेव जरिता त इन्द्रेयर्ति वाचं बृहदाशुषाणः ।
प्र सव्येन मघवन्यंसि रायः प्र दक्षिणिद्धरिवो मा वि वेनः ॥०
वृषा त्वा वृषणं वर्धंतु द्यौवृ षा बृषभ्यां वहसे हरिभ्याम् ।
स नो वृषा वृषरथः सुशिप्र वृषक्रतो वृषा वज्रिन्भरे धाः ॥५
यो रोहितौ वाजिनौ वाजिनीवान्त्रिभिः शतैः सचमानावदिष्ट ।
यूने समस्मै क्षितयो नमन्तां श्रुतरथाय मरुतो दुवोया ॥६।७

इन्द्र हमारे यज्ञ स्थान में आवें। जो वे देवता धनों के ज्ञाता हैं, उनका स्वरूप कैसा है ? वे इन्द्र ऐश्वर्य का का दान करने वाले हैं और दानशील स्वभाव से युक्त हैं। धनुष सहित जाने वाले धनुषधारी के समान साहसपूर्वक गमन करने वाले इन्द्र सोम-पीकर अपनी तृषा का निवारण करें ।१। हे दो घोड़ों से युक्त इन्द्र ! हमारे द्वारा प्रदत्त सोम पर्वत की चोटी के समान तुम्हारे मुख प्रदेश पर पहुंचे । हे इन्द्र! तुम सुशोभित हो। घास से जैसे अश्व तृप्त होते हैं, वैसे ही हम स्तुतियों से तुम्हें तृप्त करते हैं। तुम बहुतों द्वारा पूजित हो ।२। हे बहुस्तुत वज्रिन् ! पृथिवी पर स्थित पहिए के समान हमारा मन दारिद्र्य की आशंका से काँपता है। तुम सदा प्रवृद्ध हो। स्तुति करने वाले "पुरवसु" ऋषि तुम्हारी अत्यन्त स्तुति करते हैं। तुम रथ पर चढ़कर उनके समक्ष पधारो ।३। हे इन्द्र ! प्राप्त फल को भोगने वाले स्तोता सोम कूटने के प्रस्तर के समान तुम्हारा स्तव करते हैं। तुम अश्ववान् एवं धनवान् हो। तुम अपने बाँए तथा दाँए हाथों से धन प्रदान करते हो। तुम हमारे मनोरथ को निष्फल नहीं करना ।४। हे इन्द्र ! तुम कामनाओं के पूर्ण करने वाले हो । इच्छाओं की वर्षा करने वाली आकाश पृथिवी तुम्हें बढ़ावें। तुम वर्षा करने वाले हो। अश्व तुम्हें यज्ञ स्थान में लगाते हैं। हे वज्रिन् ! तुम्हारा रथ मङ्गलों की वृष्टि करने वाला है। युद्ध में तुम हमारे रक्षक होओ ।५। हे मरुद्गण! तुम इन्द्र के सहायक हो ऐश्वर्यशाली राजा "श्रुतरथ" ने हमको लाल रङ्ग के दो घोड़े और तीन सौ गौऐं प्रदान की थीं। उस सतत युवा श्रुतरथ को उनकी सम्पूर्ण प्रजा अभिवादन करती और उसकी आज्ञा का पालन करती हैं ।६। (७)

सूक्त ३७

(ऋषि—अत्रिः । देवता—इन्द्रः । छन्दः—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

स भानुना यतते सूर्यस्याजुह्वानो घृतपृष्ठः स्वञ्चाः ।
तस्मा अमृध्रा उषसो व्युच्छान्य इन्द्राय सुनवामेत्याह ॥१
समिद्धाग्निर्वनवत्स्तीर्णबर्हिर्युक्तग्रावा सुतसोमो जराते ।
ग्रावाणो यस्येषिरं वदन्त्ययदध्वर्युर्हविषाव सिन्धुम् ॥२
वधूरियं पतिमिच्छन्त्येति ई वहाते महिषीमिषिराम् ।
आस्य श्रवस्याद्रथ ना च घोषात्पुरू सहस्रा परि वर्तयाते ॥३
न स राजा व्यथते यस्मिन्निद्रस्तीव्र सोमं पिबति गोसखायम् ।
आ सत्वनैरजति हन्ति वृत्रं क्षेति क्षितीः सुभगो नाम पुष्यन् ॥४
पुष्यात्क्षेमे अभि योगे भवात्युभे वनौ सयती स जयाति ।
प्रियःसूर्ये प्रियो अग्ना भवाति य इन्द्राय सुतसोमो ददाशत् ॥५।८

विधिवत् आह्वान किये हुए अग्नि हवि देने से अग्नि प्रज्वलित होकर सूर्य-रश्मियों से युक्त होने का प्रयत्न करते हैं। जो व्यक्ति, इन्द्र के लिये यज्ञ करो' ऐसा कहता है उसके लिये उषा अहिंसक होकर विविध रूपों में प्रकट होती है ।१। जो यजमान अग्नि को दीप्त करते तथा कुश की वृद्धि करते हैं, वे यज्ञ-कर्म में नियुक्त होकर प्रस्तर द्वारा सोमरस को निकालते हुए स्तुति करते हैं। जो अध्वर्यु हव्य पदार्थ संग्रह करते हैं, वे सिन्धु के समान विस्तृत एवं सम्पन्न होते हैं ।२। जैसे किसी स्त्री को सौभाग्यवती और पत्नी बनने के योग्य जान कर पुरुष उससे विवाह करता है, और वैसे ही वह महिषी भी पति की कामना करती हुई उसे प्राप्त होती है, उसी प्रकार इन्द्र का रथ हमारी कामना करता हुआ हमको प्राप्त हो। वह शब्द करता हुआ हमको प्राप्त हो। वह शब्द करता हुआ सब ओर से धन लावे ।३। जिन यजमानों के यज्ञ में इन्द्र दुग्धयुक्त सोम रस को पीते हैं, वे यजमान कभी दुःखी नहीं होते । वे अपने अनुचरों के साथ जाते हुए शत्रुओं को मारते और प्रजा-रक्षण में समर्थ होते हैं । वे अनेक सुखों का उपभोग करते हुये इन्द्र की पूजा करते हैं ।४। जो इन्द्र के लिये सिद्ध

सोम रस देता है, वह अपने कुटुम्बियों को सुखी रखता है । वह अप्राप्त धन को पाने में सफल होता हुआ प्राप्त धन की रक्षा करने में समर्थ होता है वह शत्रुओं को तिरस्कृत करता हुआ सूर्य और अग्नि दोनों का प्रिय होता है ।५। (८)

सूक्त ३८

(ऋषि—अत्रि । देवता—इन्द्रः । छन्दः—अनुष्टुप्)

उरोष्ट इन्द्र राधसो विभ्वी रातिः शतक्रतो ।
अधा नो विश्वचर्षणे द्युम्ना सुक्षत्र मँहय ॥१
यदीमिन्द्र श्रवाय्यमिष शविष्ठ दधीषे ।
पप्रथे दीर्घश्रुत्तमं हिरण्यवर्ण दुष्टरम् ॥२
शुष्मासो ये ते अद्रिवो मेहना केयसापः ।
उभा देवावभिष्टये दिवश्च ग्मश्च राजथः ॥३
उतो नो अस्य कस्य चिद्दक्षस्य तव वृत्रहन् ।
अस्मभ्यं नृम्णमा भरास्मभ्यं नृमणस्यसे ॥४
नू त आभिरस्टिभिःतव शर्मंछतक्रतो ।
इन्द्र स्याम सुगोपाः शूर स्याम सुगोपाः ॥५।९

हे इन्द्र ! तुमने सैकड़ों कल्याणकारी कार्य किये हैं । तुम अपने ऐश्वर्य का महान् दान करते हो । हे सबके देखने वाले ! हे श्रेष्ठ बल और ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! तुम हमको असंख्य धन प्रदान करो ।१। हे सुवर्ण के समान कान्तिमान् ! हे अत्यन्त शक्तिशालिन् इन्द्र ! तुम यशदायक अन्न के धारण करने वाले ,हो अतः दीर्घ काल तक ऋतुओं से अपराजित रहते हुए हम यशोजनक अन्न-बल की वृद्धि करने में समर्थ हों ।२। हे वज्रिन् ! पूजन के पात्र सुविख्यात बल वाले मरुद्गण तुम्हारे बल से युक्त हैं तुम और वे दोनों ही सूर्य के समान पृथिवी का पालन करते हुए उसे महान् ऐश्वर्य प्रदान करते हो ।३। हे वृत्र का संहार करने वाले इन्द्र ! हम तुम्हारे बल की स्तुति करते हैं । तुम हमको श्रेष्ठ धन लाकर

देते हो, क्योंकि तुम हमारे लिए धन की अभिलाषा करते हो ।४। हे शतकर्मा इन्द्र ! तुम्हारे आश्रय में रहते हुए हम शीघ्र ही सुख से सम्पन्न हों। हे इन्द्र ! तुम्हारे सुख का भाग हम प्राप्त करें। हे वीर ! हम उत्तम भूमि और कुटुम्ब से युक्त हों ।५। (९)

सूक्त ३९

(ऋषि—अत्रिः । देवता—इन्द्रः । छन्द-अनुष्टुप्, उष्णिक्, वृहती)

यदिन्द्र चित्र मेहनास्ति त्वादातमद्रिवः।
राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ॥१
यन्मन्य से वरेण्यमिन्द्र द्युक्षं तदा भर।
विद्याम तस्य ते वयमकूपारस्य दावने ॥२
मत्ते दित्सु प्रराध्य मनो अस्ति श्रुतं बृहत्।
तेन दृलहा चिदद्रिवं आ वाजं दर्षि सातये ॥३
महिष्ठं व मघोनां राजानं चर्षणीवाम्।
इन्द्रमुप प्रशस्तये पूर्वीभिर्जुजुषे गिरः ॥४
अस्मा इत्काव्यं बच उक्थमिन्द्राय शंस्यम्।
तस्मा उ ब्रह्मवाहसे गिरो वधन्त्यत्रया गिरः शुम्भन्त्यत्रयः ॥५॥१०

हे इन्द्र! वज्रधारिन्! तुम अत्यन्त अद्‌भुत रूप वाले हो। तुम्हारे पास जो दान देने योग्य अमूल्य धन है, उसे हमारे लिए अपने दोनों हाथों से प्रदान करो ।१। हे इन्द्र ! जिस अन्न को तुम उत्तम मानते हो, अपना वह अन्न हमको प्रदान करो। हम तुम्हारे उस उत्कृष्ट अन्न को प्राप्त करने के सर्वथा योग्य हैं ।। हे इन्द्र ! तुम्हारा मन दान देने के निमित्त विस्तीर्ण रहता है। हे वज्रिन् ! तुम हसको श्रेष्ठ पौष्टिक देने के लिए सदा इच्छा करते रहते हो ।३। मनुष्यो ! इन्द्र हवि रूप से सम्पन्न हैं। वे तुम्हारे लिए अत्यन्त पूज्य तथा अखिल मनुष्यों के अधीश्वर हैं। स्तुति करने वाले पुरातन स्तोत्रों से उनकी स्तुति एवं परिचर्या करते हैं ।४। उन्हीं

महान् इन्द्र के लिये यह काव्य वचन कहने योग्य हुआ है। वे स्तोत्रों को बढ़ाते हैं। अत्रिपुत्र ऋषिगण उनके समक्ष ही स्तोत्रों को उच्चारित करते हुए उन्हें सुशोभित करते हैं ।५।

सूक्त ४०

(ऋषि—अत्रिः देवता-इन्द्र, सूर्यः । छन्द—उष्णिक् त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

आ याह्यद्रिभिः सुतंसोमं सोमपते पिब ।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ।।१
वृषा ग्रावा बृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः ।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ।।२
वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ।।३
ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाटछुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा ।
युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ् माध्यन्दिने सवने मत्सदिन्द्रः ।।४
यक्त्वा सूर्यं स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः ।
अक्षेत्रविद्यथा मुग्धा भुवनान्यदोधयुः ।।५।११

हे इन्द्र! हमारे यज्ञ में पधारो। हे सोमेश्वर इन्द्र! प्रस्तर द्वारा सुसिद्ध सोम-रस आकर पान करो। हे फलों की वर्षा करने वाले, हे शत्रुओं का अत्यन्त संहार करने वाले इन्द्र! तुम फलों की वर्षा करने वाले मरुद्गण के साथ सोम-पान करो ।१। अभिषव करने वाला प्रस्तर माधुर्य वर्षं है। सोम-रस की वर्षा करने में समर्थ है। हे फलों की वर्षा करने वाले, शत्रुओं के उत्तम नाशक इन्द्र! तुम मरुद्गण के साथ सोम-पान करो ।२। हे वज्रिन्! तुम सोम के सेचनकर्त्ता और अभीष्टों की वर्षा करने वाले हो। हम तुम्हारे अद्भुत रक्षा-साधनों की याचना करते हैं। हे फलों के वर्षक। हे शत्रुओं के उत्तम नाशक इन्द्र! तुम मरुतों के साथ सोम-पान करो ।३। इन्द्र वज्रधारी एवं अग्रणी हैं। वे अभीष्टों की वर्षा करने वाले, शत्रुओं का हनन

करने वाले, महाबली, सबके स्वामी, वृत्र के मारने वाले तथा सोम-रस के पीने वाले हैं। ऐसे इन्द्र अपने रथ में अश्वों को जोड़कर हमारे सामने आवें और मध्य सवन में सोम पीकर पुष्टि को प्राप्त हों ।४। हे सूर्य ! 'स्वर्भानु' नामक दैत्य ने जब तुम्हें अन्धकार से ढक लिया था, उस समय सभी लोक एक-सा दिखाई देता था। ऐसा लगता था कि वहां के निवासी विमूढ़ हो गये हैं और अपने-अपने स्थान को भी वे नहीं जान रहे हैं ।।५।।

(११)

स्वर्भानोरध यदिन्द्र माया अवो दिवो वर्त्तभाना अवाहन् ।
गूलह सर्यं तपसापव्रतेन तुरीयेण ब्रह्मणाविन्ददत्रिः ।।६
मा मामिम तव सन्तमत्र इरस्या द्रुग्धो भियसा नि गारीत् ।
त्वं मित्रो असि सत्यराधास्ती मेहावत वरुणश्च राजा ।।७
ग्राव्णा ब्रह्म युयुजानः सपर्यन् कोरिणा देवान्नमसोपशिक्षन् ।
अत्रिः सूयस्य दिवि चक्षुराधत्स्वभनोरप माया अघुक्षत् ।।८
य वै सूयं स्वभातुस्तमसाविध्यदासुरः ।
अत्रयस्तम वविन्दन्नह्य न्ये अशक्नुवन् ।।९।१२

हे इन्द्र ! जब तुमने 'स्वर्भानु' की तेजस्वी माया का निवारण किया था तब व्रत को नष्ट करने वाले अन्धकार द्वारा ढके हुए सूर्य को अत्रि की चार ऋचाओं द्वारा प्रकट कर दिया ।६। सूर्य ने कहा-हे अत्रि ऋषि ! हम ऐसी अवस्था में तुम्हारी ही रक्षा चाहते हैं। अन्न की कामना वाला द्रोही राक्षस इस डरावने अन्धकार के द्वारा मुझे निगल न ले। इसलिये तुम और वरुण दोनों ही हमारे रक्षक होओ। तुम सत्य के पालनकर्ता और हमसे मित्रभाव रखने वाले हो ।७। उस समय ऋत्विज अत्रि ने सूर्य को नमस्कार कर स्तुति की, पत्थरों से कूट कर इन्द्र के लिये सोम सिद्ध किया, स्तोत्रों द्वारा अन्तरिक्ष में सूर्य के चक्षु को धारण किया। उस समय 'स्वर्भानु' की सब माया उन्होंने दूर कर दी ।८। जिस सूर्य को 'स्वर्भानु' ने अपनी माया से अन्धकार द्वारा ढक दिया था, उस सूर्य को मुक्त करने में अत्रिपुत्र के सिवाय अन्य कोई भी समर्थ न हो सका ।९। (१२)

सूक्त ४१

(ऋषि—अत्रिः । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति, जगती)

को नु वां मित्र वरुणावृतायन्दिवो वा महः पार्थिवस्य वा दे
ऋतस्य वा सदसि त्रासीयां नो यज्ञायते वा पशुषो न वाजान् ।।१
ते नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतो जुषन्त ।
नमोभिर्वा ये दधते सुवृक्तिं स्तोम रुद्राय मीलहुषे सजोषाः ।।२
आ वां येष्ठाश्विना हुवध्यै वातस्य पत्मन्नथ्यस्य पुष्टौ ।
उत वा दिवो असुराय मन्म प्रान्धांसीव यज्यवे भरध्वम् ।।३
प्र सक्षणो दिव्यः कण्वहोता त्रितो दिवः सजोषा वातो अग्निः ।
पूषा भगः प्रभृथे विश्वभोजा आजिं न जग्मुराश्वश्वतमाः ।।४
प्रा वो रयिं युक्ताश्वं भरध्वं राय ऐषेऽवसे दधीत धीः ।
सुशेव एवैरौशिजस्य होता ये व एवा मरुतस्तुराणाम् ।।५।१३

हे मित्रावरण! तुम्हारे निमित्त यजन करने की इच्छा करने वाला कौन सा यजमान यज्ञ करने में समर्थ होता है! तुम दोनों आकाश भूमण्डल अथवा अन्तरिक्ष इनमें से किस स्थान में रहकर हमारा पालन करते तथा हविदाता को अन्न और पशु देते हो? ।१। हे मित्र, वरुण, अर्यमा, इन्द्र, अभुक्षा, आयु और मरुदगण तुम मनुष्यों को स्नेहपूर्वक चाहने वाले हो। जो वर्षणशील, शत्रुओं को रुलाने वाले एवं उत्तम स्तुतियो के धारण करने वाले हैं वे सभी साधन और शक्ति से युक्त होकर हमारे प्रति स्नेह करें ।२। हे अश्विद्वय! तुम दमन करने में समर्थ हो। हम तुम्हारे रथ को वेगवान् करने के लिये बुलाते हैं। हे ऋत्वजो! तुम तेजस्वी और प्राणों का अपहरण करने में समर्थ रुद्र के लिए हव्य और स्तुति प्रस्तुत करो ।३। विद्वज्जन जिन्हें आहूत करते हैं, जो यज्ञानुष्ठान को स्वीकार करते हैं, जो शत्रुओं का संहार करने में समर्थ हैं, वे वायु, अग्नि पूषा प्रकट होकर सूर्य के समान वीरता करने वाले हों। यह सभी देवता संहार के आश्रय रूप हैं। यह हमारे यज्ञ में, वेगवान् अश्व के युद्ध में वेग से दौड़ने के समान शीघ्र आवें ।४। हे मरुद्गण! तुम हमारे लिए

अश्वयुक्त धन प्राप्त कराओ। स्तुति करने वाले गौ अश्वादि की कामना से तथा प्राप्त धन की रक्षा के लिये तुम्हारा स्तवन करते हैं। उशिज-पुत्र काक्षीवान् के होता अग्नि गमनशील अश्व पाकर सुखी हों।५। [१३]

प्र वो वायुं रथयुजं कृणुध्वं विप्रं पनितारमर्कैः।
इषुध्यव ऋतसापः पुरन्धीर्वस्वीर्नो अत्र पत्नीरा धिये धुः ॥६
उष वे एषे वन्द्येभिः शूषैः प्र यह्वी दिवश्चितयद्भिरर्कैः।
उषासानक्ता विदुषीव विश्वमा हा वहतो मर्त्याय यज्ञम्।७
अभि वो अर्चे पोष्यावतो नृन्वास्तोष्पतिं त्वष्टारं रराणः।
धन्या सजोषा धिषणा नमोभिर्वनस्पतींरोषधी राय एषे ॥८
तुजे नंस्तने पर्वताः सन्तु स्वैतवो ये वसवो न वीराः।
सनित आप्त्यो यजतः सदा नो वर्धान्नः शसं नर्यो अभिष्टौ ॥९
वृष्णो अस्तोषि भूम्यस्य गर्भं त्रितो नपातमपां सुवृक्ति।
गृणीते अग्निरेतरी न शूषैः शोचिष्केशो नि रिणाति वना ॥१०।१४

हे ऋत्विजो ! उज्ज्वल कामनाओं के पूर्ण करने वाले, ब्राह्मण के समान पूजनीय, स्तुति के पात्र एवं फल प्रदान करने वाले वायु देवता को यज्ञ स्थान पर बुलाने के लिये स्तोत्रों द्वारा रथ पर चढ़ाओ। यज्ञ को ग्रहण करने वाली, सुन्दर रूप वाली, प्रशंसा की पात्री देवांगनाऐं भी हमारे यज्ञ में आवें।६। हे दिन और रात्रि ! तुम दोनों महान् हो। हम, वन्दना के योग्य दिव्य लोकवासी देवताओं के साथ तुम दोनों को भी सुन्दर तेजस्वी स्तोत्र और हवि देते हैं। हे देवगण ! तुम कर्मों को जानते हुए यजमान के यज्ञ में पधारो।७। तुम सब देवताओं के रक्षक और यज्ञ में अग्रगण्य रहते हो। स्तोत्र द्वारा अथवा हव्य प्रदान करते हुए धन प्राप्ति के लिए हम तुम्हारा स्तवन करते हैं। त्वष्टा, वाणी, बनस्पति और ओषधियों की हम स्तुति करते हैं।८। संसार के पालन-कर्त्ता मेघ, असीमित दान के लिए हमारे अनुकूल हों। वे स्तुतियों के पात्र यज्ञ के योग्य मनुष्यों का हित-साधन करने वाली हमारी स्तुति के द्वारा प्रसन्न होते हुए हमको हर प्रकार सुसम्पन्न

करें ।९। हम वृष्टिकारक, अन्तरिक्ष के गर्भ में स्थित के पालनकर्त्ता विद्युत रूप अग्नि की, पाप नाशक स्तोत्रों से स्तुति करते हैं । वे अग्नि तीन रूप वाले तथा तीन स्थानों में व्याप्त हैं । वे सुख देने वाले अग्नि मेरे चलने के समय मुझ पर क्रोधित नहीं होते, किन्तु अपनी तेजोमयी ज्वालाओं से वनों को भस्म करते हैं ।१०। [१४]

कथा महे रुद्रियाय ब्रवाम कद्राये चिकितुषे भगाय ।
आप ओषधीरुत नोऽवन्तु द्यौर्वना गिरयो वृक्षकेशाः ॥११
शृणोतु न ऊर्जां पतिर्गिरः स नभस्तरीयाँ इषिरः परिज्मा ।
शृण्वन्त्वापः पुरो न शुभ्राः परि स्रुचो बबृहाणस्याद्रे ॥१२
विदा चिन्नु महान्तो ये व एवा ब्रवाम दस्मा वार्यं दधानाः ॥१३
वयश्चन सुभ्व आव यन्ति क्षुभा मर्तमनुयतं वधस्नैः ।
आ दैव्यानि पार्थिवानी जन्मापश्चाच्छा सुमखाय वोचम् ।
वर्धन्तां द्यावो गिरश्चन्द्राग्रा उदा वर्धन्तामभिषाता अर्णाः ॥१४
पदेपदे मे जरिमा नि धायि वरूत्री वा शक्रा या पायुभिश्च ।
सिषक्तु माता मही रसा नः स्मत्सूरिभिर्ऋजुहस्त ऋजुवनि ॥ १५।१५

इस अत्रि-अशज, रुद्र के पुत्र मरुद्गण की किस भाँति उपासना करें ? सर्वज्ञाता भगदेवता के लिए, धन प्राप्ति के निमित्त किस स्तोत्र का पाठ करें ? जल, औषधियाँ, आकाश, वन एवं वृक्ष जिन पर्वतों के केश समान हैं, वे हमारे रक्षक बनें ।११। बल और अन्न के अधीश्वर और आकाश में विचरणशील वायु देवता हमारे स्तोत्र को श्रवण करें । नगरों के समान शुभ्र, जल की धारा हमारी स्तुति ग्रहण करें ।१२। हे मरुद्गण ! तुम महान् हो । हमारे स्तोत्रों को शीघ्र जाने । हम तुम्हारे स्तोता हैं उत्तम हवियाँ एकत्र कर तुम्हारा स्तवन करते हैं । तुम हमारे अनुकूल होकर आओ शत्रुओं को अस्त्रों द्वारा हनन करके हमारे पास पधारो ।१३। हम देवताओं के लिए, पृथिवी के लिए, जन्म और विजय प्राप्ति के लिए शोभनकर्मा मरुद्गण की स्तुति करते हैं । हमारी स्तुतियाँ बढ़ें दिव्य लोक हमको समृद्ध बनावें ।

नदियों को मरुद्गण जल से परिपूर्ण करें।१४। जो सभी विघ्नों को शांत करके हमारी रक्षा करने में सक्षम हैं, वह सभी को जन्म देने वाली पृथिवी हमारी स्तुतियों को स्वीकार करे। हम सदा उसकी स्तुति करते हैं। समृद्ध वाणी से युक्त स्तुति करने वालों के प्रति अनुकूल होती हुई, कृपापूर्ण हाथ को उठाकर वह हमारा कल्याण करे। १५।

कथा दाशेम नमसा सुदानूनेवया मरुतो अच्छोक्तौ
प्रश्रवसो मरुतो आच्छोक्तौ।
मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धादस्माकं भूदुपमातिवनिः ॥१६
इति चुन्नु प्रजायै पशुमत्यै देवासो वनते मर्त्यो व
आ देवासो वनते मर्त्यो वः।
अत्रा शिवां तन्वो धासिमस्या जरां चिन्मे निर्ऋतिर्जग्रसीत ॥१७
तां वो देदाः सुमतिमूर्जयन्तीमिषमश्याम वसदः शसा गोः।
सा नः सुदानुर्मृलयन्ती देवी प्रति द्रवन्ती सुविताय गम्याः ॥१८
अभि न इला यूथस्य माता स्तन्नदीर्भरुवंशी वा गृणातु।
उर्वशी वा बृहद्दिवा गृणानाभ्यूर्ण्वाना प्रभृथस्यायोः ॥१९
सिषन्तु न ऊर्जव्यस्य पुष्टेः ॥२०।१६

उन दानशील मरुद्गण की स्तुति हम कैसे करें ? कौन से स्तोत्र द्वारा उनकी पूजा करें ? क्या वर्तमान स्तोत्र से मरुद्गण की स्तुति करना संभव है ? अहिर्बुध्न्यदेव हमारा अमङ्गल न करें वरन् वे हमारे शत्रुओं का संहार करें। १६। हे देवताओ ! यजमान लोग संतति और पशु-प्राप्ति के निमित्त तुम्हारी पूजा करते हैं। वे सुखकारी अन्न से हमारे देह को पुष्ट करें और बुढ़ापे को हमसे दूर ही रखें। १७। हे तेजस्वी वसुओ ! हमारी धेनु रूपी सुन्दर बुद्धि द्वारा हम हृष्टकारी तथा पोषक अन्न को प्राप्त करें। वह दानमय स्वभाव वाली तथा सर्व सुखों की देने वाली बुद्धि देवी हमारे कल्याण के लिए हमको शीघ्र ही प्राप्त हो। १८। गवादि समूह के देने वाली इडा और उर्वशी जल पूर्ण नदियों के साथ सुसंगत हुई हमारे अनूकूल हों।

उर्वशी हमारे यज्ञादि कार्यों की प्रशंसा करती हुई यजमानों को अपने तेज से परिपूर्ण करती हुई यहाँ पधारें ।१९। पोषण करने वाले 'ऊर्जव्य' राजा का देश अत्यन्त शक्ति तथा समृद्धि को प्राप्त करें । २० । १६]

सूक्त ४२

(ऋषि—अत्रिः । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द—त्रिष्टुप् पंक्तिः)

प्र शन्तमा वरुणं दीधति गीर्मित्रं भगमदिति नूनमश्याः ।
पृषद्योनिः पञ्चहोता शृणोत्वतूर्तपन्था असुरो मयोभुः ॥१
प्रति मे स्तोममदितिर्जगृभ्यात्सूनुं न माता हृद्यं सुशेवम् ।
ब्रह्म प्रियं देवहितं यदस्त्यहं मित्रे वरुणो यन्मयोभु ॥२
उदीरय कवितमं कवीनामुनत्तैनमभि मध्वा घृतेन ।
स नो वसूनि प्रयता हितानि चन्द्राणि देवः सविता सुवाति ॥३
समिन्द्र णो मनसा नेषि गोभिः सं सूरिभिर्हरिवः सं स्वस्ति ।
सं ब्रह्मणा देवहितं यदस्ति सं देवानां सुमत्या यज्ञियानाम् ॥४
देवो भगः सविता रायो अंश इन्द्रो वृत्रस्य सञ्जितो धनानाम् ।
ऋभुक्षा वाज उत वा पुरन्धिरवन्तु नो अमृतासस्तुरासः ॥५।१७

दी हुई हवियों के साथ हमारे सुखदायक स्तोत्र, वरुण, मित्र, भग, सूर्य के पास पहुँचें । पञ्च वायु के साधनभूत, अन्तरिक्ष में रहने वाले, अप्रतिहित गति वाले, प्राणों के देने वाले, सुख के प्रवर्त्तक वायु हमारे स्तोत्र को सुनें । १ । हमारे अन्तःकरण से निकले हुए स्तोत्र को अदिति अपने पुत्र को ग्रहण करने के समान ग्रहण करें । हम उषा और रात्रि, मित्र और वरुण के लिए सुखदायक तथा देवताओं के ग्रहण करने योग्य स्तोत्र प्रदान करें । २ । हे ऋत्विगण ! तुम अत्यन्त तेजस्वी अग्नि को प्रदीप्त करो । मधुर मोम और घृत से इन्हें सींचो । वे आदित्य हमको शुद्ध प्रसन्नताप्रद और हितकारी सुवर्ण दें । ३ । हे इन्द्र ! तुम प्रसन्न होकर गवादि धन देते हो । हे अश्विनीकुमारों से युक्त इन्द्र ! तुम हमको विद्वान् पुत्र, सुख, दिव्य अन्न तथा देवताओं की कृपा प्राप्त कराने वाले हो । ४ । ऐश्वर्यों के स्वामी सवितादेव

भग, वृत्र संहारक इन्द्र सर्व प्रकार धनों को वशीभूत करने वाले ऋभुक्षा, पुरन्धि आदि सभी अमरत्व प्राप्त देवता हमारे यज्ञ स्थान में आकर शीघ्र रक्षक हों। ५। [१७]

मरुत्वतो अप्रतीतस्य जिष्णोरर्यंतः प्र ब्रवामा कृतानि।
न ते पूर्वं मघवन्नापरासो न वीर्यंनूतनः कश्चनाप ॥६
उप स्तुहि प्रथमं रत्नधेय बृहस्पतिं सनितारं धनानाम्।
यः शसते स्तुवते सम्भविष्ठः पुरूवसुरागमज्जोहुवानम् ॥७
तवोतिभिः सचमाना अरिष्टा बृहस्पते मघवानः सुवीराः।
ये अश्वदा उत वा सन्ति गोदा ये वस्त्रदाः सुभगास्तेषु रायः ॥८
विसर्माणं कृणुहि वित्तमेषां ये भुञ्जते अपृणन्तो न उक्थैः।
अपव्रतान्प्रसवे वावृधानान्ब्रह्मद्विषः सूर्याद्यावयस्व ॥९
य ओहते रक्षसो देववीतावचक्रेभिस्तं मरुतो नि यात।
यो वः शमीं शशमानस्य निन्दत्तुच्छ्यान्
कामान्कारते सिष्विदानः ॥१०।१८

हम यजमान मरुद्गण से युक्त इन्द्र के कार्यों का बखान करते हैं। वे कभी युद्ध क्षेत्र से हटते नहीं। वे सदा विजय करने वाले तथा कभी भी वृद्ध न होने वाले हैं। हे इन्द्र! कोई भी पुरातन पुरुष तुम्हारे बल की समानता नहीं करते। उनके पश्चात् होने वाले व्यक्ति भी तुम्हारी समानता नहीं कर सके। कोई नवीन पराक्रमी भी तुम्हारी समता नहीं कर सकता। ६। हे विज्ञ! तुम श्रेष्ठ ज्ञान के देने वाले बृहस्पति का स्तवन करो। वे हविरन्न के विभाजक हैं। वे स्तोता को अत्यन्त सुख देते हैं, बुलाने वाले यजमान के पास श्रेष्ठ धन लेकर पहुंचते हैं। ७। हे बृहस्पते! तुम्हारे द्वारा पोषित होने पर मनुष्य विघ्नों से बचते तथा धन और पुत्रों से सम्पन्न होते हैं। तुम्हारी कृपा प्राप्त कर जो धनिक गौ-वस्त्रादि दान करे, उसे धन-प्राप्ति हो। ८। हे बृहस्पते! जो स्तोता हमको दान-भाग न देकर स्वय ही उसका उपभोग करता है, और व्रतानुष्ठान नहीं करता, जो मंत्र से द्वेष करता है, उसको धन

हीन बना दो। यदि वह मनुष्य सन्तान से युक्त हुआ वृद्धि को प्राप्त हो रहा है, तो तुम उसे सूर्य-दर्शन न होने दो। ६। हे मरुद्गण! जो यजमान देवताओं के यज्ञ में आसुरी वृत्ति से कर्म करता है, जो अन्न, पशु आदि के द्वारा भोग-कामना से क्लेश में पड़ता है अथवा जो तुम्हारे स्तोता की निन्दा करता है, तुम उसे बिना पहिए के रथ में डालकर अन्धकूप में डाल देते हो। १०। [१८]

तमुष्टुहि यः स्विषुः सुधन्वा यो विश्वस्य क्षयति भेषजस्य।
यक्ष्वा महे सौमनसाय रुद्रं नमोभिर्देवमसुरं दुवस्य ॥११
दमूनसो अपसो ये सुहस्ता वृष्णः पत्नीनद्यो विभ्वतष्टाः।
सरस्वती बृहद्दिवोत राका दशस्यन्तीर्वरिवस्यन्तु शुभ्राः ॥१२
प्र सू महे सुशरणाय मेधां गिरं भरे नव्यसीं जायमानाम्।
य आहना दुहितुर्वक्षणासु रूपा मिनानो अकृणोदिदं नः ॥१३
प्र सुष्टुतिः स्तनयन्त रुवन्तमिलस्पति जरितर्नूनमश्याः।
यो अब्दिमां उदनिमां इयर्ति प्र विद्युता रोदसी उक्षमाणः ॥१४
एषः स्तोमो मारुत शर्धो अच्छा रुद्रस्य सूनूंर्युवन्यूरुदश्युः।
कामो राये हवते मा स्वस्त्युप स्तुहि पृषदश्वाँ अयासः ॥१४
प्रैष स्तोमः पृथिवीमन्तरिक्ष वनस्पतीरोषधी राये अश्याः।
देवोदेवः सुहवो भूतु मह्यं मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात् ॥१६
उरौ देवा अनि वाधे स्याम ॥१७
समिश्वनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥१८।१६

हे विज्ञ! रुद्र का स्तवन करो। उनके बाण शत्रुओं का नाश करने में समर्थ हैं। वे सभी औषधादि के स्वामी हैं। वे जन कल्याण करने वाले शक्तिमान् तथा देहधारियों को प्राण देने वाले हैं। उन रुद्रदेव का यजन तथा सेवा करो। ११। सुन्दर, मनस्वी, चमस, अश्व, रथ गौ आदि के कुशल निर्माता ऋभुगण, वृष्टिकारी इन्द्र की पत्नी रूप नदियाँ तेजस्विनी रात्रि आदि

सभी हमको धन प्रदान करें ।१२। महान्, सुन्दर रक्षा करने वाले इन्द्र के लिए हम तुरन्त रची गई स्तुति भेंट करते हैं। वे इन्द्र वृष्टिकर्त्ता हैं। वे भूमि के हित-साधन के लिए नदियों का रूप निश्चित करते और हमको जल प्राप्त कराते हैं ।१३। हे मनुष्यो ! तुम्हारी सुन्दर स्तुति गर्जन करने शब्दवान् जल के स्वामी को प्राप्त हो। वे मेघों के धारण करने वाले हैं तथा वे जल वृष्टि करते हुए आकाश और पृथिवी को विद्युत के प्रकाश से परिपूर्ण करते हैं ।१४। हमारी स्तुति रुद्र-पुत्र मरुद्गण के समक्ष ठीक प्रकार पहुंचे। धन की कामना हमको निरन्तर प्रेरणा देती है। चित्र विचित्र वर्ण वाले घोड़े पर चढ़कर जो मरुत् चलते हैं, उन मरुद्गण की स्तुति करो ।१५। हमारे द्वारा प्रस्तुत यह स्तोत्र धन के निमित्त पृथिवी, आकाश, वृक्ष और ओषधियों के पास पहुंचे। हमारे निमित्त सब देवताओं का आह्वान किया जाय। पृथिवी माता हमको कुबुद्धि में ही न पड़ा रहने दें ।१६। हे देवताओ ! हम सभी महान् पीड़ा एवं विघ्न रहित, सुख से पूर्ण स्थान में निवास करें ।१७। हम अश्विनीकुमारों के उन रक्षा-साधनों को प्राप्त करें, जिन्हे पहिले कोई जानता ही न था। वे रक्षा-साधन आनन्द के देने वाले तथा सुख उत्पन्न करने वाले हैं। हे अविनाशी अश्विद्वय ! तुम दोनों हमको वीर पुत्र धन तथा सभी स्थिर सौभाग्य को प्राप्त कराओ !।१८।। [१९]

सूक्त ४३

(ऋषि–अत्रिः देवता––विश्वेदेवाः छन्द–त्रिष्टुप् पंक्तिः)

आ धेनवः पयसा तूर्ण्यर्था अमर्धन्तीरुप नो यन्तु मध्वा ।
महो राये बृहतीः सप्त विप्रो मयोभुवो जरिता जोहवीति ॥१
आ सुष्टुती नमसा वर्तयध्यै द्यावा वाजाय पृथिवी अमृध्रे ।
पिता माता मधुवचाः सुहस्ता भरेभरे नो यशसावत्रिष्टाम् ॥२
अध्वर्यवश्चकृवांसो मधूनि प्र वायवे भरत चारु शुक्रम् ।
होतेव नः प्रथमः पाह्यस्य देव मध्वो ररिमा ते मदाय ॥३
दश क्षिपो युञ्जते बाहू अद्रिं सोमस्य या शमितारा सहस्ता ।

मध्वो रस मुगभ स्तर्गिरिष्ठां चनिश्चदद् दुदुहे शुक्रमंशुः ।।४
असावि ते जुजुषाणाय सोमः क्रत्वे दक्षाय बृहते मदाय ।
हरी रथे सुधुरा योगे अर्वागिन्द्र प्रिया कृणुहि हूयमानः ।।५।२०

वेग से बजने वाली नदियाँ मधुर जल के सहित निर्बाध गति से हमारे पास आवें। अत्यन्त प्रीति वाले स्तोता श्रेष्ठ ऐश्वर्य के लिये सुख के कारणभूत सप्त महा नदियों को आहूत करें।१। अन्न प्राप्ति के लिये हम श्रेष्ठ स्तोत्र और हवि द्वारा अहिंसित रहते हुए आकाश-पृथिवी को प्रसन्न करना चाहते हैं। प्रिय वाणी, वरद हस्त और यश से युक्त माता पिता रूप आकाश-पृथिवी, रणक्षेत्र में हर प्रकार हमारी रक्षा करें।२। हे अध्वर्यु गण ! तुम मधुर हवियां उपस्थित करो और तेजस्वी सोम को वायु की भेंट करो हे वायो ! इस सोम रस को अन्य देवताओं से पहले ही होता के समान पान कर लो। यह मधुर सोम रस तुम्हें प्रसन्न करने के लिये प्रस्तुत है।३। ऋत्विजों की सोम निचोड़ने वाली दसों अंगुलियाँ तथा सोम कूटने में चतुर दोनों भुजायें पत्थर को प्राप्त करती हैं। कुशल अंगुलियों वाले ऋत्विक् प्रसन्नता पूर्वक माधुर्यमय सोम से रस निकालते हैं तब उससे स्वच्छ रस प्राप्त होता है।४। हे इन्द्र ! तुम्हारे हृष्ट होने के निमित्त तथा वृत्र-हनन कार्य में प्रयुक्त करने के हेतु तुम्हें बल और हर्ष प्राप्त कराने के लिये सोम रस भेंट करते हैं। हे इन्द्र ! तुम्हें इसीलिए बुलाते हैं। तुम अपने चतुर दोनों घोड़ों को रथ में जोड़कर हमारे पास आओ ।।५।। [२०]

था नो महीमरमतिं सजोषा ग्नां देवीं नमसा रातहव्याम् ।
मधार्मदाय बृहतीमृतज्ञामाग्ने वह पथिभिर्देववानैः ।।६
अञ्जन्ति यं प्रथयन्तो न विप्रा वपावन्तं नाग्निना तपन्तः ।
पितुर्न पुत्र उपसि प्रेष्ठ आ घर्मो अग्निमृतयन्नसादि ।।७
अच्छा महो बृहती शन्तमा गीर्दूतो न गन्त्वश्विना हुवध्यै ।
मयोभुवा सरथा यातमर्वाग्गतं निधिं धुरमाणिर्न नाभिम् ।।८
प्र तव्यसो नमउक्ति तुरस्याहं पूष्ण उत वायोरदिक्षि ।

या राधसा चोदितारा मतीनां या वाजस्य द्रविणोदा उत त्मन् ॥९
आ नामभिर्मरुतो वक्षि विश्वाना रूपेभिर्जातवेदो हुवानः ।
यज्ञं गिरोजरितुःसुष्टुतिं च विश्वे गन्तमरुतोविश्व ऊती॥१०।२१

हे अग्ने ! तुम स्नेह करते हुए मधुर सोम रस को पीकर पराक्रमी होने के लिए देवों के लक्षित मार्ग से ज्ञान रूपिणी वाणी को हमें प्राप्त कराओ। वह सर्वशक्ति सम्पन्न देवी सर्वत्र गमन करती हुई हमारे यज्ञ को जाने। उसकी प्रेरणा स्तोत्र सहित हवियों को हम समर्पित करें ।६। पिता की गोद में प्रिय पुत्र के बैठने के समान ज्ञानी अध्वर्युओं ने अग्नि के ऊपर हव्य पात्र रखा है। उस समय यह जान पड़ता है जैसे विशाल शक्ति से युक्त व्यक्ति अग्नि द्वारा तपाया जा रहा है ।७। हमारा वह पूज्य, सुख प्रदान करने वाला महान् स्तोत्र अश्विनीकुमारों को यहाँ लाने के लिये दूत के समान उनके पास पहुंचे। हे सुखदाता अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों एक ही रथ पर चढ़ कर हमारे द्वारा भेंट किये जाने वाले सोम के पास आओ। जैसे बिना धुरे के रथ नहीं चलता वैसे ही बिना तुम्हारे सोमयाग भी पूर्ण नहीं होता ।८। हम वेगवान् तथा पराक्रमी पूषा और वायु का स्तवन करते हैं। यह दोनों देवता अन्न ओर धन के निमित्त बुद्धि का प्रेरण करें और जो देवता कर्मक्षेत्र में नियुक्त होते हैं. वे हमको धन दें ।९। हे जन्म लेने वालों के ज्ञाता अग्निदेव ! हमारे द्वारा बुलाये जाकर तुम विभिन्न देवताओं को मरुद्गण सहित यज्ञ में लाते हो। हे मरुद्गण ! तुम अपने श्रेष्ठ रक्षा साधनों सहित यज्ञ-स्थान में पधारो और सुन्दर स्तुतियुक्त उपासना को ग्रहण करो ॥१०॥ [२१]

आ नो दिवो वृहतः पर्वतादा सरस्वती यजता गन्तु यज्ञम् ।
हवं देवी जुजुषाणा घृताची शग्मां नो वाचमुशती शृणोतु ॥११
आ वेधस नीलपृष्ठं बृहन्तं बृहस्पतिं सदने मादयध्वम् ।
सादद्योनिं दम आ दीदिवांसं हिरण्यवर्णं मरुषं सपेम ॥१२
आ धर्णसिबृंहद्दिवो रराणो विश्वेभिर्गन्त्वोमभिर्हुवानः ।
ग्ना वसात ओषधीरमृध्रस्त्रिधातुशृङ्गोवृषभो वयोधाः ॥१३

मातुष्पदे परमे शुक्रआयोर्विपन्यवो रास्पिरासो अग्मन् ।
सुशेव्यं नमसा रातहव्याः शिशुं मृजन्त्यायवो न वासे ॥१४
बृहद्वयो बृहते तुभ्यमग्ने धियाजुरो मिथुनासः सचन्त ।
देवोदेवः सुहवौ भूतु मह्य भा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात् ॥१५
उरौ देवा अनिबाधे स्याम ॥१६
समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वोराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥१७।२२

प्रकाशवान् आकाश से देवी सरस्वती हमारे यज्ञ में पधारें । हमारी स्तुति से हर्ष को प्राप्त हुई वह अपने मन से हमारे मङ्गलकारी स्तोत्रों को श्रवण करें ।११। रक्षा करने वाले पराक्रमी बृहस्पति की यज्ञ स्थान में स्थापना करो, वे घर के मध्य में विराजमान होकर ज्ञान को बढ़ाते हैं । वे सुवर्ण के समान वर्ण वाले तथा तेजस्वी हैं । हम उन महान् का उत्तम प्रकार से पूजन करते हैं ।२। वे अग्निदेव सब के धारण करने वाले हैं । वे अत्यन्त प्रकाशवान, कामनाओं की वर्षा करने वाले और औषधियों की वृद्धि करने वाले हैं । वे सुन्दर गतिवाले तथा त्रिविध (लाल, श्वेत, काली) ज्वालाओं से युक्त हैं । वे वृष्टिकारक एवं अन्न प्रदान करने वाले हैं । हम उनको बुलाते हैं, वे अपने पूर्ण रक्षा-साधनों सहित यहां आवें ।१३। होता हव्य प्राप्त को धारण करने वाले ऋत्विक् पृथिवी माता के सर्व श्रेष्ठ स्थान पर जाते हैं । जैसे पुष्ट करने के लिए बालक के देह का मर्दन । करते हैं, वैसे ही नवोत्पन्न अग्नि की स्तुतियों के साथ हविषां देकर पुष्ट करते हैं ।१४। हे अग्ने ! तुम महान् हो । धर्म-कार्य करने वाले दम्पति तुम्हें एक साथ ही हविरन्न देते हैं । देवताओं का हम भले प्रकार आह्वान करें । माता पृथिवी हमारे प्रतिकूल न हों ।१५। हे देवताओ ! हम बाधाओं से रहित असीमित ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले हों ।१६। हम अश्विनीकुमारों के अभूतपूर्व रक्षा-साधनों को प्राप्त करें । वे आनन्दप्रद और कल्याणकारी कार्यों से सम्पन्न हैं । हे अविनाशी अश्विद्वय ! हमको श्रेष्ठ धन बल, सन्तान और सभी सौभाग्यों को ग्रहण कराओ ॥१७॥ [·२]

सूक्त ४४

(ऋषि—अवत्सारः। देवता—विश्वेदेवा। छन्दः—जगती, त्रिष्टुप्)

तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्टतातिं बर्हिषदं स्वर्विदम् ।
प्रतीचीनं वृजनं दोहसे गिराशुं जयन्तमनु यासु वर्धसे ॥१
श्रिये सुदृशारुपरस्य याः स्वर्विरोचमानः ककुभामचोदते ।
सुगोपा असि न दभाय सुक्रतो परो मायाभिर्ऋत आस नाम ते ॥२
अत्यं हविः सचते सच्च धातु चारिष्टगातुः स होता सहोभरिः ।
प्रसर्स्राणो अनु बर्हिर्वृषा शिशुर्मध्ये युवाजरो विस्रुहा हितः ॥३
प्र व एते सुयुजो यामन्निष्टये नीचीरमुष्मै यम्य ऋतावृधः ।
सुयन्तुभिः सर्वशासैरभीशुभिः क्रिविर्नामानि प्रवणे मुषायति ॥४
सञ्जर्भुराणस्तरुभिः सुतेगृभं वयाकिनं चित्तगर्भासु सुस्वरुः ।
धारवाकेष्वृजुगाथ शोभसे वर्धस्व पत्नीरभि जीवो अध्वरे ॥५।२३

प्राचीन कालीन यजमान, हमारे पूर्वज तथा वर्तमान कालीन मनुष्य भी जसे इन्द्र की स्तुति करके अपने अभीष्ट को पूर्ण करते आये हैं, उसी प्रकार हम उनकी स्तुति करके अपने अभीष्ट को पूर्ण करें। वे इन्द्र देवताओं में बड़े, सर्वज्ञ कुश के आसन पर विराजमान होने वाले, पराक्रमी शत्रु-विजेता तथा अत्यन्त वेग वाले हैं। उनको इस स्तुति द्वारा प्रसन्न करो ।१। हे इन्द्र ! तुम्हारा तेज स्वर्ग में भी विस्तृत रूप से फैला है। वर्षा को रोकने वाले मेघ में जो उज्ज्वल जल-समूह है, उसे तुम मानव, कल्याण के लिये सब दिशाओं में भेजते हो। तुम वर्षा आदि कर्मों द्वारा मनुष्यों का पालन करते हो। हे इन्द्र ! प्राणियों का हनन न करो। तुम शत्रुओं की माया दूर करने वाले हो। इसलिये तुम्हारा नाम सत्य पर आश्रित है ।२। नित्य जल का साधन करने वाले तथा जगत् के आश्रय रूप हव्य को अग्नि सदा वहन करते है। वे निर्बल गति वाले, बल के विधाता तथा यज्ञ-कर्म का निर्वाह करने वाले हैं। वे कुश पर विराजमान होते हैं। वे फलों की वर्षा करने वाले, बालक, युवा, साहसी तथा औषधों में निवास करते हैं ।३।

यजमानों के लिये यज्ञ की वृद्धि करने वाली सूर्य-रश्मियाँ परस्पर सुसंगत हुईं यज्ञ-भूमि में आने की इच्छा प्रकट करती हैं । वेग से जाने वाली और संसार को नियम में रखने वाली इन सब रश्मियों द्वारा सूर्य जल की वृष्टि करते हैं ।४। हे अग्ने ! तुम्हारा स्तोत्र सुन्दर है । छना हुआ सोम-रस काठ के बर्तन में संचित किया जाना है और तुम उस मधुर रसको स्वीकार करते हुए स्तुतियाँ श्रवण कर प्रसन्न होते हो, तब साधकों से तुम अत्यन्त सुशोभित होते हो । हे प्राणदाता अग्ने ! तुम अपनी रक्षण-सामर्थ्य वाली शिखा को यज्ञ स्थान में बढ़ाओ ।५। [२३]

याद्दगेव दद्दशे ताद्दगुच्यते सं छायया दधिरे सिध्रयाप्स्वा ।
महीमस्मभ्यमुरुषामुरु ज्रयो वृहत्सुवीरमनपच्युतं सहः ॥६
वेत्यग्रुर्जनिवान्या अति स्पृधः समर्यता मनसा सूर्यः कविः ।
घ्नन् रक्षन्तं परि विश्वतो गयमस्माकं शर्म वनवत्स्वावसुः ॥७
ज्यायांसमस्या यतुनस्य केतुन ऋषिस्वरं चरति यासु नाम ते ।
याद्दश्मिन्धायि तमपस्यया विदद्य उ स्वयं वहते सो अरं करत् ॥८
समुद्रमासामव तस्थे अग्रिमा न रिष्यति सवनं यस्मिन्नायता ।
अत्रा न हार्दि क्रवणस्य रेजते यत्रा मतिर्विद्यते पूतबन्धनी ॥९
स हि क्षत्रस्य मनसस्य चित्तिभिरेवावदस्य यजतस्य सध्रेः ।
अवत्सारस्य स्पृणवाम रण्वभिः
शविष्ठं वाजं विदुषा चिदर्ध्यम् ॥१०।२४

जो देखते हैं वही वर्णन करते हैं । जैसे जलों द्वारा पुष्ट हुए वृक्ष अपनी छाया के नीचे प्राणियों को सुख देते हैं वैसे ही देवगण भी अपनी प्रजाओं के लिये अपनी काल्याण कारिणी छाया द्वारा अत्यन्त सुखदायिनी पृथ्वीं का पालन करें और युद्धक्षेत्र में कभी भी पीछे न भागने वाले वीरों के बल को भी पुष्ट करें ।६। सब को देखने वाले अग्रणी आदित्य अपनी भार्या रूपिणी उषासे मिलते हुए असुरों से युद्ध की इच्छा करते हुए बढ़ते हैं । वे धन के आश्रयदाता हमको श्रेष्ठ, यशस्वीं और रक्षा-साधन से युक्त

घर तथा सुख दें ।७। हे अग्ने ! यजमान तुम्हारे निकट आते हैं । तुम प्रकट होने पर जाने जाते हो । ऋषिगण तुम्हारी स्तुति करते हैं, जिससे तुम्हारा नाम बढ़ता है । वे जिस कार्य की इच्छा करते हैं, उसे प्रयत्न द्वारा सिद्ध कर लेते हैं । जो उनकी उपासना करते हैं, वे इच्छित फल प्राप्त करते हैं ।८। हमारे इन सभी स्तोत्रों में जो स्तोत्र श्रेष्ठ हो वह सूर्य के समक्ष पहुंचे । यज्ञ स्थान में उनके जिस स्तोत्र को बढ़ाया जाता है, वह स्तोत्र कभी नष्ट नहीं होता । जिस घर में सूर्य को हृदय समर्पित किया जाता है, उस घर के मनुष्यों की हार्दिक इच्छा कभी विफल नहीं होती ।९। वे सूर्य सब के द्वारा पूजित तथा सभी के अभीष्टों को पूर्ण करने वाले हैं । उनके पास से हम "क्षत्र" "मनस" "अवद" 'सध्रि" और "अवत्सार" ऋषि विद्वानों द्वारा उपभोग अन्नों को अपने कार्यों द्वारा समृद्ध करते हैं ।१०।   २४[

श्येन आसामदितिः कक्ष्यो मदो विश्ववारस्य यजतस्य मायिनः ।
समन्यमन्यमर्थयन्त्येतवे विदुर्विषाणं परिपानमन्ति ते ।।११
सदापृणो यजतो वि द्विषो वधीद्बाहुवृक्तः श्रुतवित्तर्यो वः सचा ।
उभा स वरा प्रत्येति भाति च यदीं गणं भजते सुप्रयावभिः ।।१२
सुतम्भरो यजमानस्य सत्पतिर्विश्वासामूधः स धियामुदञ्चनः ।
भरद्धेनू रसवच्छिश्रिये पयोऽनुब्रुवाणो अध्येति न स्वपन् ।।१३
यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति ।
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ।।१४
अग्निर्जागार तमृचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति ।
अग्निर्जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ।।१५।२५

"विश्ववार" "यजत" और "मायी" ऋषि का सोम-रस द्वारा उत्पन्न हर्ष बाज के समान उत्तम चाल वाला है । वह अदिति के समान विस्तृत और कसे हुए अश्व के समान सुशोभित है । वे परस्पर सोम पीने के लिये कहते हैं और सोम-पान के पश्चात् हृष्ट होते हैं ।११। "सदापृण" "यजत" बाहुयुक्" "श्रुतवित्" और "तर्य" ऋषि तुम सबसे मिलकर

शत्रुओं का नाश करने वाले हैं। वे ऋषि,इहलौकिक और पारलौकिक सभी इच्छाओं की सिद्धि करते हुए तेजस्वी बनें। वे भले प्रकाश से मिश्रित हव्य सामग्री द्वारा विश्वेदेवताओं की सुन्दर स्तुति करते हैं ।१२। "अवत्सार" नामक यजमान के अनुष्ठान में "सुतम्भर" ऋषि उत्तम फलों द्वारा पोषित हुए। सभी यज्ञ-कार्य को उत्तम रीति से पूर्ण किया गया। गौओं ने उसमें मधुर रस युक्त दुग्ध दिया। यह दुग्ध बाँटा गया। इस प्रकार से निरालस्य हुए "अवत्स" प्रतिदिन पठन, अध्ययन आदि करते रहे ।१३। जो देवता सदा जागते हैं, ऋचाऐं, उनको चाहती हैं। देवता सदा चैतन्य रहते हैं सामवेद की ऋचाऐं उन्हें प्राप्त करती हैं। जो देवता सदा जागरित रहते हैं उनसे सोम कहें कि 'हमको ग्रहण करो'। हे अग्ने! हम तुम्हारे मित्र-भाव में ही सदा आश्रित रहें ।१४। अग्नि सदा चैतन्य रहते हैं ऋचाऐं उन्हें चाहती हैं। अग्नि सदा जागते हैं, सोम उन्हें प्राप्त करता है। अग्नि सदा जागरित रहने हैं उनसे यह सुसिद्ध सोम कहे कि "हमको ग्रहण करो" हे अग्ने! हम सदा ही तुम्हारी मित्रता के आश्रित रहें ।१५। [२५]

सूक्त ४५

(ऋषि—सदापृण आत्रेयः। देवता—विश्वेदेवताः। छन्द—पंक्तिः त्रिष्टुप्)

त्रिदा दिवो विष्यन्नद्रिमुक्थैरायत्या उषसो अर्चिनो गुः।
अपावृत व्रजिनोरुत्स्वर्गाद्वि दुरो मानुषोर्देव आवः ॥१
वि सूर्या अमर्ति न श्रियं सदोर्वाद गवां मात्य जानती गात्।
धन्वर्णसो नद्यः खादोअर्णा स्थूणेव सुमिता दृ हत द्यौः ॥२
अस्मा उक्थाय पर्वतस्य गर्भो महीनां जनुषे पूर्व्याय।
वि पर्वतो जिहीत साधत द्यौराविवासन्तो दसयन्त भूम ॥३
सूक्तेभिर्वो वचोभिर्देवजुष्टैरिन्द्रा न्वग्नी अवसे हुवध्ये।
उक्थेभिर्हि ष्मा कवयः सुयज्ञा आविवासन्तो मरुतो यजन्ति ॥४
एतो न्वद्य सुध्यो भवाम प्र दुच्छुना मिनवामा वरीयः।
आरे द्वेषांसि सनुतर्दधामायाम प्राञ्चो यजमानमच्छ। ५।२६

इन्द्र ने अङ्गिराओं के स्तव से वज्र को गिरा कर पाणियों द्वारा चुराई हुई, छिपी गायों को मुक्त किया, आने वाली उषा की रश्मियां व्याप्त होती हैं। अँधेरे का नाश करके सूर्य प्रकट होते तथा मनुष्यों के घरों के किवाड़ों को खोलते हैं। १। जैसे विभिन्न पदार्थ अपने विभिन्न रूपों को प्रकट करते हैं, वैसे ही सूर्य अपने प्रकाश को बढ़ाते हैं। रश्मियों का जाल बुनने वाली उषा सूर्य के आने की बाट न देखती हुई अन्तरिक्ष से आविर्भूत होती है। किनारों को तोड़ती हुई नदियाँ वेगवान् जल से परिपूर्ण होती हुई बहती हैं। घर में बने हुए सुन्दर तथादृढ़ स्तम्भ के समान सूर्य सुदृढ़ भाव से प्रजाधाग्ण में समर्थ होते हैं। २। महान् स्तोत्रों के रचयिता प्राचीनकालीन ऋषियों के समान हम जब तक स्तुति करते हैं, तब तक मेघ के पेट में रहने वाला जल हमारे ऊपर बरसता है। मेघ से जल गिरता है और आकाश अपने कर्म द्वारा सदा सेवा करता है।३। हे इन्द्र! हे अग्निदेव! हम सङ्कटों से मुक्त होने की इच्छा से देवताओं द्वारा ग्रहण करने योग्य स्तोत्रों द्वारा तुम्हें बुलाते हैं। उत्तम प्रकार से यज्ञ-कर्म करते वाले मरुद्गण के समान कर्मों में लगे रहने वाले मेधावीजन सुन्दर स्तोत्रों द्वारा तुम दोनों की पूजा करते हैं। ४। हे इस यज्ञ के करने वाले! दिन में आओ। हम सुन्दर कर्म करना चाहते हैं। हम शत्रुओं का संहार करते और सब ओर छाये हुए वैरियों को दूर भगाते हैं। हम यजमानों के पास शीघ्र जाते हैं। ५। [२६]

एता धियं कृणवामा सखायोऽप या मातां ऋणुत व्रजं गोः।
यया मनुर्विशिशिप्रं जिगाय यया वणिग्वङ्कुरापा पुरीषम् ॥६

अनूनोदत्र हस्तयतो अद्रिरार्चन्येन दश मासो नवग्वाः।
ऋतं यती सरमा गा अविन्दद्विश्वानि सत्याङ्गिराश्चकार ॥७
विश्वे अस्या व्युषि माहिनायाः सं यद् गोभिरङ्गिरसो नवन्त।
उत्स आसां परमे सधस्थ ऋतस्य पथा सरमा विदद् गाः ॥८

आ सूर्यो यातु सप्ताश्वः क्षेत्रं यदस्योर्विया दीर्घयाथे।
रघुः श्येनः पतयदन्धो अच्छा युवा कविर्दीदयद् गोषु गच्छन् ॥९

आ सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णोऽयुक्त यद्धरितो वीतपृष्ठाः ।
उद्ना न नावमनयन्त धीरा आशृण्वतीरापो अर्वागतिष्ठन् ।।१०
धियं वो अप्सु दधिषे स्वर्षां ययातरन्दश मासो नवग्वाः ।
अया धिया स्याम देवगोपा अया धिया तुतुर्यामात्यंहः ।।११।२७

हे मित्रो ! आगमन करो । हम स्तोत्रों का उच्चारण करें । उन स्तोत्रों से चुराई हुई गौओं के स्थान का पता लगा था, 'मनु' ने शत्रु पर विजय प्राप्त की थी और वाणिक् के समान बहुत फलों को चाहने वाले "कक्षीवान्" ने वन में जाकर जल प्राप्त किया था ।६। इस यज्ञ स्थान में ऋत्विजों के हाथ से काम में लाये जाते हुए पत्थर का शब्द हो रहा है, उसी से "नवग्वों" और "दशग्वों" ने इन्द्र की उपासना की थी । उसी से यज्ञ में आकर सरमा ने गौऐं पायीं और अङ्गिरावंशीय ऋषियों की सभी साधना सफल हो गईं थीं । ७ । जब अङ्गिरागण उषा के उदित होते समय प्राप्त गौओं से मिले थे, तब उस श्रेष्ठ यज्ञशाला में दूध गिरने लगा, क्योंकि सरमा ने सत्य मार्ग द्वारा गौओं को देख लिया था। ८। सत्य अश्वों के स्वामी आदित्य हमारे अभिमुख पधारें । वे लम्बे प्रयाण करने के लिए वेगवान् बाज के समान शीघ्रगामी होते हुए आवें वे सतत युवा तथा दूरदर्शी अपनी किरणों में विराजमान, प्रकाश को फैलाते हैं । अत्यन्त दीप्त जल को सूर्य ऊपर उठाते हैं । जब वे अपने सुन्दर पीठ वाले घोड़ों को रथ में जोड़ते हैं तब यजमान उन्हें जल पर तैरती हुई नाव के समान बुलाते हैं । उनके आदेश पर ही जल-वृष्टि होती है ।१०। हे देवताओ ! हम सुख देने वाली उस बुद्धि को धारण करें जिसके द्वारा 'नवग्वों" ने दस महीनों तक यज्ञानुष्ठान किया था । उसी धारणवती बुद्धि के द्वारा हम विद्वानों द्वारा धारण करने योग्य उत्तम गुणों को प्राप्त करें और पापी कर्मों और उनके परिणामों का अतिक्रमण करने में समर्थ हों । ११ । [२७

सूक्त ४६

(ऋषि—प्रतिक्षत्र आत्रेयः । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द—जगती, पङ्क्तिः)

हयो न विद्वाँ अजि स्वयं धुरि तां वहामि प्रतरणीमवस्युवम् ।

नास्या वश्मि विमुचं नावृतं पुनर्विद्वान्पथः पुरएत ऋजु नेषति॥१
अग्न इन्द्र वरुण मित्र देवाः शर्धः प्र यन्त मारुतोत विष्णो ।
उभा नासत्या रुद्रो अध ग्नाः पूषा भगः सरस्वती जुषन्त ॥२
इन्द्राग्नी मित्रावरुणादितिं स्वः पृथिवीं द्यां मरुतः पर्वताँ अपः ।
हुवे विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं भगं नु शंसं सवितारमूतये ॥३
उत नो विष्णुरुत वातो अस्रिधो द्रविणोदा उत सोमो मयस्करत्।
उत ऋभव उत राये नो अश्विनोत त्वष्टोत विभ्वानु मंसते ॥४
उत त्यन्नो मारुतं शर्ध आ गमद्दिविक्षयं यजतं बर्हिरासदे ।
बृहस्पतिः शर्म पूषोत नो यमद्वरूथ्यं वरुणो मित्रो अर्यमा ॥५
उत त्ये नः पर्वतासः सुशस्तयः सुदीतयो नद्य स्त्रामणे भुवन् ।
भगो विभक्ता शवसावसा गमदुरुव्यचा अदितिः श्रोतु मे हवम् ॥६
देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये ।
याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते ता नो देवीःसुहवाःशर्मयच्छत॥७
उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राण्य ग्नाय्यश्विनीराट् ।
आरोदसी वरुणानी शृणोति व्यन्तु देवीयं ऋतुर्जनीनाम् ॥८।२८

"प्रतिक्षत्र" ने अपने को गाड़ी में घोड़े के समान जोड़ा । होता उस अलौकिक रक्षा का विधान करने वाले यज्ञ रूप बोझे को ढोते हैं । इस बोझे को वहन करने से मुक्त होना हम नहीं चाहते । इस भार को बारम्बार हम ढोते रहें ऐसा भी नहीं चाहते । मार्गों के ज्ञाता, आगे-आगे चलने वाले, सबके रहस्यों को जानने वाले पुरुष हमको समस्त मार्गों में सरलतापूर्वक ले जाने में समर्थ हैं । १ । हे अग्नि, इन्द्र, वरुण और मित्र आदि देवताओ ! तुम सब हमको शक्ति दो । मरुद्गण और विष्णु हमको सशस्त्र बनावें । असत्याचरण न करने वाले दोनों रुद्र, देवाङ्गनायें पूषा, भग और सरस्वती सभी हमारी स्तुति से प्रसन्न हों । २ । हम रक्षा-प्राप्ति के निमित्त इन्द्र, अग्नि, मित्र वरुण, अदिति, आदित्य, आकाश-पृथिवी, मरुद्गण, पर्वत, जल, विष्णु पूषा, ब्रह्मणस्पति और

सवितादेव को आहूत करते हैं । ३ । विष्णु वायु अहिंसक और धनदाता सोम हमको सुख प्रदान करें । ऋभुगण, दोनों अश्विनीकुमार, त्वष्टा और विभु हमको धन देने के निमित्त प्रसन्न हों । ४ । स्वर्गवासी तथा पूज्य मरुद्गण कुश पर विराजमान होने के लिये हमारे पास आवें । बृहस्पति वरुण, मित्र और अर्यमा हमको सभी गृहस्थ-सम्बन्धी सुख प्राप्त करावें । ५ । सुन्दर स्तोत्र वाले पर्वत एवं उदार वृत्ति वाली नदियाँ हमारा पालन करें । धन देने वाले भग देवता अन्न तथा रक्षा साधनों सहित आवें । सब स्थानों पर रहने वाली अदिनि हमारे स्तोत्र को सुनें । ६ । देवताओं की पत्नियाँ हमारी स्तुतियों की कामना करती हुई हमारी रक्षा करें । हम उनकी रक्षा द्वारा बलवान् पुत्र और उत्तम अन्न प्राप्त करें । हे देव पत्नियो ! तुम सर्वत्र कर्मों में लीन रहो । हम तुम्हें आहूत करते हैं । तुम हमको सुखा बनाओ । ७ । देवाङ्गनायें हवियाँ ग्रहण करें । इन्द्राणी, अग्नानी, दीप्तिमती अश्विनी, रोदसी, वरुणानी आदि सभी देवियाँ हमारे स्तोत्रों को सुनें । ये देवियां हव्य ग्रहण करें । देवियों में ऋतुओं की अधिष्ठात्री देवी हमारे स्तोत्र को सुनें और हवि ग्रहण करें । ८ ।

सूक्त ४७

(ऋषि–प्रतिरथ आत्रेयः । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः,)

प्रयुञ्जती दिव एति ब्रुवाण मही माता दुहितुर्बोधयन्ती ।
आविवासन्ती युवतिर्मनीषा पितृभ्य आ सदने जोहुवाना ॥१
अजिरासस्तदप ईयमाना आतस्थिवासो अमृतस्य नाभिम् ।
अनन्तास उरवो विश्वतः सीं परि द्यावापृथिवी यन्ति पन्था- ॥२
उक्षा समुद्रो अरुषः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुरा विवेश ।
मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा वि चक्रमे रजसस्पात्यन्तौ ॥३
चत्वार ईं बिभ्रत क्षेमयन्तो दश गर्भं चरसे धापयन्ते ।
त्रिधात वः परमा अस्य गावो दिवश्चरन्ति परि सद्यो अन्तान् ॥४
इदं वपुर्निवचनं जनासश्चरन्ति यन्नद्यस्तस्थुरापः

द्वे यद बिभृतो मातुरन्ये इहेह जाते यम्या सबन्धू ॥५
वि तन्वते धियो अस्मा अपांसि वस्त्रा पुत्राय मातरो वयन्ति ।
उपप्रक्षे वृषणो मोदमाना दिवस्पथा वध्वो यन्त्यच्छ ॥६
तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने वं योरस्मभ्यमिदतस्तु शस्मम् ।
अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठा नमो दिवे बृहते सांदनाय ॥७।१

सेवा-रत, नित्य युवती, पूज्या उशा बुलाई जाने पर शक्तिमती माता के समान कन्या स्वरूप पृथिवी को जागरित करती है । वह मनुष्यों को कार्य में प्रवृत्त करती हुई रक्षा करने वाले देवताओं के साथ यज्ञ स्थान में आती है ॥१॥ सर्वव्याप्त और असीमित किरणें अपने प्राकट्य रूप कर्म का सम्पादन करती हुईं, अविनाशी सूर्य-मण्डल के साथ एकत्र बैठकर आकाश पृथिवी और अन्तरिक्ष में जाती हैं ॥२॥ कामनाओं का सिंचन करने वाले, देवताओं के लिए सुख का विधान करने वाले, उज्ज्वल तथा तेज चलने वाले, रथ ने पितृ रूप पूर्व दिशा में गमन किया फिर स्वर्ग में अवस्थित विभिन्न वर्षा वाले आदित्य अन्तरिक्ष में बढ़े और उन्होंने विश्व की रक्षा की ॥ ३ ॥ चार ऋत्विक् अपनी मंगल-कामना करते हुए सूर्य को हव्य से धारण करते हैं । दशों दिशाऐं अपने गर्भ से उत्पन्न सूर्य को नित्यकर्म में प्रेरणा करती हैं । शीत, ग्रीष्म और वर्षा के भेद से सूर्य की तीन प्रकार की ऋतुऐं अन्तरिक्ष की सीमा में घूमती रहती हैं । ४ । हे मनुष्यो ! यह शरीर अवश्य मनन और श्रवण करने योग्य हैं, जिसमें प्रवाहित होने वाली नाड़ियाँ पृथिवी पर बहने वाली नदियों के समान हैं । स्त्री और पुरुष की दोनों प्रकृतियाँ इस शरीर के धारण करने वाले दिन-रात के समान परस्पर बंधी हैं ॥ ५ ॥ सूर्य के निमित्त यजमान स्तोत्र तथा हव्य को बढ़ाते हैं । इसी पुत्र रूप सूर्य के लिये दिशाऐं प्रकाश का जाल बुनती हैं । उन वृष्टिकारक सूर्य के द्वारा पुष्ट हुई पत्नी रूप किरणे आकाश द्वारा हमारे पास आगमन करें ॥६॥ हे मित्रावरुण ! हमारी स्तुति को स्वीकार करो । हे अग्ने ! हम सबके कल्याण के निमित्त इस स्तोत्र को स्वीकार करो । हम प्रतिष्ठित हों । हम तेजोमय, पराक्रमी तथा सबको आश्रय देने वाले सूर्य की पूजा करते हैं ॥७॥

[१]

सूक्त ४८

(ऋषि—प्रतिभानुरात्रेयः । देवता—विश्वेदेवा । छन्द—त्रिष्टुप्, जगती)

कदु प्रियाय धाम्ने मनामहे स्वक्षत्राय स्वतषसे महे वयम् ।
आमेन्यस्य रजसो यदभ्र आं अपो वृणाना वितनोति मायिनी ।।१
ता अत्नत वयुनं वीरवक्षणं समान्या वृतया विश्वमा रजः ।
अपो अपाचीरपरा अपेजते प्र पूर्वाभिस्तिरते देवयुर्जनः ।।२
आ ग्रावभिरहन्येभिरक्तुभिर्वरिष्ठं वज्रमा जिघर्ति मायिनि ।
शतं वा यस्य प्रचरन्त्स्वे दमे संवर्तयन्तो वि च वर्तयन्नहा ।।३
तामस्य रीतिं परशोरिव प्रत्यनीकमख्यं भुजे अस्य वर्पसः ।
सचा यदि पितुमन्तमिव क्षयं रत्नं दधाति भरहूतये विशे ।।४
स जिह्वया चतुरनीक ऋञ्जते चारु वसानो वरुणो यतन्नरिम् ।
न तस्य विद्म पुरुषत्वता वयं यतो भगः सविता दाति वार्यम् ।।५।२

हम सबकी कामना के योग्य, पूजा के पात्र उस तेज की कब पूजा करेंगे ? वह तेज अपने ही बल से प्रकाशवान् है तथा सभी अन्न उसमें व्याप्त हैं । उसी तेज की शक्ति चैतन्य होकर अन्तरिक्ष में मेघ मे वर्षा के जल को वढ़ाती है ।। १ ।। ऋत्विजों के प्राप्त करने योग्य ज्ञान को यह उषाऐं फैलाती हैं । अपनी आभा द्वारा सम्पूर्ण संसार को परिपूर्ण करती हैं । देवताओं की कामना करने वाले यजमान बीती हुई अथवा आने वाली उषाओं की चिन्ता छोड़कर वर्तमान उषा के द्वारा अपनी बुद्धि को वढ़ाते हैं ।२। दिन और रात्रि में सिद्ध किये गये सोम से पुष्ट हुए इंद्र मायावी वृत्र के लिए अपने विशाल वज्र को तेजोमय वनाते हैं । इंद्रमय सूर्य की असंख्य किरणें दिनों को प्रवतित करती हुईं अपने घर रूप आकाश में घूमती रहती हैं ।।३।। फरसे के समान दमकते हुए अग्नि के उस स्वाभाविक रूप को हम देखते हैं । हम अपने सुख के निमित्त तेजोमय आदित्य की किरणों की स्तुति करते हैं । ये आदित्य आह्वान करने वाले यजमान के यज्ञ में सहायक होते और अन्न तथा रत्नादि से परिपूर्ण घर प्रदान करते हैं ।। ४ ।। अपने शोभन तेज से चमकते हुए अग्निदेव

अन्धकार तथा वैरियों का नाश करते हैं। वे सब ओर अपनी ज्वाला को फैलाते हुए घृतादि हव्य भक्षण करते हैं। हम उन अभीष्टदायक अग्नि के उस पुरुषार्थ को नहीं जानते, जिसके द्वारा यह यजनयोग्य सविता ग्रहण करने योग्य ऐश्वर्य को प्राप्त कराते हैं ।।५।। [२]

सूक्त ४९

(ऋषि—प्रतिप्रभ आत्रेयः। देवता—विश्वेदेवाः। छन्द–त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

देवं वो अद्य सवितारमेषे भगं च रत्नं विभजन्तमायोः।
आ वां नरा पुरभुजा ववृत्यां दिवेदिवे चिदश्विना सखीयन् ।।१
प्रति प्रयाणमसुरस्य विद्वान्त्सूक्तैर्देवं सवितारं दुवस्य।
उप ब्रुवीत नमसा विजानञ्ज्येष्ठं च रत्नं विभजन्तमायोः ।।२
अदत्रया दयते वार्याणि पूषा भगो अदितिर्वस्त उस्रः।
इन्द्रो विष्णुर्वरुणो मित्रो अग्निरहानि भद्रा जनयन्त दस्माः ।।३
तन्नो अनर्वा सविता वरूथं तत्सिन्धव इषयन्तो अनुग्मन्।
उप यद्वोचे अध्वरस्य होता रायः स्याम पतयो वाजरत्नाः ।।४
प्र ये वसुभ्यः ईवदा नमो दुर्ये मित्रे वरुणे सूक्तवाचः।
अवैत्वभ्वं कृणुता वरीयो दिवस्पृथिव्योरवसा मदेम ।।५।३

हम यजमानों के लिए सविता और भग देवताओं की सेवा में जाते हैं। वे यजमानों को धन देते हैं। हे अग्रगण्य तथा बहुकर्मा अश्विनीकुमारो! हम तुम्हारी मित्रता को चाहने वाले तुम्हारे प्रतिदिन सामीप्य की याचना करते हैं।१। हे विद्वानो! शत्रुओं के शमनकर्त्ता सवितादेव को आते जानकर सूक्तों से उनका पूजन करो। वे मनुष्यों को उत्तम ऐश्वर्य के देने वाले हैं। उनकी हविरत्न और नमस्कार द्वारा स्तुति करो ।। २ ।। यजन योग्य, पालनकर्त्ता तथा कभी नाश को प्राप्त न होने वाले अग्नि ग्रहण करने योग्य काष्ठ को अपनी ज्वाला से वहन करते हैं और ग्रहण करने योग्य धन यजमानों को देते हैं। आदित्य अपने तेज को फैलाते हैं। इंद्र, विष्णु मित्र और अग्नि आदि देवता उत्तम कर्म वाले दिनों को प्रकट करते हैं ।।३।।

जिन सवितादेव का कोई तिरस्कार नहीं कर सकता, वे सवितादेव हमको अभीष्ट ऐश्वर्य दें । उस ऐश्वर्य को लाने के लिए उनकी किरणें गमन करें । इस कामना से हम होतागण स्तुति करते हैं । हम बहुत प्रकार के धन, अन्न और बल के स्वामी हों ॥ ४ ॥ जिन यजमानों ने गतिशील अन्न वसुओं को प्रदान किया है, तथा जिन्होंने मित्रावरुण के उद्देश्य से स्तुतियाँ की हैं, उन्हें महान् तेज मिले । हे देवगण ! उन्हें स्थिर सुख दो । हम आकाश और पृथिवी द्वारा पाले जाकर पुष्ट हों ॥ ५ ॥ [३]

सूक्त ५०

(ऋषि—स्वस्त्यात्रेयः । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द—उष्णिक्, अनुष्टुप्)

विश्वो देवस्य नेतुमर्तो वुरीत सख्यम् ।
विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणित पुष्यसे ॥१
ते ते देव नेतर्ये चेमाँ अनुशसे ।
ते राया ते ह्या पृचे सचेमहि सचथ्यैः ॥२
अतो न आ नृनतिथीनतः पत्नार्दशस्यत ।
आरे विश्व पथेष्ठा द्विषो युयोतु यूयुविः ॥३
यत्र वह्निरभिहितो दुद्रवद् द्रोण्यः पशुः ।
नृमणा वीरपस्त्योऽर्णा धीरेव सनिता ॥४
एष ते देव नेता रथस्पतिः शं रयिः ।
श राये श स्वस्तयइषः स्तुतो मनामहे देवस्तुतो मनामहे ॥५।४

सभी यजमान सवितादेव से मित्रता की याचना करते हैं सब प्रजायें उनसे धन माँगती हैं । उनकी कृपा से सब मनुष्य अपनी रक्षा के लिये प्रचुर धन लाभ करते हैं ।१। हे प्रभो ! हम यजमान तुम्हारी उपासना करते हैं तथा इंद्रादि देवताओं की उपासना करने वाले भी तुम्हारे ही हैं । हम तथा वे दोनों प्रकार के उपासक धन ऐश्वर्य से सम्पन्न हों और हमारे सभी मनोरथ पूर्ण हों ।२। इस यज्ञ में हम ऋत्विजों के लिये अतिथि के समान पूजनीय देवताओं की सेवा करें। इस यज्ञ में हवि देकर देव-पत्नियों की सेवा

करें। हे देवताओ ! तुम सभी अथवा सवितादेव दूरस्थ शत्रुओं को विनष्ट करें ॥ ३ ॥ जिस यज्ञ में यज्ञवाहक, सर्वश्रेष्ठ पशु के समान आगे बढ़ने वाला मार्गदर्शक कार्य-भार उठाता है, उस यज्ञ में सवितादेव चतुर गृहिणी के समान गृह, पुत्र, सेवक तथा धन प्रदान करते हैं ॥ ४ ॥ हे सवितादेव ! तुम्हारा यह ऐश्वर्ययुक्त सबका रक्षक रथ हमारा कल्याण करने वाला हो। हम सब पूजा के पात्र सवितादेव की स्तुति करने वाले हैं। हम धन सुख तथा अमरत्व प्राप्ति के लिए उनकी स्तुति करते हैं। ॥ ५ ॥ [४]

सूक्त ५१

(ऋषि—स्वस्त्यात्रेयः । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द—गायत्री, अनुष्टुप्, उष्णिक्)

अग्ने सुतस्य पीयते विश्वैरूमेभिरा गहि। देवेभिर्हव्यदातये ॥१
ऋतधीतय आ गतसत्यधर्माणो अध्वरम्। अग्नेः पिबत जिह्वया।२
विप्रेभिर्विप्र सन्त्य प्रातर्यावभिरा गहि। देवेभिः सोमपीतये ।३
अयं सोमश्चमू सुतोऽमत्रे परि षिच्यते। प्रिय इन्द्राय वायवे ॥४
वायवा याहि वीतये जुषाणो हव्यदातये।
पिबा सुतस्यान्धसो अभि प्रयः ॥५।५

हे अग्ने ! तुम इन्द्रादि सभी रक्षा करने वाले देवताओं के साथ सोम पीने के लिए हम हविदाता यजमानों के पास पधारो ॥१॥ हे सत्य कर्म वाले देवताओ ! तुम सब हमारे यज्ञ स्थान में पधारो और अग्नि की जिह्वा सोमयुक्त हवियों का भक्षण करो ॥ २॥ हे मेधावी अग्निदेव ! तुम उषाकाल में आगमन करने वाले मेधावी देवताओं के साथ सोम पीने के लिए पधारो ॥३॥ यह सोम अभिशवण फलक द्वारा सिद्ध किया और पात्र में एकत्रित किया है। यह इंद्र और वायु के लिए अत्यन्त प्रिय है। हे इन्द्र और वायो ! इस सोमरस का पान करने के लिए आओ ॥ ४ ॥ हे वायो ! हविदाता यजमान पर अनुग्रह करने के लिए, सोम पीने के निमित्त आओ इस सोम का सेवन करो ॥५॥ [५]

इन्द्रश्च वायवेषां सुतानां पीतिमर्हथः ।
ताञ्जुषेथामरेपसावभि प्रयः ॥६
सुता इन्द्राय वायवे सोमासो दध्याशिरः ।
निम्नं न यन्ति सिंधवोऽभि प्रयः ॥७
सजूर्विश्वेभिर्देवेभिरश्विभ्यामुषसा सजूः ।
आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥८
सजूर्मित्रावरुणाभ्यां सजूः सोमेन विष्णुना ।
आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥९
सजूरादित्यैर्वसुभिः सजूरिन्द्रेण वायुना ।
आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥१०।६

हे वायो ! तुम और इन्द्र दोनों ही सोम-पान करने के योग्य हो । दोनों सोममय अन्न के सेवन के लिए यहाँ आओ ॥ ६ ॥ इन्द्र और वायु के उद्देश्य से हव्य युक्त सोमरस तैयार है । हे इन्द्र और वायो ! नीचे की ओर बहने वाली नदियों के समान यह सोम तुम्हारे प्रति गमन करता है ।७। हे अग्ने ! तुम सभी देवताओं,अश्विनीकुमारों और उषा से सुसङ्गत हुए यहाँ आओ । यज्ञ में अत्रि के समान तुम भी अभिषुत सोम से पुष्टि को प्राप्त होओ ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! तुम मित्र, वरुण, सोम और विष्णु के सहित यहाँ आओ और अत्रि के समान तुम भी अभिषुत सोम में बिहार करो ॥९॥ हे अग्ने ! तुम, आदित्य, वसुगण, इंद्र और वायु सहित वहाँ आकर अत्रि के समान सोम से आनन्दित होओ ॥१०॥ [६]

स्वस्तिनो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः ।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना ॥११
स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यास्पतिः ।
बृहस्पति सर्वगणं स्वस्तये आदित्यायो भवन्तु नः ॥१२
विस्वेदेवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये ।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥१३

स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवती ।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि: ॥१४
स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि ॥१५।७

अश्विनीकुमार हमारे लिए कभी नष्ट न होने वाले सुख प्रदान करें । पराक्रमी सत्यस्वरूप और शत्रुओं के हननकर्त्ता पूषा हमारा कल्याण करें । सुन्दर ज्ञान से युक्त आकाश-पृथिवी हमारे लिए सुखकारी हों ॥११॥ हम अपने कल्याण के लिए वायु तथा सोम की स्तुति करते हैं । सोम सम्पूर्ण जगत् के पालनकर्त्ता हैं । हम अपने कल्याण के लिये सब देवताओं के साथ मन्त्र पालक बृहस्पति की स्तुति करते हैं । अदिति के पुत्र देवता और अरुणादि द्वादश देव हमारे लिये मङ्गलकारी हों ।१२। सब देवता इस यज्ञ दिवस में हमारा कल्याण करे तथा हमारे रक्षक हों । मनुष्यों में प्रमुख तथा गृहदाता अग्निदेव हमारा कल्याण करें और रक्षक बनें । तेजस्वी ऋभुगण हमारा मङ्गल करें । रुद्र हमको पाप से बचाते हुए मङ्गलकारी हों ॥१३॥ हे दिन रात्रि के देवता मित्रावरुण ! तुम दोनों हमारा कल्याण करो । हे धन की देवी ! हमारा मङ्गल करो । इन्द्र, अग्नि और अदिति हमारा कल्याण करें ।१४। सूर्य और चन्द्रमा बिना बाधा के जैसे परिभ्रमण करते हैं वैसे ही हम भी मार्गों में सुख पूर्वक विचार करें । प्रवास में दीर्घकाल तक रहने पर भी हमसें स्नेह करने वाले तथा हमारी याद करने वाले कुटुम्बियों और मित्रों से हम मिलें ॥१५॥ [७]

सूक्त ५२

(ऋषि—श्यावाश्व आत्रेय: । देवता—मरुत: । छन्द—अनुष्टुप्, पंक्तिः
उष्णिक् वृहती)

प्र श्यावाश्व धृष्णुयार्चा मरुद्भिर्ऋक्वभि: ।
य अद्रोघमनुष्वधं श्रवो मदन्ति यज्ञिया: ॥१

ते हि स्थिरस्य शवसः सखायः सन्ति धृष्णुया ।
ते यामन्ना धषद्विनस्त्मना पान्ति शश्वतः ॥२
ते स्पन्द्रासो नोक्षणोऽति ष्कन्दन्ति शर्वरीः ।
मरुतामधा महो दिवि क्षमा च मन्महे ॥३
यरुत्सु वो दधीमहि स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया ।
विश्वे ये मनुषा युगा पान्ति मर्त्यं रिषः ॥४
अर्हन्तो ये सुदानवो नरो असामिशवसः ।
प्र यज्ञं यज्ञियेभ्यो दिवो अर्चा मरुद्भ्यः ॥५।८

हे श्यावाश्व ऋषि ! तुम धैर्यपूर्वक स्तुति के पात्र मरुद्गण की पूजा करो। यज्ञ के पात्र मरुद्गण नित्य प्रति हविरूप अन्न प्राप्त करते हुए प्रसन्न होते हैं। १। उनका बल कभी विचलित नहीं होता। वे धीरे जब मार्ग में चलते हैं, तब अपनी इच्छा से हमारे परिवार को रक्षा करते हैं ॥२॥ जल वृष्टि करने में समर्थ मरुद्गण रात्रि को लांघते हुए चलते हैं। वे जिस कारण यह कर्म करते हैं, उसी कारण हम उन मरुद्गण के आकाश और पृथिवी में व्याप्त तेज की उपासना करते हैं।३। हे होताओ ! अब तुम कर्म में लगे हुए किस लिये मरुद्गण की स्तुति करते और उन्हें हवियाँ देते हो ? इसीलिये तो कि वे मरणधर्मा मनुष्यों की हिंसकों से हर समय रक्षा करते हैं ॥४॥ हे होताओ ! जो पूजा के योग्य, सुन्दर दान से युक्त, कर्म करने में अग्रणी तथा अत्यन्त पराक्रमी हैं, ऐसे यज्ञ के पात्र उन मरुद्गण के लिये यज्ञ को सम्पन्न करने वाली हवियाँ दो ॥ ५ ॥ ८]

आ रुक्मैरा युधा नर ऋष्वा ऋष्टी सृक्षत ।
अन्वेनाँ अह विद्यु नो मरुतो जज्झतीरिव भानुरर्त त्मना दिवः ।६
ये वावृधन्त पार्थिवा य उरावन्तरिक्ष आः ।
वृजने वा नदीनां सधस्थे या महो दिवः ॥७
शर्धो मारुतमुच्छ्स सत्यशवसमृभ्वसम् ।
उत स्मते शुभे नरः प्र स्पन्द्रा युजतत्मना ॥८

उत स्म ते परुष्ण्यामूर्णा वसत शुन्ध्यवः ।
उत पव्या रथानामद्रिं भिन्दन्त्योजसा ॥९
आपथयो विपथयोऽन्तस्पथाः अनुपथाः ।
एतेभिर्मह्यं नामभिर्यज्ञं विष्टार ओहते ॥१०।९

वृष्टि कर्म में समर्थ मरुद्गण शस्त्र विशेष से सजते हैं। वे मेघ को विदीर्ण करने के लिए शस्त्र विशेष को निकालते हैं। शब्द करने वाले जनों के समान विद्युत भी मरुद्गण का साथ देती हैं। तेजस्वी मरुद्गण का तेज स्वयं ही प्राप्त होता है।६। जो मरुद्गण पृथिवी पर बढ़ते हैं तथा जो मरुद्गण अन्तरिक्ष में बढ़ते हैं वे नदियों की जल-शक्ति तथा विस्तीर्ण आकाश में बढ़ें। इस प्रकार वर्षा-कार्य के लिये सर्वत्र बढ़ते हुए मरुद्गण मेघ को विदीर्ण करने के लिये अपने विशिष्ट शस्त्रों का उपयोग करते हैं।७। मनुष्यो! मरुद्गण के श्रेष्ठ बल का स्तवन करो। वह अत्यन्त बढ़ा हुआ तथा सत्य का आश्रय रूप है। वर्षा-कार्य में अग्रगण्य मरुत् रक्षा करने वाली बुद्धि से जल के निमित्त गमन करने का श्रम करते हैं।८। मरुद्गण "परुष्णी" नदी में विद्यमान होते और सबको पवित्र करने वाले तेज को सर्वत्र फैलाते हैं। वे अपने बल से मेघ का खण्डन करते हैं।९। जो मरुत् हमारे सामने से जाते हैं, जो सर्वत्र गमनशील हैं, जो पर्वतों की गुफाओं में भी घुस जाते हैं तथा जो अनुकूल मार्गों पर चलते हैं, वे मरुद्गणवृद्धि को प्राप्त होकर हमारे यज्ञ के वहन करने में समर्थ हैं।१०। [९]

अधा नरो न्योहतेऽधा नियुत ओहते ।
अधा पारावता इति चित्रा रूपाणि दर्श्या ॥११
छन्दःस्तुभः कुभन्यव उत्समा कीरिणो नृतुः ।
ते मे के चिन्न तायव ऊमा आसन्दृशि त्विषे ॥१२
य ऋष्वा ऋष्टिविद्युतः कवयः सन्ति वेधसः ।
तमृषे मारुतं गणं नमस्या रमया गिरा ॥१३
अच्छ ऋषे मारुतं गणं दाना मित्रं न योषणा ।

दिवो वा धृष्णव ओजसा स्तुता धीभिरिषण्यत ॥१४
नू मन्वान एषा देवाँ अच्छा न वक्षणा ।
दाना सचेत सूरिभिर्यामश्रुतेभिरञ्जिभिः ॥१५
प्र ये मे वन्ध्वेषे गां वोचन्त सूरयः पृश्नि वोचन्त मातरम् ।
अधा पितरमिष्मणं रुद्रं वोचन्त शिक्वसः ॥१६
प्रप्त मे सप्त शाकिन एकमेका शता ददुः ।
युमनायामधि श्रुतमुद्राधो गव्यं मृजे नि राधो अश्व्यं मृजे ॥१७।१०

वे वृष्टि आदि के नेता संसार के अग्रणी हैं। अन्तरिक्ष में ग्रह तारे और मेघ को धारण करते हैं। इस प्रकार वे विविध रूप में देखने योग्य होते हैं ।११। जल की कामना से छन्दों द्वारा स्तुति करने वालों ने मरुद्गण की स्तुति की थी तथा प्यासे "गौतम" के पीने के लिए कूप को बुलाया था। उनमें कुछ मरुतों ने अदृश्य रह कर रक्षा की थी और कितनों ही ने प्रत्यक्ष होकर वल दिखाया था ।१२। वे "श्वावाश्व" ऋषि! विद्युत् रूप आयुध से सुसज्जित, मेधावी, सबके बनाने वाले, दर्शनीय मरुतों की सुन्दर श्रेष्ठ स्तोत्र द्वारा सेवा करो ।१३। हे ऋषि! तुम हव्य देने तथा स्तुतियों के साथ मरुतों के समक्ष आदित्य के समान जाओ। हे शक्ति द्वारा हराने वाले मरुद्गण! तुम आकाश या अन्य लोकद्वय से हमारे यज्ञ में पधारो। हम तुम्हारा आह्वान करते हैं ।१४। स्तोतागण मरुतों की शीघ्रता से स्तुति करके अन्य देवताओं की स्तुति-कामना नहीं करते। ज्ञानी, द्रुतगामी तथा फल देने वाले मरुद्गण से स्तोतागण इच्छित दान पाते हैं ।१५। जिन प्रेरणावान् मरुद्गण ने हम से बन्धुवत् वार्तालाप किया, उन्होंने पृथिवी को माता और पराक्रमी तथा शत्रु के रुलाने वाले रुद्र को अपना पिता बताया था ।१६। सात-सात शक्तिशाली मरुद्गण एक-एक होकर हमको सैकड़ों ऐश्वर्य प्रदान करें। इसके द्वारा दिया गया प्रसिद्ध ऐश्वर्य हम 'यमुना' तट पर प्राप्त करें। उनके दान को हम प्राप्त करने वाले हों ।१७। (२०)

सूक्त ५३

(ऋषि—श्यावाश्व आत्रेयः । देवता—मरुतः । छन्द—गायत्री, बृहती, त्रिष्टुप् उष्णिक् पंक्ति)

को वेद जानमेषाँ को वापुरा सुम्नेष्वास मरुताम् ।
यद्यु यज्रे किलास्यः ।।१
ऐयान्रथेषु तस्थुषः कः शुश्राव कथा ययुः ।
कस्म सस्रुः सुदासे अन्वापय इलाभिर्वृष्टयः सह ।।२
ते म आहुर्य आययुरुप द्युभिर्विभिर्मदे ।
नरो मर्या अरेपस इमान्पश्यन्निति ष्टुहि ।।३
ये अञ्जिषु ये वाशीषु स्वभानवः स्रक्षु रुक्मेषु खादिषु ।
श्राया रथेषु धन्वसु ।।४
युष्माकं स्मा रथाँ अनु मुदे दधे मरुतो जीरदानवः ।
वष्टी द्यावो यतीरिव ।।५।।११

मरुद्गण के जन्म का ज्ञाता कौन है ? मरुद्गण के पालन के समय कौन वर्तमान था ? जब उन्होंने पृथिवी को धुरे से जोड़ा था, तब इनके बल को कौन जानता था ? ।१। यह मरुद्गण रथ पर चढ़े हैं इनके रथ के शब्द को किसने सुना ? यह किस प्रकार चलते हैं इस बात का कौन जानने वाला है ? किस उदार मनुष्य के लिए वृष्टिशील मरुद्गण बहुत से अन्न के सहित प्रकट होंगे ? ।२। सोम पान से उत्पन्न होने वाले हर्ष के लिए तेजस्वी घोड़ों पर चढ़कर जो मरुद्गण हमारे पास आये थे, उन्होंने कहा था कि 'वे मनुष्यों को हित करने वाले हैं । हे मनुष्य ! तू इसी प्रकार स्तुति किया कर' ।३। हे मरुद्गण ! जो तेज तुम्हारे आश्रित है, जो अस्त्रों में, माला में, आभूषण में, रथ तथा धनुष में स्थित हैं, उन सब तेजों को हम नमस्कार करते हैं ।४। हे शीघ्र देने वाले मरुद्गण ! वृष्टि की सब ओर

गमनशील दीप्ति के समान तुम्हारे दर्शनीय रथ को देखकर हम प्रसन्न होते और तुम्हारा स्तवन करते हैं ।५। (११)

आ यं नरः सुदानवो ददाशुषे दिवः कोशमचुच्यवुः ।
वि पर्जन्यं सृजन्ति रोदसी अनु धन्वना यन्ति वृष्टयः ॥६
ततृदानाः सिन्धव क्षोदसा रजः प्र सस्रु र्धेनवो यथा ।
स्यन्त्रा अश्वा इवाध्वनो विमोचने वि यद्वर्तन्त एन्यः ।७
आ यात मरुतो दिव आन्तरिक्षादमादुत । माव स्थात परावतः ॥८
मा वो रसानितभा कुभा क्रुमुर्मा वः सिन्धुर्नि रीरमत् ।
मा वः परिष्ठात्सरयुः पुरीषिण्यस्मे इत्सुम्नमस्तु वः ॥९
तं वः शर्धं रथानां त्वेषं गणं मारुतं नव्यसीनाम् ।
अनु प्र यन्ति वृष्टयः ॥१०।१२

सुन्दर दान वाले मरुत् हविदाता यजमान के लिए जल धारण करने वाले मेघ को बरसाते हैं । वे आकाश पृथिवी के लिये मेघ को छोड़ते हैं । फिर वर्षा करने वाले मरुद्गण सर्वत्र जाने वाले जल के साथ व्याप्त होते हैं ।६। दूध देने वाली नव प्रसूता गो के समान मेघ से गिरने वाला जल अन्तरिक्ष में बढ़ता है । मार्ग में गमन करने के लिए द्रुतगामी घोड़े के समान छोड़ी गई नदियां अत्यन्त वेग से बहती हैं ।७। हे मरुद्गण ! तुम आकाश, अन्तरिक्ष अथवा इसी लोक से (जहां कहीं हो वहीं से, यहाँ आओ । तुम स्वर्ग आदि दूर देश के लिए मत जाओ ।८। हे मरुद्गण ! "रसा" "अनितमा" और "कुभा" तथा सर्वत्र जाने वाली "सिन्धु" नदी तुमको कभी न रोके । जल से परिपूर्ण "सरयू" तुमको न रोके । तुम्हारे आने से उत्पन्न सुख को हम सब प्राप्त करें ।९। प्रेरणा देने वाले नवीन रथ की शक्ति के साथ तेजोमय मरुतों की हम स्तुति करते हैं । वर्षा मरुतों का अनुगमन करती और मरुद्गण सब स्थानों पर परिभ्रमण करते हैं ।१०। १२]

शर्धंशर्धं व एषां व्रातंव्रातं गणङ्गणं सुशस्तिभिः ।
अनु क्रामेम धीतिभिः ॥११

कस्मा अद्य सुजाताय रातहव्याय प्र ययुः । एना यामेन मरुतः॥१२
येन तोकाय तनयाय धान्य बीज वहध्वे अक्षितम् ।
अस्मभ्यम् तद्धत्तन यद्व ईमहे राधो विश्वायु सौभगम् ॥१३
अतीयाम निदस्तिरः स्वस्तिभिर्हित्वावद्यमरातीः ।
वृष्ट्वीशं योराप उस्रि भेषजं स्याम मरुतः सह ॥१४
सुदेवः समहासति सुवीरो नरो मरुतः स मर्त्यः ।
यत्रायध्वे स्याम ते । १५

स्तुहि भोजान्त्स्तुवतो अस्य यामनि रणन्गावो न यवसे ।
पर्वा इव सखींरनु ह्वय गिरा गृणीहि कामिनः॥१६।१३

हे ! मरुद्गण हम सुन्दर स्तोत्र और हवि प्रस्तुत करते हुए उत्तम कर्म द्वारा तुम्हारे वल, समूह और गण का अनुसरण करते हैं ॥११॥ वे मरुद्गण आज किस हविदाता यजमान के पास श्रेष्ठ रथ द्वारा जाये गे ? ।१२। जिस कृपापूर्ण हृदय से तुम पुत्र, पौत्रादि को अनेक बार अन्नदान करते हो, उसी हृदय से हमको भी अन्न प्रदान करो। हम तुमसे उन्नति-प्रद, आयुष्य, सोभाग्यवर्द्धक धन को मांगते हैं ।१३। हे मरुदगण ! हम तुम्हारी रक्षा द्वारा पाप का त्याग करें। जब तुम बुद्धि को प्रेरिति करो तब हम पाप के निवारण करने वाले सत्य, सुख, वनस्पति आदि लाभ करें ।१४। हे पूजनीय मरुदगण ! तुम जिसकी रक्षा करना चाहते हो, वह देवताओं की कृपा पाकर सुन्दर पुत्र पौत्रादि प्राप्त करता है। हम भी उसी के समान तुम्हारी रक्षा प्राप्त करने वाले हों क्योंकि हम भी तुम्हारे ही हैं ।१५। हे विज्ञ ! तुम यजमान के इस यज्ञ में मरुदगण का स्तवन करो । वे मरुद्गण घास आदि खाने के लिए प्रसन्नता से जाने वाली गौओं के समान ही प्रसन्न होते हैं। प्राचीन मित्रों के समान गतिवान् मरुतों को आहूत करो। स्तुति की कामना वाले मरुद्गण की श्रेष्ठ वाणी द्वारा स्तुति करो ।१६।

सूक्त ५४

(ऋषि--श्यावाश्व आत्रेयः । देवता-मरुत, । छन्द-जगती, त्रिष्टुप)

प्र शर्धाय मारुताय स्वभानव इमां वाचमनजा पर्वतच्युते ।
धर्मस्तुभे दिव आ पृष्ठयज्वने द्युम्नश्रवसे से महि नृम्णमर्चत।।१
प्र वो मरुत्तस्तविषा उदन्यवो वयोवृधो अश्वयुजः परिज्रयः ।
सं विद्युताः दधति वाशति त्रितः स्वरन्त्यापोऽवना परिज्रयः ।।२
विद्युन्महसी नरो अश्मदिद्यवो वातत्विषो मरुतः पर्वतच्युतः ।
अव्दया चिन्मुहुरा ह्नादुनीवृतः स्तनयदमा रभसा उदोजसः ।।३
श्यक्तून्रुद्रा व्यहानि शिक्वसो व्तन्तरिक्षं वि रजांसि धूतयः ।
वि यदज्राँ अजथ नाव ईं यथा वि दुर्गाणि मरुतो नाह रिष्यथ।।४
त द्वीर्यं वो मरुता महित्वनं दीर्घं ततान सूर्यो न योजनम्
एता न यामे अगृभोतशोचिषोऽनश्वदाँ यन्न्ययातना गिरिम्।।५।१४

मरुद्गण के बल के लिये की जाने वाली स्तुति की प्रशंसा करो । वे स्वयं महान् पर्वतों को चीरने वाले, आकाश से आने वाले तथा तेज-युक्त अन्न वाले हैं इनको आदर पूर्वक हविरन्न दो ।१। हे मरुद्गण ! तुम्हारे गण प्रकट होते हैं। वे संसार की रक्षा के लिए जल की इच्छा करने वाले, अन्न के बढ़ाने वाले, चलने के लिए घोड़ों को रथ में जोड़ने वाले, विद्युत से सुसंगत करने वाले एवं तेजस्वी हैं। जब मेघ गर्जन करते हैं, तब चारों ओर फिरने वाला जल समूह पृथिवी पर गिरता है ।२। प्रकाशमय तेज वाले वृष्टि के स्वामी, आयुधधारी, पर्वत को तोड़ने वाले, बारम्बार जल प्रदान करने वाले, बज्र फेंकने वाले, शब्दवान् मरुद्गण वर्षा करने के लिए उत्पन्न होते हैं ।३। हे रुद्रपुत्र मरुद्गण ! तुम दिवस रात्रि को प्रकट करते हो । तुम सर्व सामर्थ्यों से युक्त हो तथा लोकों को उखाड़ फेंकने वाले हो । तुम कम्पायमान करने वाले हो अतः समुद्र में चलने वाली नौका के समान मेघ को कँपाओ । तुम शत्रु पुरों को ध्वस्त करते हो, परन्तु स्वयं नष्ट नहीं होते ।४। हे मरुद्गण ! जैसे सूर्य अपने प्रकाश को बहुत दूर तक फैलाते

हैं अथवा देवताओं के घोड़े जैसे चलने में तेजी दिखाते हैं, वैसे ही तुम्हारे प्रसिद्ध पराक्रमी की प्रशंसा स्तोतागण दूर-दूर तक फैला देते हैं ।५। [१४]

अभ्राजि शर्धो मरुतो यदर्णस मोषथा वृक्षं कपनेव वेधसः ।
अध स्मातो अरमतिं सजोषसश्चक्षु रिव यन्तमनु नेषथा सुगम्।।६
न स जीयते मरुतो न हन्यते न स्रेधति न व्यथते न रिष्यति ।
नास्य राय उप दस्यन्ति नोतय ऋषिं वा यं राजनं वा सुषूदथ ।७
नियुत्वन्तो ग्रामजितो यथा नरोऽर्यमणो न मरुतः कबन्धिनः ।
पिन्वन्त्युत्सं यदिनासो अस्वरन्व्युन्दन्ति पृथिवीं मध्वो अन्धसा ।।८
प्रवत्वतीयं पृथिवी मरुद्भ्यः प्रवत्वती द्यौर्भवति प्रयद्भ्यः ।।
प्रवत्वतीः पथ्या अन्तरिक्ष्याः प्रवत्वन्तः पर्वता जीरदानवः ।।९
यन्मरुतः सभरसः स्वर्णरः सूर्य उदिते मदथा दिवो नरः ।
न वोऽश्वाः श्रथयन्ताह सिस्रतः सद्यो अस्याध्वनः पारमश्नुथ।।१०।१५

हे वृद्धिदायक मरुद्गण ! तुम जल से परिपूर्ण मेघ पर आघात करते हो । तुम्हारा बल अत्यन्त शोभनीय है । तुम परस्पर समान प्रीति वाले हो । जैसे चक्षु मार्ग दिखाने में नेतृत्व करता है, वैसे ही तुम हमको श्रेष्ठ मार्ग द्वारा ऐश्वर्य के निकट पहुँचादो । हे मरुद्गण ! जिस मंत्र द्वारा तुम मंत्रद्रष्टा विद्वान् को उत्तम कर्मों में लगाते हो, वह मंत्र दूसरों के द्वारा जीता नहीं जाता और न उसकी कोई हिंसा ही कर सकता है । -वह कभी क्षीण नहीं होता, कभी पीड़ित नहीं होता और न उसे कोई रोक ही सकता है । उसका दान तथा साधन कभी नाश को प्राप्त नहीं होते ।।७।। नियुक्त अश्वों के स्वामी, एकत्रित पदार्थों के विश्लेषणकर्ता, नेता स्वरूप, ग्राम को जीत लेने वाले वीर पुरुष के समान तेजस्वी मरुद्गण जलों से युक्त हैं । जब वे सम्पन्न होते हैं, तब मेघ को जल से परिपूर्ण करते हैं और गर्जन करते हुए हाररूप तथा मधुर रस से युक्त जल से भूमि को सींचते हैं ।।८।। यह पृथिवी मरुद्गण के लिये विशाल हुई है । आकाश भी मरुद्गण गमन के लिये विस्तृत हुआ है । अन्तरिक्ष का मार्ग मरुद्गण के लिये बढ़ता है । मेघ

मण्डल मरुद्गण के निमित्त ही वृष्टि करता है ।९। हे अत्यन्त पराक्रमी मरुद्गण ! हे दिव्यलोक के नेता ! तुम सूर्य के प्रकट होने पर सोम पान के लिये इच्छा करते हो । उस समय तुम्हारे घोड़े चलने से रुकते नहीं । उस समय तुम लोकत्रय के मार्गों को पार करते हुए भी थकते नहीं ।१०। (१०)

अंसेषु व ऋष्टयः पत्सु खादयो वक्षः सु रुक्मा मरुतो रथे शुभः ।
अग्निभ्राजसो विद्यूतो गभस्त्योःशिप्राःशीर्षसु वितना हिरण्ययीः।।११
त नाकमर्यो अगृभीतशोचिषं रुशात्पिप्पल मरुतो वि धूनुथ ।
समच्यन्त वृजनातित्विषन्त यत्स्वरन्ति घोषं विततमृतायवः।।१२
युष्मादत्तस्य मरुतो विचेतसो रायः स्याम रथ्यो वयस्वतः ।
न यो युच्छतितिष्यो यथा दिवो स्मे रारन्त मरुतः सहस्रिणम्।।१३
यू य रयिं मरुतः स्पार्हवीरं युयमृषिमवथ सामविप्रम् ।
यूयमर्वन्त भरताय वाजं यूयं धत्थ राजानं श्रुष्टिमन्तम् ।।१४
तद्वा यामि द्रविणं सद्यऊतयो येना स्वण ततनाम नॄँरभि ।
इद सु मे मरुतो हर्यता वचो यस्य तरेम तरसा शतं हिमाः।।१५।१६

हे मरुद्गण ! तुम्हारे कन्धों पर अस्त्र सुशोभित होते हैं । पाँवों में रक्षा करने वाले कटक, वृक्ष पर हार और रथ पर दीप्ति चमकती है । तुम्हारे दोनों हाथों में चमकती हुई किरणें तथा सिर पर सुवर्णमय मुकुट है ।११। हे मरुद्गण ! अब तुम चलते हो तब दिव्यलोक और समूह सभी विचलित हो उठते हैं । जब तुम हमारे द्वारा दी हुई हवियों को भक्षण कर हृष्ट होते हो अपना प्रकाश फैलाते हो । तब जल वर्षा करने की इच्छा करते हुए घनघोर गर्जन करते हो । २। हे मरुद्गण ! हे विभिन्न मत वालो ! हम रथों से युक्त हैं । हम तुम्हारे द्वारा दिये जाने वाले अन्नयुक्त धनों के स्वामी हों । तुम्हारा दिया हुआ धन कभी नाश को प्राप्त नहीं होता । वैसे ही —जैसे सूर्य आकाश से पृथक् नहीं होते । हे मरुद्गण ! तुम हमको असीमित धन देकर सुखी बनाओ ।१३। हे मरुद्गण ! तुम हमको इच्छित धन, पुत्र, इत्यादि दो । तुम सोमवान् ऋत्विक् की रक्षा करने वाले होओ । हे मरुतो !

तुम राजा "श्यावाश्व" को अन्न दो। वे देवताओं की कामना से यज्ञ करते हैं। हे मरुद्गण ! तुम उनको सुख प्रदान करो ॥१४॥ हे तुरन्त रक्षा करने वाले मरुद्गण ! तुमसे हम धन माँगते हैं। जैसे सूर्य अपनी किरणों को दूर तक फैलाते हैं, वैसे ही हम भी अपने सन्तान तथा सेवकों को उसी धन द्वारा बढ़ावें। हे मरुद्गण ! तुम हमारे इस स्तोत्र से प्रसन्न होते हुए हमको चाहो, जिससे हम अपनी आयु के सौ वर्ष सुखपूर्वक निकाल सकें ॥१५॥ [१६]

सूक्त ५५

(ऋषि—श्यावाश्व । देवता—मरुत । छन्द—जगती त्रिष्टुप्)

प्रयज्यवो मरुतो भ्राजदृष्टयो बृहद्वयो दधिरे रुक्मवक्षसः।
ईयन्ते अश्वैः सुयमेभिराशुभिः शुभं यातमनु रथा अवृत्सत ॥१
स्वयं दधिध्वे तविषीं यथा विद बृहन्महान्त उर्विया वि राजेथ।
उतान्तरिक्षं ममिरे व्योजसा शुभ यायमनु रथा अवृत्सत ॥२
साकं जाताः सुभ्वः साकमुक्षिताः श्रिये चिदा प्रतरं वावृधुर्नरः।
विरोकिणः सूर्य्यस्येव रश्मयः शुभ यातामनु रथा अबृत्सत ॥३
आभूषेण्य वो तरुतो महित्वनं दिदृक्षेण्य सूर्यस्येव चक्षणम्।
उतो अस्माँ अमृतत्वे दधातन शुभं यातामनु रथा अबृत्सत ॥४
उदीरयथा मरुतः समुद्रयो यूयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिणः।
न वो दस्रा उप दस्यन्ति धेनवःशुभ यातामनु रथा अबृत्सत॥५॥१७

चमकते हुए अस्त्रों से युक्त मरुद्गण युवा बनाने वाले अन्न को धारण करते हैं, उनके हृदय पर हार सुशोभित रहता है। सरलता से नियम पर चलने वाले, द्रुतवेग वाले घोड़े उन्हें वहन करते हैं। सुन्दर भाव से गमन करने वाले मरुद्गण के रथ सबसे पीछे जाते हैं ॥ १ ॥ हे मरुद्गण ! तुम जब जैसा उचित समझते हो, वैसा ही बल धारण करते हो। हे मरुद्गण ! तुम महान् होकर सुशोभित होओ। अपने पराक्रम से अन्तरिक्ष को व्याप्त करो। सुन्दर

विचार से गमन करने वाले मरुतों के रथ सबसे पीछे चलते हैं ॥ २ ॥ मरुद्गण महान् हैं । वे एक साथ ही वर्षा करने वाले होते हैं । वे अत्यन्त शोभा के लिये सब स्थानों पर बढ़ते हैं । सूर्य की किरणों के समान वे यज्ञादि उत्तम कार्यों के कराने वाले हैं । सुन्दर विचार से युक्त उन मरुद्गण के रथ सबसे पीछे गमन करते हैं ॥ ३ ॥ हे मरुद्गण ! तुम्हारी महानता स्तुति योग्य है । तुम्हारा तेज सूर्य के समान चमकता है । तुम हमको स्वर्ग लाभ कराने में सहायक बनो । सुन्दर विचारों से परिपूर्ण मरुतों के रथ सबके रथों से पीछे चलते हैं ।४। हे मरुद्गण ! तुम अन्तरिक्ष से वर्षा के जलों को प्रेरणा करो । हे जलों के स्वामी मरुतो ! तुम वर्षा करो । हे शत्रुओं के नाश करने वालो ! तुमको प्रसन्न करने वाले कभी सूखते नहीं । सुन्दर विचार से गमन करने वाले मरुद्गण के रथ सबके पश्चात् गमन करते हैं ॥५॥ [१७]

यदश्वान्धूर्षु पृषतीरयुग्ध्वं हिरण्ययान्प्रत्यकाँ अमुग्ध्वम् ।
विश्वा इत्स्पृधो मरुतो व्यस्यथ शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥६
न पर्वता न नद्यो वरन्त वो यत्राचिध्वं मरुतो गच्छथेदु तत् ।
उत द्यावापृथिवी याथना परि शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥७
यत्पूर्व्यं मरुतो यच्च नूतनं यदुद्यते वसवो यच्च शस्यते ।
विश्वस्य तस्य भवथा नवेदसः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥८
मृळत नो मरुतो मा वधिष्टनास्मभ्यं शर्म बहुलं वि यंतन ।
अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥९
यूयमस्मान्नयत वस्यो अच्छा निरंहतिभ्यो मरुतो गृणानाः ।
जुषध्वं नो हव्यदातिं यजत्रा वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१०।१८

हे मरुद्गण ! जब तुम रथ के अगले भाग में पृषती अश्व को जोड़ते हो, तब सुवर्ण के समान दमकते हुए अपने कवच को उतार देते हो । तुम सभी युद्धों में विजय पाते हो । सुन्दर भाव से युक्त होकर गमनशील मरुतों के रथ सबके पीछे गमन करते हैं ॥६॥ हे मरुद्गण ! पर्वत और नदियाँ

तुम्हारे मार्ग को न रोकें। तुम जिस यज्ञादि कर्म में जाना चाहते हो वहाँ जाते ही हो। तुम आकाश और पृथिवी में वर्षा के लिये व्याप्त होते हो। सुन्दर विचार से युक्त मरुद्गण के रथ सबके पश्चात् चलते हैं ।।७।। हे मरुद्गण! जो यज्ञादि कर्म पहिले सम्पन्न हुए तथा जो कर्म अब हो रहे हैं उनमें जो स्तुतियाँ पायी जाती हैं, तुम उन्हें जानो। सुन्दर भाव से युक्त मरुतों का रथ पीछे-पीछे चलता है ।। ८ ।। हे मरुद्गण! हमको सुखी बनाओ। हमसे यदि कोई अपराध हुआ है, उससे जो तुम क्रुद्ध हुए हो, उससे हमारे कार्य में विघ्न न डालो। तुम हमको अत्यन्त सुख दो। स्तुति को जानकर हमारे साथ सख्य रखो। सुन्दर भाव से गमन करने वाले मरुद्गण के पथ सबके पीछे जाते हैं ।।९।। हे मरुद्गण! तुम हमें धन के सामने ले आओ। हमारे स्तोत्र से प्रसन्न होकर हमको पापों से छुड़ाओ हे मरुद्गण! हमारे द्वारा दिये गये हविरत्न को स्वीकार करो, जिससे हम बहुत प्रकार के धनों के स्वामी हों ।।१०।। [१८]

सूक्त ५६

(ऋषि—श्यावाश्व । देवता—मरुत । छन्द—बृहती, पंक्तिः)

अग्ने शर्धन्तमा गण पिष्टं रुक्मेभिरञ्जिभिः ।
विशो अद्य मरुतामव ह्वये दिवश्चिद्रोचनादधि ।।१
यथा चिन्मन्यसे हृदा तदिन्मे जग्मुराशसः ।
ये ते नेदिष्ठ हवानान्यागतान्वर्ध भामसन्दृशः ।।२
मीलहुष्मतीव पृथिवी पराहता मदन्त्येत्यस्मदा ।
ऋक्षो न वो मरुतः शिमीवाँ अमो दुध्रो गौरिव भीमयुः ।।३
नि ये रिणन्त्योजसा वृथा गावो न दुर्धुरः ।
अश्मानं चित्स्वर्यं पर्वतं गिरिं प्र च्यावयन्ति यामभिः ।।४
उत्तिष्ठ नूनमेषां स्तोमैः समुक्षितानाम् ।
मरुतां पुरुतममपूर्व्यं गवां सर्गमिव ह्वये ।।५।।१६

हे अग्ने! कान्तियुक्त आभरणों वाले, शत्रुओं को जीतने वाले मरुद्गण

LIBRARY
No..........
Shri Shri Ma A nayee Ashram
BANARAS

को आहुत करो। हम आज उज्ज्वल दिव्यलोक से मरुद्गण को सम्मुख आने की कामना से बुलाते हैं ॥१॥ हे अग्ने ! जैसे तुम मरुद्गण को पूजनीय जानकर उसका सम्मान करते हो, वैसे ही वे हमारे पास कल्याणकारी भावों से पधारें। जो हमारे आह्वान को सुनते ही चले आते हैं, उन विकराल मरुतों को हवि देकर बढ़ाओ ।२। पृथिवी पर रहने वाला एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से आकर्षित होने पर उसके सामने जाता है, वैसे ही मरुद्गण प्रसन्न होते हुए हमारे सामने आते हैं। हे मरुद्गण ! तुम अग्नि के समान कार्य में क्षमतावान् और वृषभ के समान साहसी हो ॥ ३ ॥ कठिनाई से पीड़ित किये जा सकने वाले अश्व के समान मरुद्गण अपने पराक्रम से, बिना परिश्रम के शत्रुओं को मारते हैं। वे चलने में शब्द करने वाले जगत् को परिपूर्ण करने वाले, जल युक्त मेघ को वृष्टि के लिये गिराते हैं ॥ ४ ॥ हे मरुद्गण ! तुम उच्च आसन पर विराजमान होओ। स्तोत्र द्वारा बढ़े हुए, जल समूह के समान सम्पन्न, बल से युक्त और अद्भुत मरुद्गण को हम बुलाते हैं ॥५॥

युङ्ग्ध्वं ह्यरषी रथे युङ्ग्ध्वं रथेषु रोहितः ।
यङ्ग्ध्वं हरी अजिरा धुरि वोलहवे वहिष्ठा धुरि वोलहवे ॥६

उतस्य वाज्यरुषस्तुविष्वणिरहि स्म धाहि दर्शतः ।
मा वो यामेषु मरुतश्चिरं करत्प्र तं रथेषु चोदत ॥७

स्थ नु मारुत वयं श्रवस्युमा हुवामहे ।
आ यस्मिन्तस्थौ सुरणानि बिभ्रती सचा मरुत्सु रोदसी ॥८

त वः शर्धं रथेशुभ त्वेष पनस्युमा हुवे ।
य स्मन्सुजाता मुभगा महीयते मचा मरुत्सु मीलहुषी ॥९।२०

हे मरुद्गण ! तुम रथ में अरुषी को जोड़ो। रथों में लाल रङ्ग के घोड़ों को जोड़ो। बोझा ढोने के लिये द्रुतगामी दो घोड़ों को योजित करो। जो बोझा ढोने में मजबूत होते हैं उन घोड़ों को बोझ ढोने के लिये जोड़ो ॥६॥ हे मरुद्गण ! रथ में जुड़े हुए, तेजस्वी, ध्वनि करने वाले और दर्शन योग्य

वह घोड़ा यात्रा में देर न करे। रथ में जुड़े उस घोड़े को तुम इस प्रकार से हाँको, जिससे वह देर न कर पावे। ७। हम मरुतों के उस अश्वयुक्त रथ को बुलाते हैं जिस पर सुमधुर जल को धारण करती हुई मरुद्गण की माता विराजमान हैं। ८। हे मरुद्गण! हम तुम्हारे सुशोभित, तेजस्वी और स्तुति के योग्य उस रथ को बुलाते हैं: उसके बीच में सुजाता मीह्लुषी मरुद्गण के साथ पूजी जाती हैं। ६। [२०]

सूक्त ५७ [पाँचवां अनुवाक]

(ऋषि – श्यावाश्व आत्रेयः । देवता—मरुतः । छन्द-जगती, त्रिष्टुप्)

आ रुद्रास इन्द्रवन्तः सजोषसो हिरण्यरथाः सुविताय गन्तन।
इयं वो अस्मत्प्रति हयते मतिस्तृष्णजे न दिन्र उत्सा उदन्यवे ॥१
वाशीमन्त ऋष्टिमन्तो मनीषिणः सुधन्वान इषुमन्तो निषङ्गिणः।
स्वश्वाः स्थ सुरथाः पृश्निमातरः स्वायुधा मरुतो याथना शुभम्॥२
धुनुथ द्यां पवंतान्दाशुषे वसु नि वो वना जिहते यामनो भिया।
कोपयथ पृथिवीं पृश्निमतारः शुभे यदुग्राः पृषतीरयुग्ध्वम् ॥३
वातत्विषो मरुतो वषनिर्णिजो यमाइव सुसदृशः सुपेशसः।
पिशङ्गाश्वा अरुणाश्वा अरेपसः प्रत्वक्षसो महिना द्यौरिवोरवः ॥४
पुरुद्रप्सा अञ्जिमन्तः सुदानवस्त्वेषसन्दृशो अनवभ्रराधसः।
सुजातासो जनुषा रुक्मवक्षसो दिवा अर्काअमृतं नाम भेजिरे॥५।२१

हे परस्पर दयायुक्त मन वाले, सुवर्णिम रथ में चढ़े हुए, इन्द्र के अनुगामी रुद्र पुत्रो! तुम हमारे सरलता से प्राप्त यज्ञ में पधारो! हम तुम्हारे निमित्त ही स्तोत्र पढ़ते हैं। तुम प्यास से पीड़ित तथा जल की कामना करते हुए गौतम के पास जैसे स्वर्ग से जल लाये थे, वैसे ही हमारे पास आओ। १। हे सुन्दर मति वाले मरुद्गण! तुम्हारे पास विविध आयुध, श्रेष्ठ अश्व तथा शोभित रथ हैं। तुम अस्त्रों से सुसज्जित हो। हमारे मंगल के लिए यहाँ आओ। २। हे मरुद्गण! तुम अन्तरिक्ष में मेघों को कँपाओ और हवि

वाले अन्न दो। तुम्हारे आने के डर से जंगल भी काँप जाते हैं । हे महान् पराक्रम वालो ! जब तुम आने के उद्देश्य से अश्व योजित करते हो, तब पृथिवी के समान रूप वाले, दर्शन के योग्य, काले और लाल रङ्ग के घोड़ों के स्वामी, पाप रहित तथा शत्रु का नाश करने वाले हैं । वे आकाश के समान अत्यन्त विस्तृत हैं । ४ । जल वृष्टि करने वाले,दानमय तेजस्वी, कभी क्षीण न होने वाले धन से युक्त, श्रेष्ठ जन्म वाले, हृदय पर हार धारण करने वाले, और पूजन के पात्र मरुद्गण आकाश से आकर अमृत गुण वाला रस प्राप्त करते हैं । ५ । [२१]

ऋष्टयो वो मरुतो असयोरधि सह ओजो वाह्वोर्वो वलं हितम् ।
नृम्णा शीर्षस्वायुधा रथेषु वो विश्वा वः श्रीरधि तनूषु पिपिशे ॥६
गोमदश्वावद्रथवत्सुवीर चन्द्रवद्राधो मरुतो ददा नः ।
प्रशस्ति नः कृणुत रुद्रियासो भक्षीय वोऽवसो दैव्यस्य ।७
हये नरो मरुतो मृलता नस्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः ।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद् गिरयो बृहदुक्षमाणाः ।।८।२२

हे मरुद्गण ! तुम्हारे कन्धे पर विशिष्ट आयुध दोनों भुजाओं में शत्रु का संहार करने वाली शक्ति, शिर पर मुकुट, रथ पर ध्वज और शरीर अत्यन्त सुशोभित है । ६ । हे मरुद्गण ! तुम हमको गौ, घोड़े, रथ, पुत्र, सुवर्ण तथा बहुत-सा अन्न दों । हे रुद्रपुत्रो ! तुम हमारी सम्पन्नता की वृद्धि करो । हम तुम्हारी दिव्य रक्षा को प्राप्त करें । ७ । हे मरुद्गण ! तुम हमारे अनुकूल होओ । तुम असीमित ऐश्वर्य वाले, कभी भी नष्ट न होने वाले, सत्य फल देने वाले, वर्षणशील, तरुण ज्ञानी स्तोत्रवान् तथा वृष्टि गुण से युक्त हो । ८ । [२२]

सूक्त ५८

(ऋषि—श्यावाश्व आत्रेयः । देवता—मरुतः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

तमुनूनं तविषोमन्तमेषां स्तुषे गणं मारुतं नव्यसीनाम् ।

य आश्वश्वा अमवद्वहन्त उतेशिरे अमृतस्य स्वराजः ॥१
त्वेषं गणं तवसं खादहस्तं धुनिव्रतं मायिनं दातिवारम् ।
मयोभुवो ये अमिता महित्वा वन्दस्व विप्र तुवि राधसो नॄन् ॥२
आ वो यन्तूदवाहासो अद्य वृष्टिं ये विश्वे मरुतो जुनन्ति ।
अयं यो अग्निर्मरुतः समिद्ध एतं जुषध्वं कवयो युवानः ॥३
यूयं राजानमिर्यं जनाय विभ्वतष्टं जनयथा यजत्राः ।
युष्मदेति मुष्टिहा बाहुजूतो युष्मत्सदश्वो मरुतः सुवीरः ॥४
अरा इवेदचरमा अहेव प्रप्र जायन्ते अकवा महोभिः ।
पृश्नेः पुत्रा उपमासो रभिष्ठाः स्वया मत्या मरुतः सं मिमिक्षुः ॥५
यत्प्रायासिष्ट पृषतीभिरश्वैर्वीलुपविभिर्मरुतो रथेभिः ।
क्षोदन्त आपो रिणते वनान्यवोस्रियो वृषभः क्रन्दतु द्यौः ॥६
प्रथिष्ट यामन्पृथिवी चिदेषां भर्तेव गर्भं स्वमिच्छवो धुः ।
वातान्ह्यश्वान्धुर्यायुयुज्रे वर्षं स्वेदं चक्रिरे रुद्रियासः ॥७
हये नरो मरुतो मृलता नस्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः ।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद् गिरयो बृहदुक्षमाणः ॥८।२३

आज इस यज्ञ-दिवस में हम स्तुति योग्य तेजस्वी मरुद्गण की स्तुति करते हैं । वे द्रुतगामी अश्वों के स्वामी, अपनी शक्ति से सर्वत्र पहुंचने वाले, जलों के स्वामी तथा अपने तेल से तेजस्वी हैं ।१। हे होता ! कान्तिमान्, कँपकँपी उत्पन्न करने वाले, धनों के प्रदान करने वाले तथा मेधावी मरुद्गण की परिचर्या करो । वे मरुत् सुखों के देने वाले हैं, उनकी महिमा का पार नहीं और वे असीमित ऐश्वर्य के स्वामी है, उन मरुद्गण को नमस्कार करो ।२। वे मरुद्गण संसार में व्याप्त हैं, वे वर्षा को प्रेरणा करने वाले हैं । वे जल को वहन करने वाले अभी तुम्हारे समक्ष पधारें । हे युवा और ज्ञानवान् मरुद्गण ! तुम्हारे निमित्त जो अग्नि प्रदीप्त हुए हैं, तुम उन्हीं के द्वारा हनारी साधना को स्वीकार करो ।३। हे पूज्य मरुद्गण ! तुम यजमान को पुत्र दो । वह पुत्र तेजस्वी, शत्रुओं का नाश करने वाला हो ।हे मरुद्गण! तुम्हारी ही कृपा द्वारा

अपने वाहु बल से शत्रु का संहार करने वाले तथा असंख्य घोड़ों के स्वामी पुत्र प्राप्त होते हैं ।४। हे मरुद्गण ! रथचक्र में लगे डण्डों के समान तुम सब एक साथ ही आविर्भूत हुए हो । तुम दोनों के सदृश एक समान हो । पृश्नि के पुत्र एक से ही हुए हैं, उनमें कोई कम तेज वाला नहीं है । वे वेगवान् हैं और स्वयं ही जल-वर्षा में प्रवृत्त होते हैं ।५। हे मरुद्गण ! जब तुम अश्व योजित कर दृढ़ पहिये वाले रथ पर चढ़कर आते हो, तब जल-धारा गिरती है । सूर्य किरणों द्वारा जल वृष्टि के करने वाला पर्जन्य नीचे की ओर मुख करके शब्द करता है ।६। मरुद्गण के आने से पृथिवी को उर्वराशक्ति मिलती है । जैसे पति द्वारा पत्नी में गर्भ स्थापति होता है, वैसे ही मरुद्गण पृथिवी पर अपने जल रूप गर्भांश को स्थापित करते हैं । वे रुद्र पुत्र द्रुतगामी घोड़ों को रथ के आगे जोड़ कर वर्षा-कार्य करते हैं ।७। हे मरुद्गण ! तुम हम कृपा करो । तुम सब में प्रमुख, महान् ऐश्वर्य के स्वामी, अविनाशी, सत्य फल वाले ज्ञानी, जलवर्षक, युवा, बहुत स्तुतियों के पात्र तथा वृष्टि के करने वाले हो ।।८।। [२३]

सूक्त ५६

(ऋषि—श्यावाश्वः । देवता—मरुतः । छन्द—त्रिष्टुप, जगती)

प्र वः स्पलक्रन्त्सुविताय दानवेऽर्चादिवे प्र पृथिव्या ऋतं भरे ।
उक्षन्ते अश्वान्तरुषन्त आ रजोऽनं स्वभानुं श्रथयन्ते अर्णवैः ॥१
अमादेषां भियसा भमिरेजति नौनं पूर्णा क्षरित व्यधिर्यंती ।
दूतेदृशो ये चितयन्त एमभिरन्तर्महे विदथे येतिर नरः ॥२
गवामिव श्रियसे श्रृङ्गमुत्तमं सूर्यो न चक्षु रजसो विसर्जने ।
अत्या इव सुभ्व श्चारवः स्थन मर्या इव श्रियसे चेतथा नरः ॥३
को वो महान्ति महतामुदश्नवत्कस्काव्या मरुतः को ह पौंस्या ।
यूयं ह भूमि किरण न रेजथ प्र यद्भरध्वे सुविताय दावने ॥४
अश्वाइवदरुषासः सबन्धवः शूराइव प्रयुधः प्रात युयुधः ।
मर्या इव सुवृधो वावृधुर्नर; सूर्यस्य चक्षुः मिनन्ति वृष्टिभिः ॥५

ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिदोऽमध्यमासो महसावि वावृधुः ।
सुजातासो जनुषा पृश्निमातरो दिवो मर्या आनोअच्छा जिगातना।।६
वयो न ये श्रेणीः पप्तुरोजसान्तान्दिवो बृहतः सानुनस्परि
अश्वास एषामुभये यथा विदुः प्र पर्वतस्य नभनूँरचुच्युवुः ।।७
मिमातु द्यौरदितिर्वीतये नः स दानुचित्रा उषसो यतन्ताम् ।
आचुच्यवुर्दिध्यं कोशंमेत ऋषे रुद्रस्य मरुतो गृणानाः ।।८।।२४

हे मरुद्गण ! मङ्गल की आकाँक्षा से हविदाता होता भले प्रकार तुम्हारी स्तुति करते हैं । हे होता ! तुम प्रकाशमान् सूर्य की स्तुति करो । हम पृथिवी को नमस्कार करते हैं । सर्वत्र व्याप्त होने वाली वर्षा को मरुद्गण गिराते हैं । वे अन्तरिक्ष में सर्वत्र सींचने वाले मेघों के साथ अपने तेज को दिखाते हैं । १ । जैसे मनुष्यों को जल पर ले जाती हुई नौका काँपती हुई चलती है वैसे ही मरुद्गण के डर से पृथिवी काँपती है । वे दूर से दिखाई पड़ते हैं और गति द्वारा जाते हैं वे नेता के समान मरुद्गण आकाश और पृथिवी के मध्य अधिक हवि प्राप्त करने का यत्न करते है । २ । हे मरुद्गण ! तुम गौओं के सींगों के समान ऊँचे मुकुटों को सिर पर शोभा के लिए धारण करते हो । जैसे दिवसों के स्वामी सूर्य अपनी किरणों को फैलाते हैं, वैसे ही तुम वृष्टि के लिये अपना दैदीप्यमान तेज फैलाते हो । तुम अश्वों के समान द्रुतगति वाले तथा सुन्दर हो । यजमान आदि के समान तुम भी यज्ञादि उत्तम कर्मों के ज्ञाता हो । ६ । हे मरुद्गण! तुम पूज्य हो । कौन तुम्हारी पूजा करने तथा तुम्हारे उद्देश्य से स्तोत्र-पाठ करने में समर्थ होगा? कौन तुम्हारी वीरता का कीर्तन करेगा ? क्योंकि जब तुम वृष्टि जल को गिराते हो तब रश्मियों के समान पृथिवी भी काँपने लगती है । ४ । अश्वों के समान द्रुतगामी, तेजस्वी, मैत्री-भाव से युक्त मरुद्गण वीरों के समान कर्मों में लगे हुए हैं । ऐश्वर्यभान् पुरुषों के समान वे अत्यन्त पराक्रमी होते हुए वृष्टि के द्वारा सूर्य को भी ढक लेते हैं । । ५ । इन मरुद्गण में कोई भी छोटा या बड़ा नहीं है । उन शत्रुओं का नाश करने वालों में कोई भी मध्यम श्रेणी का नहीं

है। सभी अपने तेज से बढ़े हुए हैं। हे उत्तम जन्म वाले, मनुष्यों का कल्याण करने वाले मरुद्गण! तुम आकाश-मार्ग से हमारे सामने पधारो। ६। हे मरुद्गण! तुम पंक्तिबद्ध पक्षियों समान बलपूर्वक बढ़े हुए और ऊँचे उठकर अन्तरिक्ष तक जाते हो। तुम्हारे घोड़े मेघ से वर्षा का जल गिराते हैं, यह बात देवता और मनुष्य सभी को ज्ञात है। ७। हमारा पालन करने के लिए आकाश और पृथिवी वर्षा को प्रकट करें। अत्यन्त दानमय स्वभाव वाली उषा हमारे कल्याण के लिये प्रयत्नशील हो। हे ऋषियो! तुम्हारी स्तुति से प्रसन्न हुए यह रुद्रपुत्र दिव्य जल की वर्षा करें। ८। [२४]

सूक्त ६०

(ऋषि—श्यावश्व आत्रेयः। देवता—मरुतः, अग्निः। छन्द—त्रिष्टुप्, जगती)

ईले अग्निं स्ववसं नमोभिरिह प्रसत्तो वि चयत्कृतं नः।
रथैरिव प्र भरे वाजयद्भिः प्रदक्षिणिन्मरुतां स्तोममृध्याम् ॥१
आ ये तस्थु पृषतीषु श्रुतासु सुखेषु रुद्रा मरुता रथेषु।
वना चिदुग्रा जिहते नि वो भिया पृथिवी चिद्रेजते पर्वतश्चित्॥२
पर्वतश्चिन्महि वृद्धो बिभाय दिवश्चित्सानु रेजत स्वने वः।
यत्क्रीलथ मरुत ऋष्टिमन्त आप इव सध्र्यञ्चो धवध्वे ॥३
वरा इवेद्रैवतासो हिरण्यैरभि स्वधाभिस्तन्वः पिपिश्रे।
श्रिये श्रेयांसस्तवसो रथेषु सत्रा महांसि चक्रिरे तनषु ॥४
अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते स भ्रातरो वावृधुः सौभगाय।
युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः ॥५
यदुत्तमे मरुतो मध्यमे वा यद्वावमे सुभगासो दिवि ष्ठ।
अतो नो रुद्रा उत वान्व स्याग्ने चित्ताद्धविषो यद्यजाम ॥६
अग्निश्च यन्मरुतो विश्ववेदसो दिवो वहध्व उत्तरादधि ष्णुभिः।
ते मन्दसाना धुनयो रिशादसो वामं धत्त यजमानाय सुन्वते ॥७
अग्ने मरुद्भिः शुभयद्भिर्ऋक्वभिः सोमं पिब मन्दसानो गणश्रिभिः।
पावकेभिर्विश्वमिन्वेभिरायुभिर्वैश्वानर प्रदिवा केतुना सजूः॥८।२५

हम 'श्यावाश्य' ऋषि रक्षा करने वाले अग्नि का सुन्दर स्तोत्र से स्तवन करते हैं। वे इस यज्ञ में पधार कर हमारे स्तोत्र को जानें। जैसे

रथ अपने लक्ष्य पर पहुँचता है, वैसे ही हम अन्न की कामना वाले स्तोत्रों द्वारा अपने अभीष्ट की याचना करते हैं। हम प्रदक्षिणा करने के पश्चात् अपने स्तोत्र को बढ़ावें। १। हे रुद्र पुत्रो! तुम प्रसिद्ध अश्वों से जुते हुए सुन्दर सुसज्जित रथ पर चढ़कर चलो। जब तुम रथ पर चढ़ते हो तब तुम्हारे डर से जङ्गल भी काँप जाते हैं। २। हे मरुद्गण! तुम्हारे भयंकर गर्जन को सुनकर विशाल पर्वत भी डर जाते हैं और अन्तरिक्ष के ऊँचे प्रदेश भी कम्पायमान होते हैं। हे मरुतो! तुम शस्त्रधारी हो, जब तुम क्रीड़ा विशिष्ट होते हो तब जल के समान दौड़ते हो। ३। जैसे विवाह की कामना वाला वैभवशाली युवक सुवर्णाभूषणों से सुसज्जित होता है वैसे ही सर्वोत्कृष्ट एवं पराक्रमी मरुद्गण रथ पर चढ़कर अपने तेज से सुसज्जित होते हैं। ४। यह मरुद्गण एक साथ ही जन्मे हैं। इनमें छोटा बड़ा कोई नहीं है। यह परस्पर बन्धु भाव रखते हुए वृद्धि को प्राप्त होते हैं। इस श्रेष्ठ अनुष्ठानों को करने वाले नित्य युवा मरुद्गण के पिता रुद्र और माता रूपिणी पृथिवी मरुद्गण के लिए सुन्दर दिन प्रकट करें। ५। हे भाग्यवान् मरुद्गण! तुम उत्कृष्ट आकाश में मध्याकाश अथवा नीचे के आकाश में अवस्थित रहते हो। हे रुद्रपुत्रो! तुम उन स्थानों से हमारे पास आओ। हे अग्ने! हमारे द्वारा आज दी जाने वाली हवि को तुम जानो। ६। हे मरुद्गण! तुम सब जानते हो तुम और अग्नि आकाश के सर्वोच्च भाग में रहने हो। तुम हमारी हवि और स्तुति से प्रसन्न होते हुए शत्रुओं का वध करो और सोम सिद्ध करने वाले यजमानों को इच्छित ऐश्वर्य दो। ७। हे अग्ने! तुम प्राचीन काल से ही ज्वालाओं से युक्त रहते हुए सुन्दर शोभाययान, पूज्या शोधनकर्ता तथा प्रीति के देने वाले हो। तुम दीर्घायुष्य मरुद्गण के साथ आकर सोम रस पियो। ८। [२५]

सूक्त ६१

(ऋषि—श्यावाश्व आत्रेयः। देवता—मरुतः, तरन्त राजा की महिषी शशीयसी प्रभृति। छन्द—गायत्री, अनुष्टुप् बृहती)

के य नरः श्रेतमा य एकएक आयय । परमस्याः परावतः ।।१
क्व वोऽश्वा क्वा भीशवः कथं शेककथायय। पृष्ठे सदो नसोर्यमः।।२
जघने चोद एषाँ वि सक्थानि नरो यमुः । पुत्रकृथे न जनयः ।।३
परा वीरास एतन मर्यासो भद्रजानयः । अग्नितपो यथासथ ।।४
सनत्साश्व्यं पशुमुत गव्य शतावयम् ।
श्यावाश्वस्तुताय या दोर्बीरायोपबर्बृहत् ।।५।२६

हे प्रमुख नेताओ ! तुम कौन हो ? तुम अन्तरिक्ष से एक-एक वार यहाँ पधारो । १ । हे मरुतो ! तुम्हारे घोड़े कहाँ हैं ? लगाम कहाँ है ? तुम्हारा गमन कैसा है ? अश्वों की पीठ पर आस्तरण और दोनों नाकों में रस्सी दिखाई देती हैं । २ । शीघ्र चलने के लिये घोड़ों की जाँघों पर चाबुक लगाई जाती हैं । मरुद्गण अश्वों को अपनी जांघों को चौड़ा करके तेजी से दौड़ने के लिये प्रेरित करते हैं । ३ । हे शत्रुओं का नाश करने वालो ! वीरो! हे मनुष्यों का मङ्गल करने वालो तथा उत्तम जन्म वालो ! हे मरुतो ! तुम अग्नि में तपाये गये ताम्रपत्र के समान वर्ण वाले दिखाई देते हो । ४ । 'श्यावाश्व' ने जिसका स्तवन किया, जिसने वीर 'तरन्त' को अपने वाहु-बन्धन में बाँध लिया, वही 'तरन्त' महिषी शशीयसी हमारे लिए घोड़े, गौ तथा पशु धन देती . । ५ । [२६]

उतत्वा स्त्री शशीयसी पुंसो भवति वस्यसी । अदेवत्रादराधसः।।६
वि या जानाति जसुरिं वि तृष्यन्तंवि कामिनम् । देवत्राकृणुतेमनः।।७
उतघा नेमो अस्तुतः पुमाँ इति ब्रुवे पणिः । स वैरदेय इत्समः ।।८
उत मेऽरपद्युवतिममन्दुषी प्रति श्यावाय वर्तनिम् ।
वि रोहिता पुरुमीलहाय येमतुर्विप्राय दीर्घयशसे ।।९
यो मे धेनूनां शतं वैददश्विर्यथा ददत् । तरन्तइव महना ।।१०।२७

जो मनुष्य देवताओं की उपासना नहीं करता और दान नहीं करता उस मनुष्य से 'शशीयसी' पूर्णतः श्रेष्ठ हैं । ६ । वह 'शशीयसी' दुःखी, प्यासे तथा धन की उपासना करने वाले को जानती है । वह देवताओं की प्रीति में अपनी बुद्धि लगाती है । ७ । 'शशीयसी' के अर्द्धाङ्ग

रूप पति 'तरन्त' की स्तुति करके भी हम कहते हैं कि उनकी स्तुति ठीक प्रकार से नहीं हो पाई । वे दान के वारे में सब समय एक समान ही हैं ।८। युवती शशीयसी ने प्रसन्नता से 'श्वावाश्व' को मार्ग दिखाया था । उसके दिये हुए लाल रङ्ग के दोनों घोड़े हमको मेधावी, तेजस्वी पुरुमीह्ल के पास पहुंचाते हैं ।९। 'विददश्व'' के पुत्र 'पुरुमीह्ल' ने भी 'तरन्त' के समान ही हमको सौ गायें तथा महान् ऐश्वर्य प्रदान किया था ॥१०॥

२७]

य ईं वहन्त आशुभिः पिबन्तोमदिर मधु । अत्र श्रवांसि दधिरे॥११
येषां श्रियाधि रादसी विभ्राजन्ते रथेष्वा । दिवि रक्म इवोपरि॥१२
युवा स मारुतो गणस्त्वेषरथो अनेद्यः । शुभयावाप्रतिष्कुतः ॥१३
यूयं मतं विपन्यव प्रणेतार इत्था धिया ।
श्रोतारो यामहूतिषु ॥१५।२८

जो मरुद्गण द्रुतगामी घोड़ों पर चढ़कर हर्षोत्पादक सोमरस को पीते हुए इस स्थान पर आये थे, वे मरुद्गण यहां विविध प्रकार की स्तुतियों को ग्रहण करते हैं ।११। जिन मरुतों के तेज से आकाश-पृथिवी व्याप्त होते हैं, ऊपर दिव्य लोक में तेजस्वी सूर्य के समान वे मरुद्गण रथ पर चढ़े हुए विशिष्ट तेज से युक्त होते हैं ।१२। वे मरुद्गण नित्य युवा, तेजोमय रथ वाले, अनद्य, सुन्दर गति से चलने वाले और कभी न रुकने वाले हें ।१३। जल वर्षा के निमित्त उत्पन्न, शत्रुओं को कंपाने वाले और पाप से रहित मरुद्गण जिस स्थान पर पुष्टि को प्राप्त हुए, उस स्थान का ज्ञाता कौन है ? ।१४। हे स्तुति की कामना वाले मरुद्गण! जो मनुष्य तुम्हें अपने कर्म द्वारा प्रसन्न करता है, उन्हें तुम स्वर्गादि की प्राप्ति कराते हो । यज्ञ में बुलाये जाने पर तुम आह्वान को सुनते हो ॥१५॥

[२८]

ते नो बसूनिकाम्या पुरश्चन्द्रारिशादसः । आयज्ञियासो ववृत्तन॥१६
एतं मे स्तोममूर्म्यो दार्भ्याय परावह । गिरो देवि रथोरिव ॥१७
उत मे वोचतादिति सुतसोमे रथवीतौ । न कामो अप वेति मे ॥१८

एष क्षेति रथबीतिर्मघवा गोमतीरनु । पर्वतेष्वापश्रितः ॥१९।२९

हे शत्रुओं का नाश करने वाले, पूज्य, ऐश्वर्यवान् मरुद्गण ! तुम हमको इच्छित धन प्रदान करो ।१६। हे रात्रिदेवी ! तुम हमारे पास से मरुतों की स्तुति को उनके पास पहुंचाओ । यह स्तोत्र मरुद्गण के लिये है । हे देवी ! जैसे रथ वाला रथ पर विविध वस्तुऐं रखकर लक्ष्य पर पहुंचता है, वैसे ही तुम हमारे इस सम्पूर्ण स्तोत्र को पहुंचाओ ।१७। हे रात्रि देवी ! सोम की समाप्ति पर "रथवीति" को यह बताना कि मेरी अभिलाषा अभी न्यून नहीं हुई है ।१८। वे "रथवीति" "गोमती" तट पर रहते हैं । उनका स्थान हिमयुक्त पर्वत पर अवस्थित है ॥१९॥ [२९]

सूक्त ६२

(ऋषि—श्रुतविदात्रेयः । देवता—मित्रावरुणो । छन्द–त्रिष्टुप्)

ऋतेन ऋतमपहितं ध्रुवं वां सूर्यस्य यत्र विमुचन्त्यश्वान् ।
दश शाता सह तस्थुस्तदेकं देवानां श्रेष्ठं वपुषामपश्यम् ॥१
तत्सु वां मित्रावरुणा महित्वमीर्मा तस्थुषीरहभिदुह्रे ।
विश्वा पिन्वथः स्वसरस्य धेना अनु वामेकः पविरा ववर्त्त ॥२
अधारयतं पृथिवीमुत द्यां मित्रराजाना वरुणा महोभिः ।
वर्धयततोषधीः पिन्वतं गा अव वृष्टिं सृजतं जीरदानू ॥३
आ वामश्वास सूयुजो वहन्तु यतरश्मय उप यन्त्ववार्क् ।
घृतस्य निर्णिगनु वर्तते वामुप सिन्धवः प्रदिवि क्षरन्ति ॥४
अनुश्रुताममतिं वर्धदुर्वीं बर्हिरिव यजुषा रक्षमाणा ।
नमस्वन्ता धृनदसाधिगर्ते मित्रासाथे वरुणेलास्वन्तः ॥५।३०

हम तुम्हारे आश्रयभूत, जल द्वारा ढके हुए, अनादिकालीन, सत्यरूप सूर्यमंडल को देखते हैं । उस स्थान में अवस्थित घोड़ों को स्तोता छोड़ते है । उस सूर्यमण्डल में सहस्रों किरणें रहती हैं । तेजस्वी अग्नि आदि देवताओं के बीच हमने सूर्य के उस उत्तम मंडल के दर्शन किये ।१। हे मित्रावरुण ! तुम्हारी महिमा अत्यन्त प्रशस्त हैं जिसके द्वारा गतिशील

सूर्य के तेज को बढ़ाते हो । तुम्हारा एक मात्र रथ अनुक्रम से घूमता है ।२। हे मित्रावरुण ! स्तुति करने वाले यजमान तुम्हारी कृपा से राज्य प्राप्त करते हैं । तुम दोनों अपने पराक्रम से आकाश-पृथिवी को धारणा करते हो । हे शीघ्र देने वाले मित्रावरुण ! तुम औषधियों और गौओं की वृद्धि के लिये जल वृष्टि करो ।३। हे मित्रावरुण ! तुम्हारे अश्व रथ में भले प्रकार जुतकर तुम दोनों को वहन करें । वे सारथि के नियन्त्रण में चलें । साकार जल तुम्हारा अनुगमन करता है । तुम्हारी कृपा से ही प्राचीन नदियां बहती हैं ।४। हे अन्न तथा बल से युक्त मित्रावरुण ! तुम दोनों शरीर के तेज को बढ़ाते हो । यज्ञ की रक्षा जैसे मंत्र से होती है, वैसे ही तुम पृथिवी की रक्षा करो । तुम दोनों यज्ञ स्थान में रथ पर चढ़ो ॥५॥ [३०]

अक्र विहस्ता सुकृते परस्पा यं त्रासाथे वरुणेलास्वन्तः ।
राजाना क्षत्रमहृणीयमाना सहस्रस्थूण विभृथः सह द्वौ ॥६
हिरण्यनिर्णिगयो अस्य स्थूणां वि भ्राजते दिव्य श्वाजनीव ।
भद्रे क्षेत्रे निमिता तिल्विले वा सनेम मध्वो अधिगर्त्यस्य ॥७
हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टावयः स्थूण मुदिता सूर्यस्य ।
आ रोहथो वरुण मित्र गर्तमश्चक्षाथे अदितिं दितिं च ॥८
यद्बंहिष्ठं नातिविधे सुदानू अच्छिद्रं शर्म भुवनस्य गोपा ।
तेन नो मित्रावरुणावविष्टं सिषासन्तो जिगीवांसः स्याम ॥९।३१

हे मित्रावरुण ! तुम दोनों जिस यजमान की यज्ञ में रक्षा करते हो । उस सुन्दर स्तुति करने वाले यजमान को देने वाले बनो । तुम दोनों ऐश्वर्यशाली क्रोध से रहित होकर सहस्र स्तम्भ युक्त मकान के धारण करने वाले हो ।६। इनको रथ तथा कील आदि सभी सुवर्ण के हैं । यह रथ अन्तरिक्ष में विद्युत् के समान सुशोभित होता है । हम कल्याणकारी स्थान में सोमरस स्थापित करें ।७। हे मित्रावरुण ! तुम उषाकाल में सूर्योदय होने पर यज्ञ में आते समय सुवर्णमय रथ पर चढ़ो और अखण्ड भूमि तथा इधर-उधर बिखरी हुई प्रजा को देखो ।८। हे दानमय तथा संसार की रक्षा करने वाले मित्रावरुण ! जो सुख[illegible]

टूटने योग्य, कभी क्षीण होने वाला तथा महान् है, उस सुख को तुम धारण करने वाले हो । हमारा उसी सुख द्वारा पालन करो । हम इच्छित धन पावें और शत्रुओं को जीतें ।६।३१

सूक्त ६३

(ऋषि—अर्चनाना आत्रेयः। देवता—मित्रावरुणौ । छन्द-जगती)

ऋतस्य गोपावधि तिष्ठथो रथं सत्यधर्माणा परमे व्योमनि ।
यमत्र मित्रावरुणावथो युवं तस्मै वृष्टिर्मधुमत्पिन्वते दिवः ॥१
सम्राजावस्य भुवनस्य राजथो मित्रावरुणा विदथे स्वर्दृशा ।
वृष्टिं वां राधो अमृतत्वमीमहे द्यावापृथिवी वि चरन्ति तन्यवः ॥२
सम्राजा उग्रा वृषभा दिवस्पती पृथिव्या मित्रावरुण विचर्षणी ।
चित्रेभिरभ्रैरुप तिष्ठथो रवं द्यां वर्षयथो असुरस्य मायया ॥३
माया वां मित्रावरुणा दिवि श्रितो सूर्यो ज्योतिश्चरति चित्रमायुधम्।
तमभ्रेण वृष्ट्या गूहथो दिवि पर्जन्य द्रप्सा मधुमन्त ईरते ॥४
रथं युञ्जते मरुतः शुभे सुखं शूरो न मित्रावरुणा गविष्टिषु ।
रजांसि चित्रा विचरन्ति तन्यवो दिवः सम्राजा पयसा न उक्षतम्॥५
वाचं सु मित्रावरुणा विरावतीं पर्जन्यश्चित्रां वदति त्विषीमतीम् ।
अभ्रा वसत मरुतः सु मायया द्यां वर्षयतमरुणामरेपसम् ॥६
धर्मणा मित्रावरुणा विपश्चिता व्रता रक्षेथे असुरस्य मायया ।
ऋतेन विश्वं भुवन वि राजथः सूर्यमा धत्थो दिविचित्र्यरथम्॥७।१

हे जल रक्षक, सत्य-धर्म से युक्त मित्रावरुण ! हमारे यज्ञ में आने के लिये तुम दोनों रथ के ऊपर चढ़ते हो। इस यज्ञ में तुम जिस यजमान की रक्षा करते हो, उस यजमान के लिये आकाश से मधुर जल की वर्षा होती है ।१। हे स्वर्गद्रष्टा मित्रावरुण ! इस यज्ञ में विराजकर तुम विश्व का शासन करते हो । हम तुमसे वर्षा रूप अन्न तथा दिव्य ऐश्वर्य की याचना करते हैं । तुम दोनों की महती किरणें आकाश और पृथिवी के बीच घूमती हैं ॥२॥

हे मित्र और वरुण ! तुम दोनों अत्यन्त सुशोभित, जल की वर्षा करने वाले पराक्रमी आकाश-पृथिवी के स्वामी सर्वद्रष्टा हो । तुम दोनों अद्भुत रूप वाले मेघों के साथ स्तोत्र सुनने के लिए आओ । फिर वर्षाकारी पर्जन्य के बल से आकाश से जल धाराओं को गिराओ ।४। हे मित्रावरुण ! जब ज्योतिर्मय भास्कर अन्तरिक्ष में घूमते हैं, तब तुम दोनों की माया स्वर्ग में रहती है । तुम दोनों आकाश में मेघ तथा वर्षा द्वारा सूर्य का पालन करते हो । हे पर्जन्य ! मित्रावरुण की प्रेरणा से मधुर जलधार गिरती है ।४। हे मित्रावरुण ! जैसे वीर पुरुष युद्ध में जाने के लिए अपने रथ को सजाता है, वैसे ही तुम दोनों के सहयोग से वृष्टि के निमित्त मरुद्गण अपने कल्याणकारी रथ को सजाते हैं । जल वर्षा के लिए मरुद्गण विभिन्न लोकों में घूमते हैं । हे शोभनीय देवताओ ! तुम मरुतों के साथ हम पर जल वृष्टि करो ।५। हे मित्रावरुण ! तुम दोनों की प्रेरणा से ही मेघ अन्न-साधन करने वाला अद्भुत गर्जन करता है । उन मेघों की रक्षा मरुद्गण अपनी बुद्धि से करते हैं । तुम दोनों भी उनके साथ अरुण वर्ण वाले पाप-रहित आकाश से वर्षा करते हो ।६। हे मेधावी मित्रावरुण ! तुम दोनों, संसार का उपकार करने वाले वर्षा आदि कर्म द्वारा यज्ञ का पालन करते हो । जल वर्षा करने वाले पर्जन्य की शक्ति द्वारा जल को उज्ज्वल बनाते हो । तुम पूजनीय तथा तेजस्वी सूर्य को सूर्य मंडल में स्थापित करो।७। (१)

सूक्त ६४

(ऋषि-अर्चनाना आत्रेयः । देवता मित्रावरुणः । छन्द-अनुष्टुप्, उष्णिक्, पंक्तिः)

वरुणं वो रिशादसमृचा मित्रं हवामहे ।
परि व्रजेव बाह्वोर्जगन्वांसा स्वर्णरम् ॥१
ता बाहवा सुचेतुना प्र यन्तमस्मा अर्चते ।
शेवं हि जार्यं वा विश्वासु क्षासु जोगुवे ॥२
तन्नूनमश्यां गति मित्रस्य वाया पथा ।
अस्य प्रियस्य शर्मण्यहिंसानस्य सश्चिरे ॥३
युवाभ्यां मित्रावरुणोपमं धेयामृचा ।

युद्ध क्षये मघोनां स्तोतृणां च स्पूर्धसे ॥४
आ नो मित्र सुदीतिभिर्वरुणश्च सदस्थ आ ।
स्वे क्षये मघोनां सखीनां च वृधसे ॥५
युवं नो येषु वरुण क्षत्रं बृहच्च बिभृथः ।
उरु णो वाजसातये कृतं राये स्वस्तये ॥६
उच्छन्त्यां मे यजता देवक्षत्रे रुशद्गवि ।
सुतं सोमं न हस्तिभिरापड्भिर्धावतनराबिभ्रतावर्चनानसम् ॥७।२

हे मित्रावरुण ! इस मन्त्र द्वारा हम, दोनों को आहूत करते हैं। तुम अपने भुजबल से शत्रुओं को हटाओ और स्वर्ग के मार्ग को दिखाओ।१। हे मित्रावरुण ! तुम दोनों विद्वान हो। हम स्तोताओं को तुम दोनों ही इच्छित धन दो। हम सुन्दर हाथ द्वारा तुम दोनों को प्रणाम करते हैं। तुम दोनों का दिया हुआ प्रशंसनीय सुख सभी स्थानों में व्याप्त है।२। हम अभी चलें। मित्र द्वारा दिखाए गए मार्ग पर हम चलें। अहिंसक मित्र का श्रेष्ठ कल्याण हमको घर में प्राप्त-हो।३। हे मित्रावरुण ! तुम दोनों की स्तुति करते हुए हम ऐसा ऐश्वर्य प्राप्त करेंगे,जिससे सभी स्तुतिकर्त्ता हमारे धन के प्रति ईर्ष्यालु होंगे।४। हे मित्रावरुण ! तुम सुन्दर तेज से युक्त होकर हमारे यज्ञ में पधारो। तुम धनवान यजमानों के घर में तथा मित्रों के घर में ऐश्वर्य की वृद्धि करो।५। हे मित्रावरुण ! हमारी स्तुतियों के लिए तुम असीमित अन्न बल धारण करते हो। तुम दोनों ही हमको अन्न और सुख प्रदान करो।६। हे मित्रावरुण ! हे स्वामिन् ! तुम दोनों उषा काल में, सुन्दर रश्मियुक्त प्रातः वेला में यज्ञगृह में पूजे जाते हो। उस गृह में हमारे द्वारा सुसिद्ध सोमरस को देखो। तुम दोनों स्तोता के ऊपर प्रसन्न होते हुए गतिशील घोड़े पर चढ़कर शीघ्र आओ।७।

सूक्त ६५

(ऋषि-रातहव्य आत्रेय। देवता-मित्रावरुणौ। छन्द-अनुष्टुप्‌वृष्णिक् पक्तिः)

यश्चिकेत स सुक्रतुर्देवत्रा स ब्रवीतु नः।

वरुणो यस्य दर्शता मित्रो वा वनते गिरः ।।१
ता हि श्रेष्ठवर्चसा राजाना दीर्घश्रुत्तमा ।
ता सत्पती ऋतावृध ऋतवाना जने जने ।।२
ता वामियानोऽवसे पूर्वा उप ब्रुवे सचा ।
स्वश्वासः सु चेतुना वाजां अभि प्रदावने ।।३
मित्रो अंहोश्चिहादुरु क्षयाय गातुं वनते ।
मित्रस्य हि प्रतूर्गत। सुमतिरस्ति विधुतः ।।४
वयं मित्रस्यावसि स्याम सप्रथस्तमे ।
अनेहसस्त्वोतयः सत्रा वरुणशेषसः ।।५
युवं मित्रेमं जन यतथः सं च नयथः ।
मा मघोनःपरि ख्यत मो अस्माकमृषीणां गोपीथे न उरुष्यतम् ।।६।३

हे मित्रावरुण ! जो मनुष्य देवताओं में तुम दोनों के स्तोत्र को जानता है, वह उत्तम अनुष्ठान करने वाला है। वह सुन्दर कर्म करने वाला स्तोता हमको स्तुति बतावे, जिन स्तुतियों को सुन्दर रूप वाले मित्रावरुण स्वीकार करते हैं ।१। अत्यंत तेजस्वी,ईश्वर रूप मित्रावरुण सुदूर निवास करते हुए भी हमारे आह्वान को सुन लेते हैं। यजमानों के ईश्वर और यज्ञ की वृद्धि करने वाले यह दोनों देवता प्रत्येक यजमान के मङ्गल करने के लिए घूमते फिरते हैं ।२। हे मित्रावरुण ! तुम दोनों प्राचीन हो हम तुम्हारे समक्ष उपस्थित हुए अपनी रक्षा कामना करते हुए तुम्हारी पूजा करते हैं । हम द्रुतगति वाले घोड़ों के स्वामी होकर अन्न के निमित्त सुन्दर ज्ञान वालों का स्तवन करते हैं ।३। मित्रदेवता अधम स्तोता को भी उत्तम घर में रहने का उपाय बताते हैं। हिंसक स्वभाव वाला भी यदि उनकी प्रीति करे तो वे उसके प्रति भी कल्याण भावना रखते हैं ।४। दुखों का निवारण करने वाले मित्र देवता की महान् रक्षा को हम यजमान प्राप्त कर सकें। हे मित्र ! हम तुम्हारे द्वारा पापों से बचाये जाते हुए,तुम्हारे आश्रय में एक समय में ही वरुण देवता के प्रजा रूप माने जायें ।५। हे मित्र ! हे वरुण ! हम स्तोता तुम दोनों का स्तवन करते हैं।

तुम दोनों ही हमारे समीप पधारो। यहाँ आकर हमको सभी इच्छित वस्तुओं को प्राप्त कराओ। हे मित्रावरुण ! हम अन्न के स्वामी हैं। तुम हमको त्यागना नहीं, तुम हमारे पुत्रोंसे विमुख मत होना। हमारे सोमयास में तुम दोनों सर्व प्रकार हमारे रक्षक होना।६। [३]

सूक्त ६६

(ऋषि—रातहव्य आत्रेयः। देवता—मित्रावरुणौ। छन्द—अनुष्टुप्)

आ चिकितान सुक्रतू देवौ मर्त रिशादसा।
वरुणाय ऋतपेशसे दधीत प्रयसे महे ॥१
ता हि क्षत्रमविह्नत सम्यगसुर्यमाशाते।
अध व्रतेव मानुष स्वर्ण धायि दर्शतम् ॥२
ता वामेषे रथानामुर्वी गव्यूतिमेषाम्।
रातहव्यस्य सुष्टुतिं दधृक्स्तोमैर्मनामहे ॥३
अधा हि काव्या युवं दक्षस्य पूर्भिरद्भुता।
नि केतुना जनानां चिकेथे पूतदक्षसा ॥४
तदृतं पृथिवी बृहच्छ्रव एष ऋषीणाम्।
ज्रयसानावरं पृथ्वति क्षरन्ति यामभिः ॥५
आ यद्वामीयचक्षसा मित्र वयं च सूरयः।
व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये ॥६।४

हे स्तुतियों के जानने वाले मनुष्यो ! तुम शत्रुओं का संहार करने तथा अनेक उत्तम कर्मों के करने वाले दोनों देवताओं का आह्वान करो। हवि रूप अन्न तथा रस पूज्य वरुण को अर्पण करो जो अन्नों के स्वामी हैं।१। तुम दोनों का पराक्रम कभी नष्ट न होने वाला तथा राक्षसों का नाश करने वाला है। जैसे सूर्य में अन्तरिक्ष मे प्रकाशित होते हैं वैसे ही तुम दोनों का प्रकाशित बल यज्ञ स्थान में देदीप्यमान होता है।२। हे मित्रा-वरुण ! हविरन्न-युक्त श्रेष्ठ स्तुति द्वारा शत्रुओं को वशीभूत करने वाला

सामर्थ्य लाभ करते हुए तुम दोनों हमारे इस रथके आगे मार्ग की रक्षाके लिए चलते हो । उस समय हम, दोनों का स्तवन करते हैं ।३। हे स्तुति के पात्र, अत्यन्त बल वाले दोनों देवताओ ! हमारी परिपूर्ण करने वाली स्तुति द्वारा तुम दोनों अत्यन्त अद्भुत होते हो । क्योंकि तुम दोनोंही प्रीति युक्त हृदय से हमारे स्तोत्र के जानने वाले हो ।४। हे भूमिदेवो ! हम ऋषियों का अभीष्ट साधन करने के लिये तुम्हारे ऊपर जल स्थापित करते हैं। वे गतिमान् दोनों देवता अपने नियम और गति द्वारा बहुत जल की वर्षा करते हैं ।५। हे मित्रावरुण ! तुम दूरदर्शी हो । हम स्तुति करने वाले तुम दोनों को बुलाते हैं । हम तुम्हारे अत्यन्त विशाल और बहुतों के द्वारा जाने हुए आश्रय को प्राप्त करें ॥६॥ [४]

सूक्त ६७

(ऋषि—यजत आत्रेयः । देवता—मित्रावरुणौ । छन्द-अनुष्टुप्)

बलित्था देव निष्कृतमादित्या यजतं वृहत् ।
वरुण मित्रायंमन्वर्षिष्ठं क्षत्रमाशाथे ॥१
आ यद्योनिं हिरण्यं वरुण मित्र सदथः ।
धर्तारा चर्षणीनां यन्त सुम्नं रिशादसा ॥२
विश्वे हि विश्ववेदसो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
व्रता पदेव सश्चिरे पान्ति मर्त्यं रिषः ॥३
ते हि सत्या ऋतस्पृश ऋतावानो जनेजने ।
सुनीथासः सुदानवो होश्चिदुरुचक्रयः ॥४
को नु वां मित्रास्तुतो वरुणो वो तनूनाम् ।
तत्सु बामेषते यतिरत्रिभ्य एषते मतिः ॥५।५

हे तेजस्वी अदिति पुत्र मित्र, वरुण और अर्यमा ! तुम सब यजन योग्य, वर्द्धमान, वृहद् बल के तात्काल धारण करने वाले हो और अत्यन्त क्षमतायुक्त हो ।१। हे मित्रावरुण ! तुम मनुष्योंकी रक्षा करने वाले और शत्रुओं का नाश करने वाले हो । जब तुम इस सुन्दर यज्ञ स्थल में आते हो

तव हमारा मङ्गल करते हो ।२। सबके जानने वाले मित्र, बरुण और अर्यमा अपने-अपने स्थानके अनुरूप हमारे इस यज्ञ-गृह में विराजमान होते हैं और हिंसा करने वाले पापी असुरोंसे मनुष्यों की रक्षा करते हैं ।३। वे भित्रावरुण सत्य मार्ग के दिखाने वाले, जल की वर्षा करने वाले तथा यज्ञ की रक्षा करने वाले हैं । वे प्रत्येक मनुष्य को सत्य मार्ग दिखाते और घन देते हैं । वे निम्न कोटि के स्तोता को भी ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ।४। हे मित्रावरुण ! हमारे द्वारा तुम दोनों की स्तुतियाँ करने पर भी कौन ऐसा है जिसकी स्तुति नहीं हुई ? अर्थात् तुम दोनों ही स्तुत्य हो । हम अल्प बुद्धि वाले अत्रि वंशीय स्तोता तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥५॥ [५]

सूक्त ६८

(ऋषि -यजत आत्रेयः । देवता–मित्रावरुणौ । छन्द-गायत्री)

प्र वो मित्राय गायत वरुणायं विपा गिरा । महिक्षत्रावृतं बृहत् ॥१
सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च । देवा देवेषु प्रशस्ता॥२
ता नः ज्ञक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य । महि वां क्षत्रं देवेषु॥३
ऋतमृतेन सपन्तेषिरं दक्षमाशाते । अद्रुहा देवो बर्धेते ॥४
बृष्टिद्यावा रीत्यापेषस्पती दा मत्याः । बृहन्त गर्तमाशाते ॥५।६

हे ऋत्विको ! तुम मित्रावरुण की भले प्रकार स्तुति करो । हे महान् पराक्रमी मित्रावरुण ! तुम दोनों हमारे इस श्रेष्ठ महायज्ञमें आगमन करो ।१। मित्रावरुण दोनों ही सबके अधीश्वर जल के उत्पन्न करने वाले, तेजस्वी और देवताओं में अत्यन्त स्तुतियों के पात्र हैं । हे ऋत्विजो ! उन दोनों की परिचर्या करो ।२। वे दोनों देवता हमको पार्थिव तथा दिव्य दोनों प्रकार का ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हैं । मित्रावरुण ! तुम दोनों प्रशंसित पराक्रमी देवताओंमें प्रसिद्ध हो । हम उस पराक्रम का गान करते हैं ।३। वे दोनों देवता जल द्वारा यज्ञका स्पर्श करते हुए यजमानको सम्पन्न करते हैं । हे मित्रावरुण! तुम्रारा कोई द्रोही नहीं है । तुमदोनों अत्यन्तबढ़े हुए हो ।४। इन दोनों की प्रेरणा से अन्तरिक्ष जल-वर्षा करता है,जो दोनों

इच्छित फल का सम्पादन करने वाले हैं, जो वृष्टिदायक होने के कारण अन्नों के स्वामी हैं और जो दानशील व्यक्ति पर सदा अनुग्रह करते हैं, वे दोनों देवता मित्र और वरुण यज्ञ में आने के लिये रथ पर चढ़ते हैं ॥ ५ ॥ [६]

सूक्त ६९

(ऋषि—उरुचक्रिरात्रेय: । देवता—मित्रवरुणौ । छन्द—त्रिष्टुप्)

त्री रोचाना वरुणत्रीँरुत द्यून्त्रीणि मित्र धारयथो रजांसि ।
वाबृधानावमतिं क्षत्रियस्यानु व्रतं रक्षमाणावजुर्यम् ॥१
इरावतीर्वरुण धेनवो मधुमद्वां सिन्धवो मित्र दुह्ने ।
त्रयस्तस्थुर्वृषभासस्तिसृणां धिषणानां रेतोधा वि द्युमन्तः ॥२
प्रातर्देवीमदितिं जोहवीमि मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य ।
राये मित्रावरुणा सर्वतातेले तोकाय तनयाय शं योः ॥३
या धर्तारा रजसो रोचनस्योतादित्या दिव्या पार्थिवस्य ।
न वां देवा अमुता आ मिनन्ति व्रतानि मित्रावरुणा ध्रुवाणि ॥४।७

हे मित्रावरुण ! तुम दोनों ज्योतिर्मान तीनों दिव्य लोकों के धारण करने वाले हो। तुम तीनों अंतरिक्ष और तीनों भूमण्डलों के धारण करने वाले हो। तुम दोनों यजमान के क्षात्र-कर्म की सदा रक्षा करते हो ।१। हे मित्रावरुण ! तुम्हारी प्रेरणा से ही गौऐं दूध देती हैं। तुम्हारी प्रेरणा से ही मेघ जल प्रदान करते हैं। तुम्हारी प्रेरणा से ही जलों की वर्षा करने वाले जलधारक तथा ज्योतिर्मान अग्नि, वायु और सूर्य नामक तीनों देवता पृथ्वी, अंतरिक्ष और सूर्य मण्डल के अधिपति रूप से प्रतिष्ठित होते हैं ।२। प्रातः सवन और दिन के मध्य सवन में हम ऋषिगण देवताओं की तेजस्विनी माता अदिति का आह्वान करते हैं। हे मित्रावरुण! हम धन,पुत्र-पौत्रादि,सुख लाभ तथा अनिष्टोंके शमनार्थ तुम दोनों की इस यज्ञ में स्तुति करते हैं ।३। हे सौर लोक में उत्पन्न हुए अदिति के दोनों पुत्रो ! तुम दोनों ही स्वर्ग और पृथ्वी के धारण करने वाले हो।

हम, तुम दोनों की स्तुति करते हैं। हे मित्रावरुण ! तुम्हारे कार्य सदा स्थिर रहते हैं। इन्द्रादि देव भी तुम्हारे कार्यों को विनष्ट नहीं कर सकते ॥४॥ (७)

सूक्त ७०

(ऋषि—उरुचक्रिरात्रेयः। देवता—मित्रावरुणौ। छन्द—त्रिष्टुप्)

पुरूरुणा चिद्ध्यस्त्यवो नूनं वां वरुण। मित्र वंसि वां सुमतिम् ॥१
ता वां सम्यगद्रुह्वाणेषमश्याम धापसे। वयं ते रुद्रा स्याम ॥२
पात नो रुद्रा पायुभिरुत त्रायेथां सुत्रात्रा। तुर्याम दस्यून्तनूभिः ३
मा कस्याद्भुत क्रतू यक्षं भुजेमा तनूभिः। शेषसा मा तनसा॥४॥८

हे मित्रावरुण ! तुम्हारे रक्षा-साधन अत्यन्त ही दृढ़ हैं। हम तुम दोनों की कृपा-बुद्धि की याचना करते हैं ॥१॥ हे दोनों देवताओ ! तुम द्रोह से शून्य हो। हम तुम्हारे द्वारा अपने भोजन के लिए अन्न पावें। हे रुद्रो ! हम तुम्हारी ही स्तुति करते हैं। हम तुम्हारे ही सेवक हैं। हम समृद्धि की प्राप्ति करें।२। हे देवद्वय ! अपने रक्षा साधनों से हमारी रक्षा करो। सुन्दर आश्रय में हमारा पालन करो। हम अभीष्ट पावें और हमारे अनिष्ट दूर हों हम अपने पुत्रों द्वारा या स्वयं ही शत्रुओंको नष्ट करने में समर्थ हों ॥३॥ हे अद्भुतकर्मा मित्रावरुण ! हम किसी अन्य के प्रशंसनीय धन का अपने लिये उपभोग नहीं करते हैं। हम तुम्हारी कृपा से ही पुष्ट हैं। किसी के धन से शरीर को पुष्ट नहीं करते। हम अपनी सन्तान के साथ तथा हमारे कुटुम्बी भी अन्य किसी के धन का उपयोग नहीं करते अर्थात् हम तुम्हारी कृपा द्वारा प्राप्त धन संपत्ति से ही संतुष्ट रहते हैं ॥६॥ [८]

सूक्त ७१

(ऋषि—बाहुवृक्तआत्रेयः देवता—मित्रावरुणौ। छन्द—गायत्री)

आ नो गन्त रिशादसा वरुण मित्र बर्हणा। उपेमं चारुमध्वरम्॥१
विश्वस्य हि प्रचेतसा वरुण मित्र राजथः। ईशाना पिप्यतं धियः।२
उप नः गत वरुण मित्र दाशुषः। अस्य सोमस्य पीतये॥३॥९

हे मित्रावरुण ! तुम दोनों ही शत्रुओं को नष्ट करने वाले हो। हमारे

यज्ञ में हिंसा नहीं होती । तुम दोनों ही हमारे यज्ञ में पधारो ॥१॥ हे मेधावी मित्रावरुण ! तुम दोनों सब मनुष्यों के स्वामी हो । तुम दोनों हमारे लिये ईश्वर रूप हो । तुम हमको फल देते हुए हमारे कर्मों को पुष्ट करो ॥ २ ॥ हे मित्रावरुण ! तुम दोनों हमारे सुसिद्ध सोमरस के निमित्त आओ । हम हव्य प्रदान करतें हैं । हमारे सोमरस का पान करने के लिये यहाँ पधारो ॥३॥ [९]

सूक्त ७२

(ऋषि—बाहुवृक्त आत्रेयः । देवता—मित्रावरुणौ । छन्द—उष्णिक्)

आ मित्रे वरुणं वय गीर्भिर्जुहुमो अत्रिवत् ।
नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये ॥१
व्रतेन स्थो ध्रुवक्षेमा धर्मणा यातयज्जना ।
नि वर्हिषि सदतं सोमपीतये ॥२
मित्रश्चनो वरुणश्च जुषेतां यज्ञमिष्टये ।
नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये ॥३॥१०

जिस प्रकार हमारे मूल पुरुष अत्रि ने तुम्हारा आह्वान किया था हे मित्रावरुण ! उसी विधि से मन्त्र द्वारा हम भी तुमको बुलाते हैं । वे दोनों देवता कुशासन के ऊपर बैठकर सोमरस को स्वीकार करें ॥१॥ मित्र व वरुण जगत के आधार स्वरूप हैं और सदैव अपने स्थान पर सुस्थिर बने रहते हैं । यज्ञ में ऋत्विक्गण इनको हविदान करतें हैं । अतः ये दोनों देवता कुशासन पर विराजमान हों ॥२॥ मित्र और वरुण से हम प्रार्थना करते हैं कि वे हमारे यज्ञ में सोत्साह भाग लें और सोम को ग्रहण करने के लिये कुशासन पर आकर विराजें ॥३॥ [१०]

सूक्त ७३ [छटवां अनुवाक]

(ऋषि—पौरु आत्रेयः । देवता—अश्विनौ । छन्द—अनुष्टुप्)

यदद्य स्थः परावति यदर्वावत्यश्विना ।
यद्वा पुरू पुरुभुजा यदन्तरिक्ष आ गतम् ॥१

इह त्या पुरुभूतमा पुरू दंसांसि बिभ्रता ।
वस्स्यायाम्यध्रिगू हुवे तुविष्टसा भुजे ।।२
ईर्मान्यिद्वपुषे वपुश्चक्रं रथस्य येमथुः ।
पयन्या नाहुषा युगा मह्वा रजांसि दीयथः।।३
तदू षु वामेना कृत विश्वा यद्वामनुष्टवे ।
नाना जातावरेपसा समस्मे वन्धुमेयथुः ।।४
आ यद्वां सूर्या रथंजिष्टद्रघृष्यदं सदा ।
परिवामरुषा वयो घृणा वरन्त आतपः ।।५।११

हे अश्विनीकुमारो ! तुम असंख्य यज्ञों में हव्य ग्रहण करते हो । यद्यपि तुम इस समय सुदूर स्वर्ग में, अन्तरिक्ष में, अथवा किसी अन्य दूरस्थ लोक में वर्तमान होंगे, तो भी उन लोकों से हमारे यज्ञ में पधारो ।१।। हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों ही यजमानों को उत्साहित करने वाले, विविध अनुष्ठानों के धारण करने वाले, वरण करने योग्य, श्रेष्ठ-गति तथा कर्मों वाले हो । हम तुम्हारी रक्षा के निमित्त आह्वान करते हैं । तुम दोनों हमारे इस यज्ञ में पधारो ।।२।। हे अश्विनीकुमारो ! सूर्य को प्रकाशित करने के लिये तुमने रथ के एक ज्योतिर्मान पहिये को योजित किया । तुम अपने पराक्रम से प्राणियों के लिये दिवस रात्रि आदि को प्रकट करने के लिए अन्य पहिए द्वारा लोकों में घूमते हो ।३। हे सर्वव्यापक अश्विद्वय ! हम जिस स्तोत्र से तुम्हारी स्तुति करते हैं, तुम दोनों का स्तोत्र सुसम्पादित हो । हे पाप से रहित दोनों देवताओ ! हमको असीमित धन दो ।।४।। हे अश्विनीकुमारो ! जब तुम्हारी नारी रूपिणी सूर्या तुम्हारे द्रुतगामी रथ पर चढ़ती है, तब तुम दोनों के चारों ओर अत्यन्त तेजोमय प्रकाश फैल जाता है ।।५।। [११]

युवोरत्रिश्चिकेतति नरा सुम्नेन चेतसा ।
धर्मं यद्वामरेपसं नासत्यास्ना भुरण्यति ।।६
उग्रो वां ककुहो ययिः श्रृण्वे यामेषु सन्तनिः ।
यद्वां दंसोभिरश्विनात्रिर्नरावततंति ।।७

मध्व ऊ षु मधूयुवा रुद्रा सिषक्ति पिप्युषी ।
यत्समुद्राति पर्षथः पक्वाः पृक्षो भरन्त वाम् ॥८
सत्यमिद्वा उ अश्विना युवामाहुर्मयोभुवा ।
ता यामन्यामहुतमा यामन्ना मृलयत्तमा ॥९
इमा व्रह्माणि वर्धताश्विभ्याँ सन्तु शन्तमा ।
या तक्षाम रथाँ इवावोचाम वृहन्नमः ॥१०॥१२

हे अश्विनीकुमारो ! हमारे पिता अत्रि ने तुम्हारी स्तुति करके जब अग्नि के ताप को सुख मे सहन करने योग्य समझा तब अग्नि के दाहक प्रभाव का शमन होने के कारण वे तुम्हारे उपकार की याद करते हुए कृतज्ञ हुए ।६। तुम्हारा ऊँचा, दृढ़, गतिशील रथ यज्ञ में प्रख्यात है । हे अश्विनीकुमारो ! तुम्हारे कृपापूर्ण कार्यों से हमारे पिता अत्रि दुःखों से छुटकारा पा सके थे ।७। हे मधुर सोम के पिलाने वाले देवताओ ! हमारी वलकारक स्तुति तुम्हारे ऊपर मधुर सोम रस को सींचती है । तुम अन्तरिक्ष की सीमा को भी लांघ जाते हो । परिपक्व हविरन्न तुम दोनों को सुख का देने वाला है ।८। हे अश्विनीकुमारो ! ज्ञानीजन तुम दोनों को सुख का देने वाला कहते हैं, वह अवश्य ही सत्य है । हमारे यज्ञ में सुख प्रदान करने के लिये बुलाये जाने पर तुम हमारी हार्दिक अभिलाषा की पूर्ति कर हमें सुखी करो ।९। जैसे कलाकार शिल्प रथों का निर्माण करता है, वैसे ही हम अश्विनीकुमारों को पुष्ट करने के लिए स्तुतियाँ अर्पित करते हैं । वे स्तुतियाँ उनको स्नेहदायिनी बनें ।१०। [१२]

सूक्त ७४

(ऋषि—पौर आत्रेयः । देवता—अश्विनौ । छन्द—अनुष्टुप, उष्णिक्)

कूष्ठो देवावश्विनाद्या दिवो मनावसू ।
तच्छ्रवथो वृषण्वसू अत्रिर्वामा विवासति ॥१
कुह त्या कुह सुश्रुता दिवी देवा नासत्या ।
कस्मिन्ना यतथो जने को वां नदीनां सचा ॥२

कं याथः कं ह गच्छथः कमच्छा युञ्जाथे रथम्।
कस्य ब्रह्माणि रण्यथो वयं वामुश्मसीष्टये ॥३

पौरं चिद्ध्युदप्रुतं पौर पौराय जिन्वथः।
यदीं गृभीततातये सिंहमिव द्रुहस्पदे ॥४

प्र च्यवानाज्जुजुरुषो वव्रिमत्कं न मुञ्चथः।
युवा यदी कृथः पुनरा काममृण्वे वध्वः ॥५॥१३

हे स्तुति के योग्य, धन का दान देने वाले अश्विद्वय ! आज इस यज्ञ दिवस में,तुम दोनों आकाश से आकर इस पृथ्वी पर रुको और अत्रि ऋषि जिस स्तोत्र का तुम्हारे लिए पाठ करते थे,उस स्तोत्र को सुनो ।१। वे तेजस्वी दोनों कहाँ हैं ? वे इस यज्ञ दिनमें आकाशके किस स्थान पर वर्तमान रहकर स्तुतियाँ सुन रहे हैं ? हे अश्विनोकुमारो ! तुम दोनों किस यजमानके पास आते हो? कौन स्तुति करने वाला यजमान तुम्हारी स्तुति करता है ? ।२। हे अश्विद्वय ! तुम दोनों किसके यज्ञस्थान में जाते हो ? तुम किससे जाकर मिलते हो ? तुम किसके सामने जानेके लिए अपने रथ में घोड़े जोड़ते हो ? किस स्तोता के स्तोत्र तुम्हारी भक्ति करते हैं । हम तुम दोनों को प्राप्त करने की अभिलाषा करते हैं ।३। हे अश्विनीकुमारो तुम दोनों जलावाहक मेघ को प्रेरणा करो । जैसे वन में सिंह को शिकारी ललकारता हैं, वैसे ही यज्ञ-कर्म में तुम दोनों अनिष्टों को ताड़ना दो ।४। तुम दोनों ने बुढ़ापे से जीर्ण हुए च्यवन के पुराने शरीर की कुरूपता को कवचके समान दूर किया था । जब उनको दुबारा युवावस्था दी तब उन्होने सुन्दर स्त्री के रूप में इच्छित भार्या को प्राप्त किया था ।५।[१३]

अस्ति हि वामिह स्तोता स्मसि वां सन्दृषि श्रिये।
नू श्रुतं म आ गतमवोभिर्वाजिनीवसू ॥६
को वामद्य पुरूणामा वव्ने मर्त्यानाम्।
को विप्रो विप्रवाहसा को यज्ञैर्वाजिनीवसू ॥७
आ वां रथो रथानां येष्ठो यात्वश्विना।

पुरू चिदस्मयुस्तिर आङ्गूषो मर्त्येष्वा ।।८
शमू षु वां मधूयुवस्माकमस्तु चर्कृतिः ।
अर्वाचीना विचेतसा विभिः श्येनेव दीयतम् ।।९
अश्विना यद्ध कर्हि चिच्छुश्रूयातमिमं हवम् ।
वस्वीरू षु वां भुजः पृञ्चन्ति सु वां पृचः ।।१०।।१४

हे अश्विनीकुमारो । तुम दोनों की स्तुति करने वाले इस यज्ञ मण्डप में उपस्थित हैं । इस समृद्धि के लिए तुम्हारे दर्शन के लिए चलें । तुम हमारे आह्वान को आज सुनो । तुम अन्न युक्त हो । अपने रक्षा साधनों सहित यहाँ पधारो । ६ । हे अन्नवान् अश्विनीकुमारो! असंख्य मरणधर्मा प्राणियों में कौन आज तुम्हें अधिक प्रसन्न करता है ? हे ज्ञानीजकों द्वारा नमस्कृत अश्वियो ! कौन ज्ञानी तुमको और सब की अपेक्षा अधिक तृप्त करता है ? । ७ । हे अश्विनीकुमारो! अन्य सभी देवताओं के रथों में सब की अपेक्षा अधिक वेग से चलने वाला तथा असंख्य शत्रुओं को हनन करने वाला और सभी के द्वारा स्तुत हुआ तुम दोनों का सुन्दर रथ हम यजमानों की मङ्गल-कामना करता हुआ, हमारे इस श्रेष्ठ यज्ञ स्थान में आवे । ८ । हे अश्विनीकुमारो ! तुम्हारे निमित्त सम्पादन किए गए स्तोत्र हमारे लिए सुखों का उत्पादन करें । हे ज्ञानवान् अश्विद्वय ! तुम दोनों बाज पक्षी के समान सर्वत्र जाने वाले अपने रथ पर चढ़कर हमारे सामने आने की कृपा करो । ९ । हे अश्विद्वय ! तुम जहाँ कहीं भी हो, हमारे आह्वान को अवश्य सुनो । तुम्हारे पास पहुँचने की इच्छा करता हुआ यह हविरन्न तुम दोनों को प्राप्त हो । १० । [१४]

सूक्त ७५

(ऋषि—अवस्यु । देवता—अश्विनौ । छन्द—पंक्ति)

प्रति प्रियतम रथं वृषण वसुवाहनम् ।
स्तोता वामश्विनावृषिः स्तोमेनप्रतिभूषति माध्वीमम श्रुतहवम्।।१
अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहं सना ।
दस्रा हिरण्यवर्तनी सुषुम्ना सिन्धुवाहस माध्वी मम श्रुतहवम् ।।२

आ नो रत्नानि विभ्रतावश्विना गच्छतं युवम् ।
रुद्रा हिरण्यवर्तना जुषाणा वाजिनीवसू माध्वो मम श्रुतहवम् ॥३
सुष्टुभो वां वृषण्वसू रथे वाणीच्याहिता ।
उत वां ककुहो मृगः पृक्षः कृणोति वापुषो माध्वी मम श्रुतं हवम्।४

हे अश्विनीकुमारो ! तुम्हारी स्तुति करने वाले अवस्यु ऋषि तुम दोनों के फलों की वर्षा करने वाले और धन से परिपूर्ण रथ को सजाते हैं। हे ज्ञानियो ! हमारे आह्वान को सुनो ।१। हे अश्विनीकुमारो ! तुम सब यजमानों को लाँघकर यहां आओ । जिससे हम सब वैरियों को वशीभूत कर सकें । हे शत्रुहन्ता अश्विद्वय ! तुम स्वर्णिम रथ पर चढ़ने वाले, महान् धन वाले, नदियों के प्रवाहित करने वाले हो । तुम दोनों हमारे आह्वान को सुनो । २ । हे अश्विनीकुमारो ! तुम हमारे रत्न धन लेकर आओ हे स्वर्णिम रथ पर चढ़ने वाले, स्तुत्य, अन्नवान् यज्ञ में प्रतिष्ठित होने वाले ज्ञानी अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों हमारे सुन्दर आह्वान को श्रवण करो । ३ । हे धन की वर्षा करने वाले अश्वनीकुमारो ! तुम दोनों की स्तुति करने वाले का स्तोत्र तुम्हारे निमित्त पढ़ा जाता है । तुम्हारा यजमान एकाग्र मन तुम दोनों को हविरन्न प्रदान करता है । हे ज्ञानियो! तुम हमारे आह्वान को सुनो ।४। हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों विवेक बुद्धि वाले, रथ पर चढ़ने वाले, वेगवान् और स्तोत्र के सुनने वाले हो । तुम दोनों निष्कपट अन्तःकरण वाले च्यवन ऋषि के पास शीघ्र ही घोड़े पर चढ़कर गए थे। हे ज्ञानवान् ! तुम हमारे आह्वान को सुनो । ५ ।

१५]

बोधिन्मनसा रथ्येषिरा हवनश्रुता ।
विभिश्च्यवानमश्विनानि याथोअद्वयाविनं माध्वी मम श्रुतं हवम्।५
आ वां नरा मनोयुजोऽश्वासः प्रुषितप्सवः ।
वयो वहन्तु पीतये सह सुम्नेभिरश्विना माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥
अश्विनावहे गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम् ।
तिरश्चिदर्यया परि वर्तिर्यातमदाभ्या माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥७

अस्मिन्यज्ञे अदाभ्या जरितारं शुभस्पती ।
अवस्युमश्विना युवं गृणन्तमुप भूषथो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥८
अभूदुषा रुशत्पशुराग्निरधाय्यृत्वियः ।
अयोजि वां वृषण्वसू रथो दस्रावमर्त्योमाध्वी मम श्रुतं हवम्॥९॥१६

हे अश्विनीकुमारो! तुम दोनों के अश्व सुशिक्षित,वेगवान् और अद्भुत रूप वाले हैं। वे इस यज्ञ मण्डप में सोम पीने के लिए दोनों को शोभन ऐश्वर्य सहित लावें। हे मधुविज्ञान-विशारद अश्विनीकुमारो। तुम दोनों हमारे आह्वानक सुनो। ६। हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों इस यज्ञ गृह में आओ। तुम दोनों हमारे विरुद्ध नहीं होना। हे स्वामिन्! तुम अजेय हो तुम हमारे यज्ञ गृह में आओ। हे मनुविद्या के जानने वाले अश्विनीकुमारो तुम दोनों हमारे आह्वान को सुनो। ७। हे अश्विनीकुमारो ! तुम जल के स्वामी हो। तुम दोनों इस गृह में स्तोता पर अनुग्रह करो। मधुविद्या के ज्ञाता अश्विद्वय ! तुम दोनों हमारे आह्वान को सुनो। ८। उषा फैल गई है। कान्तिमती किरणों से युक्त अग्नि वेदी पर विराजमान हुए हैं। हे धन की वर्षा करने वाले तथा शत्रुओं का विनाश करने वाले अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों के दृढ़तर रथ में घोड़े जुड़ जांय। हे मधुविद्या के ज्ञाताओ ! हम दोनों का आह्वान सुनो। ९। [१६]

सूक्त ७६

(ऋषि—अत्रिः । देवता—अश्विनौ । छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

आ भात्यग्निरुषसामनीकमुद्विप्राणां देवया वाचो अस्थुः ।
अर्वाञ्चा नूनं रथ्येह यातं पीपिवांसमश्विना घर्ममच्छ ॥१
न संस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठान्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह ।
दिवाभिपित्वेऽवसागमिष्ठा प्रत्यवर्तिं दाशुषे शम्भविष्ठा ॥२
उता यात सङ्गवे प्रातरह्नो मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य ।
दिवा नक्तमवसा शन्तमेन नेदानी पीतिरश्विना ततान ॥३
इदं हि वाँ प्रदिवि स्थानमोक इमे गृहा अश्विनेदं दुरोणम् ।

आ नो दिवो बृहतः पर्वतादाद्भ्यो यातमिषमूर्जं वहन्ता ॥४
समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वनान्यमृता सौभगानि ॥५॥१७

उषाकाल में चैतन्य अग्नि प्रकाशमान हो रहे हैं। ज्ञानी स्तोताओं के देवताओं की कामना वाले स्तोत्र गाये जाते हैं। हे रथों के स्वामी अश्विनीकुमारो। तुम दोनों इस यज्ञ गृह में प्रकट होकर इस सोम-रस से युक्त यज्ञ में आओ। १। हे अश्विनीकुमारो ! तुम हमारे इस संस्कारयुक्त यज्ञ की हिंसा न करो यज्ञ के पास शीघ्र आकर स्तुति के पात्र बनो। तुम अपने रक्षा-साधनों सहित प्रातःकाल आओ, जिससे अन्न का अभाव न हो तुम हविर्दाता यजमान का कल्याण करो। २। हे अश्विद्वय ! तुम रात्रि के अन्त में, गौओं को दोहन के समय प्रातःकाल में, जब आदित्य अत्यन्त बढ़े हुए होते हैं, सायंकाल और रात्रि में अथवा किसी भी समय अपने मंगलकारी रक्षा-साधनों सहित यहां आओ। अश्विनीकुमारों के अतिरिक्त अन्य देवता सोम-रस पीने को शीघ्र प्रस्तुत नहीं होते। ३। हे अश्विद्वय! इस उत्तर वेदी पर तुम प्राचीन काल से विराजमान होते आए हो। यह सभी घर तुम दोनों के ही हैं। तुम दोनों जल से परिपूर्ण मेघ द्वारा अन्तरिक्ष में अन्न और पराक्रम के साथ हमारे पास आओ। ४। हम सब अश्विनीकुमारों के उत्तम रक्षा साधनों तथा सुख से पूर्ण आगमन से प्रसन्न हों। हे अमरत्व प्राप्त अश्विद्वय ! तुम दोनों हमको धन, सन्तान और सभी सुख दो। ५। [१७]

सूक्त ७७

(ऋषि - अत्रिः। देवता—अश्विनौ। छन्द—त्रिष्टुप्)

प्रातर्यावाणा प्रथमा यजध्वं पुरा गृध्रादररुषः पिबातः ।
प्रातर्हि यज्ञमश्विना दधाते प्रशंसन्ति कवयः पूर्वभाजः ॥१॥
प्रातर्यजध्वमश्विना हिनोत न सायमस्ति देवया अजुष्टम् ।
उतान्यो अस्मद्यजते वि चावः पूर्वः पूर्वो यजमानो वनीयान् ॥२
हिरण्यत्वङ्मधुवर्णो घृतस्नुः पृक्षो वहन्ना रथो वर्तते वाम् ।

मनोजवा अश्विना वांतरहा येनातियाथो दुरतानि विश्वा ॥३
यो भूयिष्ठं नासत्याभ्यां विवेष चनिष्ठं पित्वो ररते विभागे ।
स तोकमस्य पीपरच्छमीभिरनूर्ध्वभासः सदमित्तु तुर्यात् ॥४
समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥५।०८

हे ऋत्विको ! दोनों अश्विनीकुमार प्रातःकाल ही सब देवताओं से पहले ही पहुंचते हैं,तुम सब उनका यज्ञ करो । वे दिन के पूर्व कालमें ही हव्य ग्रहण करते हैं। वे प्रातःकाल ही यज्ञ को धारण करते है । प्राचीन-कालीन ऋषिगण उनकी प्रातःसेवन में ही स्तुति करते हैं।१। हे मनुष्यो ! प्रातःकाल ही अश्विनीकुमारों की पूजा करो । उन्हें हवियाँ दो । सायंकाल दिया जाने वाला हव्य देवताओं के पास नहीं पहुंचता । उस असेवनीय हव्य को देवता ग्रहण नहीं करते । हमारे सिवाय जो कोई व्यक्ति सोम द्वारा उनका यज्ञ करता है और हवि देकर सन्तुष्ट करता है तथा जो व्यक्ति हमसे पूर्व ही उनकी पूजा करता है,वह देवताओं का प्रीति भाजन होता है ।२।हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों का सुवर्णजटित,सुन्दर वर्ण वाला, जल-वर्षक, मन के समान द्रुतगति वाला,वायु के समान वेग वाला और अन्नों का धारक रथ आता है । तुम दोनों ही उस रथ के द्वारा सब दुर्गम मार्गों को लाँघ जाते हो ।३। जो यजमान अश्विनीकुमारों के लिए यज्ञ में हवि-दान करता है,वह अपने संतान आदि की रक्षा प्राप्त करता है । जो अग्नि को प्रदीप्त नहीं करते, वे हानि सहन करते हैं ।४। हम अश्विनीकुमारों के श्रेष्ठ रक्षा-साधनों तथा शुभ आगमन से सुख प्राप्त करें । हे अविनाशी अश्विद्वय ! तुम दोनों हमको धन, सन्तान तथा सुख दो ॥५॥ १८]

७८ सूक्त

(ऋषि-सप्तवध्रिरात्रेयः । देवता-अश्विनौ । छन्द-उष्णिक् त्रिष्टुप् अनुष्टुप)

अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम् ।
हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥१

अश्विना हरिणाविव गौराविवानु यवसम् ।
हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥२
अश्विना वाजिनीवसू जुषेथां यज्ञमिष्टपे ।
हंसाविव पततमा सुतां उप ॥३
अत्रिर्यद्वामवरोहन्नृबीसमजोवीन्नाधमानेव योषा ।
श्येनस्य चिज्जवसा नूतनेनागच्छतमश्विना शन्तमेन ॥४।१९

हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों इस यज्ञ में आओ । जैसे दो हंस स्वच्छ जल के पास जाते हैं, वैसे ही तुम दोनों सिद्ध सोम-रस के लिये पधारो ।१। हे अश्विनीकुमारो ! जैसे हरिण घास के लिये दौड़ते हैं और दो हंस स्वच्छ जल के लिए जाते हैं, वैसे ही तुम दोनों हमारे छने हुए सोम-रस के लिये आओ ।२। हे अश्विनीकुमारो । तुम अन्न और श्रेष्ठ निवास के देने वाले हो । तुम दोनों हमारे यज्ञ में कामनाऐं पूर्ण करने के लिए आओ । जैसे दो हंस स्वच्छ जल के पास जाते हैं, वैसे ही तुम दोनों इस सिद्ध सोम रस के पास आओ ।३। हे अश्विनीकुमारो ! जैसे स्त्री अपने पति को विनम्रता से प्रसन्न कर लेती है, वैसे ही हमारे पिता अत्रि ने तुम्हारा स्तवन करते हुए तृषाग्नि कुण्ड से छुटकारा पाया था । तुम दोनों श्येन के नवोत्पन्न वेग के समान वेग वाले सुखदायक रथ द्वारा हमारी रक्षा के निमित्त पधारो ॥४॥ [१९]

वि जिहीष्व वनस्पते योनिः सूष्यन्त्या इव ।
श्रुत में अश्विना हवं सप्तवध्रि च मुञ्चतम् ॥५
भीताय नाधमानाय ऋषये सप्तवध्रये ।
मायाभिरश्विना युवं वृक्षं सं च वि चाचथः ॥६
यथा वातः पुष्करिणी समिङ्गयति सर्वतः ।
एवा ते गर्भ एजतु निरेतु दशमास्यः ॥७
यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति ।
एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा ॥८

दश मासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि ।
निरैतु अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि ॥९।२०

हे काष्ठ निर्मित पेटिके! प्रसव करने वाली स्त्री का अङ्ग जैसे सन्तानोत्पति के समय तदनुकूल हो जाता है वैसे ही तुम भी विस्तृत होकर सुविधाजनक बन जाओ । तुम सप्तवध्रि ऋषि को मुक्ति करने के लिए हमारा आह्वान सुनो । ५ । अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों भयभीत तथा निकलने के लिए प्रार्थना करते हुए सप्तवध्रि ऋषि के लिए माया की पेटी को पृथक् करते हो । ६ । वायु जैसे सरोवर आदि के जल को चलाती है, वैसे ही तुम्हारा गर्भस्थ शिशु स्पन्दन करने वाला हो और वह दस मास में पूर्ण होकर बाहर निकल आवे ।७। वायु, वन और समुद्र जैसे काँपते हैं, वैसे दस मास तक गर्भस्थ शिशु अरायु में लिपटा हुआ निकलता है ।८। जननी के गर्भ में दस मास तक अवस्थित शिशु जीवित ही, अक्षत रूप से जीवित माता से जन्म ले । ९ । [२०]

७९ सूक्त

(ऋषि–सत्यश्रवा आत्रेयः । देवता — उषा । छन्द–गायत्री, वृहती,पंक्तिः)

महे नो अद्य बोधयोषो राते दिवित्मती ।
तया चिन्नो अवोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥१
या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः ।
सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥२
सा नो अद्याभरद्वसुर्व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
यो व्यौच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥३
अभि ये त्वा विभावरि स्तोमैर्गृणन्ति वह्नयः ।
मघैर्मघोनि सुश्रियो दामन्वन्तः सुरातयः सुजाते अश्वसूनृते ॥४
यच्चिद्धि ते गणा इमे छदयन्ति मघत्तये ।
परि चिद्वष्टयो दधुर्ददतो राधे अह्नयं सुजाते अश्वसूनृते ॥५।२१

हे कान्तिमती उषे ! तुमने जैसे हमको पहिले श्रेष्ठ बुद्धि दी थी, उसी प्रकार आज भी बहुत-साधन प्राप्त करने के लिए बुद्धि दो । हे सुन्दर प्राकट्य वाली उषे ! घोड़ों की प्राप्ति के लिए स्तोता तुम्हारी स्तुति करते हैं । "सत्यश्रवा" पर कृपा करो । १ । हे सूर्य की पुत्री उषे । तुमने 'शुचद्रथ" के पुत्र "सुनीथि" के लिए अन्धकार को नष्ट किया था । हे सुन्दर उत्पत्ति वाले उषे ! अश्व-लाभ के लिए स्तोतागण तुम्हारी स्तुति करते हैं । तुमने 'वय्य" के पुत्र पराक्रमी "सत्यश्रवा" का अन्धकार दूर किया था ।२। हे सूर्य-कन्ये ! तुम धन लेकर आती हो । आज तुम हमारी अन्धकार को दूर करो ! हे उत्तम जन्म वाली,अश्व-लाभ के लिए तुम्हार स्तुति की जाती है । तुमने"वय्य पुत्र"पराक्रमी "सत्यश्रवा" का अन्धकार मिटाया था ।३। हे ज्योतिर्मती उषे ! जो ऋत्विक् स्तोत्र से तुम्हारी परिचर्या करते हैं, वे ऐश्वर्य से सम्पन्न और दानी होते हैं । हे ऐश्वर्यशालिनी उषे ! तुम उत्तम जन्म वाली हो स्तोतागण अश्व-लाभ के लिए तुम्हारी स्तुति करते हैं ।४। हे उषे ! धन के लिए तुम्हारी सेवा में उपस्थित यह साधक अक्षय हविरन्न देकर हमारे अनुकूल हुए थे । हे उत्तम कर्म वाली उषे ! स्तोतागण अश्व लाभ के लिये तुम्हारी स्तुति करते हैं ।५। [३१]

एषु धा वीरवद्यश उषो मघोनि सूरिषु ।
ये नो राधाँस्यह्रया मघवानो अरासत सुजाते अश्वसूनृते ।।६

तेभ्यो द्युम्नं बृहद्यश उषो मघोन्या वह ।
ये नो राधांस्यश्व्या गव्या भजन्त सूरयः सुजाते अश्वसूनृते ।।७

उत नो गोमतींरिषं आ वहा दुहितर्दिवः
साकं सूर्यस्य रश्मिभिः शुक्रैः शोचद्भिरर्चिभि सुजाते अश्वसूनृते।।८

व्युच्छा दुहितर्दिवो मा चिरं तनुथा अपः
नेत्त्वा स्तेन यथा रिपुं तपाति सुरो अर्चिषा सुजाते अश्वसूनृते।।९

एतावद्वे दुर्षस्त्व भूयो वा दातुमर्हसि ।
या स्तोतृभ्यो विभावर्युच्छन्ती न प्रमीयसेसुजाते अश्वसूनृते।।१०।२२

हे ऐश्वर्यमती उषे ! जिसने हमको अश्वों और गौओं से युक्त धन दिया था, उस यजमान को तुम धन और अन्न दो । हे उत्तम जन्म वाली उषे ! स्तोतागण अश्व प्राप्ति के लिए तुम्हारी स्तुति करते हैं ।७। हे सूर्य की पुत्री उषे ! तुम सूर्य रश्मियों और अग्नि की प्रज्ज्वलित ज्वालाओं के सहित हमारे पास अन्न और गौओं को लाओ। हे उत्तम जन्म वाली उषे! स्तुति करने वाले यजमान अश्व प्राप्ति के लिए तुम्हारी स्तुति करते हैं।८। हे सूर्य-पुत्री उषे ! तुम प्रकाश को फैलाओ । हमारे प्रति देर मत करो। राजा जैसे चोर अथवा शत्रु को पीड़ित करता है, वैसे सूर्य तुम्हें अपनी रश्मियों से पीड़ित न करें । हे उत्तम जन्म वाली देवी उषे ! स्तुति करने वाले यजमान सुन्दर अश्वों की प्राप्ति के निमित्त तुम्हारी स्तुति करते हैं । ९ । हे उषे ! जो माँगा गया है और जो नहीं माँगा गया, तुम वह सब हमको देने की सामर्थ्य से परिपूर्ण हो । हे ज्योतिर्मति ! तुम स्तुति करने वालों का अन्धकार दूर करती हो,परन्तु उनका अनिष्ट नहीं करती। हे उत्तम जन्म वाली उषे ! स्तुति करने वाले यजमान अश्वों की प्राप्तिके लिए तुम्हारी स्तुति करते हैं । १० । [२२]

८१ सूक्त

(ऋषि—सत्यश्रवा अत्रेयः । देवता—उषा । छन्द—त्रिष्टुप् पंक्तिः)

द्युतद्यामानं बृहतीमृतेन ऋतावरीमरुणप्सुं विभातीम् ।
देवीमुषसं स्वरावहन्तीं प्रति विप्रासो मतिभिर्जरन्ते ॥१॥
एषा जनं दर्शता बोधयन्ती सुगान्पथः कृण्वती यात्यग्रे ।
बृहद्रथा बृहती विश्वमिन्वोषा ज्योतिर्यच्छत्यग्रे अह्नाम् ॥२
एषा गोभिररुणेभिर्युजानास्रेधन्ती रसिमप्रायु जक्रे ।
पथो रदन्ती सुविताय देवी पुरुष्टुता विश्ववारा वि भाति ॥३॥
एषा व्येनी भवति द्विबर्हा आविष्कृण्वाना तन्वं पुरस्तात् ।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिषो मिनाति ॥४॥
एषा शुभ्रा न तन्वो विदानोर्ध्वेव स्नाती दृशये नो अस्थात् ।

अप द्वेषो वाधमाना तस्मांस्युषा दिवो दुहिता ज्योतिषागात् ॥५
एषा प्रतीची दुहिता दिवो नृन्योषेव भद्रा नि रिणीते अप्सः ।
व्यूर्ण्वंती दाशुषे वार्याणि पुनर्ज्योतिर्युवतिः पूर्वथाकः ॥६।२३

तेजस्वी रथ पर चढ़ी हुई, सर्वव्यापिनी यज्ञों में उत्तम प्रकार से पूजनीय, अरुण वर्ण वाली सूर्य के पहिले आने वाली उषा की ऋत्विग्गण स्तोत्रों से स्तुति करते हैं। १। दर्शनीय रूप वाली उषा सोते हुए प्राणियों को चैतन्य करती है और मार्गों को दिखाती हुई विस्तृत रथ पर चढ़कर सूर्य के पुराभाग में चलती है। अत्यन्त महिमामयी तथा संसार में व्याप्त होने वाली उषा दिन के आरम्भकाल में अपना प्रकाश फैलाती है। २। लाल किरणों में संयोग करती हुई उषा सुख से जाने के लिए मार्गों को चमकाती है तथा सबके लिए वरणीय होती हुई स्वयं प्रकाशित होती है। वह देवी अनुरागयुक्त प्राणियों से स्तुत होती हुई अक्षय ऐश्वर्यों को स्थिर करती है। ३। वह शुभ्र प्रकाश वाली होती हुई रात्रि और दिवस दोनों से ही आगे बढ़ती हुई अपने आगे प्रकाश को विस्तृत करती है। वह नित्य प्रति सूर्य का अनुगमन करती हुई दिशाओं को मापती है। वह देवी अपने रूप को प्राची में प्रकट करती है। ४। स्नान करके सुन्दर अलङ्कारों से सजी हुई रमणी के समान अपना रूप दिखाई हुई उषा प्राची में प्रकट होती है। सूर्य की पुत्री उषा अपने वैरी अन्धकार को भगाने के लिए बाध्य करती हुई अपने प्रकाश के सहित आती है। ५। अपने प्रकाश से संसार को परिपूर्ण करने वाली सूर्य की पुत्री उषा पश्चिम की ओर मुख करके शरीर विन्यास करने वाली रमणी के समान अपने रूप को प्रकट करती है। यह देवी हविदाता यजमान के लिए वरण करने योग्य धन देती है। नित्य तरुणी उषा बारम्बार अपने प्रकाश को दिखाती है। ६। [२३।

८१ सूक्त

(ऋषि—श्यावाश्व आत्रेयः। देवता—सविता।। छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेकं इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥१

विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते कविः प्रासावीद्भद्रं द्विपदे चतुष्पदे।
वि नाकमख्यत्सविता वरेण्योऽनु प्रयाणमुषसो वि राजति ।।२
यस्य प्रयाणमन्वन्य इद्ययुर्देवा देवस्य महिमानमोजसा ।
यः पार्थिवानि विमसे स एतशो रजांसि देवः सविता महित्वना।।३
उत यासि सवितस्त्रीणि रोचनेत सूर्यस्य रश्मिभिः समुच्यसि
उत रात्रीमुभयतः परीयस उत मित्रो भवसि देव धर्मभिः ।।४
उतेशिषे प्रसवस्य त्वमेक इदुत पूषा भवसि देव यामभिः ।
उतेत विश्वं भुवनं वि राजसि श्यावाश्वस्ते
सवितः स्तोममानशे ।।५।२४

विद्वान् लोग अपने चित्त को श्रेष्ठ कर्मों में लगाते हैं। वे सभी महान् स्तुति के पात्र और मेधावी सवितादेव की प्रेरणा से यज्ञानुष्ठान में प्रवृत्त होते हैं। वे होताओं के कार्यों के ज्ञाता हैं, वही उन्हें यज्ञ कार्य में लगाते हैं। उन सर्वेश्वर्यवान् सवितादेव की महिमा स्तुति के योग्य है ।।१।। ये मेधावी सवितादेव स्वयं ही सब रूपों के धारण करने वाले हैं। वे मनुष्य पशु आदि सब प्राणियों के कल्याण के ज्ञाता हैं। वे सबके द्वारा वरण करने योग्य, सबको प्रेरणा देने वाले तथा स्वर्ग को प्रकाशित करने वाले हैं। वे उषा के आविर्भूत होने के पश्चात् उदित होते हैं ।२। अग्नि आदि सभी देवता ज्योतिर्मान् सवितादेव का अनुगमन करते हुए महिमावान् होते हैं। जो सवितादेव अपनी महिमा से पृथिवी आदि लोकों को परिपूर्ण करने में समर्थ हैं, वे अपने तेज से ही अत्यन्त महिमा वाले हैं ।।३।। हे सवितादेव तुम तीनों लोकों में गमन करते हुए अपनी रश्मियों से सुसंगति करते हो। तुम ही रात्रि को दोनों ओर से व्याप्त करते हो। हे सवितादेव ! तुम संसार के धारण करने वाले होकर सबके मित्र बनते हो ।४। हे सवितादेव! तुम एक ही इस जगत को उत्पन्न करने में पूरी तरह समर्थ हो और तुम एक ही अपने नियमों द्वारा सब की रक्षा करते हो। तुम ही इस संपूर्ण भुवन को प्रकाशित करते हुए उस पर शासन करते हो। हे सवितादेव ! श्यावाश्व ऋषि तुम्हारी स्तुति के योग्य सामर्थ्य से युक्त हैं ।।५।। [२४]

८२ सूक्त

(ऋषि–श्यावाश्व आत्रेयः । देवता–सविता । छन्द–अनुष्टुप् गायत्री)

तत्सवितुर्वणीमहे वयं देवस्य भोजनम् ।
श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि ॥१
अस्य हि स्वयशस्तरं सवितुः कच्चन प्रियम् ।
न मिनन्ति स्वराज्यम् ॥२
स हि रत्नानि दाशुषे सुवाति सविता भगः । त भागं चित्रमीमहे॥३
अद्या नो देव सवितः प्रजावत्सावीः सौभगम् ।
परा दुःष्वप्न्यं सुव ॥४
विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।
यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥५।२५

हम साधक सविताadेव से भाग के योग्य ऐश्वर्य की याचना करते हैं। उनकी कृपा से हम भग देवता के पास से श्रेष्ठ ऐश्वर्य तथा उपभोग्य और शत्रुओं का नाश करने वाला धन प्राप्त करें ।१। उन सवितादेव के सर्वप्रिय, असाधारण, ज्योतिर्मान ऐश्वर्य को कोई राक्षस भी नष्ट करने में समर्थ नहीं है ।२। वह सवितादेव तथा यजन के योग्य भग देवता हम हवि देने वालों के लिए रमणीय ऐश्वर्य देते हैं। अतः हम उन भग देवता से भी रमणीय ऐश्वर्य की प्रार्थना करते हैं ।३। हे सवितादेव ! इस यज्ञ दिवस से आज तुम हमको संतानयुक्त ऐश्वर्य को प्रदान करते हुए दुःस्वप्न से उत्पन्न शङ्का तथा दारिद्र्य के दुःख को दूर करो ।४। हे सवितादेव ! हमारे सभी अनिष्टों को दूर करते हुए प्रजा, पशु और सुन्दर घर रूप सौभाग्य तथा ऐश्वर्य को हमारे सम्मुख उपस्थित करो ॥५॥ [२५]

अनागसो अदितये देवस्य सवितुः सवे । विश्वा वामनि धीमहि॥६
आ विश्वदेवं सत्पतिं सूक्तैरद्य वृणीमहे । सत्यसवं सवितारम् ।७
य इमे उभे अहनी पुर एत्यप्रयुच्छन् । स्वाधीर्देवः सविता ॥८

य इमा विश्वा जातान्याश्रावयति श्लोकेन ।
प्र च सुवाति सविता ।।९।२६

हम साधकगण प्रेरणा देने वाले सवितादेव की प्रेरणा से अखंडनीया देवी अदिति का कोई अपराध न करें। हम सभी रमणीय और अभीष्ट धनों को प्राप्त करें ।६। आज हम इस यज्ञ दिवस में स्तोत्रों द्वारा सभी देवताओं के स्वामी साधकों के रक्षक सवितादेव की सब प्रकार से उपासना करने में समर्थ हों ।७। जो सवितादेव भले प्रकार ध्यान करने योग्य तथा उत्तम कर्म वाले हैं, जो निरालस्य हुए दिन और रात्रि के संधिकाल में गमन करते हैं, हम उन सवितादेव की स्तोत्रों द्वारा स्तुति करते हैं ।८। जो सवितादेव सभी उत्पन्न प्राणियों को अपने यश से अवगत कराते हैं, जो सब जीवों को प्रेरणा देते हैं, उन सवितादेव की इस यज्ञ दिवस में हम स्तुति करते हैं ।।९।। [२६]

८३ सूक्त

(ऋषि—अत्रिः । देवता—पर्जन्यः । छन्द—त्रिष्टुप्, जगती, पंक्तिः)

अच्छा वद तवसं गीर्भिराभिः स्तुहि पर्जन्यं नमसा विवास ।
कनिक्रदद्वृषभो जोरदानू रेतो दधात्योषधीषु गर्भम् ।।१
वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसो विश्वं बिभाय भुवन महावधात् ।
उतानागा ईषते वृष्ण्यावतो यत्पर्जन्यः स्तनयन् हन्ति दुष्कृतः ।।२
रथीव कशयाश्वां अभिक्षिपन्नाविर्दूतान्कृणुते वर्ष्यां अह ।
दूरात्सिंहस्यस्तनथा उदीरते यत्पर्जन्यः कृणुते वर्ष्यं नभः ।।३
प्र वातः वान्ति पतयन्ति बिद्युत उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्वः ।
इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते यत्पर्जन्य पृथिवीं रेतसावित ।।४
यस्य व्रते पृथिवी नन्नमीति यस्त व्रते शफवज्जर्भुरीति ।
यस्य व्रत ओषधीर्विश्वरूप स नः पर्जन्य महि शर्म यच्छ ।।५।२७

हे स्तोताओ ! तुम शक्तिशाली पर्जन्य के सम्मुख उपस्थित होकर उनकी स्तुति करो। सुन्दर स्तोत्र रूप वाली स्तुति से उनका स्तवन करो। हविरूप अन्न से उनकी सेवा करो। जल-वृद्धि करने वाले, उदार चेता, गर्जन

शब्द वाले पर्जन्य वर्षा द्वारा वनस्पतियों में गर्भ स्थापित करते हैं । फलप्रद बनाते हैं ॥ १ ॥ पर्जन्य देव वृक्षों को भूमिसात करते, असुरों का संहार करते और विकराल होते हुए जगत को डर दिखाते तथा पापियों को विनष्ट करते हैं । इसलिये जो व्यक्ति पापी नहीं हैं वे भी डर जाते हैं और उन वर्षा करने वाले पर्जन्य के सामने से भाग जाते हैं ॥ २ ॥ जैसे रथी चाबुक मारकर घोड़ों को उत्तेजित करते हुए वीरों को उत्साहित करते हैं वैसे ही पर्जन्य मेघों को प्रेरित करके जलवृष्टि के लिए उत्साहित करते हैं । जब तक पर्जन्य मेघों को अन्तरिक्ष में एकत्र करते हैं, तब तक शेर के समान गर्जने वाले मेघों का शब्द दूर से ही सुनाई देता है ।३। जब तक पर्जन्यदेव वर्षा द्वारा पृथ्वी का पालन करते हैं तब तक वर्षा के कार्य में योग देने वाली वायु प्रवाहित रहती है । सब ओर विद्युत चमकती अतरिक्ष वृष्टि करता और वनस्पतियाँ वृद्धि को प्राप्त होती हैं । तब पृथ्वी सबका हित साधन करने में सक्षम हो जाती है ।४। हे पर्जन्य ! तुम्हारे कर्म के सामने पृथ्वी झुकती है, तुम्हारे ही कर्म द्वारा वनस्पतियाँ विभिन्न वर्ण तथा रूप वाली होती हैं । हे पर्जन्यदेव ! हमको अत्यंत सुख दो ।५।[२७]

दिवो नो वृष्टि मरुतौ रीध्वं प्र पिन्वत वृष्णो अश्वस्य धाराः ।
अर्वाङ्गेन स्तनयित्नुनेह्यपो निषञ्चन्नसुरः पिता नः ॥६
अभि क्रन्द स्तनय गर्भमा धा उदन्वता परि दीया रथेन ।
दृतिं सु कर्ष विषितं न्यञ्चं समा भवन्तूद्वतो निपादाः ॥७
महान्तं कोशमुदचा नि षिञ्च स्यन्दन्तां कुल्या विषिताः पुरस्तात्
घृतेन द्यावापृथिवी व्युन्धि सुप्रपाणं भवत्वघ्न्याभ्यः ॥८
यत्पर्जन्य कनिक्रदत्स्तनयन् हंसि दुष्कृतः ।
प्रतीदं विश्वं मोदते यत्किं च पृथिव्यामधि ॥९
अवर्षीर्वर्षमुदु षू गृभायाकर्धन्वान्यत्येतवा उ ।
अजीजन ओषधीर्भोजनाय कमुत प्रजाभ्योऽविदो मनीषाम् ।१०।२९

हे मरुद्गण ! हमारे निमित्त तुम अन्तरिक्ष से वृष्टि को प्रेरित करो ।

वर्षा करने वाले तथा सर्वत्र व्याप्त मेघों से जल गिराओ । हे पर्जन्य! तुम जल सींचने वाले गर्जन युक्त मेघ सहित हमारे सामने आओ क्योंकि तम जल की वर्षा द्वारा हमारा पालन करने वाले हो ।६। हे पर्जन्य ! तुम गर्जनशील होओ । जलवृष्टि द्वारा वनस्पतियोंको गर्भवती फलप्रद बनाओ । अपने जलयुक्त रथ से अन्तरिक्ष में घूमो । जलयुक्त मेघ को वृष्टि के लिये प्रेरित करो । ऊँचे नीचे प्रदेशों को समतल करो ।७। हे पर्जन्य ! जल के कोष रूप मेघ को उत्तेजित कर वृष्टि कराओ । वेगवती नदियाँ प्रवाहित हों । जल द्वारा आकाश और पृथ्वी को भिगो दो । गोओंके पीने के लिए मधुर जल की कमी न रहे ।८। हे पर्जन्य ! जब तुम गम्भीर गर्जन द्वारा मेघों को चीरते हो, तब यह सम्पूर्ण संसार और पृथ्वी के सभी जीव बन को प्राप्त करते हैं ।९। हे पर्जन्य तुमने जल वृष्टि द्वारा मरुभूमि को उर्वर बनाने के लिये उसे जल से परिपूर्ण कर दिया । मनुष्य के लाभार्थ बनस्पतियों को प्रकट कर स्तोताओं द्वारा पूजे गए ।।१०।। [२८]

८४ सूक्त

(ऋषि—अत्रिः । देवता—पृथिवी । छन्दः—अनुष्टुप्)

बलित्था पर्वतानां खिद्रं बिभर्षि पृथिवी ।
प्र या भूमि प्रवत्वति मह्ना जिनोषि महिनि ।।१
स्तोमासस्त्वा विचारिणि प्रति ष्टोभन्त्यक्तुभिः ।
प्र या बाजं न हेषन्तं पेरुमस्यस्यर्जुनि ।।२
दृलहा चिद्यां वनस्पतीन्क्ष्मया दर्धर्ष्योजसा ।
यत्ते अभ्रस्य विद्युतो दिवो वर्षन्ति बृष्टयः ।।३।।२९

हे पृथ्वी ! तुम उत्तम गुण वाली हो । तुम पर्वतोंके बल से प्राणियों का पालन करती हो । हे पूजनीया ! तुम पर्वतों के समान उदार और अपनी उर्वरा भूमि को उत्तम रीति से सींचने वाली होओ ।१। हे गतिमती पृथ्वी ! स्तोतागण अपने सुन्दर स्तोत्रों द्वारा तुम्हारी स्तुति करते हैं हे अर्जुनी ! तुम हिनहिनाते हुए अश्व के समान मेघ को उसके उत्तम कर्म में प्रेरित करती हो ।२। हे पृथ्वी ! तुम अपने दृढ़ सामर्थ्य से बड़े-बड़े

वृक्षों को धारण करती हो और तेजोमय अन्तरिक्ष से विद्युत की चमक के साथ तुम पर वर्षा होती है । इसलिये तुम अत्यन्त पूजनीय हो ।३।[२९]

८५ सूक्त

(ऋषि—अत्रिः । देवता—वरुण । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः, उष्णिक्)

प्र सम्राजे बृहदर्चा गभीरं ब्रह्मा प्रियं वरुणाय श्रुताय ।
वि यो जघान शमितेव चर्मोपस्तिरे पृथिवीं सूर्याय ॥१
वनेषु व्यन्तरिक्ष ततान वाजमर्वत्सु पय उस्त्रियासु ।
हृत्सु क्रतुं वरुणो अप्स्वग्निं दिवि सूर्यमदधात्सोममद्रौ ।।२
नीचीनबारं वरुणः कवन्धं प्र ससर्ज रोदसी अन्तरिक्षम् ।
तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा यव न वृष्टिर्व्युनत्ति भ्रम ।।३
उनत्ति भूमि पृथिवीमुत द्यां यदा दुग्धं वरुणो वष्टचादित् ।
समभ्रेण वसत पर्वता स्तविषीयन्तः श्रमयन्त वीराः ।।४
इमामूष्वा सुरस्यं श्रुतस्य महीं मायां वरुणस्य प्र वोचम् ।
मानेनेव तस्थिवां अन्तरिक्षे वि यो ममे पृथिवीं सूर्येण ।।५।३०

हे अत्रि ऋषि ! तुम भले प्रकार विराजमान सर्वविख्यात और विघ्नों के शमन करने वाले वरुण देवता के लिए सुन्दर और प्रिय स्तोत्र का पाठ करो । जैसे पशुओं का वध करने वाला, पशु चर्म को बढ़ाता है, वैसे ही वरुण सूर्य के विचरण के लिये अन्तरिक्ष को विस्तीर्ण करते हैं ।१। वृक्षों के ऊपरी भाग में वरुण अन्तरिक्ष को फैलाते हैं । वे अश्वों में बल, गौओं में दूध और मनुष्यों में सद्भाव प्रेरित करते हैं । वे जल में अग्नि, अन्तरिक्षमें आदित्य तथा पर्वतों पर सोमादि औषधियों की स्थापना करते हैं।२। वरुणदेव स्वर्ग,पृथ्वी और अन्तरिक्ष के हित-साधनार्थ मेघके निम्न भागको चीरते हैं । जैसे वृष्टि अनाजों को सीचती हैं,वैसे ही वरुणदेव सम्पूर्ण पृथ्वी को गीली कर देते हैं ।३। वरुणदेव वृष्टि की इच्छा करते हैं, तब वे अन्तरिक्ष और दिव्यलोक को भिगोते हैं । फिर मेघों द्वारा पर्वत शिखरों की

ढक लेते हैं । मरुद्गण अपने पराक्रम से हृष्ट हुये मेघों को ढीला करते हैं ।४। हम प्रसिद्ध तथा राक्षसों का संहार करने वाले वरुण की बुद्धि की प्रशंसा करते हैं । वे वरुणदेव अन्तरिक्ष में स्थिति होकर सूर्य द्वारा पृथ्वी और अन्तरिक्ष को व्याप्त करते हैं ।५।

इमामू नु कवितमस्य मायां महीं देवस्य नकिरा दधर्ष ।
एकं यदुद्ना न पृणन्त्येनीरासिञ्चन्तीरवनयः समुद्रम् ॥६
अर्यम्यं वरुणं मित्र्यं वा सखायं वा सदमिद् भ्रातरं वा ।
वेशं वा नित्यं वरुणारणं वा यत्सीमागश्चकृमा शिश्रथस्तत् ॥७
कितवासो यद्रिरिपुर्न दीवि यद्वा घा सत्यमुत यन्न विद्म ।
सर्वा ता विष्य शिथिरेव देवाधा ते स्याम वरुण प्रियासः ॥८।३१

तेजस्वी ज्ञानी महान् वरुणदेव की प्रसिद्ध बुद्धि का कोई खण्डन नहीं कर सकता । केवल जल सींचने वाली उज्ज्वल नदियाँ जल द्वारा इकले समुद्र को भी पूर्ण करने में समर्थ नहीं हो सकतीं । यह केवल वरुण की महान् सामर्थ्य का फल है ।६। हे वरुण ! यदि हम कभी किसी भी मित्र, साथी, दुष्टों के शासक, भ्राता, पड़ौसी, हमसे युद्ध न करने वाले व्यक्तियों के प्रति कोई अपराध कर बैठें तो तुम उस अपराध के पाप को नष्ट करदो ।७। हे वरुण ! जुआ खेलने वाले के समान यदि हम जानते हुये या अनजाने में भी कोई अपराध करे तो तुम ढीले बन्धन के समान उन्हें छोड़ दो । इसके पश्चात् हम तुम्हारे प्रिय हो ।८।

सूक्त ८६

(ऋषि—अत्रिः । देवता -- इन्द्राग्नि । छन्द—उष्णिक्, अनुष्टुप्)

इन्द्राग्नी यमवथ उभा वाजेषु मर्त्यम् ।
दृलहा चित्स प्र भेदति द्युम्ना वाणीरिव त्रितः ॥१
या पृतनासु दुष्टरा या वाजेषु श्रवाय्या ।
या पञ्च चर्षणीरभीन्द्राग्नी ता हवामहे ॥२

तयोरिदमवच्छतस्तिग्या दिद्युन्मघोनोः ।
प्रति द्रुणा गभस्त्वोर्गवां वृत्रघ्न एषते ।।३
ता वामेषे रथानामिन्द्राग्नी हवामहे ।
पती तुरस्य राधसो विद्वांसा गिर्वणस्तमा ।।४
ता बृधन्तावनु द्यून्मर्ताय देवावदभा ।
अहंन्ता चित्पुरो दधेऽशेव देवावर्वते ।।५
एवेन्द्राग्निभ्यामहा वि हव्यं शूष्यं घृतं न पूतमद्रिभिः ।
ता सूरिषु श्रवो वृहद्रयिं गृणत्सु दिधृतमिषं गृणत्सु दिधृतम् ।।६।३२

हे इन्द्राग्ने ! तुम मरणधर्मा मनुष्यों की रणक्षेत्र में रक्षा करो । तुम्हारी रक्षा को पाकर वह बड़े-बड़े दुःखोंसे पार हो जाताहै और वैरियों के वाक्यों को ज्ञानमयी वाणियों द्वारा खण्डन करता हुआ तीनों स्थानों में व्याप्त होता है ।१। जो इन्द्राग्नि युद्ध में किसी के द्वारा वशीभूत नहीं होते जो रणभूमि में सदा प्रशंसा प्राप्त करते हैं,जो पाँचों प्रकारके प्राणियों की रक्षा करते हैं, उन इन्द्राग्नि की हम स्तुति करते हैं ।२। इन्द्र और अग्नि का बल शत्रुओं को हराता है । जब यह दोनों एक रथ पर चढ़कर गौओं के छुड़ाने के लिये तथा वृत्र का हनन करने के लिए चलते हैं तब इन दोनों पराक्रमियों के हाथों में तीक्ष्ण वज्र स्थित रहता है ।३। हे वैभव के स्वामी गतिशील सबों के जानने वाले, अत्यन्त पूजनीय इन्द्र और अग्निदेव ! युद्धमें तुम्हारे रथको लानेके लिए हम तुम्हें आहुत करते हैं ।४। हे इन्द्राग्ने ! तुम दोनों अजेय हो । हम अश्व-प्राप्ति के लिये तुम दोनों की स्तुति करते हैं तुम दोनो ही मनुष्यों के समान बढ़ते तथा सूर्य के समान प्रकाशमान रहते हो ।५। हे इन्द्राग्ने ! तुमको पाषाणों से कुटे हुए सोम-रस के समान पुष्टिवर्धक हव्य दिया गया है । तुम दोनों मनुष्यों को अन्न दो । स्तुति करने वालों को अन्न-धन प्रदान करो ।६। [३२]

सूक्त ८७

(ऋषि—एवयामरुदात्रेय: । देवता—मरुत: । छन्द—जगती)

प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा एवयामरुत् ।

प्र शर्धाय प्रयज्यवे सुखादये तवसे भन्दिष्टये धुनिव्रताय शवसे ॥१

प्र ये जातामहिना ये च नु स्वयं प्र विद्मनाब्रुवतएवयामरुत् ।
क्रत्वा तद्वो मरुतो नाधृषे शवो दाना मह्ना तदेषाधृष्टासोनाद्रयः॥२

प्र ये दिवो बृहतः शृण्विरे गिरा सुशुक्वानः सुभ्व एवयामरुत् ।
न येषामिरी सधस्थ ईष्ट आँ अग्नयो न स्वविद्युतः
प्र स्यन्द्रासो धुनीनाम् ॥३

स चक्रमे महतो निरुरुक्रमः समानस्मात्सदस एवयामरुत् ।
यदायुक्तात्मना स्वादधि विष्णुभिर्विष्पर्धसो
बिमहसो जिगाति शेवृधो भूमिः ॥४

स्वनो न बोऽमवान्रेजयद्वृषा त्वेषो ययिस्तविष एवयामरुत् ।
येना सहन्त ऋञ्जत स्वरोचिषः स्थारश्मानो हिरण्ययाः
स्वायुधास इष्मिणः ॥५।३३

'एवया' ऋषि की वाणी से निकले हुए स्तोत्र मरुद्गण के सहित विष्णु के समीप पहुंचे और वे ही स्तोत्र पूज्य, पराक्रमी, उत्तम प्रकार से सजे हुए, स्तुतियों की कामना करने वाले, मेघों को प्रेरित करने वाले तथा सशक्त और सामर्थ्यवान् मरुद्गण के समीप उपस्थित हों ।१। जो मरुद्गण महान् देवता इन्द्र के साथ प्रकट हुये, जो यज्ञ मे जाने सम्बन्धी भाव सहित उत्पन्न हुए, उन मरुद्गण की "एवया" ऋषि स्तुति करते हैं। हे मरुद्गण ! तुम्हारा बल अभीष्ट फल प्रदान करने के कारण महान् होगया है । तुम पर्वतोंके समान दृढ़ हो ।२। जो तेजस्वी स्वच्छंद गमनशील स्वर्ग से आह्वान सुनते हैं, अपने घरमें प्रतिष्ठित करके जिन्हें हटाने की सामर्थ्य किसीमें नहीं है, जो अपने तेजसे तेजस्वी तथा अग्निके समान नदियोंको प्रवाहित करते हैं, उन मरुतों की एवय ऋषि स्तुति करते हैं।३। अपनी इच्छा से जाने वाले मरुद्गण के घोड़े जब रथ में जोड़े जाते हैं, तब एवयामरुत् उनकी कामना करते हैं । वे मरुद्गण सर्वत्र व्याप्त होने वाले और अन्तरिक्ष से आने वाले हैं । परस्पर स्पर्धा करने वाले, महान् पराक्रमी तथा कल्याण-

कारी मरुद्गण अपने स्थान से निकल पड़ते हैं ।४। हे मरुद्गण ! तुम अपने ही तेज में स्थित, सदा एकसी कांति वाले, दिव्य अलङ्कारों से सुसज्जित तथा अन्न प्रदान करने वाले हो। तुम अपने कार्य को सिद्ध करने के लिए जिस शब्द द्वारा शत्रुओं को वशीभूत करते हो, वह जल की वृष्टि करने वाला, तेजोमय, पराक्रमी और गर्जन "एमयामरुत्" को कम्पित करने वाला न हो ।५। [३३]

अपारो वो महिमा वृद्धशवसस्त्वेषं शवोऽवत्वेवयामरुत् ।
स्थातारो हि प्रसितो सन्दृशि स्थन ते न उरुष्यता
निदः शुशुक्वांसा नाग्नयः ॥६
ते रुद्रासः सुमखा अग्नयो यथा तुविद्युम्ना अवन्त्वेवयामरुत् ।
दीर्घं पृथु पप्रथे सद्म पार्थिवं येषामज्मेष्वा
महः शर्धांस्यद्भुतेनसाम् ॥७
अद्वेषो न मरुतो गातुमेतन श्रोता हव जरितुरेवयामरुत् ।
विष्णोर्महःसमन्ययोयुयोतन स्मद्रथ्यो न दसनाप द्वेषांसि सनुतः ॥८
गन्ता नो यज्ञ यज्ञियाः सुशमि श्रोता हवमरक्ष एवयामरुत् ।
ज्येष्ठासो न पर्वतासो व्योमनि यूय तस्य प्रचेतसः
स्यात दुर्धर्तवो निदः ॥९।३४

हे समान शक्ति वाले मरुद्गण ! तुम्हारी महिमा का पार नहीं पाया जा सकता। तुम्हारे आश्रय से एवयामरुत् की रक्षा हो। यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों के नियामक तुम्हीं हो। तुम प्रदीप्त अग्नि के समान प्रकाशमान् हो हमको दुष्ट निन्दा करने वालों की निन्दा से बचाओ ।६। अग्नि के समान प्रदीप्ति वाले पूज्य मरुद्गण ! तुम्हारे द्वारा विस्तीर्ण स्थान के समान अन्तरिक्ष प्रसिद्धि को प्राप्त होता है। तुम पाप से रहित हो तथा अपने गमन समय अपना महान् तेज प्रकट करते हो। तुम एवयामरुत् के रक्षक होओ ।७। हे मरुद्गण ! तुम द्वेष से रहित हो। तुम हमारे स्तोत्र के प्रति सुसंगति होओ और स्तुति करने वाले एवयामरुत् का आह्वान सुनो। तुम इन्द्र के साथ मिलकर यज्ञ-भाग प्राप्त करते हो। हे मरुद्गण ! जैसे

वीर पुरुष शत्रुओं को भागता है, वैसे ही तुम हमारे चोर शत्रुओं को दूर भगाओ ।८। हे यज्ञादि कार्यों में बुलाये जाने वाले मरुतो ! तुम हमारे यज्ञ में आओ, जिससे यह यज्ञ पूर्ण हो । तुम विघ्नों को दूर करते रहते हो । हमारे आह्वान को सुनो । हे श्रेष्ठ ज्ञानी मरुद्‍गण ! तुम विन्ध्यादि पर्वतों के समान अत्यन्त बढ़े हुए हो । तुम अन्तरिक्ष में रहते हुए उदार-चेता तथा श्रेष्ठ शासक बनो ।९। [१४]

॥ इति पञ्चम मण्डलं समाप्तम् ॥

॥ अथ षष्ठम् मण्डलम् ॥

सूक्त १ [प्रथम अनुवाक]

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—अग्निः । छन्द—पंक्तिःत्रिष्टुप)

त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोतास्या धियो अभवो दस्म होता ।
त्वं सी बृषन्नकृणोर्दुष्टरीतु सहो विश्वस्मै सहसे सहध्यै ॥१
अधा होता न्यसीदो यजीयानिलस्पद इषन्नीड्यः सन् ।
त त्वा नरः प्रथमं देवयन्तो महा राये चितयन्तो अनुग्मन् ॥२
वृतेव यन्त वहुभिर्वसव्यै स्त्वे रयिं जागृवांसो अनुग्मन् ।
रुशन्तमग्निं दर्शतं वृहन्तं वपावन्तं विश्वहा दीदिवांसम् ॥३
पदं देवस्य नमसा व्यन्तः श्रवस्यवः श्रव आपन्नमृक्तम् ।
नामानि चिद्दधिरे यज्ञयानि भद्रायां ते रणयन्त सन्दृष्टौ ॥४
त्वं त्राता तरणे चेत्यो भूः पिता माता सदमिन्मानुषाणाम् ॥५।३५

हे अग्ने ! तुम देवताओं में सर्वश्रेष्ठ हो । देवताओं का चित तुममें लग है । तुम दर्शन करने योग्य हो । इस यज्ञ से देवगण के बुलाने वाले तुम ही हो । हे कामनाओंकी वर्षा करने वाले अग्निदेव ! सभी बलवान् शत्रुओं को हराने के लिए हमें शक्ति दो ।१। हे अग्ने ! तुम यज्ञ नुष्ठानों के अत्यन्त करने वाले हो । तुम हवियोंका भक्षण करते हुए स्तुतियोंके पात्र

होते हो । तुम इस वेदी पर प्रतिष्ठित होओ । धर्म रूप अनुष्ठान के करने वाले ऋत्विग्गण दिव्य धन-लाभ की कामना से देवताओंमें सर्वप्रथम तुमको ही प्रदीप्त करते हैं ।२। हे अग्ने ! तुम अत्यन्त तेजस्वी, दर्शनीय, हवियों के भक्षण करने वाले तथा सदा ही ज्योतिर्मान रहते हो । तुम वसुओं के श्रेष्ठ मार्गसे गमन करते हो । धनकी कामना करने वाले यजमान तुम्हारा ही अनुगमन करते हैं ।३। अन्नोंकी कामना करने वाले यजमान अग्निके आह्वान योग स्थानों में जाकर स्तोत्रों द्वारा उसे प्रसन्न करते हैं और अभिलषित अन्न प्राप्त करते हैं। वे अग्नि के दर्शन होने पर प्रसन्न होते हुए स्तोत्र उच्चारित करते और तुम्हारे नामों का कीर्तन करते हैं ।४। हे अग्ने ! यजमान वेदी पर प्रतिष्ठित कर तुम्हारी वृद्धि करते हैं। तुम पशु तथा अन्य धनों की यजमानों के लिए वृद्धि करते हो । अध्वर्यु आदि भी दोनों धनों की कामना करते हुए तुम्हें बढ़ाते हैं । हे दुःखों के नाश करने वाले अग्निदेव ! तुम स्तुतियो के पात्र होकर मनुष्यों की माता-पिता रूप से रक्षा करते रहते हो ।५। [३५]

सपर्येण्यः स प्रियो विक्ष्वग्नि र्होता मन्द्रो नि सषादा यजीयान् ।
तं त्वा वयं दम आ दीदिवांसमुप ज्ञुबाधो नमसा सदेम ।।६

त त्वा वय सुध्यो नव्यमग्ने सुम्नायव ईमहे देवयन्तः ।
त्व विशो अनया दीद्यानो दिवो अग्ने बृहता रोचनेन ।।७

विशां कविं विश्पतिं शश्वतीनां नितोशनं बृषभ चषणीनाम् ।
प्रेताषणिमिषयन्त हावक राजन्तमग्नि यजत रयीणाम् ।।८

सो अग्न ईजे शशमे च मर्तो यस्त आनट् समिधा हव्यदातिम् ।
य आहुतिं परि वेदा नमोभिर्विश्वेत्स वामा दधते त्वोतः ।।९

अस्मा उ ते माह महे विधेम नमोभिरग्ने समिधोत हव्यैः ।
वेदी सूनो सहसो गाभिरुक्थैरा ते भद्रायां सुमतौ यतम ।।१०

आ यस्ततन्थ रोदसी वि भासा श्रवोभिश्च श्रवस्य स्तरुत्रः ।
बृहद्भिर्वाजै स्थविरेभिरस्मे रेवद्भिरग्ने वितर वि भाहि ।।११

नृवद्वसो सदं मिद्धे ह्यस्मे भूरि तोकाय तनथाय पश्व ।
पुर्वीरिषो वृहतीरारे अघा अस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥१२
पुरूण्यग्ने पुरुधा त्वाया वसूनि राजन्वसुता ते अश्याम् ।
पुरूणि हि त्व पुरुवार सन्त्यग्ने वसु विधते राजनि त्वे ॥१३

कामनाओं की वर्षा करने वाले, पूजन के पात्र, प्रजाओं में यज्ञकर्म सम्पादन करने वाले, अत्यन्त यजन के योग्य अग्निवेदी पर स्थापित किये जाते हैं। हे अग्ने ! तुम गृह में प्रज्वलित होते हो । हम स्तुति करने वाले अपने घुटने टेक कर स्तोत्रों का उच्चारण करते हुए तुम्हारी वन्दना करते हैं ।६। हे अग्ने ! तुम स्तुतिके पात्र हो । हम विवेक बुद्धि वाले मनुष्य सुख की इच्छा करते हुए तुम्हारी कामना करते तथा तुम्हारी स्तुति करते हैं।हे अग्ने ! तुम प्रदीप्त तेज वाले हो । तुम अत्यन्त प्रकाश वाले सूर्य के समान प्रकाशमान होते हुए दिव्यलोक की प्राप्ति कराओ ।७। मनुष्य के स्वामी ज्ञानसे परिपूर्ण, शत्रुओं का नाश करने वाले, अभीष्ट को पूर्ण करने वाले सदा वर्तमान अन्नों के धारण कर्त्ता, पवित्रता के सम्पादन करने वाले, धन चाहने वालों द्वारा कामना किये जाते हुये तेजस्वी अग्निदेव की हम स्तुति करते हैं ।८। हे अग्ने तुम्हारा यजन स्तवन करने वाले अथवा हविदाता यजमान जो स्तुतियुक्त आहुति देता है, वह तुम्हारी कृपा से सभी इच्छित धनों को प्राप्त करता है ।९। हे अग्ने ! हम हव्य देते हुए तथा नमस्कार पूर्वक तुम्हारा स्तवन करते हैं तुम महान् हो । हम स्तोत्र सहित तुम्हारी पूजा करते हैं । हम तुम्हारी सुन्दर कृपा पाने के लिए यत्नशील हैं, इस कार्य में हमको सफलता मिले ।१०। हे अग्ने तुमने अपने तेज से आकाश पृथिवी को बढ़ाया है तुम सङ्कटों से छुड़ाने वाले स्तुतियों से पूजन करने योग्य हो । तुम हमारे पास बहुत अन्न और महान् धन के साथ प्रज्वलित होओ ।११। हे ऐश्वर्यशाली अग्निदेव ! हमको सन्तानयुक्त धन दो । हमारे पुत्र पौत्रों को पशु आदि धन दो । हमको हमारी इच्छा पूर्ण करने वाले, पाप से शून्य अन्न तथा ऐश्वर्य सुख प्रदान करो ।१२। हे ज्योतिर्मान् अग्निदेव ! हम तुम्हारे पास से अश्व तथा गवादि पशुओं से युक्त धन लाभ

करें । हे अग्ने तुम सबके वरण करने योग्य, ऐश्वर्यवान् तथा रमणीय हो । तुम प्रचुर धनों के स्वामी हो ।१३। [३६]

सूक्त २

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः।देवता-अग्निः। छन्द-उष्णिक् अनुष्टुप्, जगती)

त्वं हि क्षैतवद्यशोऽग्ने मित्रो न पत्यसे ।
त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टि न पुष्यसि ॥१
त्वाँ हि ष्मा चर्षणयो यज्ञे भिर्गीभिरीलते ।
त्वां वाजी यात्यवृको रजस्तूर्विश्वचर्षणिः ॥२
सजोषस्त्वां दिवो नरो यज्ञस्य केतुमिंधते ।
यद्ध स्य मानुषो जनः सुम्नायुर्जुह्वे अध्वरे ॥३
ऋधद्यस्ते सुदानवे धिया मर्तः शशमते ।
ऊती ष बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति ॥४
समिधा यस्त आहुतिं निशितिं मर्त्यो नशत् ।
वयावतं स पुष्यति क्षयमग्न शतायुषम् ॥५।१

हे अग्ने ! तुम मित्र के समान अन्न और तेज के स्वामी हो। हे सर्वदर्शी, तुम अन्न और पोषण योग्य पदार्थों द्वारा हमको पुष्ट बनाओ ।१। हे अग्ने ! स्तोतागण हवियों के साधन रूप हव्य और स्तोत्र द्वारा तुम्हारी पूजा करते हैं । अहिंसित जल को प्रेरणा देने वाले और प्राणियोंको व्याप्त करने वाले आदित्य तुम्हें प्राप्त करते हैं ।२। हे अग्ने ! समान प्रीति वाले ऋत्विक तुम्हें प्रज्ज्वलित करते हैं । तुम यज्ञ के ध्वज रूप हो। मनु के सन्तान रूप यजमान सुख की कामना वाले होकर यज्ञ में तुम्हें बुलाते हैं ।३। हे अग्ने तुम उदार मन वाले हो । जो मरणधर्मा यजमान अनुष्ठान में लगकर तुम्हारी स्तुति करे, वह सम्पन्न हो । हे अग्ने ! तुम तेजस्वी हो यह यजमान तुम्हारे रक्षा साधनों को पाकर शत्रुओं को नष्ट करे ।४। हे अग्ने ! जो यजमान तुमको मन्त्रयुक्त आहुतसे पुष्ट करता है, वह सन्तानवान् होकर सौ वर्ष तक जीवित रहता हुआ सुन्दर घरमें निवास करता है [१]

त्वेषस्ते धूम ऋण्वति दिवि षच्छुक आततः ।
सूरो न हि द्युता त्वं कृषा पावक रोजसे ।।६

अधा हि विक्ष्वीड्योऽसि प्रियो नो अतिथिः ।
रण्वः पुरीव सूर्यः सुनुर्न त्रययाय्यः ।।७

क्रत्वा हि द्रोणे अज्यसेऽग्ने वाजी न कृत्व्यः ।
परिज्मेव स्वधा गयोऽत्यो न ह्वार्यः शिशुः ।।८

त्वं त्या चिदच्युताग्ने पशुर्न यवसे ।
धामा ह यत्ते अजर वना वृश्चन्ति शिक्वसः ।।९

वेषि अध्वरीयतामग्ने होता दमे दिशाम् ।
समृधो विश्पते कृणु जुषस्व हव्यमङ्गिरः ।१०

अच्छा नो मित्रमहो देवानग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः ।
वीहि स्वस्ति सुक्षितिं दिवो नृन्द्विषो अंहांसि दुरिता तरेम
ता तरेम तवावसा तरेम ।।११।२।।

हे अग्ने ! तुम तेजस्वी हो । तुम्हारा उज्वल धूम अन्तरिक्ष में फैलता है और मेघ के रूप में बदल-जाता है। हे पवित्र करने वाले अग्नि देव ! तुम स्तुतियों से प्रसन्न होते हुए आदित्य के समान प्रकाशमान होते हो ।६। हे अग्ने ! तुम स्तुतियों के पात्र हो । हमारे लिये तुम अतिथि के समान पूज्य हो । तुम साम में रहने वाले जन-कल्याणार्थ उपदेश करने वालेवृद्ध पुरुषके समान आश्रय योग्य तथा पुत्रके समान पालन करने योग्य हो ।७। हे अग्ने ! अरणि मन्थन द्वारा ही तुम्हारा विद्यमान होना सिद्ध होता है । जैसे घोड़ा अपने सवार को ले जाता है, वैसे ही तुम हव्य को ले जाने वाले होओ। वायु के समान तुम सर्वत्र जाते हो,हमको अन्न और घर दो । तुम बालक के समान शुद्ध भाव वाले हो ।८। हे अग्ने ! घास आदि के निमित्त छोड़ागया आदि पशु जैसे सब घास को खा लेता है,वैसे ही तुम प्रौढ़ काष्ठों को तुरन्त खा जाते हो । हे अग्ने तुम अविनाशी एवं तेजस्वी हो । तुम्हारी ज्वालायें वनों को भस्म कर डालती हैं।९।हे अग्ने!

तुम यज्ञ कर्म की इच्छा करने वाले यजमान के घर होता बन कर प्रवेश करते हो। तुम मनुष्यों का पालन करने वाले हो। हमारे लिये समृद्धि की कामना करो। हे अग्ने ! तुम हमारी हवियों को ग्रहण करो ।१०। हे सुन्दर तेज वाले अग्ने तुम शांत और विकराल गुणों से युक्त तथा आकाश और पृथिवी में व्याप्त हो। तुम हमारे स्तोत्र को देवताओंके निकट पहुंजाओ। हम स्तुति करने वालों को सुन्दर आवास युक्त सौभाग्य प्राप्त कराओ। हम शत्रुओं, संकटों और पापों से दूर हो जांय, हम अन्य जन्मों में भी पापों से बचें। हे अग्ने ! तुम्हारे रक्षा साधनों के बल पर शत्रुओं से मुक्त हों ।।११।। [१]

सूक्त ३

(ऋषि—भारद्वाजों बार्हस्पत्य: । देवता—अग्नि : छन्द-त्रिष्टुप, पंक्तिः)

अग्ने स क्षेषदृतपा ऋतेजा उरु ज्योतिर्नशते देवयुष्टे ।
यं त्वं मित्रेण वरुणः सजोषा देव पासि त्यजसा मर्तमहः ।।१
ईजे यज्ञेभिः शमीभिऋद्धा रायाग्नये ददाश ।
एवा चनं त यशसामजुष्टिर्नांहो मर्तं नशते न प्रदृप्तिः ।।२
सूरो न यस्य हशतिरेपा भीमा यदेति शुचतस्त आ धीः ।
हेषस्वतः शुरुधो नामक्तोः कुत्रा चिद्रण्वो वसतिर्वनेजाः ।।३
तिग्मं चिदेम महि वर्षो अस्य भसदश्वो न यमसान आसा ।
विजेहमानः परशुर्न जिह्वां द्रविर्न द्रावयति दारु धक्षत् ।।४
स इदस्तेव प्रति धादसिष्यञ्छिशीत तेजोऽयसो न धाराम् ।
चित्रं ध्रजतिररतिर्यो अक्तोर्वेन द्रुषद्वा रघुपत्मजंहाः ।।५।३

हे अग्ने ! जो यजमान यज्ञ के निमित्त उत्पन्न हुआ है और यज्ञानुष्ठानों को करता है वह दीर्घायु प्राप्त करे। तुम वरुण और मित्रके समान प्रीति वाले होकर अपने तेज द्वारा जिस यजमान को पापोंसे बचाते हो वह देवताओंकी कामना करने वाला यजमान तुम्हारी महती रक्षा प्राप्त करता है ।१। सर्वश्रेष्ठ वैभव से सम्पन्न अग्नि के लिये जो साधक हवि देनना है उसे पुत्रों का अभाव नहीं होता और मिथ्याभिमान तथा पाप उसके पास

नहीं पहुंचते ।२। सूर्य के समान ही अग्नि का दर्शन भी पाप से बचाता है ।हे अग्ने ! तुम्हारी प्रज्ज्वलित ज्वाला पापियों को भयकारी एवं सर्वत्र गमन करने वाली है । रात्रि में रंभाने वाली गौ के समान अग्निदेव बढ़ते हुए शब्दवान होते हैं । सबको निवास देने वाले अग्नि वन युक्त पर्वत के अग्रभागमें क्रीड़ा करते हैं ।३। अग्नि का रूप प्रकाश से उज्वल है । इनका मार्ग तीक्ष्ण है । यह अश्व के समान मुख से तृणादि का भक्षण करते हैं । कुठारकी तीक्ष्णधार काष्ठ को काट डालती है,वैसे ही अग्नि अपनी ज्वाला को वृक्षादि पर डालते हैं । जैसे स्वर्णकार सोने को पानी बना देता है वैसे ही अग्नि सम्पूर्ण जङ्गलको द्रवीभूत कर डालते हैं ।४। जैसे वाण सन्धान् करने वाला लक्ष्य पर वाण चलाता है, वैसे ही अग्नि अपनी ज्वाला को चलाते है । जैसे कुठारका स्वामी अपने कुठार को धार तेज करता है वैसे ही अग्नि भी अपनी ज्वाला को तीक्ष्ण करते हैं । वृक्ष के ऊपर रहने वाले पक्षी के समान अद्भुत गति वाले अग्नि रात्रि को लांघ जाते है ।५।

[३]

स ईं रेभो न प्रति वस्त उस्राः शोचिषा रारपीति मित्रमहाः ।
नक्तं य ईमरुषो यो दिवा नृनमर्त्यो अरुषो यो दिवा नृन् ।।६
दिवो न अस्य विधतो नवीनोद्वृषा रुक्ष ओषधोषु नूनोत् ।
घृणा न यो ध्रजसा पत्पना यन्ना रोदसी वसुना द सुपत्नी ।।७
धायोभिर्वा यो युज्येभिरर्कैर्विद्यु॒न्न दविद्योत्स्वेभिः शुष्मैः ।
शर्धो वा यो मरुतां ततक्ष ऋभुर्न त्वेषो रभसानो अद्यौत् ।।८।४

अग्निदेव स्तुति योग्य आदित्यके समान प्रज्वलित ज्वाला को फैलाते हैं । सबके अनुकूल रहने वाले प्रकाशको फैलाते हुए तेज से शब्दवान् होते हैं । रात में प्रदीप्त हुए अग्नि दिन के समान ही मनुष्यों को कर्म में प्रेरित करते हैं । वे अमरत्व से युक्त दर्शनीय अग्नि अपने चमकते हुए तेज से ज्वालाओं को प्रेरित करते हैं।६। जिन अग्निका प्रकाशमान् रश्मि फैलाने वाला प्राकट्य हुआ है,वे कामनाओं की वर्षा करने वाले ज्योतिर्मान अग्नि औषधि रूप काष्ठ में महान् शब्द करते हैं । जो तेजस्वी ऊपर की ओर अपने तेजसे उठते हैं,वे हमारे शत्रुओंको हराते हुए दिव्यलोक और भूलोक

को ऐश्वर्य से सम्पन्न करते हैं ।७। जो अग्नि अश्व के समान नियुक्त हुए पूजनीय तेज सहित गमन करते हैं, वे अपने तेज से ही विद्युत के समान दीप्तिमान् होते हैं । जो अग्नि मरुद्गण के वल को घटाते हैं, वे अत्यन्त तेजस्वी,सूर्य के समान प्रकाशमान तथा अत्यन्त वेगवान होते हैं ।८। [४]

सूक्त ४

(ऋषि—भारद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता–अग्निः । छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

यथा होतर्मनुषो देवताता यज्ञेभिः सूनो सहसो यजासि ।
एव नो अद्य समानानुशन्नग्न उषतो यक्षि देवान् ॥१
स नो विभावा चक्षिणिर्न वस्तोरग्निर्वन्दारु वेद्यश्चनो धात् ।
विश्वायुर्यो अमृतो मर्त्येपूषर्भुं द्भूदतिथिर्जातवेदाः ॥२
द्यावो न यस्य पनयन्त्वभ्वं भासांसि वस्ते सूर्यो न शुक्रः ।
वि य इनोत्यजरः पावकोऽश्नस्य चिच्छिश्नथत्पूर्व्याणि ॥३
वदमा हि सूनो अस्यद्मसद्वा चक्रे अग्निर्जनुषाज्मान्नम् ।
स त्वं न उर्जसन ऊर्जं धा राजेव जेरवृके क्षेष्यन्तः ॥४
नितिक्ति यो वारणमन्न त्त वायुर्न राष्ट्यत्येक्तून् ।
तुर्याम यस्त आदिशामरातीरत्यो न ह्रुतुः पततः परिह्रुत् ॥५।५

हे देवताओं के बुलाने वाले बल पुत्र अग्निदेव ! जैसे विद्वानों के यज्ञ में तुमने हवि द्वारा देवताओं का यजन किया वैसे ही हमारे इस यज्ञमें इन्द्रादि देवताओं को तुम अपने ही समान बल वाला समझते हुए उनका ही यजन करो ।१। जो सूर्य के समान अत्यन्त तेजस्वी, सबके लिए सरलता से जानने योग्य, दिन के प्रकाशक, आश्रयभूत, अविनाशी, अतिथि रूप मेधावी तथा उषा वेला में चैतन्य होने वाले हैं, वे अग्नि हमको प्रशंसित धनलाभ करावें ।२। स्तुति करने वाले जिन अग्निदेवके महान् कर्मों का संकीर्तन करते हैं, वे उज्ज्वल वर्ण वाले अग्नि सूर्य के समान अपने तेज को फैलाते हैं । अजर तथा पवित्र करने वाले अग्नि अपने तेज से ही

सब पदार्थों को दिखाते हैं और असुरादि का वध करते हैं। ३। हे अग्ने! तुम सबको प्रेरणा देने वाले तथा स्तुति के योग्य हो। तुम हवियों से प्रसन्न होते हुए उपासकों को अन्नयुक्त घर देते हो। हे अन्नदाता अग्ने! हमको अन्न दो। हमारे शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो और हमारी यज्ञ-वेदी में विराजमान होओ। ४। जो अग्नि अपने तेज को बढ़ाते हैं, जो अन्धकार को दूर करते हैं, जो हवि ग्रहण करते और वायु के समान सब पर आशन करते हैं वे अग्नि रात्रि को पार करते हैं। हे अग्ने! हम तुम्हारी कृपा से हवि न देने वाले पर विजय प्राप्त करें। तुम अश्व के समान वेगवान् होते हुए हम पर आक्रमण करने वाले शत्रु का संहार करो।५ [५]

आ सूर्यो न भानुमद्भिरर्कैरग्ने ततन्थ रोदसी विभासा।
चित्रो नयत्परि तमांस्यक्तः शोचिषा पत्मन्नौशिजो न दीयन् ॥६
त्वां हि मन्द्रतममर्कशोकैर्ववृमहे महि नः श्रोष्यग्ने।
इन्द्रं न त्वा शवसा देवता वायुं पृणन्ति राधसा नृतमाः ॥७
नू नो अग्नेऽवृकेभिः स्वस्ति वेषि रायः पथिभिः पर्ष्यंहः।
ता सूरिभ्यो गृणते रासि सुम्नं मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥८।६

हे अग्ने! तुम आकाश पृथिवी को सूर्य के समान आच्छादित करते हो। अपने मार्ग पर नियमित रूप से चलने वाले सूर्य के समान अद्भुत गति वाले अग्नि अंधेरे को नष्ट करें। ६। हे अग्ने तुम अत्यन्त पूजनीय एवं तेजस्वी हो। हम तुम्हारा गुणगान करते हैं। तुम हमारे महान् स्तोत्र सुनो। हे अग्ने! ऋत्विगगण तुम्हें हवियों से प्रसन्न करते हैं। तुम वायु के समान बली और इन्द्र के समान दिव्य गुणों से युक्त हो।७। हे अग्ने तुम चोरों से शून्य मार्ग द्वारा शीघ्र ही हमारे लिए श्रेष्ठ ऐश्वर्य के पास पहुँचाओ। हमको पापों से छुड़ाओ। स्तुति करने वाले को तुम जो सुख देते हो वही सुख हमको दो हम सुन्दर संतान वाले होकर सौ वर्ष तक सुखपूर्वक जीवें।८। [६]

सूक्त ५

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्य । देवताआ-अग्निः । छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

हुवे वः सूनूं सहसो युवानमद्रोघवाचं मतिभिर्यविष्ठम् ।
य इन्वति द्रविणानि प्रचेता विश्ववाराणि पुरुवारो अध्रुक ॥१
त्वे वसूनि पुर्वणीक होतर्दोषा वस्तोरेरिरे यज्ञियासः ।
क्षामेव विश्वा भुवनानि यस्मिन्त्सं सौभगानि दधिरे पावके ॥२
त्व विक्षु प्रदिवः सीद आसु क्रत्व रथरभवो वार्याम् ।
अत इनाषि विधते चिकित्वो व्यानुषग्जातवेदो वसूनि ॥३
यो नः सनुत्यो अभिदासदग्ने यो अन्तरो मित्र महो वनुष्यात् ।
तसजरेभिर्वृषभिस्तव स्वैस्तपा तपिष्ठ तपसा तपस्वान् ॥४
यस्ते यज्ञेन समिधाय उक्थैरर्केभिः नूनो सहसा ददाशत् ।
स मर्त्येष्वमृत प्रचेता राया द्युम्नेन श्रवसा वि भाति ॥५
स तत्कृधीषितस्तूयमग्ने स्पृधो बाधस्व सहसा सहस्वान् ।
यच्छस्य से द्युभिरक्तो वचोभिस्तज्जुषस्व जरितुर्घोषि मन्म ॥६
अश्याम तं काममग्ने तवोती अश्योमं रयिं रयिवः सुवीरम् ।
अश्याम वाजमभि वाजयन्तोऽश्याम द्युम्नमजराजरंते ॥७।७

हे अग्ने ! हम स्तोत्रों द्वारा तुम्हें बुलाते हैं। तुम बल के पुत्र, सतत युवा महान् स्तोत्रों द्वारा स्तुत्य, मेधावी तथा द्रोह से शून्य हो। ऐसे गुण वाले अग्नि स्तुति करने वाले मनुष्यों को उनका इच्छित ऐश्वर्य देते हैं।१ हे अग्ने ! तुम बहुत ज्वालाओं से युक्त तथा देवताओं के बुलाने वाले हो। यज्ञ करने वाले यजमाम दिन रात तुमको हविरन्न प्रदान करते रहते हैं। जैसे देवताओं ने सभी प्राणियों को पृथिवी पर स्थापित किया था, वैसे ही अग्नि में सभी धनों को धारण कराया था। २। हे अग्ने ! तुम अपने सामर्थ्य से श्रेष्ठ कामनाओं को प्राप्त करते हो और श्रेष्ठ सम्पत्ति को प्राप्त करने वालों में तुम्हीं प्रधान हो। हे मेधावी तुम अपने उपासकों को विभिन्न

ऐश्वर्य निरन्तर देते रहो ।३। हे अग्ने ! जो छिपा रह कर हमारा नाश करना चाहता है अथवा जो शत्रु हमारे भीतर घुसकर हमारा नाश करने की इच्छा करता है,इन दोनों प्रकार के शत्रुओंको तुम अपने तेज से भस्म कर डालो । तुम्हारा तेज अजर,वृष्टि का कारण रूप सामर्थ्य से मुक्त है ।५। हे अग्ने ! जो यजमान यज्ञ-कर्म से तुम्हारी सेवा करता है अथवा जो यजमान स्तवनीय स्तोत्र और हवियों द्वारा तुम्हारी सेवा करता है वह यजमान मनुष्यों में उत्तम ज्ञानी है तथा श्रेष्ठ धन अन्न को प्राप्त करता हुआ सुशोभित होता है ।५। हे अग्ने ! तुम जिस कर्म में नियुक्त हुए हो उसे शीघ्र सम्पन्न करो । तुम शक्तिशाली हो अतः दूसरों को वश में करने वाली शक्ति से शत्रुओं को नष्ट करो । यह स्तोता, स्तुतियों से तुम्हारी अर्चना करता है । तुम इस स्तोत्र को स्वीकार करो । अग्निदेव प्रकाशमान तेज से परिपूर्ण हैं ।६। हे अग्ने ! तुम्हारे आश्रय में हमको इच्छित फल लाभ हो । हे ऐश्वर्य के स्वामिन ! हम सुन्दर संतान से पूर्ण ऐश्वर्य को प्राप्त करें । अन्न की कामना करते हुए हम तुम्हारे द्वारा दिए हुए अन्न को पावें । हे अग्ने ! तुम अजर रहो । हम तुम्हारे अत्यन्त तेजस्वी व जरारहित यश से यशस्वी बनें ।७। [७]

सूक्त ६

(ऋषि—भरद्वाजो वार्हस्पत्यः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्)

प्र नव्यसा सहसः सूनुमच्छा यज्ञेन गातुमव इच्छमानः ।
वृश्चद्वनं कृष्णयामं रुशन्तं वीती होतारं दिव्यं जिगाति ।।१
स श्वितानस्तन्यतू रोचनस्था अजरेभिर्नानदद्भिर्यविष्ठः ।
यः पावकः पुरुतमः पुरूणि पृथून्यग्निरनुयाति भर्वन् ।।२
वि ते विष्वग्वातजूतासो अग्ने भामासः शुचे शुचयश्चरन्ति ।
तुविम्रक्षासो दिव्या नवग्वा वना वनन्ति धृषता रुजन्तः ।।३
ये ते शुक्रासः शुचयःशुचिष्मः क्षां वपन्ति विषितासो अश्वाः ।
अध भ्रमस्त उर्विया वि भाति यातयमानो अधि सानु पृश्नेः ।।४

अध जिह्वा पापतीति प्र वृष्णो गोषुयुधो नाशनिः सृजाना ।
शूरस्येव प्रसितिः क्षातिरग्नेर्दुर्वर्तुर्भीमो दयते वनानि ॥५
आ भानुना पार्थिवानि ज्रयांसि महस्तोदस्य धृषता ततन्थ ।
स वाधस्वाप भया सहोभिः स्पृधो वनुष्यन्वनुषो नि जूर्व ॥६
स चि चित्रं चितयन्तमस्मे चित्रक्षत्र चित्रतमं वयोधाम् ।
चद्रं रयिं पुरुवीरं वृहन्तं चन्द्र चन्द्राभिर्गृणते युवस्व ॥७ ८

अन्न की कामना करने वाले यजमान स्तुति के पात्र एवं बल के आधार अग्नि के पास यज्ञ कर्म से युक्त होकर जाते हैं । वे अग्नि जंगलों को भस्म करने वाले, उज्वल, कामना के योग्य एवं दिव्य होता स्वरूप हैं ।१। वे सबके पवित्र करने वाले एवं महान् हैं उज्वल वर्षा वाले, अन्तरिक्ष में व्याप्त जरारहित शब्दकारी हैं । वे मरुद्गण से सुसङ्गत होते हैं । वे असंख्य कठोर काष्ठों को भक्षण करते हुए चलते हैं ।२। हे अग्ने ! तुम्हारी ज्वालायें वायु के योग से असंख्य काष्ठों को भस्म करती हुई सर्वत्र व्याप्त होती हैं । प्रज्वलित अग्नि से उत्पन्न ज्वालायें अपनी गमनशील कान्ति से जंगलों को भस्मभूत करती हैं ।३। हे तेजोमय अग्ने ! तुम्हारी जो प्रदीप्त ज्वालायें वनों को जलाती हैं, वे छोड़े हुए घोड़ों के समान इधर-उधर जाती हैं । तुम्हारी गतिशील ज्वालायें पृथ्वी पर अद्भुत रूपसे क्रीड़ा करती हुई विराजमान होती हैं ।४। वृष्टि के कारणभूत अग्नि की ज्वालायें वारम्बार उठती हैं, उसी प्रकार जसे गौओंके लिए संग्राम करने वाले इन्द्र का वज्र बारम्बार उटता है । वीर पुरुषों के समान अग्नि की ज्वालाओं को कोई रोक नहीं सकता । वे अपने विकराल रूप से जंगलों को भस्म कर डालती हैं ।५। हे अग्ने ! तुम अपनी सशक्त ज्वालाओं द्वारा अपने ऐश्वर्य को सम्पूर्ण पृथ्वी पर फैलाओ । तुम सब सङ्कटों को मिटाओ और अपने तेज के सामर्थ्य से हमसे द्वेष करने वालों को वश में करते हुए शत्रुओं का नाश कर डालो ।६। हे अग्ने ! तुम अद्भुत तेज वाले हो । हम प्रसन्न करने वाले स्तोत्रों से तुम्हारी स्तुति करते हैं । तुम अत्यन्त

विचित्र रूप वाले, यशस्वी, अन्नों के देने वाले हो । हमको पुत्र-पौत्रादि से युक्त महान् ऐश्वर्य दो ।।७।। [८]

सूक्त ७

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—वैश्वानरः । छन्द—त्रिष्टुप् पंक्तिः, जगती)

मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या: वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् ।
कविं सम्राजतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवा: ।।१
नाभिं यज्ञानां सदनं रयीणां महामाहावमभि सं नवन्त ।
वैश्वानरं रथ्यमध्वराणां यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवा: ।।२
त्वद्विप्रो जायसे वाज्यग्ने त्वद्वीरासो अभिमातिषाहः ।
वैश्वानर त्वमस्मासु धेहि वसूनि राजन्त्स्पृहयाय्याणि ।।३
त्वाँ विश्वे अमृत जायमानं शिशुं न देवा अभि सं नवन्ते ।
तव क्रतुभिरमृतत्वमायन्वैश्वानर यत्पित्रोरदीदेः ।।
वैश्वानर तव तानि व्रतानि महान्यग्ने नकिरा दधर्ष ।
यज्जायमान: पित्रोरुपस्थेऽविन्दः केतुं वयुनेष्वह्नाम् ।।५
वैश्वानरस्य विमितानि चक्षसा सानूनि दिवो अमृतस्य केतुना ।
यस्येदु विश्वा भुवनाधि मूर्धनि वया इव रुरुहः सप्त विस्रुहः ।।६
वि यो रजांस्यमिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो वि दिवो रोचना कविः ।
परि यो विश्वा भुवनानि पप्रथेऽदब्धो गोपा अमृतस्य रक्षिता ।।७।१

वैश्वानर अग्नि, आकाश के मूर्धा के समान, पृथिवी पर गमन करने वाले, यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों के लिये उत्पन्न, ज्ञानी, भले प्रकार सुशोभित तथा यजमानों के लिये अतिथि के समान हैं, वे रक्षा साधनों से युक्त तथा देवताओं के मुख रूप हैं । उपासकगण उन्हीं अग्नि देवता को प्रकट करते हैं ।१। स्तुति करने वाले यजमान हवियों के पालनकर्त्ता और यज्ञ स्वरूप अग्नि की श्रद्धा सहित स्तुति करते हैं । यज्ञ के द्रव्यों को ग्रहण करने वाले तथा यज्ञ के ध्वजस्वरूप वैश्वानर अग्नि को देवताओं ने

देव ! हविरन्न से सम्पन्न यजमान तुमसे ही ज्ञान प्राप्त करता है । वीर पुरुष तुम्हारी कृपा से ही शत्रुओं को वशीभूत करने में समर्थ होते हैं । हे प्रकाशमान् वैश्वानर अग्ने ! तुम हमको अभीष्ट धन दो ।३। हे अमरत्व गुण-युक्त अग्ने ! तुम दो अरणियों से पुत्र के समान प्रकट हुए हो । सभी देवता तुम्हारी स्तुति करते हैं । हे वैश्वानर अग्ने ! जब तुम आश्रय देने वाले आकाश और पृथिवी के मध्य प्रज्वलित होते हो, तब यजमान तुम्हारे यज्ञीय कर्म द्वारा अविनाशी पद प्राप्त करते हैं ।४। हे वैश्वानर अग्ने ! तुम्हारे प्रख्यात कर्मों में कोई विघ्न नहीं डाल सकता । माता पिता के समान आकाश पृथिवी की आश्रित अरणियों में उत्पन्न होकर तुमने दिनों के दिखाने वाले सूर्य की स्थापना की ॥५॥ वैश्वानर अग्नि के तेज से दिव्यलोक के उच्च स्थान बने हैं । वैश्वानर के मूर्धा रूप मेघ में जलराशि चलती है और उससे सात नदियाँ प्रवाहित होती हैं ॥६॥ पवित्र करने वाले जिन आकाश में चमकते हुए नक्षत्रों को बनाया था और जिन्होंने सभी प्राणियों के लिये चारों दिशाऐं प्राप्त की थीं, वे अग्नि जलों के रक्षक तथा किसी के द्वारा न जीते जाने योग्य हैं ।७। [९]

सूक्त ८

(ऋषि—भारद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—वैश्वानरः । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

पृक्षस्त वृष्णो अरुषस्य नू सहः प्र नु वोच विदथा जातवेदसः ।
वैश्वानराय मतिर्नव्यसी शुचि सोमइव पवते चारुरग्नये ॥१
स जायमानः परमे व्योमनि व्रतान्यग्निर्व्रतपा अरक्षत ।
व्यन्तरिक्षममिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो महिना नाकमस्पृशत् ॥२
व्यस्तभ्नाद्रोदसी मित्रो अद्भुनोऽन्तर्वावदकृणोज्ज्योतिषा तमः ।
वि चमणोव धिषणे अवर्तयद्वैश्वानरो विश्वमधत्त वृष्ण्यम् ॥३
अपामुपस्थे महिषा अगृभ्णत विशो राजानमुप तस्थुर्ऋग्मियम् ।
आदूतो अग्निमभरदिवस्वतो वैश्वानरं मातरिश्वा परावतः ॥४

युगेयुगे विदथ्यं गृणद्‌भयोऽग्ने रयिं यशसं धेहि नव्यसीम् ।
मभ्यंव राजन्नघशंसमजर नीचा नि वृश्च वनिनं न तेजसा ॥५
अस्माकमग्ने मघवत्सु धारयानामि क्षत्रमजरं सुवीर्यम् ।
वयं जयेम शतिनं सहस्त्रिणं वैश्वानर वाजमग्ने तवा तवोतिभिः॥६
अदब्धेभिस्तव गोपाभिरिष्टेऽस्माकं पाहि त्रिषधस्थ सूरीन् ।
रक्षाचनो ददुषांशर्धो अग्ने वैश्वानार प्र च तारीः स्तवानः ॥७।१०

जलों के वर्षक, जन्म से ही मेधावी, प्रकाशमान, सर्वत्र व्याप्त अग्नि के तेज की हम इस यज्ञ में हार्दिक स्तुति करते हैं। उनके समक्ष पवित्र, अभिनव तथा सुन्दर स्तोत्र सोमरस के समान उपस्थित होता है ।१।सत्य कर्मों की रक्षा करने वाले वैश्वानर अग्नि श्रेष्ठ आकाश में प्रकट होकर वैदिक और लौकिक दोनों प्रकार के कर्मों का पालन करते हैं। वे ही अंतरिक्ष की सीमा का निर्धारण करते हैं। श्रेष्ठ कर्मों वाले वैश्वानर अग्नि अपने तेज से आकाश तक पहुंचते हैं ।२। मित्र के समान हितकारी एवं अद्भुत रूप वाले वैश्वानर अग्नि न आकाश और पृथिवी को अपने-अपने स्थान पर टिका कर स्थिर किया। उन्होंने अपन तेज से अन्धकार को छुाया और आश्रयभूत आकाश पृथिवी को पशुओं के चमड़े के समान बढ़ाया। वे अग्नि समस्त पराक्रमों के धारण करने वाले हैं ।३। महान् कर्म वाले मरुद्‌गण ने अन्तरिक्षमें अग्निको स्थापित किया था और मनुष्यों ने उनको स्वामी बनाकर इनकी पूजा की। देवताओं के दूत रूप में मातरिश्वा इन वैश्वानर अग्नि को सूर्य मंडल से इस भूलाक पर ले आये ।४। हे अग्ने ! तुम यज्ञ के योग्य हो। जो साधक तुम्हारे लिये अभिनव स्तोत्रों को कहते हैं, उन्हें, तुम यशस्वी सन्तान तथा सुन्दर ऐश्वर्य देते हो। हे अग्ने ! तुम अजर तथा उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित हो। अपने तेज से शत्रु को उसी प्रकार गिरा दो जैसे वज्र वृक्ष को गिरा देता है ॥५॥ हे अग्ने ! हम हविरन्न से सम्पन्न हैं। तुम हमको अक्षुण्ण धन और ऐश्वर्य तथा जरावस्था से रहित एवं शत्रु को भगा देने वाला श्रेष्ठ बल-वीर्य धारण कराओ। हे वैश्वानर अग्ने ! हम तुम्हारे रक्षा साधनों के भरोसे सैकड़ों और हजारों सख्या वाले ऐश्वर्य को जीत लें ॥६॥

हे तीनों लोकों के स्वामी अग्निदेव ! तुम किसी के द्वारा भी नष्ट न किये जाने योग्य तथा रक्षा करने वाले बल से स्तुति करने वालों की रक्षा करो हे वैश्वानर अग्ने ! तुम हवि देने वाले यजमानों के बल-वीर्य की रक्षा करो हम तुम्हारी स्तति करते हैं, तुम हमको दुःखों से पार करो ।७। [१०]

सूक्त ९

(ऋषि—भारद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—वैश्वानरः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः, जगती)

अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च वि वर्तते रजसी वेद्याभिः ।
वैश्वानरो जायमानो न राजावातिरज्ज्योतिषग्निस्तमांसि ॥१
नाहं तन्तुं न वि जानाम्योतुं न यं वयन्ति समरेऽतमानाः ।
कस्य स्वित्पुत्र इह वक्त्वानि परो वदात्यवरेण पित्रा ॥२
स इत्तन्तुं स वि जानात्योतुं स वक्त्वान्यृतुथा वदाति ।
य ईं चिकेतदमृतस्य गोपा अवश्चरन्परो अन्येन पश्यन् ॥३
अयं होता प्रथमः पश्यतेमिदं ज्योतिरमृतं मर्त्येषु ।
अयं स जज्ञे ध्रुव आ निषत्तोऽमर्त्यस्तन्वा वर्धमानः ।४
ध्रुवं ज्योतिर्निहितं दृशये कं मनो जविष्ठं पतयत्स्वन्तः ।
विश्वेदेवाः समनसः सकेता एकं क्रतुमभि वि यन्ति साधु ॥५
वि मे कर्णा पतयतो वि चक्षुर्वी दं ज्योतिर्हृदय आहितं यत् ।
वि मे मनश्चरति दूरआधीः किं स्विद्वक्ष्यामि किमु नू मनिष्ये ॥६
विश्वे देवा अनमस्यन्भियानास्त्वामग्ने तमसि तस्थिवांसम् ।
वैश्वानरोऽवतूतये नोऽमर्त्योऽवतूतये नः ॥७।११

काले रंग की रात और उज्वल वर्ण वाला दिन संसार को रंगते हुए नियमित रूपसे बदलते रहते हैं । वैश्वानर अग्नि राजा के समान दैदीप्यमान होते हुए अंधेरे को नष्ट करते हैं ॥ १ ॥ मैं ताना बाना कुछ नहीं जानता तथा प्रयत्न द्वारा जो वस्त्र बुना जाता है,उसके सम्बन्ध में भी कुछ

ज्ञान नहीं है । इस लोक में निवास करने वाले पिता के उपदेश को सुनने वाला पुत्र अन्य लोक की वाणी में कैसे उपदेश कर सकता हैं ? ।२। ताना या बाना के सम्बन्ध में केवल वैश्वानर ही जानते हैं । वे समय-समय पर उपदेश देते हैं । जल की रक्षा करने वाले तथा पृथिवी पर गमन करने वाले अग्नि अंतरिक्ष में आदित्य के रूपमें चमकते हैं और संसार को प्रकाश देते हैं ।३। हे विज्ञजनो! यह वैश्वानर अग्नि प्रथम होता है,इनसे साक्षात् किया करो । वह मरणधर्मा मनुष्यों के मध्य रहने वाली अमरज्योति के समान हैं । वह कभी भी न मरने वाले नित्य होते हुए शरीर से सदा बढ़ते हैं ।४। मन से भी अधिक वेग वाले वैश्वानर अग्नि की स्थिर ज्योति सुख रूप मार्गों को दिखाने के लिए प्राणियों के भीतर निवास करती है सभी देवता समान मतिवाले होकर श्रद्धा सहित मुख्य कर्मोंके करने वाले वैश्वानर के सम्मुख आते हैं ।५। हे अग्ने ! तुम्हारे गुणको सुनने के लिए हमारे दोनों कान और तुम्हारे दर्शन करने के लिए हमारे नेत्र उपस्थित होते हैं । हमारे अन्तःकरण में जो ज्योति निवास करती है, वह भी तुम्हारे रूप को जानने की इच्छा करती है । हमारा मन भी दूरस्थ ज्योति का ध्यान करता हुआ विचार मग्न रहता है फिर हम वैश्वानर के रूप को वाणी द्वारा कैसे कहें ? ।६। हे वैश्वानर अग्ने ! समस्त देवता तुम्हें प्रणाम करते हैं । तुम अन्धकार में रखे दीपक के समान चमकने वाले हो । अपने रक्षा-साधन में हमारी रक्षा करो । हम तुम्हारी शरण में आते हैं । वे अमरत्व गुण वाले अग्नि हमारी रक्षा करने वाले हों ।७। [११]

सूक्त १०

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप् पंक्तिः वृहती)

पुरो वा मन्द्रं दिव्यं सुवृक्तिं प्रयति यज्ञ अग्निमध्वरे दधिध्वम् ।
पुर उक्थेभिः स हि ना विभावा स्वध्वरा करति जातवेदाः ।।१
तमु द्युमः पुर्वणीक होतरग्ने अग्निभिर्मनुष इधानः ।
स्तोभ यमस्म ममतेद शूष घृतं न शुचि मतयः पवन्ते ।।२

पीपाय स श्रवसा मर्त्येंषु या अग्नये ददाश विप्र उक्थैः ।
चित्राभिस्तमूतिभिश्चित्रशोचिर्व्रजस्य साता गोमतो दधाति ॥३
आ यः पप्रौ जायमान उर्वी दूरेदृशा भासा कृष्णाध्वा ।
अध बहु चित्तम ऊर्म्यायास्तिरः शोचिषा ददृशे पावकः ॥४
नू नश्चित्रं पुरुवाजाभिरूती अग्ने रयिं मघवद्भ्यश्च धेहि ।
मे राधसा श्रवसा चात्यन्यात्सुवीर्येभिश्चाभि सन्ति जनान् ॥५
इमं यज्ञं चनो धा अग्न उशन्यं त आसानो जुहुते हविष्मान् ।
भरद्वाजेषु दधिषे सुवृक्तिमवीर्वाजस्य गध्यस्य सातौ ॥७
विद्वेषांसानुहि वर्धयेलां मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥७॥१२

हे विज्ञजनो ! प्रयत्न के साध्य इस यज्ञ में विघ्नादि से बचे रहने के लिए सब प्रकार के दोषों से रहित अग्नि की स्तोत्रों द्वारा सम्मुख स्थापना करो, क्योंकि वे सभी उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता, यज्ञ में हमारे लिए कल्याणकारी कर्मों का सम्पादन करते हैं ।१। हे असंख्य ज्वालाओं से प्रकाशमान् अग्ने ! तुम देवताओं को आहूत करने में समर्थ हो । तुम अपने अंश रूप अग्नियों सहित बढ़ते हुए, स्तुति करने वालों के स्तोत्र को सुनो । ममता के समान यह स्तुति करने वाले यजमान अग्नि के निमित्त सुन्दर स्तोत्र को घृत के समान निवेदन करते हैं ।२। अग्नि में जो मनुष्य स्तोत्र के सहित हव्य देता है, वह अग्नि की कृपा से सभी मनुष्यों में समृद्धिशाली हो जाता है । वे अग्निदेव अद्भुत ज्वालाओं से युक्त एवं अद्भुत रक्षा साधनों सहित उस स्तोता को गोशाला से युक्त गौऐं प्रदान करते हैं ।३। अग्नि में उत्पन्न होकर दूरसे ही दिखाई देने वाले अपने तेज से आकाश पृथिवी को परिपूर्ण किया । वह अग्नि रात्रि के घोर अँधेरे को अपने प्रकाश से दूर करते हुए दिखाई देते है ।४। हे अग्ने ! हम हविरन्न वाले हैं तुम शीघ्र ही हमको अपने रक्षासाधनों से युक्त अद्भुत धन दो । जो पुत्र अन्य मनुष्यों को अपने वश में कर सके ऐसा अन्न, धन से युक्त तथा वीर्यवान् पुत्र हमको प्राप्त कराओ ।५। हे अग्ने ! जो हवियों से सम्पन्न मनुष्य तुम्हारा यज्ञ करता है तुम उसकी हवि की कामना करते हुए यज्ञ के साधन रूप उस अन्न को

ग्रहण करो। हे अग्ने ! उन पर पूर्ण कृपा करो, जिससे वे यजमान विभिन्न अन्नों को प्राप्त कर सकें।६। हे अग्ने ! द्वेष करने वाले शत्रुओं को दूर करो। तुम हमारे अन्न को बढ़ाओ। हम सुन्दर संतानों से सम्पन्न साधक सौ हेमन्तों तक सुखी रहें।७। [१२]

सूक्त 11

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। देवता—अग्निः। छन्द—त्रिष्टुप् पंक्तिः)

यजस्व होतरिषितो यजीयानग्ने दाक्षो मरुतां न प्रयुक्ति।
आ नो मित्रावरुणा नासत्या द्यावा होत्राय पृथिवी ववृत्याः ॥१
त्वं होता मन्द्रतमो ना अध्रूगन्तर्देवो विदथा मर्त्येषु।
पावकया जुह्वा वह्निरासाग्ने यजस्व तन्व तव स्वाम् ॥२
धन्या चिद्धि त्वे धिषणा वष्टि प्र देवाञ्जन्म गृणते यजध्यै।
वेपिष्ठा अङ्गिरसां यद्ध विप्रो मधुच्छन्दो भनति रेभ इष्टौ ॥३
अदिद्युतत्स्वपाको विभावाग्ने यदस्व रोदसी ऊरूची।
आयुं न यं नमसा रातहव्या अञ्जन्ति सुप्रयसं पञ्च जनाः ॥४
वृञ्जेह यन्नमसा वर्हिरग्नावयामि स्रुग्घृतवती सुक्तिः।
अम्यक्षि सद्म सदने पृथिव्या अश्रायि यज्ञः सूर्ये न चक्षुः ॥५
दशस्या न पुर्वणीक होतर्देवेभिरग्ने अग्निभिरिधानः।
रायः सूनो सहसो वावसाना अति स्रसेमं बृजनं नांहः ॥६।१३

हे होता रूप अग्ने ! तुम यज्ञ करने वालों में महान हो। तुम हमारे द्वारा पूजित होकर मरुतों को, मनुष्यों को कुमार्ग से रोकने और उत्तम कर्म रूप मार्ग में लगाने वाला बल प्राप्त कराओ। तुम मित्र वरुण तथा असत्य कार्य न करने वाले दोनों देव और आकाश-पृथिवी को हमारे यज्ञ कार्य में लगाओ।१। हे अग्ने ! तुम अत्यन्त पूजनीय हो। तुम हमसे द्वेष नहीं करते। तुम सदा हमारे प्रति दानशील रहते हो। हे अग्ने ! तुम हवियों के वाहक हो। तुम्हीं पवित्र करने वाले हो तथा देवताओं की मुख रूप ज्वालाओं

द्वारा अपने देहको प्राप्त करने वाले हो ।२। हे अग्ने ! धन कामना करने वाली स्तुति तुम्हें चाहती है। तुम्हारे प्रज्ज्वलित होने पर ही इन्द्रादि देवताओं का यज्ञ कराने में यजमान लोग सफलता प्राप्त करते हैं।सब ऋषियों में अंगिरा ऋषि अत्यन्त स्तुति करते हैं और विद्वान् भरद्वाज प्रसन्नताप्रद स्तोत्रों का पाठ करते हैं ।३। मेधावी एवं तेजस्वी अग्नि भले प्रकार शोभायमान होतेहैं। हे अग्ने!तुम अत्यन्त विस्तृत आकाश पृथिवीकी हवियों से परिचर्या करो। तुम सुन्दर हविरन्न से युक्त हो। हविदाता ऋत्विक् यजमान के समान ही हव्य द्वारा अग्नि को संतुष्ट करते हैं ।४। अग्नि के पास जब हव्ययुक्त कुश लाया जाता है और शुद्ध घृत से युक्त स्रुक कुश पर रखा जाता है, तब अग्नि के लिए पृथिवी पर वेदी बनाई जाती है । जैसे सूर्य अपने तेज से स्थित होते हैं, वैसे ही यजमान का यज्ञ अग्नि के आश्रित होता है ।५। हे देवताओं को बुलाने वाले असंख्य ज्वालाओं से युक्त अग्निदेव ! तुम तेजस्वी हो। तुम अग्नियों सहित अपने तेज को बढ़ाते हुए हमको धन दो। हम तुम्हें हव्य प्रदान करते हैं। हम इस शत्रु रूपी पाप के बन्धन से छूट जांय ।६।

सूक्त १२

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

मध्ये होता दुरोणे बर्हिषो रालग्निस्तोदस्य रोदसी यजध्यै ।
अयं स सुनूः सहस ऋतावा दूरात्सूर्यो न शोचिषा ततान ॥१
आ यस्मिन्त्वे स्वपाके यजत्र यक्षद्राजन्त्सर्वतातेव नु द्यौः ।
त्रिपधस्थस्ततरुषो न जंहो हव्या मघानि मानुषा यजध्यं ॥२
तेजिष्ठा यस्यारतिर्बनेराट तोदो अध्वन्र वृधसानो अद्यौत् ।
अद्रोघो न द्रविता चंतति त्मन्नमर्त्योऽवत्रं ओषधाषु ॥३
सास्माकेभिरेतरो न शुषैरग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः ।
द्रू वन्नो वन्वन् क्रत्वा नार्वेस्त्रिः पितेव जारयायि यज्ञैः ॥४
अध स्मास्म पनयन्ति भासो पृथा यत्तक्षदनुयाति पृथ्वीम् ।

सद्यो य स्यन्द्रो विषितो धवीयानृणो न तायुरति धन्वा राट् ॥५
स त्वं नो अर्वन्निदाया विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिधानः ।
वेषि रायो वि यासि दुच्छुना मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥६॥१४

देवताओं का आह्वान करने वाले एवं यज्ञ के स्वामी अग्निदेव आकाश पृथ्वी को पूर्ण करने के लिए यजमानों के घर में स्थापित होते हैं। वे यज्ञ कर्म से युक्त,बल के पुत्र अग्नि अपने प्रकाश द्वारा सूर्य के समान इसअखिल विश्व को दूर से ही प्रकाशित करते हैं ।१। हे यज्ञशील, तेजोमय अग्निदेव ! तुम मेधावी हो । तुम तीनों लोकों में व्याप्त होकर मनुष्यों द्वारा दिए गए उत्तम हव्य पदार्थ को देवताओं के पास पहुंचाने में सूर्य के समान तेजस्वी होओ । हे अग्ने ! सभी यजमान श्रद्धा सहित बहुत हव्य भेंट करते हैं । २ । जिन अग्निदेवता की सर्वत्र व्याप्त होने वाली एवं अत्यन्त दीप्तमती ज्वालाऐं जङ्गल में प्रज्ज्वलित होती हैं, वे समृद्धि को प्राप्त हुए अग्नि सूर्य के समान अन्तरिक्ष मार्ग में व्याप्त होते हैं । वे सबका कल्याण करने वाले,कभी भी क्षीण न होने वाली वनस्पतियों में वायु के समान वेग से जाते तथा अपने प्रकाश से सम्पूर्ण संसार को प्रकाशित करते हैं । ३ । ज्ञानवान् अग्नि यज्ञ करने वालों के सुखकारी स्तोत्र के समान हमारे स्तोत्र से यज्ञ-स्थान में पूजे जाते हैं यजमान उन जङ्गल में रहकर वनस्पतियों के भक्षण करने वाले बछड़ों के जनक बैल के समान,शीघ्र,कर्म करनेवाले अग्नि की स्तुति करते हैं । ।४। अकस्मात् जब अग्नि जङ्गलों को भस्म कर भूमि पर फैल जाते हैं,तब स्तुति करने वाले मनुष्य इस लोक में अग्नि की ज्वालाओं की स्तुति करते हैं। अलक्षित भाव से पृथिवी को भोगने वाले अग्नि तेजस्वी होकर विराजते हैं । ५ । हे शत्रुओं का नाश करने वाले अग्निदेव ! तुम अपनी ज्वालाओं सहित प्रकट होकर हमको निन्दाओं से बचाओ । तुम हमको ऐश्वर्य दो । दुःख देने वाली शत्रु सेनाओं का नाश करो । हम उत्तम वीरों से युक्त होकर सौ हेमन्त ऋतुओं तक सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करें।६। [१४]

सूक्त १३

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

त्वद्विश्वा सुभग सौभगान्यग्ने वि यन्ति वनिनो न वयाः ।
श्रुष्टी रयिर्वाजो वृत्रतूर्ये दिवो वृष्टिरीड्यो रीतिरपाम् ॥१
त्वं भगो न आ हि रत्नमिषे परिज्मेव क्षयसि दस्मवर्चाः ।
अग्ने मित्रो न वृहत ऋतस्यासि क्षत्ता वामस्य देव भूरेः ॥२
स सत्पतिः शवसा हन्ति वृषमग्ने विप्रा वि पणोर्भर्ति वाजम् ।
यं त्वं प्रचेत ऋतजात राया सजोषा नप्त्रापां हिनोषि ॥३
यस्ते सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैर्यज्ञैर्मर्तो निशितिं वद्यानट् ।
विश्वं स देव प्रति वारमग्ने धत्ते धान्यं पत्यते वसव्यैः ॥४
ता नृभ्य आ सौश्रवसा सुवीराग्ने सुनो सहसः पुष्यसे धाः ।
कृणोषि यच्छवसा भूरि पश्वो वयो वृकायारये जसुरये ॥५
वद्मा सूनो सहसो नो विहाया अग्ने तोकं तनयं वाजि नो दा ।
विश्वाभिर्गीर्भिरभि पूर्त्तिमश्यां मदेम शतहिमाः सुवीरा ॥६।१५

हे सुन्दर ऐश्वर्य से युक्त अग्निदेव ! इन विभिन्न प्रकार के ऐश्वर्यों को तुमने ही उत्पन्न किया है । वृक्ष से जैसे विभिन्न प्रकार वाली शाखाऐं उपजती हैं, वैसे ही तुमसे पशु उत्पन्न होते हैं । रणस्थल में शत्रुओं पर विजय पाने वाला बल भी तुम्हारे द्वारा ही उत्पन्न हुआ है अतरिक्ष से होने वाली वर्षा के उत्पत्तिकर्ता भी तुम ही हो, इसलिए तुम सभी के लिए पूजनीय हो । १ । हे अग्ने ! तुम उपासना के योग्य हो,हमको सुन्दर धन, दो । तुम्हारा तेज देखने योग्य है । सर्वत्र व्याप्त वायु के समान सर्वत्र विद्यमान हो ! हे तेजस्विन् ! तुम मित्र के समान प्रचुर ज्ञान देने वाले होओ तथा उपभोग के योग्य सुन्दर ऐश्वर्य को प्राप्त कराओ ।२। हे उत्तम ज्ञान से युक्त यज्ञ के लिए प्रकट हुए अग्ने ! तुम जलधाराओं को व्याप्त करने वाले विद्युत रूप अग्नि के साथ मिलकर जिस मनुष्य को धन की प्रेरणा देते हो, वह सज्जनों का पालक मेधावी मनुष्य तुम्हारे बल से ही

शत्रुओं को नष्ट करता है और पणि के बल को घटाता है । ३ । हे बलके पुत्र एवं तेजोमय अग्ने ! जो मनुष्य उपासना, यज्ञ-कर्म एवं स्तुतियों से तुम्हारे तीक्ष्ण तेज को आकर्षित कर लेता है, वह हर प्रकार समृद्ध होता हुआ अन्न आदि लाभ करता है तथा ऐश्वर्य से युक्त होता है ।४। हे बल के पुत्र अग्ने ! तुम हमारा पालन करने के लिए श्रेष्ठ पुत्रों सहित सुन्दर अन्न दो । जो पशु आदि से उत्पन्न दही आदि खाद्य तुम हमारे विरोधियों से लाते हो,वह खाद्य हमको प्रचुर परिमाण में दो।५। हे बलके पुत्र अग्नि देव ! तुम पराक्रमी हो । हमको उपदेश देने वाले होओ । हमें अन्न सहित सन्तान दो । हम स्तुतियाँ करके अपने अभीष्ट को पूर्ण कर पावें । हम सुन्दर सन्तानों सहित सौ हेमन्तों तक उपभोग के योग्य सुख पाते हुए जीवें । ६ । [१५]

सूक्त 14

(ऋषि—भारद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः, बृहती)

अग्ना यो मर्त्यो देवो धियं जुजोष धीतिभिः ।
भसन्नु ष प्र पूर्व्यं इष बुरीत्तावसे ॥१
अग्निरिद्धि प्रचेता अग्निर्वेधस्तम ऋषिः ।
अग्नि होतारमीलते यज्ञेषु ननुषो विशः ॥२
नाना ह्यग्नेऽवसे स्पर्धन्ते रायो अर्यः ।
तूर्वन्तो दस्युमायवो व्रतैः सीक्षन्तो अव्रतम् ॥३
अग्निरप्सामृतीषहं वीरं ददाति सत्पतिम् ।
यस्य त्रसन्ति शवसः सञ्चक्षि शत्रवो भिया ॥४
अग्निर्हि विद्मना निदो देवो मर्तमुरुष्यति ।
सहावा यस्यावृता रयिर्वाजेष्ववृतः ॥५
अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः ।
वीहि स्वस्ति सुक्षितिं दिवो नृन्द्विषो अंहांसि दुरिता तरेम
ता तरेम तवावसा तरेम ॥६।१६

जो साधक यज्ञादि कर्म करता हुआ स्तोत्र द्वारा अग्नि की सेवा करता है, वह मनुष्यों में प्रमुख एवं तेजस्वी होता है तथा अपने पुत्र आदि का पालन करने के लिए वह शत्रुओं के पास से बहुत अन्न प्राप्त करता है। १ । एक मात्र अग्नि ही सर्वोत्कृष्ट ज्ञानी हैं, उनके समान अन्य कोई भी नहीं है। वे यज्ञ कर्म का निर्वाह करने वाले तथा सर्वद्रष्टा हैं। यजमानों के पुत्रादि अग्नि को यज्ञ में देवताओं का आह्वान करने वाले मान कर स्तुति करते हैं। २ । हे अग्ने ! शत्रुओं का धन उनके पास से हटकर तुम्हारी स्तुति करने वालों की रक्षा करता है । शत्रुओं को जीतने वाले तुम्हारे उपासक तुम्हारा यज्ञ करते हुए यज्ञ न करने वालों को वश में करने की कामना करते हैं ।३। स्तुति करने वालों को अग्नि उत्तम कर्म वाला शत्रु को जीतने वाला तथा श्रेष्ठ कार्यों की रक्षा करने वाला पुत्र देते हैं, जिसके देखने से ही शत्रु उससे डर कर काँपने लगते हैं। ४। अग्नि ही अपने ज्ञान के बल से तेजस्वी होकर निन्दा करने वालों को वशीभूत करते हुए मनुष्य की रक्षा करते हैं। वह स्वयं तथा उनका वरणीयबल युद्धकाल में किसी पर अप्रकट नहीं रहता ।५। हे सुन्दर तेज वाले, दानशील आकाश और पृथिवी में व्याप्त अग्ने! तुम हमारी स्तुतियों को देवताओं से कहो। हम स्तुति करने वालों को सुन्दर निवास-प्रद सुख लाभ कराओ। हम शत्रुओं, पापों तथा कष्टों से रक्षित रहें। हे अग्ने ! हम तम्हारे रक्षा साधनों से शत्रुओं से पार हो जांय। ६ । [१६]

सूक्त १५

(ऋषि—भारद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—अग्निः । छन्द–त्रिष्टुप्,
शक्वरी, पंक्ति, बृहती अनुष्टुप्)

इममू षु वो अतिथिमुषर्बुधं विश्वासां विशां पतिमृञ्जसे गिरा ।
वेतीद्दिवो जनुषा कच्चिदा शुचिर्ज्योक् चिदत्ति गर्भो यदच्युतम्॥१
मित्रं न यं सुधितं भृगवो दधुर्वनस्पता वीड्यमूर्ध्वशोचिषम् ।
स त्वं सुप्रीतो वीतहव्ये अद्भुत प्रशस्तिभिर्महयसे दिवेदिवे ॥२
स त्वं दक्षस्यावृको वृधो भूरर्यः परस्यान्तरस्य तरुषः ।

रायः सूनो सहसो मर्त्येष्वा छर्दिर्यच्छं वीतहव्याय सप्रथो
भारद्वाजाय सप्रथः ॥३
द्युतानं वो अतिथिं स्वर्णरमग्निं होतारं मनुषः स्वध्वरम् !
विप्रं न द्युक्षवचसं सुवृक्तिभिर्हव्यवाहमरतिं देवमृञ्जसे ॥४
पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन्रुरुच उषसो न भानुना ।
तूर्वन्न यामन्नेतशस्य नृरण आयोघृणे न ततृषाणो अजरः ॥५।१७

हे वीतहव्य, हे विज्ञ ! तुम उषाकाल में चैतन्य होने वाले, लोकों के पालक, स्वभाव से ही निर्मल, अतिथि के समान पूज्य अग्नि की सेवा करो वे अग्निदेव दिव्यलोक से प्रकट होते हुए हविरन्न का सेवन करते हैं ।१। हे अग्ने ! तुम विचित्र हो तुम अरणियों में व्याप्त, स्तुतियों के गहन करने वाले और ऊपर को उठती हुई ज्वालाओं से युक्त हो । तुमको भृगुवंशीय ऋषिजन घर में मित्र के समान रखते हैं । वीतहव्य नित्य प्रति अपने श्रेष्ठ स्तोत्र से तुम्हारी स्तुति करते हैं । हे अग्ने ! तुम उन ऋषियों पर कृपा करो ।२। हे अग्ने ! यज्ञादि कर्मों में चतुर व्यक्ति की तुम सम्पन्न करते हुए दूर के या पास के शत्रु से उसकी रक्षा करते हो । हे अग्ने ! तुम अत्यन्त महान् हो । मनुष्यों में श्रेष्ठ भरद्वाज वंशीय को ऐश्वर्ययुक्त घर लाभ कराओ ।३। हे वीतहव्य ! तुम सुन्दर स्तुति से हव्यों को वहन करने वाले तेजस्वी, स्वर्ग प्राप्त करने वाले, अतिथि के समान पूजनीय, देवताओं का आह्वान करने में समर्थ,यज्ञ-कार्य का सम्पादन करने वाले,ज्ञानी एवं ओजमयी वाणी से युक्त अग्नि देवता की स्तुति करो ।४। उषा जैसे प्रकाश से ही अच्छी लगती है, वैसे ही पृथिवी को पवित्र करने वाले और चैतन्य करने वाले अग्नि अपने तेज से सुशोभित होते हैं । जो एतश ऋषिकी रक्षा के लिये रणक्षेत्र में शत्रु का नाश करने वाले वीर के समान शीघ्र ही चैतन्य हुए, जो सब पदार्थों के भक्षण करने में समर्थ तथा कभी क्षीण न होने वाले हैं, हे वीतहव्य ! उन अग्नि की परिचर्या करो ।५। [१७]

अग्निमग्निं वः समिधा दुवस्यत प्रियंप्रियं वो अतिथिं गृणीषणि ।
उप वो गीर्भिरमृतं विवासत देवो देवेषु वनते हि वार्यं ॥

देवो देवेषु वनते हि नो दुवः ॥६
सामद्धमग्निं समिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं पुरो अध्वरे ध्रुवम् ।
विप्रं होतारं पुरुवारमद्रुहं कविं सुम्नैरामहे जातवेदसम् ॥७
त्वां दुतमग्ने अमृत युगे-युगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम् ।
देवसश्च मतसिश्च जागृविं विभुं
विश्पतिः नभसा नि षेदिरे ॥८
विभूषन्नग्न उभयां अनुव्रता दूतो देवानाँ रजसी समीयसे ।
यत्ते धीतिं सुमतिमावृणामहेऽध स्मा नस्त्रिवरूथः शिवो भव ॥९
तं सुप्रतीकं सुदृशं स्वञ्चमविद्वांसो विदुष्टरं सपेम ।
स यक्षद्विश्वा वयुनानि विद्वान्प्रहव्यमग्निरमृतेषु वोचत्॥१०।१८

हे स्तुति करने वालो ! अतिथि के समान आदरणीय एवं अत्यन्त प्रीतिदायक अग्नि की समिधा द्वारा परिचर्या करो । वे अग्नि सभी देवताओं में दानशील स्वभाव के हैं और समिधाओं के ग्रहण करने वाले हैं । वे हमारी पूजा को स्वीकार करते हैं । अतः उन अविनाशी अग्नि के समक्ष स्तोत्रों से स्तुतियाँ करो ।६। समिधाओं से प्रज्ज्वलित हुए अग्नि की हम स्तोत्रों से पूजा करते हैं । वह स्वयं पवित्र करने वाले हैं । हम उन दृढ़ विचार वाले अग्नि को श्रेष्ठ स्थान में प्रतिष्ठित करते हैं । हम मेधावी देवताओं के आह्वाक, सबके द्वारा वरण करने योग्य, उत्तम स्वभाव वाले एवं सर्वदर्शी अग्नि की सुन्दर स्तोत्रों द्वारा उपासना करते हैं ।७। हे अग्ने देवता और मनुष्य दोनों ही तुम्हें दूत नियुक्त करते हैं । तुम अविनाशी, रक्षक, हव्यवाहक एवं स्तुतियों के पात्र हो । वे दोनों ही प्रजापालक, सर्वव्यापक चैतन्य रहने वाले अग्निदेव को नमस्कार और हव्य सहित प्रतिष्ठापित करते हैं ।८। हे अग्ने ! देवता और मनुष्यों को विशेष प्रकार से अनुग्रहीत करते हुए तुम देवताओं के दूत होकर, आकाश-पृथिवी में घूमते हो । हम श्रेष्ठ स्तोत्रों और सुन्दर यज्ञानुष्ठान द्वारा तुम्हारी उपासना करते हैं । तुम तीनों लोकों में व्याप्त होने वाले होते हुए हमको सुखी बनाओ ॥ ९ ॥ हम अल्प बुद्धि वाले मनुष्य सुन्दर अङ्ग वाले, मनोहर

स्वरूप वाले सबके ज्ञाता, गमनशील अग्नि की सेवा करते हैं। जानने योग्य सभी वस्तुओं के ज्ञाता अग्नि देवताओं के लिये यज्ञ करें और हमारी हवियों को देवताओं को बतावें ।।१०।। [१८]

तमग्ने पास्युत तं पिपर्षि यस्त आनट् कवये शूर धीतिम्।
यज्ञस्य वा निशितिं वोदितिं वा तमित्पृणाक्ष शवसोत राया ।।११
त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि त्वमु नः सहसावन्नवद्यात् ।
सं त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः स रयिः स्पृहयाय्य सहस्री ।।१२
अग्निर्होता गृहपतिः स राजा विश्वा वेद जनिमा जातवेदाः ।
देवानामुत यो मर्त्यानां यजिष्ठः स प्र यजतामृतावा ।।१३
अग्ने तदद्य विशो अध्वरस्य होतः पावकशोचे वेष्ट्वं हि यज्वा ।
ऋता यजासि महिना वि यद्भूर्हव्या वह यविष्ठ या ते अद्य ।।१४
अभि प्रयांसि सुधितानि हि ख्यो नि त्वा दधीत रोदसी यजध्यै ।
अवा नो मघवन्वाजसातावग्ने विश्वानि दुरिता तरेम
ता तरेम । तवावसा तरेम ।।१५।।१९

हे वीरता से युक्त अग्ने ! क्रांतिदर्शी हो। जो साधक तुम्हारी स्तुति करते हैं, तुम उनकी रक्षा करते हुए उनका अभीष्ट सिद्ध करते हो। जो यजमान यज्ञानुष्ठान करता हुआ हविदान करता है, उसको तुम धन और ऐश्वर्य देते हो। हे अग्ने ! शत्रुओं से हमारी रक्षा करो। हे पराक्रमी अग्ने ! तुम हमको पापों से बचाओ। हमारे द्वारा दिया हुआ हव्य तुमको प्राप्त हो। तुम्हारे द्वारा दिया हुआ सहस्रों प्रकार का सुन्दर ऐश्वर्य हम स्तोताओं को प्राप्त हो ।१२। देवताओं के आह्वान करने वाले, तेजस्वी एवं सर्वज्ञाता अग्नि हमारे घर के स्वामी हैं। वे सब प्राणियों के जानने वाले हैं। जो अग्नि देवताओं और मनुष्यों में अत्यन्त यज्ञ करते हैं, वे सत्यवान अग्नि सुन्दर विधिपूर्वक यज्ञ करें ।१३। हे पवित्र ज्वालाओं वाले एवं यज्ञ का सम्पादन करने वाले अग्ने ! इस समय यजमान जो यज्ञ-कर्म करता है उसकी तुम इच्छा करो तुम देवताओं के लिए यज्ञ करने वाले हो अतः इस यज्ञमें देवताओं का यज्ञ करो हे सतत् तरुण अग्ने ! तुम अपनी मह

से ही महान् हो। आज हम जो हवियाँ देते हैं, उन्हें ग्रहण करो ।।१४।। हे अग्ने! वेदी पर विधिपूर्वक रखे हुए हव्य-पदार्थ का अवलोकन करो। यजमान ने आकाश पृथिवी के निमित्त यज्ञ करने के लिये तुम्हारी स्थापना की है। हे अग्ने! तुम ऐश्वर्यवान् हो रण-क्षेत्र में हमारी रक्षा करो, जिससे हम सभी दुःखों से छूट जांय ।१५। [१९]

अग्ने विश्वेभिः स्वनीक देवैरूर्णावन्त प्रथमः सीद योनिम् ।
कुलायिनं घृतवन्तं सवित्रे यज्ञं नय यजमानाय साधु ।।१६
इममुत्यमथर्व दग्नि मन्थति वेधसः ।
यमङ्कूयन्तमानयन्नमूरं श्याव्याभ्यः ।।१७
जनिष्वा देववीतये सर्वताता स्वस्तये ।
आ देवान् वक्ष्यमृतां ऋतावृधोयज्ञं देवेषु पिस्पृशः ।।१८
वयमु त्वा गृहपते जनानामग्ने अकर्म्म सीमधा बृहन्तम् ।
अस्थूरि नो गार्हपत्यानिसन्तु तिग्मेन नस्तेजसा सशिशाधि ।१९।२०

हे सुन्दर ज्वालाओं से युक्त अग्ने! तुम सभी देवताओं में आगे रहकर ऊनयुक्त एवं घृतयुक्त उत्तर वेदी पर विराजमान होओ और हविदाता यजमान के यज्ञ को भले प्रकार देवताओं को प्राप्त कराने वाले होओ।१६। कर्म विधायक ऋत्विक्गण मेधावी अथवा ऋषि के समान मंथन करते हुए अग्नि को प्रकट करते थे। इधर-उधर विचरणशील ज्ञानी अग्नि को रात्रि के अँधेरे में प्रदीप्त करते थे ।।१७।। हे अग्ने! तुम देवताओं की कामना करने वाले यजमान के सुख को स्थायी बनाने के लिये यज्ञ में मंथन द्वारा उत्पन्न होओ। तुम यज्ञ के बढ़ाने वाले तथा अमरधर्मा देवताओं को यज्ञ में लाओ। फिर हमारे यज्ञ को देवताओं को प्राप्त कराओ ।१८। हे यज्ञ की रक्षा करने वाले अग्निदेव! प्राणियों के बीच हम अपनी समिधाओं से तुम्हें प्रवृद्ध करते हैं। हमारे गार्हपत्य-अग्नि हमें पुत्र, पशु और विविध ऐश्वर्य से सम्पन्न करें। तुम हमको अपने सुन्दर तेज से युक्त करो ।१९।

[२०]

सूक्त १६ [दूसरा अनुवाक]

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—अग्निः । छन्द— उष्णिक, गायत्री,
त्रिष्टुप्, पंक्तिः अनुष्टुप्)

त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः । देवेभिर्मानुषु जने ।।१
स नो मन्द्राभिरध्वरेजिह्वाभियंजा महः । आ देवान्वक्षियक्षिच।।१
वेत्था हि वेधो अध्वनः पथश्च देवाञ्जसा । अग्ने यज्ञेषु सुक्रतो।।३
त्वमाले अध द्विता भरतो वाजिभिः शुनम् । ईजे यज्ञेषु यज्ञियम्।४
त्वमिमा वाया पुरू दिवोदासाय सुन्वते । भरद्वाजाय दाशुषे ।५।२१

हे अग्ने ! तुम होम सम्पादक अथवा देवताओं के बुलाने वाले हो । तुम मनु के वंशजों के द्वारा किए जाने वाले यज्ञ में देवताओं द्वारा होता बनाये गये हो।१।हे अग्ने ! तुम आनन्ददायक ज्वालाओं सहित हमारे यज्ञ में देवताओं की स्तुति करो । यहाँ इन्द्रादि देवों को बुलाओ और उन्हें हविरन्न प्रदान करो।२।हे अग्ने ! तुम सुन्दर कर्म करने वाले तथा दानादि गुण से युक्त हो । तुम यश में विस्तृत और छोटे दोनों प्रकार के मार्गों के जानने वाले हो । इस मार्ग-भ्रष्ट साधक को फिर अच्छे मार्ग पर लाओ ।३। हे अग्ने ! "दुष्यन्त" के पुत्र 'भरत" हवि देने वाले ऋत्विकों सहित सुखके निमित्त तुम्हारी स्तुति करते हैं । तुम्हारे द्वारा कामनाओंकी पूर्ति एवं अनिष्टों की शांति होती है,तुम यज्ञ के योग्य हो । हम स्तुति करने के पश्चात् तुम्हारा यज्ञ करते हैं ।४। हे अग्ने ! सोम सिद्ध करने वाले 'दिवोदास' को तुमने जैसे बहुत प्रकार धन दिया था, वैसे ही हविदाता 'भरद्वाज' को बहुत—सा श्रेष्ठ धन दो ।।५।। २१]

त्वं दूतो अपत्यं आ वहा दैव्यं जनम् श्रृण्वन्दिप्रस्य सुष्टुतिम् ।.६
त्वामग्ने स्वाध्यो मर्तासो देववीतये । यज्ञेषु देवमीलते ।।७
तव प्र यक्षि सन्दृशमुत क्रंतु सुदानवः । विश्वे जुषन्त कामिनः ।।८
त्वं होता मनुर्हितो वह्निरासाविदुष्टरः । अग्ने यक्षिदिवोविशः ।।९

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्य दातये ।
नि होता सत्सि वर्हिषि ॥१०।२२

हे अग्ने ! तुम अमृतत्व गुण से युक्त हो, तुम दौत्य गुण से सम्पन्न हो । विद्वान् भरद्वाज ऋषि की स्तुतियां सुनकर हमारे यज्ञ में देवताओं को लाओ ।६। हे ज्योतिर्मान अग्ने ! तुम्हारा चिन्तन करने वाले मनुष्य देवताओं को प्रसन्न करने वाले यज्ञ में तुम्हारी स्तुति करते हैं और तुमसे अभीष्टों की प्रार्थना करते हैं ।७। हे अग्ने ! हम तुम्हारे तेज को भले प्रकार पूजते हैं तथा तुम्हारे श्रेष्ठ दानमय कर्म की स्तुति करते हैं । केवल हम ही नहीं, अन्य यजमान भी तुम्हारी कृपा से सफलता की कामना करते हुए यज्ञानुष्ठान में लगते हैं ।८। हे अग्ने ! तुमको मनु ने होता के कार्य में नियुक्त किया । तुम ज्वालायुक्त मुख से हवियां वहन करने वाले अत्यन्त मेधावी हो । तुम देवताओं के लिये यज्ञ करो ।९। हे अग्ने ! तुम हवि सेवन के लिये आओ और देवताओं के पास हवि पहुंचाने के लिए स्तुतियां ग्रहण करते हुए होता रूप से कुश पर विराजमान होओ ।१०। [२२]

तंत्वासमिद्भिरङ्गिरोघृतेन वर्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥११
स नः पृथु श्रवाय्यमच्छादेव विवाससि । बृहदग्ने सुवीर्यम् ॥१२
त्वामग्ने पुष्कारादध्यथर्वा निरवन्थत । मूर्ध्नों विश्वस्य वाघतः॥१३
तमु त्वा दध्यङ्गृषिः पुत्र ईधे अथर्वणः । वृत्रहणं पुरन्दरम् ॥१४
तमु त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमम् ।
धनञ्जयं रणे रणे ॥१५।२३

हे अग्ने ! हम समिधाओं से तुम्हें बढ़ाते हैं । हे सतत तरुण अग्ने ! तुम अत्यन्त प्रकाश वाले होओ ।११। हे ज्योतिर्मान अग्ने ! तुम हमको विस्तृत, महान् एवं प्रशंसा योग्य ऐश्वर्य दो ।१२। हे अग्ने ! मूर्धा के समान संसार के धारण करने वाले तुम्हें अरणिद्वय से "अथर्वा" ऋषि ने प्रकट किया ।१३। हे अग्ने "अथर्वा" के पुत्र "दध्यङ्" ऋषि ने तुम्हें प्रदीप्त किया था । तुम शत्रुओं को मारने तथा उनके

नगरों को ध्वंस करने वाले हो ॥१४॥ हे अग्ने ! "पाथ्य वृषा" नामक ऋषि ने तुम्हें चैतन्य किया था। तुम राक्षसों के मारने वाले तथा घनों के जीतने वाले हो ॥१५॥ [२३]

एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः। एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥१६
यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम् तत्रा संदः कृणवसे ॥१७
नहि ते पूर्तमक्षिपद्भु वन्नेमानां वसो। अथा दुवो वनवसे ॥१८
आग्निरगामि भारतो वृत्रहा पुरुचेतनः। दिवोदासस्य सत्पति ॥१९
स हि विश्वाति पार्थिवा रयिं दाशन्महित्वना
वन्वन्नवातो अस्तृतः ॥२०।२४

हे अग्ने ! तुम यहां आओ। तुम्हारे निमित्त जिस स्तोत्र को कहते हैं, उसे सुनो। यहाँ आकर इन सोम-रसों द्वारा वृद्धि को प्राप्त होओ ।१६। हे अग्ने ! तुम्हारा कृपापर्ण हृदय जिस देश तथा जिस साधक की ओर आकृष्ट होता है वह उत्कृष्ट बल तथा अन्न का धारण करने वाला है। तुम्हारा स्थान उसी यजमाव के हृदय में है ।१७। हे अग्ने ! तुम्हारा तेज पुञ्ज नेत्र हमारे लिए संहारक नहीं है । वह हमको सदा देखने की सामर्थ्य दे। हे गृहदाता अग्ने ! तुम हम साधकों द्वारा की जाने वाली सेवा को स्वीकार करो ।८। हम स्तुतियों से अग्नि को बुलाते हैं। अग्नि हवियों के स्वामी तथा 'दिवोदास' के शत्रुओं को मारने वाले हैं। वे यजमानों की रक्षा करने वाले एवं सर्वज्ञाता हैं ।१९। वे अग्नि अपनी कृपा से हमको पृथिवी पर प्राप्त होने वाले सभी धन दें। वे अपने तेज से शत्रुओं को भस्म करने हैं। उनकी हिंसा करने में कोई भी समर्थ नहीं है ॥२०॥ [२४]

स प्रत्नवग्नवीयसाग्ने द्युम्नेन संयता। बृहत्ततन्थ भानुना ॥२१
प्र वः सखायो अग्नये स्तोम यज्ञं च धृष्णुया।
अर्च गाय च वेधसे ॥ २
स हि यो मानुषायुगासीदद्धोताकविक्रतुः। दूतश्च हव्यवाहनः ॥२३

ता राजाना शुचिव्रतादित्यान्मारुतं गणम् । वसो यक्षीह रोदसी।२४
वस्वी ते अग्ने सन्दृष्टिरिषयते मर्त्याय ऊर्जो नपादमृतस्य ।।२५।२५

हे अग्ने ! तुम प्राचीन के समान ही नवीन तेज से इस विस्तृत अन्तरिक्ष को बढ़ाते हो ।२१। हे ऋत्विको ! तुम शत्रु के संहारक और ईश्वर के समान शक्तिमान अग्नि की स्तुति करते हुए हवियाँ दो ।२२। वे अग्नि हमारे यज्ञ में कुश पर विराजमान हों। जो अग्नि देवताओं का आह्वान करने वाले हैं वे अत्यन्त मेधावी, यज्ञ, कर्म में देवताओं के दूत तथा हवियों को वहन करते हैं ।२३। हे अग्ने ! तुम उत्तम निवास देते हो । तुम इस यज्ञ में विराजमान प्रख्यात,सुन्दर कर्म वाले मित्रावरुण,मरुत् और आकाश पृथिवी के निमित्त यज्ञ करो।२४। हे अग्ने ! तुम अविनाशी हो । तुम्हारा विस्तृत तेज यजमानों को अन्न-लाभ करता है । २५।।　　　　[२५]

क्रत्वा दा अस्तु श्रेष्ठोऽद्य त्वा वन्वन्त्सुरेक्णाः ।
मर्तं आनाश शुवृक्तिम् ।।२६
ते ते अग्ने त्वोता इषयन्तो विश्वमायुः ।
तरन्तो अर्यो अरातीर्वन्वन्तो अर्यो अरातीः ।।२७
अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विश्वं न्यत्रिणम् ।
अग्निर्नो वनते रयिम् ।।२८
सुवीरं रयिमा भर जातवेदो विचर्षणे । जहि रक्षांसि सुक्रतो ।।२९
त्वं नः पाह्यंहसो जातवेदो अघायतः ।
रक्षा णो ब्रह्मणस्कवे ।।३०।२६

हे अग्ने ! हविदाता तुम्हारी सेवा करते हुए आज सुन्दर कर्म से युक्त हो । वे सदा तुम्हारी स्तुति करते रहें ।२६। हे अग्ने ! तुम्हारी स्तुति करने वाले तुम्हारा आश्रय प्राप्त करते हैं । वे सब कामना करते हुए पूर्ण आयु भोगते और अन्न-लाभ करते हैं । वे आक्रमण करने वालों को हराते और नष्ट करते हैं ।२७। वे अपने तीक्ष्ण तेज से सब पदार्थों का भक्षण करने में समर्थ हैं, वे राक्षसों के हन्ता और हमारे लिए धनदाता हैं ।२८।

हे सब जानने वाले अग्नि ! तुम सुंदर अपत्ययुक्त ऐश्वर्य लेकर आओ और दुष्टों को नष्ट करो ।२९। हे सर्वज्ञाता अग्ने ! हमको पापों से बचाओ । हे स्तुतियों के स्वामी अग्निदेव ! बैरियों से हमारी रक्षा करो ।३०। [२६]

योो नो अग्ने दुरेव आ मर्तो वधात दाशति ।
तस्मान्नः पाह्यंहसः ॥३१
त्वं तं देव जिह्वया परि बाधस्व दुष्कृतम् ।
मर्तो यो नो जिघांसति ॥३२
भरद्वाजाय सप्रथः शर्म यच्छ सहन्त्य । अग्ने वरेण्यं वसु ॥३३
अग्निर्वृत्राणि जंघनद् द्रविणस्युर्विपन्यया ।
समिद्धः शुक्र आहुतः ॥३४
गर्भे मातुः पितुष्पिता विदिद्युतानो अक्षरे ।
सीदंन्नृतस्य योनिमा ॥३५।२७

हे अग्ने ! जो मनुष्य कुविचार से हमारी हिंसा के लिए शस्त्र चमकाता है, उस मनुष्य से तथा पापों से हमको बचाओ ।३१। हे अग्ने ! जो दुष्ट हमको हिंसित करना चाहे उस पाप के लिए तुम अपना तेज बढ़ाओ ।३२। हे अग्ने ! तुम शत्रुओं को वश करने में समर्थ हो । तुम हमको सुन्दर गृह तथा वरण करने योग्य धन दो ।३३। हे तेजस्वी अग्ने ! हव्य द्वारा बुलाए गए अग्नि स्तुति से प्रसन्न होकर हवि-कामना करते हैं । वे अग्नि हमारे शत्रुओं का संहार करने वाले हों ।३४। सुन्दर वेदी पर वह अग्नि विराजते हैं । वे आकाश की रक्षा करने वाले उत्तर वेदी पर विराज कर दुष्टों का नाश करते हैं ।३५। [२७]

ब्रह्म प्रजावदा भर जातवेदो विचर्षणे । अग्ने यद्दीदयद्दिवि ॥३६
उप त्वा रण्वसन्दृमं प्रयस्वन्तः सहस्कृत अग्ने ससृज्महे गिरः॥३७
उपच्छायामिवघृणेरगन्मशर्म ते वयम् । अग्ने हिरण्यऽमश्रुशः॥३८
य उग्र इव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वंसगः । अग्ने पुरो रुरोजिथ॥३९
आ यं हस्ते न खादिनं शिशुं जातं न बिभ्रति ।
विशामग्निं स्वध्वरम् ॥४०।२८

हे अग्ने ! तुम सर्वदर्शी हो । तुम पुत्र-पौत्रों सहित सुन्दर धन को प्राप्त कराओ । वह अन्न आकाश में, देवताओं में प्रशंसित तथा सुशोभित हो ।३६। हे बल के पुत्र अग्नि ! तुम्हारा तेज अत्यन्त रमणीय है । हव्य रूप अन्न सहित स्तोता तुम्हारी स्तुति करते हैं ।३६। हे अग्ने ! तुम्हारा तेज सुवर्ण के समान प्रकाशमान है । जैसे थका हुआ मनुष्य छायाके आश्रय में बैठता है. वैसे ही हम तुम्हारा आश्रय प्राप्त करते हैं ।३७। वे अग्नि महा बलवान धनुष धारण करने वाले पुरुष के समान बाणों से शत्रु को मारने वाले हैं । उनके तीक्ष्ण सींग बैल के समान हैं । हे अग्ने ! तुमने त्रिपुरासुर के तीनों नगर नष्ट किये हैं ।३९। अरणि के मथने से प्रकट हुए अग्नि को अध्वर्युगण पुत्र के समान धारण करते हैं, हे ऋत्विको ! उन हवि भक्षण करने वाले यम-संपादक अग्नि की सेवा करो ।४०। [२८

प्र देवं देववीतये भरता वसुवित्तमम् । आ स्वे योनौ निषोदतु ।।४१
आ जात जातवेदसिप्रियं शिशीतातिथिम् । स्योनआ गृहपतिम् ।।४२
अग्ने युक्ष्वा हि ते तवश्वासो देव साधवः अरं वहन्ति मन्यवे ।।४३
अच्छानो याह्या वहाभिप्रयांसिवीतये । आ देवान्सोमपीतये ।।४४
उदग्ने भारतद्युमदजस्रेणदविद्युतत् । शोचाविभाह्यजर।।४५।२९

हे अध्वर्युओ ! तुम देवताओं के सेवन के लिये अग्नि में हव्य डालो । अग्नि प्रकाशवान् ऐश्वर्यों के जानने वाले हैं । वे आह्वान करने योग्य स्थान पर विराजमान हों ।४१। हे अध्वर्युओ ! अतिथि के समान सम्माननीय और निवास देने वाले अग्नि की सुन्दर वेदी में स्थापना करो ।४२। हे अग्ने ! तुम ज्योतिर्मान हो । अपने रथ में उन सभी सुन्दर घोड़ों को जोड़ो जो तुम्हें यज्ञ में पहुंचाते हैं ।४३। हे अग्ने ! तुम हमारे सामने पधारो । हव्य भक्षण करने और सोम पीनेके लिए देवताओं को लाओ ।४४। हे अग्ने ! तुम हवियों के वहन करने वाले हो । तुम ऊपर को उठते हुए बढ़ो । तुम अजर हो । तुम अपने उत्कृष्ट तेज से प्रकाशमान होओ । तुम चैतन्य होकर समस्त संसार को चैतन्य करो ।४५[२९]

वीति यो देवं मर्तो दुवस्येदग्निमीलीताध्वरे हविष्मान ।
होतारं चत्ययजं रोदस्योरुत्तानहस्तो नमसा विवासेत् ॥४६
आ ते अग्न ऋचा हविर्हृदा तष्टं भरामसि ।
ते ते भवन्तूक्षण ऋषभासो वशा उत ॥४७
अग्नि देवासो अग्रियमिन्धतं वृत्रहन्तमम् ।
येना वसून्याभृता तृलहा रक्षांसि वाजिना ॥४८।३०

जो हविर्वान् यजमान अपनी हवियों से जिस किसी देवता की उपासना करता है, उस यज्ञ में अग्नि की पूजा होती है। वे आकाश-पृथिवी में व्याप्त देवताओं के बुलाने वाले और सत्यरूप हवियों से यजनीय हैं। यजमान इन अग्नि की नमस्कार पूर्वक सेवा करते हैं।४६। हे अग्ने! हम सुन्दर रूप से तैयार हव्य तुम्हें देते हैं। वह हव्य सामर्थ्य वाले वैल के ओज और गौ के दुग्ध में परिवर्तित होवे।४७। जिस पराक्रमी अग्नि ने यज्ञ बाधा देने वाले राक्षसों को मारा, जिस अग्नि ने दुष्टों के धन को छीन लिया, उस वृत्र का संहार करने वाले अग्नि को मेधावी जन चैतन्य कहते हैं।४८। [३०]

१७ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। देवता—इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप् पंक्तिः, उष्णिक्)

पिवा सोममभि यमुग्र तर्दऊर्वं गव्यं महि गृणन इन्द्र ।
वि यो धृष्णो वधिषो वज्रहस्त विश्वा वृत्रममित्रिया शवोभिः ॥१
स ईं पाहि या ऋजीषीतरुत्रो यः शिप्रवान् वृषभो योमतीनाम् ।
यो गोत्रभिद्वज्रभृद्योहरिष्ठाः स इन्द्र चित्रां अभितृन्धि वाजान् ॥२
एवा पाहि प्रत्नथा मदन्तु त्वा श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भिः ।
आविः सूर्यं कृणुहि पीपिहोषो जहि शत्रूंरभि या इन्द्रि तृन्धि ॥३
ते त्वा मदा बृहदिन्द्र स्वधाव इमे पीता उक्षन्त द्युमन्तम् ।
महामनूनं तवस विभूतिं मत्सरासो जर्हृषन्त प्रसाहम् ॥४

येभिः सूमुषस मन्दसानोऽवासयोऽप दृलहानि दर्द्रत् ।
महामद्रिं परि गा इन्द्र सन्तं नुत्था अच्युतं सदसस्परि स्वात् ।।५।१

हे पराक्रमी इन्द्र ! :अङ्गिरा द्वारा स्तुत होकर तुमने सोम पीने के लिए पणियों द्वारा चुराई गई गायों को खोज निकाला । हे इन्द्र ! हे वज्रिन् ! तुमने अपने पराक्रम से सब शत्रुओं का हनन किया है। तुम सोम पान करो ।१। हे सोमपाये ! तुम शत्रुओं से रक्षा करने वाले हो। स्तुति करने वाले के अभीष्ट को पूर्ण करने वाले हो । हे इन्द्र ! तुम पर्वतों को तोड़ने वाले तथा घोड़ों को जोड़ने वाले हो । तुम हमारे लिए अद्भुत छव प्रकट करो और सोम पान करो ।२। हे इन्द्र ! तुमने पूर्वकाल में सोमरस पिया था, उसी प्रकार हमारे सोम-रस को भी पियो । यह रस तुम्हें हृष्ट बनावे । तुम हमारी स्तुतियों को सुनते हुए वृद्धि को प्राप्त होओ । हमको अन्न प्राप्त कराने के लिए सूर्य को प्रकट करो । हमारे शत्रुओं का संहार करो और पणियों द्वारा चुराई गई गौओं को प्रकट करो ।३। हे इन्द्र ! तुम अन्नवान् एवं तेजस्वी हो। यह पान किया हुआ सोमरस तुम्हें हृष्ट करे । तुम अत्यन्त गुणी, प्रवृद्ध तथा महान् हो। हमारे शत्रुओं को हराओं ।४। हे इन्द्र ! सोमरस से हृष्टि को प्राप्त कर तुमने अधकार को मिटाया और सूर्य तथा उषा को अपने-अपने स्थान पर नियुक्त किया । तुमने अविचल पर्वत को ध्वस्त किया । उस पर्वत में पणियों द्वारा चुराई गई गौयें उपस्थित थीं ।५। [१ [

तव क्रत्वा तव तद्दंमनाभिरामासु पक्वं शच्या नि दीधः ।
औंर्णोदुंर उस्रियाभ्यो वि दृलहोंदूर्वाद् गा असृजो अङ्गिरस्वान् ।।६
पप्राथ क्षां महि दसो व्युर्वीमुप द्यामृष्वो वृहदिन्द्र स्तभायः ।
अधारयो रोदसी देवपुत्रे प्रत्ने मातरा यह्वी ऋतम्य ।।७
अध त्वा विश्वे पुर इन्द्र देवा एक तवंस दधिरे भराय ।
अदेवो यदभ्यौहिष्ट देवान्त्स्वर्षाता वृणत इन्द्रमत्र ।।८
अध द्योश्चित्त अप सा नु वज्राद्द्वितानमद्भियसा स्वस्य मन्योः ।
अहिं यदिन्द्रो अभ्योहसानं नि चिद्विश्वायुः शयथे जघान ।।९

अध त्वष्टा ते मह उग्र वज्रं सहस्रभृष्टिं ववृतच्छताश्रिम् ।
निकाममरमणसं येन नवन्तमहिं सं पिणगृजीषिन् ॥१०॥२

हे इन्द्र ! तुमने अपनी प्रज्ञा, कर्म, और पराक्रम से गौओं को दुग्धवती बनाया ! तुमने गौओं के निकलने को शिलाओं को हटाया । अङ्गिराओं से मिलकर गौओं को मुक्त कराया ।६। हे इंद्र ! तुमने अपने कर्म से विस्तृत पृथिवी को परिपूर्ण किया । तुम महान् हो । तुमने दिव्य लोक को गिरने से बचाने के लिये धारण किया है । तुमने पालन करने के लिये आकाश पृथिवी को धारण किया है । उन आकाश पृथिवी के देवता पुत्र हैं । वे यज्ञ कर्म करने वाली तथा महत्ववती हैं ।७। हे इंद्र ! वृत्रासुर से युद्ध करने जब देवता चले तब सभी देवताओं ने मिलकर तुम्हें ही नेता बनाया । तुमने मरुद्गण को युद्ध में सहायता दी थी । तुम अत्यन्त पराक्रमी हो ।८। प्रचुर अन्न सम्पन्न इन्द्र ने आक्रमणकारी वृत्र को जब मारा तब उनके क्रोध और वज्र से भयभीत स्वर्ग भी सन्न रहा गया ।९। हे पराक्रमी इन्द्र ! त्वष्टा ने तुम्हारे सौ गाँठ तथा सहस्रधार वाले वज्र को बनाया था । हे सोमपायी इन्द्र ! उसी वज्र से तुमने वृत्र को मारा था ।१०। २]

वर्धान्यं विश्वे मरुतः सजोषाः पचच्छतं महिषां इन्द्र तुभ्यम् ।
पूषा विष्णुस्त्रीणि सरांसि धावन्वृत्रहणं मदिरमंशुमस्मै ॥११
आ क्षोदो महि वृतं नदीनां परिष्ठितमसृज ऊर्मिमपाम् ।
तासामनु प्रवत इन्द्र पन्थां प्रार्दयो नीचीरपसः समुद्रम् ॥१२
एवा त विश्वा चक्रुवांसमिन्द्रं महामुग्रमजुर्यं सहोदाम् ।
सुधीरं त्वा स्वायुधं सुवज्रमा ब्रह्म नव्यमव से ववृत्यात् ॥१३
स नो वाजाय श्रवस इषे च राये धेहि द्यु मत इन्द्र विप्रान् ।
भरद्वाजे नृवत इन्द्र सूरीन्दिवि च स्मैधि पार्ये न इन्द्र ॥१४
अया वाजं देवहितं सनेम शतहिमाः सुवीराः ॥१५॥३

हे इन्द्र ! मरुद्गण तुम्हें अपने स्तोत्र द्वारा बढ़ाते हैं और तुम्हारे लिये पूषा तथा विष्णु सौ महिष देते हैं । तीन पात्रों को पूर्ण करने कं

गिरता है। सोम द्वारा इन्द्र वृत्र का नाश करने में समर्थ होते हैं ।११। हे इन्द्र! तुमने वृत्र द्वारा रोकी गई नदियों के जलको छोड़ा जिसमे वे वहने लगीं। तुमने उन नदियों को नीचे मार्ग की ओर प्रवाहित कर जल की तरंगों को उन्मुक्त किया। फिर तुमने उस वेगवान् जल को समुद्र में मिलाया ।१२। हे इन्द्र ! तुम ऐसे सभी कार्यों के कर्त्ता, ओजस्वी, अजर बल के देने वाले, ऐश्वर्यवान् एवं वज्रधारी हो। हमारा अभिनव स्तोत्र तुम्हें हमारी रक्षा के निमित्त बढ़ावे ।१३। हे इन्द्र हमारे निमित्त पुष्टि, बल,अन्न, और ऐश्वर्य धारण करो। हम ज्ञानी हैं। हमको सेवकों से युक्त करो। तुम स्तुति करने वाले पुत्रों, पौत्रों को प्राप्त कराओ। हे इन्द्र ! आगामी दिनों में हमारी रक्षा करना ।१४। हम इस स्तुति को करते हुए इन्द्र से अन्न-लाभ करें। हम सुन्दर पुत्र पौत्र से युक्त हुए सौ वर्ष तक सुखभोग करें ।१५। [३]

सूक्त १८

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्य: । देवता—इंद्र: । छन्द–त्रिष्टुप् पंक्तिः
उष्णिक्)

तमुष्टुहि यो अभिनूत्योजा वन्वन्नवातः पुरुहूत इन्द्रः।
अषालहमुग्रं सहमानमाभिर्गीर्भिवर्ध वृषभं चर्षणीनाम् ॥१
स युध्मः सत्पा खजकृत्समद्वा तुविम्रक्षो नदनुमाँ ऋजीषी।
बृहद्रेणुश्च्यवनो मानुषीणामेकः कृष्टी नामभवत्सहावा ।:२
त्वं ह नु त्यददमायो दस्यूं रेकः कृष्टीरवनोनरार्याय।
अस्ति स्विन्नु वीर्यं तत्त इन्द्र न स्विदस्ति तदृतुथा वि वोचः ॥३
सदिद्धि ते तुविजातस्य मन्ये सहः सहिष्ट तुरतस्तुरस्य।
उग्रमुग्रस्य तवसस्तदीयोऽध्रस्य रध्रतुरो वभूव ॥४
तन्नः प्रत्नं सख्यमतु युष्मे त्था वदोद्भिबलमङ्गिरोभिः।
हन्नच्युत च्युदृत्मेषयन्तमुथाः पुरो वि दुरो अस्य विश्वाः ॥५।२

हे भरद्वाज ! तुम तेजस्वी, शत्रु नाशक, बहुतों द्वारा बुलाये गये इन्द्र की स्तुति करो। तुम इन स्तोत्रों से मनुष्य की कामनाओं को पूर्ण

करने वाले इन्द्र को बढ़ाओ ।१। इन्द्र युद्ध में रत, सहानुभूति से युक्त बलवान्, दाता, उपकार करने वाले, सोमपायी मथा मनुष्यों के रक्षक हैं ।१। हे इन्द्र! कर्म न करने वाले मनुष्य को वश में करो। एक मात्र तुम्हीं ने यज्ञ कर्म करने वालों को पुत्रों और सेवकोंसे युक्त किया था। हे इन्द्र ! तुम में अब भी वह सामर्थ्य है, या नहीं ? समय ससय पर अपना बल दिखाओ ।३। हे इन्द्र ! तुम पराक्रमी हो । तुम बहुत से यज्ञों में प्रकट हुए हो। तुमने हमारे शत्रुओं को नष्ट किया है । तुम ओजस्वी, बली, अजेय एवं शत्रुओं के हननकर्त्ता हो ।४। हे इन्द्र ! हमारी बहुत दिनों से चली आती मित्रता चिरस्थाई हो । तुमने स्तुति करने वाले "बल" नामक दैत्य को मारा था और उसके नगरों के द्वारों को खोला था ।५।

स हि धीभिर्हव्यो अस्त्युग्र ईशानकृन्महति वृत्रतूर्ये ।
स तोकसाता तनये स वज्री वितन्तसायी अभवत्समत्सु ॥६
स मज्मना जनिम मानुषाणाममर्त्येन नाम्नाति प्र सर्स्रे ।
स द्युम्नेन शवसोत राया स वीर्येण नृतमः समोकाः ॥७
स यो न मुहे न मिथू जनो भूत्समन्तुनामा चमुरिं धुनिं च ।
वृणक्पिप्रुं श वरं शुष्णमिन्द्रः पुरां च्यौत्नाय शयथाय नू चिन् ॥८
उदावता त्वक्षसा पन्यसा व वृत्रहत्याय रथमिन्द्र तिष्ठ ।
धिष्व वज्रं हस्त आ दक्षिणत्राभि प्र मन्द पुरुदत्र मायाः ॥९
अग्निर्न शुष्कं वनमिन्द्र हेती रक्षो नि धक्ष्यशनिर्न भीमा ।
गम्भीरय ऋष्वया यो रुरोजाध्वानयद् दुरिता दम्भयच्च ॥१०।५

स्तोताओं को सामर्थ्यवान् बनाने वाले इन्द्र स्तुतियों द्वारा बुलाये जाते है । वे पुत्र-प्राप्ति के लिये बुलाये जाते हैं। युद्धस्थल में, वे वज्रधारी इन्द्र नमस्कार करने योग्य हैं ।३। इन्द्र ने शत्रुओं को पराजित करने वाले बल से मनुष्यों को पराक्रमी बनाया है। इन्द्र यशस्वी तथा धन सामर्थ्य से युक्त एवं समान स्थान वाले हैं ।७। जो इन्द्र युद्धक्षेत्र में अकर्मण्य नहीं होते, वे वृथा वस्तुओं को उत्पन्न नहीं करते। वे प्रसिद्ध नाम वाले इन्द्र शत्रु

नगरों निकट नष्ट करने और शत्रुओं को हनन करने के लिए तुरन्त उद्यत होते हैं। हे इन्द्र ! तुमने राक्षसों को नष्ट किया ।८। हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं का हनन करने वाले हो । तुम प्रशंसनीय बल वाले अपने रथ पर शत्रु नाश के लिये चढ़ते हो । तुम अपने दाहिने हाथ में वज्र धरते हो। हे इन्द्र ! तुम प्रचुर धन से युक्त हो । दुष्टों की माया को दूर करो ।८। हे इन्द्र ! जैसे अग्नि को जलाते हैं, वैसे ही तुम शत्रुओं को नष्ट करो । तुम वज्र के समान भयङ्कर हो । तुम राक्षसों को जलाओ । इन्द्र ने वज्र से शत्रुओं को चीर डाला । इन्द्र युद्ध में गजन करते हुए सभी सङ्कटों को दूर करते हैं ।१०। [५ ,

आ सहस्रं पथिभिरिन्द्र राया तुविद्युम्न तुविवाजेभिरर्वाक् ।
याहि सूनो सहसो यस्य नू चिददेव ईशे पुरुहूत योतोः ॥११
प्र तुविद्युम्नस्य स्थविरस्य घृष्वेर्दिवो ररप्शे महिमा पृथिव्याः ।
नास्य शत्रुर्न प्रतिमानमस्ति न प्रतिष्ठिः पुरुमायस्य सह्योः ॥१२
प्र तते अद्या करणं कृतं भूत्कुत्सं यदायुमतिथिग्वमस्मै ।
पुरू सहस्रा नि शिशा अभि क्षामुत्तूर्वयाणं धृषता निनेय ॥१३
अनु त्वाहिघ्ने अध देव देवा मदन्विश्वे कवितमं कवीनाम् ।
करो यत्र वारिवो वाधिताय दिवे जनाय तन्वे गृणानः ॥१४
अनु द्यावपृथिवी तत्त ओजोऽमर्त्या जिहत इन्द्र देवाः ।
कृष्वा कृत्नो अकृतं यत्ते अस्त्युक्थं नवीयो जनयस्व यज्ञैः ।१५।६

हे इंद्र ! तुम बहुतों द्वारा बुलाये गए हो । कोई भी दुष्ट तुम्हें बलहीन नहीं बना सकता । तुम ऐश्वर्य से युक्त होकर असंख्य वाहनों द्वारा हमारे सामने आओ ।११। अत्यंत यश और धन वाले, शत्रु हंता तथा प्रवृद्ध इंद्र की महिमा आकाश और पृथिवी से भी बढ़ी हुई है । शत्रुओं के हराने वाले मेधावी इंद्र अजातशत्रु हैं, उनका प्रतिद्वन्दी कोई भी नहीं है ।१२। हे इंद्र तुमने "शुष्क" से "कुत्स" की तथा शत्रुओं से 'आयु' और 'दिवोदास' की रक्षा की । तुमने 'शम्बर' के पास से 'अथिति

व को बहुत धन दिखाया । हे इन्द्र ! तुमने वज्रसे 'शम्बर' का वध किया और पृथिवी पर रहने वाले, शीघ्र चलने वाले 'दिवोदास' की मङ्कुटों से रक्षा की ।१३। हे ज्योतिर्मान इन्द्र ! सभी स्तोता मेघ को नष्ट करने के लिए तुम्हारी स्तुति कर रहे हैं । तुम सभी विद्वानों में श्रेष्ठ हो । स्तुति करने वालों की स्तुतिसे प्रसन्न होकर तुम दरिद्रतासे सुखी यजमानों और उनकी सन्तानको सुखी करो ।१४। हे इन्द्र ! आकाश पृथिवी और स्वर्ग तुम्हारी शक्ति को स्वीकार करते हैं । हे इन्द्र ! तुम यज्ञादि कर्मों को अनुष्ठित करो और उसके पश्चात् यज्ञ में अभिनव स्तोत्र को प्रकट करो ॥ १५॥　[६]

सूक्त १९

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता-इन्द्र । छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

महां इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा उत द्विवर्हाअमिनः सहोभिः ।
अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्यायोरुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ॥१
इन्द्रमेव धिषणा सातये धाद् बृहन्तमृष्वमजरं युवानाम् ।
अषालहेनशवसा शूशुवांसं सद्यश्चिद्या वावृधे असामि ॥२
पृथू करस्ना बहुला गभस्ती अस्मद्र्यक् सं मिमीहि श्रवांसि ।
यूथेव पश्वः पशुपा दमूना अस्माँ इन्द्राभ्या ववृत्स्वाजौ ॥३
तं व इन्द्रं चतिनमस्य शाकैरिह नूनं वाजयन्तो हुवेम ।
यथा चित्पूर्वे जरितार आसुरनेद्या अनवद्या अरिष्टाः ॥४
धृतव्रतो धनदाः सोमवृद्धः स हि वामस्य वसुनः पुरुक्षुः ।
सं जग्मिरे पथ्या रायो अस्मिन्त्समुद्रे न सिन्धवो यादमानाः ॥५।७

स्तुति करने वाले मनुष्यों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले इन्द्र आवें दोनों लोकों पर अपना पराक्रम फैलाने वाले एवं शत्रुओं द्वारा अहिंसित इन्द्र प्रवृद्ध होते हैं । वे प्रशंसनीय कर्मोंसे युक्त तथा यजमानोंके जानने वाले हैं ।१। इन्द्र उत्पन्न होते ही बढ़ते हैं । हमारी स्तुति दानके लिए इन्द्र को आकर्षित करती हैं । इन्द्र अजर, महान्, युवा, गमनशील तथा शत्रुओं से न हारने वाले, बल से बढ़े हुए हैं ।२। हे इन्द्र ! अन्न देने के लिए हमारे सामने अत्यन्त दानशील हाथों को लाओ । तुम शान्त चित्त

वाले हो। जैसे पशु-स्वामी अपने पशुओं को चलता है, वैसे ही तुम रण-क्षेत्र में हमको चलाओ ।३। हम अन्नों की कामना वाले स्तोता इस यज्ञ में सहायक मरुद्गणके साथ शत्रु संहारक इन्द्र की स्तुति करते हैं। हे इन्द्र तुम्हारे प्राचीनकालीन स्तुति करने वालों के समान हम भी पाप से रहित अहिंसित तथा अनिन्द्य हों ।४। जैसे बहती हुई नदियाँ समुद्र में गिरती हैं, वैसे ही स्तोताओं का अन्न इन्द्र की ओर बढ़ता है। वे इन्द्र धनों के स्वामी, कर्मवान् तथा सोम रस से पुष्ट होने वाले हैं ॥५॥ [७]

शविष्ठं न आ भर शूर शव ओजिष्ठमोजो अभिभूत उग्रम् ।
विश्वा द्युम्ना वृष्ण्या मानुषाणा मस्मभ्यं दा हरिवो मादयध्यै ॥६
यस्ते मदः पृतनाषालमृध्र इन्द्र त न आ भर शूशुवांसम् ।
येन तोकस्य तनकस्य सातौ मसीमहि जिगोवांसस्त्वोताः ॥७
आ नो भरु बृषण शुष्ममिन्द्र धनस्पृत शूशृवांसं सुदक्षम् ।
येन वंसाम पृतनासु शत्रून्तवोतिभिरुत जामीरजामीन् ॥८
आ ते शुष्मो बृषभ एतु पश्चादोत्तरादधरादा पुरस्तात् ।
आ विश्वतो अभि समेत्वर्वाङिन्द्र द्युम्न स्ववंद्ध ह्यस्मे ॥९

नृवत्त इन्द्र नृतमाभिरूती वंसीवहि वामं श्रोमतेभिः ।
ईक्षे हि वस्व उभयस्य राजन्धा रत्न महि स्थूरं बृहन्तम ॥१०
मरुत्वन्तं बृषभ वाबृधानमकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम् ।
विश्वासामवसे नूतनायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम ॥११

जनं वज्रिन्महि चिन्मन्यमानमेभ्यो नृभ्यो रन्धता येष्वस्मि ।
अधा हि त्वा पृथिव्यां शूरसातौ हवामहे तनये गोष्वप्सु ॥१२
वयं त एभिः पुरुहूत सख्यैः शत्रोरुत्तर इत्स्याम ।
घ्नन्तो बृत्राण्युभयानि मूर राया मदेम बृहता त्वोताः ॥१३।८

हे इन्द्र ! हमको श्रेष्ठ बल प्रदान करो। तुम हमको अत्यन्त ओज दो। तुम शत्रुओं के हराने वाले हो। हे अश्ववान् इन्द्र ! तुम हमको वीर्यवान् से युक्त तथा मनुष्यों के उपभोग्य ऐश्वर्य दो ।६। हे इन्द्र ! तुम

हमको शत्रुओं को वश में करने वाला बल दो। हम तुम्हारे रक्षा-साधनों से विजय प्राप्त करें। पुत्र-पौत्र की प्राप्ति के लिये उसी रक्षासे हम तुम्हारी स्तुति करें ।७। हे इन्द्र ! हमको कामनाओं का पूरक सैन्य शक्ति से युक्त बल दो। धनकी रक्षा करने वाला, बढ़ा हुआ और सुन्दर बल दो। हेइन्द्र! तुम्हारे रक्षा-साधन से हम युद्धस्थल में उस बल से ही शत्रुओं का संहार करें ।८। हे इन्द्र ! तुम्हारा कामना-पूरक बल चारों दिशाओं से हमारी ओर आवे। यह प्रत्येक दिशा से हमारे पास आवे। तम हमको हर प्रकार का श्रेष्ठ धन दो ।९। हे इन्द्र ! तुम्हारे आश्रय में हम सेवकों युक्त सुनने योग्य यज्ञ वाले धनका उपभोग करते हैं। हे इन्द्र ! तुम दिव्य और पार्थिव धनों के स्वामी हो। तुम हमको महान् धन दो ।१०। अभिनव रक्षा कें लिये हम इस यज्ञ में इन्द्र को बुलाते हैं, जो मरुद्गण के साथ अत्यन्त बलवान्, तेजस्वी, अभीष्टवर्षी, समृद्ध, विकराल एवं शासन करने वाले हैं ।११। हे वज्रिन् ! हम जिन मनुष्यों मे रहते हैं उन सबमे अपने को महान् समझने वाले को तुम अपने वशमें करो। हम युद्ध काल में तथा पशु पुत्र और जल की प्राप्ति के लिये तुम्हें आहूत करते हैं। हे इन्द्र ! तुम बहुतों द्वारा बुलाये गए हो। हम इन स्तोत्र रूप मित्रता-कार्य के द्वारा तुम्हारी सहायता से शत्रुओं को मारें और उनमे बलवान् बनें। हे इन्द्र ! तुम पराक्रमी हो, हम तुम्हारे आश्रय में अत्यन्त धन-लाभ कर सुखी हों ॥१३॥ [८]

सूक्त २०

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता-इन्द्रः । छन्द-अनुष्टुप्, पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

द्यौर्न य इन्द्राभि भूमार्यस्तस्थौ रयिः शवसा पृत्सु जनान् ।
तं नः सहस्रभरमुर्वरासां दद्धि सूनो सहसो वृत्रतुरम् ॥१
दिवो न तुभ्यमन्विन्द्र सत्रासूर्यं देवेभिर्धायि विश्वम् ।
अहिं यद्वृत्रमपो वव्रिवांसं हन्नृजीषिन्विष्णुना सचानः ॥२
तूवन्नोजीयान्तवसस्तवीयान्कृतब्रह्मेन्द्रो वृद्धमहाः ।
राजाभवन्मधुनः सोम्यस्य विश्वासां यत्पुरां दर्त्नुमावत् ॥३

शतैरपद्रन्पणय इन्द्रात्र दशोणये कवयेऽर्कसातौ ।
वधैः शुष्णन्याशुषस्य मायाः पित्वो नारिरेचीत्किं चन प्र ।।४

महो द्रुहो अप विश्वायु धायि वज्रस्य यत्पतने पादि शुष्णः ।
उरु ष सरथं सारथये करिन्द्रः कुत्साय सूर्यस्य सातौ ।।५।९

इन्द्र ! जैसे सूर्य अपने प्रकाश से पृथिवी को भर देते हैं, वैसे ही तुम शत्रुओं पर छा जाने वाला पुत्र और ऐश्वर्य दो। वह पुत्र असंख्य धन वाला, उर्वरा भूमि का स्वामी तथा शत्रुओं का नाश करने वाला हो ।१। हे इन्द्र ! स्तुति करने वाले ने सूर्य के समान बल अपने स्तोत्र द्वारा तुमको भेंट किया था। हे सोमपाये ! तुमने विष्णु से मिलकर जनों को रोकने वाला वृत्र मारा ।२। जब इन्द्र ने सभी पुरियोंको ध्वस्त करने वाले वज्र को पाया था, तब वे मधुर सोम-रस के प्राप्त करने वाले हुए थे। वे इन्द्र हिंसा करने वालों के हिंसक, पराक्रमी, अन्नदाता, अत्यन्त ओजस्वी तथा बढ़े हुए तेज से युक्त हैं ।३। हे इन्द्र ! युद्ध में बहुत धन देने वाले तुम्हारे सहायक 'कुत्स' से डर कर सौ सेनाओं सहित पणि भाग गया। तुमने 'शुष्ण' की माया को अस्त्रों से छिन्न-भिन्न कर उसके सम्पूर्ण अन्न को छीन लिया है ।४। वज्र की मार से गिर कर 'शुष्ण' मर गया। उस समय उन द्रोही शुष्ण का सभी बल नष्ट हो गया था। इन्द्र ने सूर्य की उपासना के लिए अपने सारथि रूप 'कुत्स को रथ बढ़ाने के लिए कहा ।५। [९]

प्र श्येनो न मदिरमस्मै शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
प्रावन्नमीं साप्यं ससन्तं पृणग्राया समिषा स स्वस्ति ।।६

त्रि पिप्रोरहिमायस्य दृलहाः पुरो वज्रिञ्छवसा न दर्दः ।
सुदामन्तद्रेक्णो अप्रमृष्यमृजिश्वने दात्रं दाशुषे दाः ।।७

स वेतसुं दशमायं दशोणिं तूतुजिमिन्द्रः स्वभिष्टिसुम्नः ।
आ तुग्रं शश्वदिभं द्योतनाय मातुर्न सीमुप सृजा इयध्यै ।।८

स ईं स्पृधो वनते अप्रतीतो बिभ्रद्वज्रं वृत्रहणं गभस्तौ ।
तिष्ठद्धरी अध्यस्तेव गर्ते वचोयुजा वहत इन्द्रमृष्वम् ।।९

सनेम तेऽवसा नव्य इन्द्र प्र पूरवः स्तवन्त इना यज्ञैः ।
सप्त यत्पुर शर्म शारदीर्दर्द्धन्दासीः पुरुकुत्साय शिक्षन् ॥१०
त्वं वृध इन्द्र पूर्व्यो भूर्वरिस्यन्नुशने काव्याय ।
यरा नववास्त्वमनुदेयं महे पित्रे ददाथ स्वं नपातम् ॥११
त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्ऋणोरपः सीरा न स्रवन्तीः ।
प्र यत्समुद्रमति शूर पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति ॥१२
तव ह त्यदिन्द्र विश्वमाजौ सस्तो धुनोचुमुरी या ह सिष्वप् ।
दीदयदित्तुभ्य सोमेभिः सुन्वन्दभीतिरिध्मभृतिः पक्थ्यर्कैः ॥१३॥१६

इन्द्र ने जीवों की रक्षा के लिये 'नमुचि' के मस्तक को चूर चूर कर दिया और 'सर्प' के पुत्र 'निद्रित' नामी ऋषिकी रक्षा करते हुए उन्हें पशु धन तथा अन्नवान् बनाया । उस समय श्येन पक्षी उनको हृष्ट बनाने वाले सोम को लेकर आया ।६। हे वज्रिन् ! तुमने मायावी 'पिप्रु' के दृढ़ दुर्गों को तोड़ डाला । हे सुन्दर दान वाले ! तुमने हवि रूप अन्न प्रदान करने वाले ऋजिश्वा को धन दिया था ।७। सुन्दर सुख देने वाले इन्द्र ने अनेक असुरों को 'द्योतन' के पास सदा जाने के लिये ऐसे ही वश में किया जैसे माता के पास जाने के लिये पुत्र वश में रहते हैं ।८। शत्रुओं द्वारा न हारने वाले इन्द्र अपने हाथमें शत्रुओं को मारने वाले अस्त्रों को धारण कर वृत्रादि का नाश करते हैं । जैसे वीर पुरुष रथ पर चढ़ता है, वैसे ही वे अपने घोड़ों पर चढ़ते हैं । वे हमारी वाणी से पूजित हुए घोड़े इन्द्र को यहाँ लावें ।९। हे इन्द्र ! हम उपासकगण तुम्हारे आश्रय में अभिनव धन की प्राप्ति के लिए उपासना करते हैं । स्तोतागण यज्ञोंको करते हुए स्तुति करते हैं । हे इन्द्र ! तुमने शरदासुर की सात पुरियों को वज्र से चूर्ण कर दिया ।१०। हे इन्द्र ! धन की कामना करते हुए उशना के निमित्त तुम कल्याणकारी हुए थे । तुमने नवावास्त्व नामक राक्षस को मारा था और सामर्थ्यवान् उशना के सामने उसके देयपुत्र को उपस्थित किया था ।११। हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं को कम्पायमान करते हो । तुमने निरुद्ध जल को प्रवाहमान बनाया । हे वीर पुरुष ! जब तुम समुद्र लांघनेमें सफल होते हो

तब समुद्र के पार रहने वाले 'तुर्वश' और 'यदु' को समुद्र के पार लगाते हो ।१२। हे इन्द्र ! युद्ध के यह सब कार्य तुम्हारे ही वश के हैं । तुमने ही 'धुनी' और 'चुमुरी' नामक दो असुरों को मारा । हे इन्द्र ! हव्य परिपक्व करने वाले, सोमाभिष करने वाले, समिधावान् राजर्षि 'दभीति' ने हव्य से तुम्हें बढ़ाया ॥१३॥ [१०]

सूक्त २१

(ऋषि-भरद्वाजो वार्हस्पत्य । देवता—इन्द्रः । छन्द–त्रिष्टुप् बृहती)

इमा उ त्वा पुरुतमस्य करोर्हव्य वीर हव्या हवन्ते ।
धियो रथेष्ठामजरं नवीयो रयिविभूतिरीयते वचस्या ॥१
तुम स्तुष इन्द्रं यो विदानो गिर्वाहस गीर्भिर्यज्ञवृद्धम् ।
तस्य दिवमति मह्ना पृथिव्यापुरुमायस्य रिरिचे महित्वम् ॥२
य इत्तमोऽवयुनं ततन्वत्सूर्येण वयुनवच्चकार ।
कदा ते मर्ता अमृतस्य धामेक्षन्तो न मितन्ति स्वधावः ।।३
यस्ता चकार स कुह स्विदिन्द्र कमा जनं चरति कासु विक्षु ।
कस्ते यज्ञो मनसे शवराय को अर्क इन्द्र कतमः स होता ॥४
इदा हि ते वेविषतः पुराजाः प्रत्नास आसुः पुरुकृत्सखायः ।
ये मध्यमास उत नूतनास उतावमस्य पुरुहूत बोधि ॥५।११

हे पराक्रमी इन्द्र ! बहुत कामना वाले भरद्वाज की सुन्दर स्तुतियां तुम्हें बुलाती हैं । तुम रथवान्,अजर एवं अभिनव रूप वाले हो । हविरन्न तुम्हारा अनुगमन करते हैं ।१। सर्व ज्ञाता,स्तुतियों द्वारा प्राप्य, यज्ञ द्वारा बढ़ने वाले इन्द्र की हम स्तुति करते हैं । वे अत्यन्त मेधावी इन्द्र आकाश और पृथिवी की महिमासे अधिक महान् हैं ।२। इन्द्र ने ही वृत्र द्वारा फैलाये गए अन्धकार को सूर्य के तेज से नष्ट किया । हे पराक्रमी इन्द्र ! तुम कभी भी नाश को प्राप्त नहीं होते । मनुष्य तुम्हारे स्थान की सदा कामना करते हैं । वे मनुष्य सदा अहिंसक रहते हैं, ।३। जिन इन्द्र ने वृत्रादि राक्षसों के हनन जैसे प्रसिद्ध कार्य किए हैं, वे इस समय कहाँ हैं ?

किस देश में और किन उपासकोंके मध्य में हैं ? हे इन्द्र ! तुम किस प्रकार के यज्ञसे सुखी होते हो ? तुम्हें वरण करने में कौन सा मन्त्र उपयुक्त है ? तुम्हारे वरण करने में समर्थ कौन है ? ।४। हे बहुकार्य वाले इन्द्र ! प्राचीन अङ्गिरा आदि ऋषि वर्तमानकालीन ऋषियों के समान साधक थे । मध्यकाल में भी तुम्हारे स्तोता हुए हैं । परन्तु हे इन्द्र ! तुम मुझ इस काल के साधक की स्तुति श्रवण करो ।।५।। [११]

तं पृच्छन्तोऽवरासः पराणि प्रत्य त इन्द्र श्रुत्यानु येमुः ।
अर्चामसि वीर ब्रह्मवाहो यादेव विद्म तात्त्वा महान्तम् ।।६
अभि त्वा पाजो रक्षसो वि तस्थे महि जज्ञानमभि तत्सु तिष्ठ ।
तव प्रत्नेन युज्येन सख्या वज्रेण घृष्णो अप ता नुदस्व ।।७
स तु श्रुधीन्द्र नूतनस्य ब्रह्मण्यतो वीर कारुधायः ।
त्वं ह्या पि प्रदिवि पितृणां शश्वद् वभूथ सुहव एष्टौ ।।८
प्रोतेये वरुण मित्रमिन्द्रं मरुतः कृष्वावसे नो अद्य ।
प्र पूषणं विष्णुमग्निं पुरन्धिं सवितारमोषधीः पर्वतांश्च ।।९
इम उ त्वा पुरुशाक प्रजज्यो जरितारो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
श्रुधी हवमा हुवतो हुवानो न त्वावां अन्यो अमृत त्वदस्ति ।।१०
नू म आ वाचमुप याहि विद्वान् विश्वेभिः सूनो सहसो यजत्रैः ।
ये अग्निजिह्वा ऋतसाप आसुर्ये मनुं चक्रुरुपरं दसाय ।।११
स नो वोधि पुर एता सुगेषुत पथिकृद्विदानः ।
ये आश्रमास उरवो वहिष्ठास्तेभिर्न इन्द्राभि वक्षि वाजम् ।।१२।१२

हे इन्द्र ! इस काल में मनुष्य तुम्हारी पूजा करते हैं । तुम्हारे प्राचीन एवं श्रेष्ठ महान् कर्मों की स्तुति रूप वाणी में प्रवृद्ध करते हैं । हम तुम्हारे जिन कार्यों के जानने वाले हैं, उन्हीं से हम तुम्हारी स्तुति करते हैं ।६। हे इन्द्र ! राक्षसों का बल तुम्हारे सामने है । तुम भी उस बल का सामना करो । हे शत्रुओंके पीड़क इन्द्र ! तुम अपने बल को वज्र से प्रेरित करो । तुम्हारा बल प्राचीनकाल से ही योजनाके योग्य तथा सहायक रहा है ।७।

हे इन्द्र ! तुम स्तुति करने वालों के पालक हो । तुम हम स्तोताओं की प्रार्थना को शीघ्र श्रवण करो । हम वर्तमानकालीन स्तोता अभिनव स्तोत्र की इच्छा करते हैं । हे इंद्र ! तुम सुंदर आह्वान वाले होकर प्राचीन अङ्गिराओंके मित्र हुए थे। अब हमारी स्तुति भी श्रवण करो ।८। हे भरद्वाज ! हमारी अभीष्ट पूर्ति एवं रक्षा के निमित्त वरुण, मित्र, इद्र, मरुत, पूषा, विष्णु अग्नि, सविता वनस्पतियों के देवता और पर्वतों की स्तुति करो ।९। हे अत्यंत पराक्रमी इंद्र ! यह स्तोता उपासना के योग्य स्तोत्रों से तुम्हारी स्तुति करते है । हे अविनाशी ! तुम मेरी स्तुतिको श्रवण करो क्योंकि तुम्हारे समान अन्य कोई देवता नहीं है ।१०। हे सर्वज्ञ इंद्र ! तुम सब देवताओं सहित मेरे स्तुति योग्य स्तोत्र के सामने आओ जो देव अग्नि की जिह्वा रूप हैं, जो यज्ञ में हव्य सेवन करते हैं, जिंहोंने शत्रुओं का नाश करने के लिए राजर्षि मनु को सर्वोपरि बनाया, तुम उन्हींके साथ यहाँ आओ ।११। हे इंद्र ! तुम मेधावी तथा मार्ग नियत करने वाले हो । तुम सुखपूर्वक जाने योग्य मार्गमें एव दुर्गम मार्गमें भी हमारे अग्रणी बनो तुम अपने महान् एवं श्रंम रहित घोड़ों के द्वारा हमारे लिए अन्न लेकर आओ ।१२। [१२]

सूक्त २२

(ऋषि– भरद्वाज। बार्हस्पत्यः । देवता– इन्द्र । छन्द–पंक्ति, त्रिष्टुप्)

य एक इद्धव्यश्चर्षणीनामिद्रं तं गीभिरभ्यर्चं आभिः ।
यः पत्यते वृषभो वृषभो वृष्ण्यान्त्सत्यः सत्व पुरुमायः सहस्वान्।।१
तुम नः पूर्वे पितरो नवग्वाः सप्त विप्रासो अभि वाजयन्तः ।
नक्षद्दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठासद्रोघवाचं मतिभिः शविष्टम् ।।२
तमीमह इन्द्रमस्य आयः पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः ।
यो अस्कृधोयरजराः स्ववन्तिमा भर हरिवो मादयध्यै ।।३
तन्नो वांचा यदि ते पुरा चिज्जरितार आनशुः सुम्नमिन्द्र ।
कस्ते भागः किं वयो दुध्र खिद्वः पुरुहूत तुरूत्रसोऽसुरघ्नः ।।४

तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठामिन्द्रं वेपा वक्वरी यस्य नू गीः ।
तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां गातुमिषे नक्षते तुम्रमिच्छ ॥५॥१३

मनुष्यों पर विपत्ति पड़ने पर एकमात्र इन्द्र आह्वान करने के योग्य हैं वे स्तुति करने वाले के पास आते हैं जो कामनाओं के वर्षक पराक्रमी, बहुत विद्वान् सत्यवक्ता एवं शत्रुओं को पीड़ित करने वाले हैं, हम उन इन्द्र की स्तुति करते हैं ।१। नौ महिने के यज्ञानुष्ठान के करने वाले, प्राचीन हमारे अङ्गिरा आदि पूर्वज सात ऋषियों ने इन्द्र को पराक्रमी और प्रवृद्धमान् बनाते हुए उसकी स्तुति की थी । वे इन्द्र शत्रुओं के हनन कर्त्ता, मननशील एवं सभी पर शासन करने वाले हैं ।२। हम बहुत से पुत्रों-पौत्रों, परिजनों, सेवकों और पशुओं के साथ सुखदायक धन की इन्द्र से याचना करते हैं । हे अश्वों के स्वामी इन्द्र! तुम हमको सुखी करने के लिए वह ऐश्वर्य लेकर यहाँ आओ ।३। हे इन्द्र ! जिस सुख को प्राचीन स्तोताओं ने प्राप्त किया था, उसी सुख को हमें दो । शत्रुओं के विजेता, बहुतों द्वारा बुलाये गये पराक्रमी ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! तुम दुष्ट राक्षसों का संहार करने में समर्थ हो । तुम्हारे निमित्त यज्ञ में कौन सा हव्यभाग प्राप्त हुआ है ? ।४। यज्ञादि कर्मों से युक्त तथा गुणगाथा-पूर्वक स्तुति करने वाले यजमान वज्रधारी और रथारूढ़ इन्द्र की पूजा करते हैं । वे इन्द्र बहुतों को आश्रय देते हैं । वे बहुकर्मा एवं बल प्रदान करने वाले हैं । उनका स्तोता सुख प्राप्त करता एवं शत्रु के सामने वीरतापूर्वक डट जाता है ॥५॥

अया ह त्यं मायया वावधानं मनोजुवा स्तवतः पर्वतेन ।
अच्युता चिद्वीलिता स्वोजो रुजो वि दृळहा धृषता विरप्शिन् ॥६
तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत्परितंसयध्यै ।
स नो वक्षदनिमानः सुवह्मेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि ॥७
आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोन्तरिक्षा ।
तपा वृषन्विश्वतः शोचिषा तान्ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च ॥८
भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसन्दृक् ।

धिष्व वज्रं दक्षिण हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः ॥९
आ संयतमिन्द्र णः स्वस्ति शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम् ।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि ॥१०
सा नो नियुद्भिः पुरुहूत वेधो विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो ।
न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहि तूयमा मद्र्यद्रिक् ॥११।१४

हे इन्द्र ! तुम अपने बल से बलवान् हो । तुमने मन के वेग के समान जाने वाले और असंख्य गांठों वाले वज्र से उस माया द्वारा बढ़े हुए वृत्र को मार डाला । हे सुन्दर तेज वाले इन्द्र ! तुमने असुरों की सुन्दर सुदृढ़ पुरियों को ध्वस्त किया है ।६। हे इन्द्र ! हम प्राचीन कालीन ऋषियों के समान ही अभिनव स्तोत्रों द्वारा तुम्हें बढ़ाते हैं । तुम पुरातन एवं अत्यन्त पराक्रमी हो । वे सुन्दर रूप वाले इन्द्र हमारे रक्षक हों ।७। हे इन्द्र ! तुम सज्जनों से बैर करने वाले दुष्टों के लिये आकाश पृथिवी और अन्तरिक्ष को तीक्ष्ण तेज से भर देते हो । तुम अभीष्टों की वर्षा करने वाले हो, अपने तेज से सर्वत्र व्याप्त होकर उन दुष्टों को भस्मसात करो।८। हे अत्यन्त तेजस्वी दिखाई पड़ने वाले इन्द्र ! तुम दिव्य और पार्थिव ऐश्वर्यों के स्वामी हो तुम अत्यत्य पूजनीय हो । अपने दाहिने हाथ में वज्र ग्रहण कर राक्षसों की माया को छिन्न-भिन्न करते हो ।९। हे इन्द्र ! तुम हमको महान्, अहिंसित और सुख देने वाला ऐश्वर्य दो, जिससे शत्रुओं का सामर्थ्य बढ़ने न पावे । हे वज्रिन् ! जिस कर्म साधन से तुमने अकर्मण्यों को कर्मों में लगाया, उसी साधन से मनुष्यों के शत्रुओं को मारे जाने योग्य बनाते हो ।१०। हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त पूजनीय एव बहुतों के द्वारा बुलाये गये हो । तुम सभी के द्वारा कामना किये जाने वाले घोड़ों द्वारा पास आओ । जिन घोड़ों की गति को देवता या राक्षस कोई भी नहीं रोक सकता, उन घोड़ों के साथ शीघ्र ही हमारे सामने पधारो ॥११॥ (१४)

सूक्त २३

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता-इन्द्रः । छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

सुत इत्वं निमिश्ल इन्द्र सोमेस्तोमे ब्रह्माणि शस्यमान उक्थे ।

यद्वा युक्ताभ्यां मघवन्हरिभ्यां बिभ्रद्वज्रं बाह्वोरिन्द्र यासि ॥१
यद्वा द्विवि पार्ये सुष्विमिन्द्र वृत्रहत्येऽवसि शूरसातौ।
यद्वा दक्षस्य बिभ्युषो अबिभ्यदरन्धयः शर्धत इन्द्र दस्यून् ॥२
पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं प्रणेनीरुग्रो जरितारमूती।
कर्ता वीराय सुस्वव उलोकं दाता वसु स्तुवते कीरये चित् ॥३
गन्तेयान्ति सवना हरिभ्यां बभ्रिर्वज्रं पपिः सोमं ददिर्गाः।
कर्ता वीरं नर्यं सर्ववीरं श्रोता हवं गृणतः स्तोमवाहाः ॥४
अस्मे वयं यद्वावान यद्विविष्म इन्द्राय यो नः प्रदिवो अपस्कः।
सुते सोमे स्तुमसि शमदुक्थेन्द्राय ब्रह्म वर्धनं यथासत् ॥५।१५

हे इन्द्र ! सोम के सुसिद्ध होने पर और महान् स्तोत्र से उच्चारित किये जाने पर तथा शास्त्र सम्मत विधि द्वारा आहूत होने पर तुम अपने रथ में घोड़ों को जोड़ते हो। हे ऐश्वर्यशालिन् ! तुम अपने दो घोड़ों से युक्त रथ पर दोनों हाथों में वज्र लेकर आते हो।१। हे इन्द्र ! तुम रणक्षेत्र में स्तुति वाले यजमान के साथी होकर उसकी रक्षा करते हो और भय रहित होकर धर्मवान् तथा भयग्रस्त यजमान के कार्य में विघ्न उपस्थित करने वाले राक्षसों को पराजित करते हो।२। इन्द्र सोमरस को पीते हैं। वे स्तुति करने वाले को सुगम मार्ग प्राप्त कराते हैं। वे सोमाभिषव करने वाले को सुन्दर निवास स्थान देते हैं। वे स्तोता को धन देते हैं।३। वे इन्द्र अपने दोनों घोड़ों सहित तीनों भवनों में जाते हैं। वे वज्र को धारण करने वाले हैं। वे सुसिद्ध सोम को पीते हैं। वे गौओं का दान करने वाले को पुत्र देते और स्तोत्र करने वाले के स्तोत्र को सुनते हैं।४। जो प्राचीन इन्द्र हमारे रक्षण-कार्यों को करते हैं, उन्हीं इन्द्र के इच्छित स्तोत्र को हम उच्चारित करते हैं। सोम सिद्ध होने पर हम इन्द्र की स्तुति करते हैं। स्तोत्र उच्चारण करते हुए साधक उनको प्रवृद्ध करने के लिए हवियां देते हैं ॥५॥ (१५)

ब्रह्माणि चकृषे वर्धनानि तावत्त इन्द्रमतिभिर्विविष्मः।
सुते सोमे सुतपाः शन्तमानि रान्द्र्या क्रियास्म वक्षणानि यज्ञे ॥६

स नो बोधि पुरोलाशं रराणः पिबाः तु सोमं गोऋजीकमिन्द्र ।
एदं बर्हियंजमानस्य सीदोरुं कृधि त्वायत उ लोकम् ।।७
स मन्दस्वा ह्यनु जोषसुग्र प्र त्वा यज्ञास इमे अश्नुवन्तु ।
प्रेमे हवासः पुरुहूतमस्मे आ त्वेयं धीरवस इन्द्र यम्याः ।।८
तं वः सखाया सं यथा सुतेषु सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।
कुवित्तस्मा असति नो भराय न सुष्विमिन्द्रोऽवसे मृधाति ।।९
एवेदिन्द्र सुते अस्ताावि सोमे भरद्वाजेषु क्षयदिन्मघोनः ।
असद्यथा जरित्र उत सूरिरिन्द्रोरायो विश्ववारस्य दाता ।।१०।१६

हे इन्द्र ! जिस उद्देश्य से तुमने स्तोत्रों को बढ़ाया है, उसी उद्देश्य से, वैसे ही स्तोत्रों का उच्चारण हम तुम्हारे लिए करते हैं । हे सोमपायी इन्द्र ! तुम्हारे लिए सोम छन कर तैयार होने पर सुन्दर, सुख देने वाले हवियुक्त स्तोत्रोंको उच्चारित करते हैं ।६। हे इन्द्र ! तुम प्रसन्न होते हुए हमारे पुरोडाश को ग्रहण करो । दही आदि मिश्रित सोम का पान करो यजमान के कुश पर विराजमान होओ । फिर जो यजमान तुम्हारी कामना करता है, उसके स्थान को बढ़ाओ ।७। हे इन्द्र ! तम अपनी इच्छानुपार हृष्टि को प्राप्त होओ । यह सोम तुम्हे प्राप्त हो । हमारे स्तोत्र तुम्हारे समक्ष पहुंचें । यह स्तुति हमारी रक्षा के लिए तुम्हें प्रेरित करे ।८। हे स्तुति करने वालो ! सोम सिद्ध होने पर धनदाता इन्द्र को परिपूर्ण करो । यह सोम बहुत परिमाण में इनको अर्पित करो । वह इन्द्र हमको पुष्ट करें और हमारी सन्तुष्टि में बाधक न हों ।९। सोम छनने पर हविरन्नयुक्त यजमान के स्वामी इन्द्र स्तुति करने वाले के लिऐ श्रेष्ठ मार्ग दिखाने वाले तथा वरणीय धनों के देने वाले हैं यह जानकर भरद्वाज ने स्तुति की है ।।१०।। (१६)

सूक्त २४ [तीसरा अनुवाक]

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्य । देवता—इन्द्र । छन्दः—त्रिष्टुप्, वृहती)

वृषा मद इन्द्रे श्लोक उक्थ सचा सोमेषु ऋजीषी ।

अर्चत्र्यो मववा नृभ्थ उक्थेद्युक्षो राजा गिरामक्षतोतिः ॥१
ततुरिर्वीरो नर्यो चिचेताः श्रोता हवं उव्यूतिः ।
वसुः शसो नरां कारुधाया वाजी स्तुतो विदथे दाति वाजम् ॥२
अक्षो न चक्रयोः शूरबृहन्प्र ते मह्ना रिरचे रोदस्योः ।
वृक्षस्यनु ते पुरुहूत वयाव्पू यतो रुरुहुरिन्द्र पूर्वीः ॥३
शचोवतस्ते पुरुशाक गवामिव स्तुतयः मञ्चरणीः ॥
वत्सानां न तन्तयस्त इन्द्र दामन्वन्तो अदामानः सुदामन् ॥४
अन्यदद्य कर्वरमन्यदु श्वोऽसच्च सन्मुहुसाचक्रिरिन्द्रः ।
मित्रा नो अत्र वरशश्च पूषार्यो वशस्य पर्येतास्ति ॥५॥१७

सोमयाग में इन्द्र का सोमजनित हर्ष यजमान की इच्छाओं को पूर्ण करे । वे इन्द्र स्तोता की स्तुति से पूजे जाते हैं तथा वे स्वर्ग के स्वामी इंद्र रक्षा करते हैं ।१। वे शत्रुओं की हिंसा करने वाले, बुद्धिमान पराक्रमी इंद्र हमारे स्तोताओं के रक्षक, घर वाले, प्रशसित और अन्न प्रदान करने वाले हैं ।२। हे इन्द्र ! पहियों की घुरी के समान तुम्हारी महिमा आकाश-पृथिवी को स्थिर करती है तुम बहुतों द्वारा बुलाये गये हो । तुम्हारे रक्षण-साधन वृक्षों कीं शाखाओं के समान बढ़ते हैं ।३। हे इंद्र तुम मेधावी हो । तुम्हारे कर्म गौओं के मार्ग के समान विस्तृत हैं । हे सुन्दर कर्म वाले इंद्र ! तुम्हारी शक्ति बछड़ों की रस्सी के समान बैरियों को बाँधती है ।४। इंद्र उत्तरोत्तर अद्‌भुन कार्य करते हैं । वे सत्यासत्य कार्यों को बराबर देखते हैं । इन्द्र, मित्र, वरुण, पूषा और सविता देव इस यज्ञ में हमारी कामनाऐं पूर्ण करें ।५। [१७]

वि त्वदापो पर्वतस्य पृष्ठादक्थेभिरिन्द्रनयन्त यज्ञैः ।
त त्वाभिः सुष्टुतिभिवजियन्त आजि न जग्मुगिर्वाहो अश्वाः ॥६
न यं जरन्ति शरदो न मासा न द्याव इन्द्रमवकर्शयन्ति ।
वृद्धस्य विद्वर्धतामस्य तनूः स्तोमे भरुक्थैश्च शस्यमाना ॥७
न वालवे नमते न स्थिराय न शर्धते दस्युजूताय स्तवान् ।

आज्रा इन्द्रस्य गिरयश्चिदृष्वा गम्भीरे चिद्भवति गाधमस्मै॥८
गम्भीरेण न उरुणामत्रिन्प्रेषो यंधि सुतपावन्याजान् ।
स्था ऊ षु ऊर्ध्वंऊती अरिषण्यन्नक्तव्युं ष्टौ परितक्यायाम् ॥९
सचस्व नायमवसे अभीक इतो वा तमिन्द्र पाहि रिषः ।
अमा चेनमरण्ये पाहि रिषा मदेम शतहिमा सुवीराः ॥१०॥१८

हे इन्द्र ! स्तोत्र और हव्य द्वारा स्तोतागण तुम से अभीष्ट पाते हैं, जैसे पर्वत के ऊँचे भाग से जल प्राप्त होता है । हे इन्द्र ! तुम स्तुतियों द्वारा पूजनीय हो । जैसे घोड़े वेग सरणक्षेत्र में जाते हैं, वैसे भरद्वाज आदि अन्नाभिलाषी तुम्हारे पास जाते हैं ।३। जिस इन्द्र को वर्ष और महीने वूढ़ा नहीं बना सकते, दिन जिसे दुर्बल नहीं कर सकते, उस सशक्त इन्द्र का शरीर हमारे स्तोत्रों से पूजित होकर बढ़े ।७। हम इन्द्र की स्तुति के प्रभाव से दुष्टों के चंगुल में नहीं फँस पाते । इन्द्र के लिए बड़े-बड़े पर्वत मी तुच्छ हैं और आगाध स्थान भी उनके लिए नगण्य है । हे पराक्रमी एनं सोमपायी इंद्र ! तुम उदार हृदय वाले हो । हम को अन्न और बल दो । तुम हमारी रक्षा के लिए दिन में तथा रात में भी तैयार रहो ।९। हे इंद्र ! तुम रणक्षेत्र में स्तोता की रक्षा के लिए उस पर कृपा करो । पास से या दूर से, जहाँ भी हो, वहीं से उनकी रक्षा करो । घर या जंगल से उसे सर्वत्र शत्रुओं से बचाओ । हम सुन्दर पुत्रादि से युक्त होकर सौ वर्ष तक सुख पूर्वक जीवन यापन करें ।१०। (१८)

सूक्त २५

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्य । देवता—इन्द्र । छन्दः—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

या त ऊतिरवमा या परमा या मध्यमेन्द्र शुष्मिन्नस्ति ।
ताभिरूषु वृत्रहत्येऽवीर्न एभिश्च वाजैर्महान्न उग्र ॥१
आभिः स्पृधो मिथतीररिषण्यन्नमित्रस्य व्यथया मन्यु मिन्द्र ।
आभिर्विश्वा अभियुजो विषूचीरार्याय विशोऽव तारीर्दासीः ॥२
इन्द्र जामय उत येऽजामयोऽर्वाचीनासो वनुषो युयुज्र ।

त्वमेषां विथुरा शवांसि जहि वृष्ण्यानि कृणुही पराचः ॥३
शूरो व शूर वनते शरीरैस्तनूरुचा तरुषि यत्कृण्वैते ।
तोके वा गोषु तनये यदप्सु वि क्रन्दसी उर्वरासु ब्रवैते ॥४
नहि त्वा शूरो न तुरो न धृष्णुन त्वा योधो मन्यमानो युयोध ।
इन्द्र नकिष्ट्वा प्रत्यस्त्येषां विश्वा जातान्यभ्यसि तानि ॥५।१९

हे इन्द्र ! तुम रणक्षेत्र में उत्तम, मध्यम और लघु रक्षाओं से हमारी भले प्रकार से रक्षा करो । हे इन्द्र! तुम महान् हो। हमको उपभोग्य अन्न से युक्त करो ।१। हे इन्द्र ! तुम हमारी स्तुतियों के द्वारा शत्रु-सेना को मारने वाली हमारी सेनाओं की रक्षा करते हुए शत्रु के आक्रमण को निष्फल करो । यज्ञादि कार्य करने वाले मनुष्यों के कर्मों में विघ्न डालने वालों को नष्ट करो ।२। हे इन्द्र ! पास या दूर से जो शत्रु हमारे सामने न आकर हिंसा करना चाहते हैं, उन शत्रुओं को अपने बल से नष्ट करो । इनके पराक्रम को नष्ट करो इन्हें भगा दो ।३। हे इन्द्र ! तुम्हारा कृपापात्र पुरुष वीर शत्रुओं को नष्ट करने में समर्थ होता हैं । ये दोनों पक्ष वाले सन्तान, गाय, जल और उपजाऊ पृथिवी के लिये संग्राम करते हैं ।४। हे इन्द्र ! तुम्हारे साथ युद्ध कर सकने की सामर्थ किसी में नहीं है चाहे वह कैसा ही शत्रुओं का सामना करने वाला, विजय प्राप्त करने वाला योद्धा क्यों न हो। हे इन्द्र ! इनमें तुम्हारा प्रतिद्वन्दी कोई नहीं है तुम इनमें सर्वश्रेष्ठ हो ।५। (१९)

स पत्यत उभयोर्नृम्णमयोर्यदा वेधसःसमिथे हवन्ते ।
वृत्रे वा महो नृवति क्षये वा व्यचस्वन्ता यदि वितन्तसैते ॥६
अधा स्मा ते चर्षणयो यदेजानिन्द्र त्रातोत भवा वरूता ।
अस्माकासो ये नृतमासो अर्य इन्द्र सूरयो दधिरे पुरो नः ॥७
अनु ते दायि मह इन्द्रियाय सत्रा ते विश्वमनु वृत्रहत्ये ।
अनु क्षत्रमनु सहो यजत्रेन्द्र देवेभिरनु ते नृषह्ये ॥८
एवा न स्पृधः समजा समत्स्विन्द्र रारन्धि मिथतीरदेवीः ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो भरद्वाजा उत त इन्द्र नूनम् ॥९।२०

जो व्यक्ति शत्रुओं को रोकने को अथवा दासों से युक्त श्रेष्ठ घर के निमित्त परस्पर लड़ते हैं, उन दोनों में वही व्यक्ति धन पाता है जिनके स्तोता जब काँपने लगें तभी तुम उनकी रक्षा करो। हे इन्द्र ! हमारे जो श्रेष्ठ व्यक्ति तुम्हें प्राप्त करने वाले हों तुम उन्हें दुःख से बचाओ। हे इन्द्र ! जिन स्तुति करने वालों ने हमको पुरोभाग में स्थापित किया तुम उनकी रक्षा करने वाले बनो।७। हे इन्द्र ! तुम महान् हो। शत्रुओं को मारने के लिए सभी शक्ति तुम में केन्द्रित हुई हैं। हे इन्द्र ! देवताओं ने तुम्हें शत्रुओं के हराने वाला तथा संसार का धारण करने वाला बल दिया है।८। हे इन्द्र ! इस प्रकार स्तुति की जाने पर तुम युद्ध में शत्रुओं का बध करने के लिए हमको उत्साहित करो। हिंसा करने वाली राक्षसी सेना को तुम हमारे निमित्त वशीभूत करो। हे इन्द्र ! हम तुम्हारे स्तोता भरद्वाज अन्नयुक्त गृह प्राप्त करें।९। (२०)

सूक्त २६

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। देवता—इन्द्रः। छंद—पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

श्रुधी न इन्द्र ह्वयामसि त्वा महो वाजस्य सातौ वावृषाणाः।
संयद्विशोऽयन्त शूरसाता उग्रं नोऽवः पार्ये अहन्दाः ॥१
त्वां वाजी हवते वाजिनेयो महो वाजस्य गध्यस्य सातौ
त्वां वृत्रेत्विन्द्र सत्पतिं तरुत्रं त्वां चष्टे मुष्टिहा गोषु युध्यन् ॥२
त्वं कविं चौदयोऽर्कसातौ त्वं कुत्साय शुष्ण दाशुषे वर्क्।
त्वं शिरो अमर्मणः हराहन्नतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ॥३
त्व रथं प्र भरो योधमृष्यमावो य ध्यन्तं वृषभं दशद्युम्।
त्वं तुग्रं वेतसवे सचाहन्त्वं तुजि गृणन्तिमिन्द्र तूतोः ॥४
त्वं तदुक्यमिन्द्र बर्हणा कः प्रयच्छता सहस्रा शूर दर्षि।
अव गिरेर्दासं शम्बरं हन्प्रावोदिवोदासं चित्राभिरूती ॥५।२१

हे इन्द्र ! अन्न लाभ के लिए हम स्तुति करने वाले तुम्हें सोम-रस

से सींचते हुए तुम्हारा आव्हान करते हैं । तुम अपने आव्हान को सुनों । जब वीरगण युद्ध के लिए जांय, तब उनकी भले प्रकार रक्षा करना ।२। हे इंद्र ! महान् अन्न की प्राप्ति के लिए अन्नवान होकर भरद्वाज तुम्हारी स्तुति करते हैं । हे इंद्र ! तुम सज्जनों के रक्षक और दुष्टों के मारने वाले हो । भरद्वाज तुम्हारा आव्हान करते हैं । वे मुष्टिका द्वारा ही शत्रुओं का नाश कर देते हैं । जब वे गौओं के लिए संग्राम करते हैं, तब तुम्हारे भरोसे रहते हैं ।३। हे इंद्र ! अन्न प्राप्ति के लिए तुम "भार्गव ऋषि" को प्रेरणा दो । हविदाता "कुत्स" के निमित्त तुमने "शुष्णासुर" को मारा था । तुमने 'अतिथिग्व' को सुख देने के लिए 'शम्बरासुर' का सिर काट डाला था वह अपने को अमर समझता था ।३। हे इंद्र ! तुमने 'वृषभ' नामक राजा को युद्धसाधक रथ दिया । जब वे दस दिनों तक शत्रुओं से युद्ध करते रहे, तब तुमने उनकी रक्षा की थी । "वेतस" के सहायक होकर 'तुग्रासुर' का वध किया था । तुमने स्तुति करने वाले 'तूजि' राजा को समृद्ध किया था ।४। हे इंद्र ! तुम शत्रु संहारक हो तुमने प्रशंसनीय कार्यों का सम्पादन किया है । हे वीर इंद्र तुमने सौ-सौ और हजार-हजार 'शम्बर' की सेनाओं को चीर डाला तुमने यज्ञादि के हिंसक 'शम्बरासुर' का हनन किया और अद्‌भुत रक्षा तुमने 'दिवोदास' की रक्षा की ।५। [२१]

त्वं श्रद्धाभिर्मन्दसानः सोमैर्दभीतये चुमुरिमिन्द्र सिष्वप् ।
त्वं रजिं पिठीनसे दशस्यन्षष्टिं सहस्रा शच्या सचाहन् ।।६
अहं चन तत्सूरिभिरानश्यां तव ज्याय इन्द्र सुम्नमोजः ।
त्वया यत्स्तवन्ते सधवीर वीरास्त्रिवरूथेन नहुषा शविष्ठ ।।७
वयं ते अस्यामिन्द्र द्युम्नहूतौ सखायः स्याम महिन प्रेष्ठाः ।
प्रातर्दनिः क्षत्रश्रीरस्तु श्रेष्ठो घने वृत्राणां सनये धनानाम् ।।८।२२

हे इंद्र ! श्रद्धा पूर्वक किये गये अनुष्ठान कर्मों द्वारा सोम रससे मुदित होकर तुमने 'दभीति' राजा के निमित्त 'चुमुरि' का संहार किया । हे इंद्र तुमने 'पिठीनस !' को 'रजि' नामक कन्या दी थी । तुमने अपनी बुद्धि से साठ सहस्र वीरों को एक समय में ही नष्ट किया था ।६। हे वीरों

के साथी इन्द्र ! तुम तीनों लोकों के रक्षक और शत्रुओं के विजेता हो। स्तुति करने वाले तुम्हारे द्वारा दिए गये सुख और बल की याचना करते हैं। हे इन्द्र ! हम भारद्वाज तुम्हारे द्वारा दिये गये श्रेष्ठ सुख और बल को अपने स्तुति करने वालों के साथ पावें।७। हे इन्द्र ! हम तुम्हारे मित्र रूप स्तुति करने वाले हैं। धन-लाभ के लिए किये गए इन स्तोत्रों से हम तुम्हारे प्रीतिपात्र हों । 'प्रातर्दन' के पुत्र 'क्षत्रश्री' शत्रुओं का हनन कर तथा धन प्राप्त कर सबसे अधिक ऐश्वर्यवान् बनें ।।८।। (२२)

सूक्त २७

(ऋषि—भारद्वाजो वार्हस्पत्यः । देवता—इन्द्रः । छंदः—पंक्तिः,
त्रिष्टुप् उष्णिक्)

किमस्य मदे किम्वस्य पीताविन्द्रः किमस्य सख्ये चकार ।
रणा वा निषत्ति किं ते अस्यपुरा विविद्रे किमु नुतनासः ।।१
सदस्य मदे सद्वस्य पोताविन्द्र सदस्य सख्ये चकार ।
रणा वा ये निषदि सत्त अस्य पुरा विविद्रे सद् नूतनासः ।।२
नहि नु ते महिमनः समस्य न मघवन् मघववस्य विद्म ।
न राधसो राधसो नूतनस्येन्द्र नकिर्द्द॑श इन्द्रियं ते ।३
एतत्यत्त इन्द्रियमचेति येनावधीर्वरशिखस्य शेषः ।
वज्रस्य यत्ते निहतस्त्र शुष्मात्स्वनाच्चिदिन्द्र परमो ददार ।।४
वधोदिन्द्री वरशिखस्य शेषोऽभ्यावर्तिने चायमानाय शिक्षन् ।
वृचोवतो यद्धरियूपीयायां हन्पूर्वे अर्घे भियसापरो दत् । ५।२३

सोम से पुष्ट होकर इंद्र ने क्या किया ? सोम-पान करके और सोम रस से मैत्री करके उन्होंने क्या किया ? प्राचीन और नवीन स्तोताओं से तुमने क्या पाया ? ।१। सोम पान में पुष्ट होकर इंद्र ने सुन्दर कर्मों को किया। सोम-पानके पश्चात् उन्होंने श्रेष्ठ कार्य किया। सोम से मैत्री होने पर शुभ कर्म किया। हे इंद्र ! प्राचीन और नवीन स्तोताओंने तुमसे श्रेष्ठ

कर्मों को प्राप्त किया था ।२। हे ऐश्वर्य सम्पन्न इन्द्र ! तुम्हारे समान अन्य किसीकी महिमाका हमको ज्ञान नहीं । तुम्हारे समान वैभव और धन को भी हम नहीं जानते । हे इन्द्र ! तुम्हारे जितनी सामर्थ्य कोई भी प्रदर्शित नहीं कर सकता ।३। हे इन्द्र ! तुमने जिस पराक्रम से 'वरशिख' नामक राक्षस के पुत्र को मारा था, तुम्हारे उस पराक्रम को क्या हम नहीं जानते ? हे इन्द्र ! बलपूर्वक उद्यत तुम्हारे वज्र के घोर शब्द से ही बलवान 'वरशिख' के पुत्र विदीर्ण हो गए ।४। इन्द्र ने राजा 'वायमान' के पुत्र 'अभ्यवर्ती' को इच्छित धन प्रदान करते हुए 'वरशिख' के पुत्रों को मार डाला । हरियूपिया' नगरी के मध्य स्थिति 'वरशिख' के वंशज 'वृतीवान' के पुत्रोंको इन्द्र ने मारा ! तब 'वरशिख' के पुत्र मारे गये थे ।५। (२३)

त्रिंशच्छतं वर्मिण इन्द्र साकं यव्यावत्यां तुरुहूत श्रवस्या ।
वृचीवन्तः शरवे पत्यमाना पात्रा भिदाना न्यर्थान्यायन् ।।६
यस्य गाववरुषा सूर्यवस्यू अंतरू षु चरितो रेरिहाणा ।
म सृञ्जयाय तुर्वशं परादाद्बृचीवतो दैववाताय शिक्षन् ।।८
द्वयां अग्ने रथिनो बिंशतिं गा वधूमन्तो मघवा मह्यं सम्राट् ।
अभ्यावर्ती चायमानो ददादि दूणाशेयं दक्षिणा पार्थवानाम् ।।८।२४

हे इन्द्र ! तुम बहुत मनुष्यों द्वारा आहृत हो । तुम्हें युद्ध में पराजित कर अन्न-यश प्राप्त करने की आशा वाले यज्ञ-पात्रों के तोड़ने वाले तथा कवच धारण करने वाले 'वरशिख' के एक सौ तीस पुत्र आक्रमण करते हुए एक साथ ही नाश को प्राप्त हुए ।६। जिनके अश्व आकाश-पृथिवी के बीच चलते हैं वे इन्द्र ! संजय 'राजा के आगे 'तुर्वश' राजा को समर्पित करते हैं । उन्होंने देववाक' वंशीय राजा 'अभ्यवर्ती' के निकट 'वरशिख' के पुत्रों का वश में कर लिया था ।७। हे अग्नि ! अत्यन्त दान करने वाले, राजसूय यज्ञकर्त्ता 'चायमान' के पुत्र 'अभ्यवर्ती' ने हमें दासियों सहित रथ और बीस गौऐं प्रदान की । पृथु वंशीय राजा अभ्यवर्ती की इस दक्षिणा का कोई विनाश नहीं कर सकता ।८। (२४)

सूक्त २८

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता गाव इंद्रो वा । छंद–त्रिष्टुप्
जगती अनुष्टुप्)

आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन्त्सीदंतु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे ।
प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः ॥१
इन्द्रों यज्वने पृणते च शिक्षत्यु पेद्ददाति न स्व मुषायति ।
भूयोभूयो रयिमिदस्य वर्धयन्नभिन्ने खिल्ये नि दधायि देवयुम्॥२
ना ता नशति न दभाति तस्करो नासामित्रो व्यथिरा दर्षति ।
देवांश्चि याभिर्यजते ददाति च ज्योगित्ताभिः सचते गोपतिःसह॥३
न ता अर्वा रेणुककटो अश्नुते न संस्कृतत्रमुप यंति ता अभि ।
उरुगायमभयं तस्य ता अनु गावो मर्तस्य वि चरन्ति यज्वनः ॥४
गावो भगो गाव इन्द्रो मे अच्छान् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्ष ।
इमा या गावः सजनास इन्द्र इच्छामीद्धृदा मनसा चिद्रिन्द्रम् ॥५
यूयं गावो मेदयथा कृश चिदश्रीरं चित्कृणुथा सुप्रतीकम् ।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचां वृहद्वो वय उच्यते सभासु ॥६
प्रजावतीःसूर्यवसं रिशन्तीःशुद्धा अपःसुप्रपाणे पिबन्तीः ।
मा वः स्तेन ईशत माघशंसः परि वो हेती रुद्रस्य वृज्याः ।.७
उपेदमुपपर्चनमासु गोषूप पृच्यताम् ।
उप ऋषभष्य रेतस्युपेन्द्रतव वीर्ये ॥८।२५

गौऐं हमारे गृह में आकर हमारा मंगल करें। वे हमारे गोष्ठमें प्रवेश करती हुई प्रसन्न हों । इस गोष्ठ में विभिन्न रंग की गौऐं सन्तानवती होकर इंद्र के लिए उषाकाल में दूध दें । हे इन्द्र ! तुम यज्ञकर्त्ता और स्तोता को आशा किया हुआ धन देते हो। तुम उनको सदा धन देते और उनसे अपने धन को कभी नहीं लेते हो। वे इंद्र लगातार धन-वृद्धि करते हैं और अपनी कामना करने वालों को शत्रुअ द्वारा न मार सकने योग्य

स्थान में आश्रय देते हैं ।२। हमारी गौऐं नष्ट न हों । उन्हें चोर न चुरावें शत्रुओं के हथियार उन पर न गिरें । गौओं के स्वामी जिन गौओं को इन्द्र के निमित्त देते हैं, उन गौओं सहित वे चिरकाल तक सुखी रहें ।३। यज्ञ के लिए आए अश्व उन गौओं को न पा सकें । यज्ञ करने वाले यजमान की गौऐं स्वाधीनता से घूमती रहें ।४। गौऐं हमारे लिए धन रूप हों । इन्द्र हमको गौएं दें । गौऐं हवियों में प्रमुख सोम रूप भोजन दें गौऐं ही इन्द्र रूप होती हैं, जिन्हें श्रद्धा सहित हम चाहते हैं ।५। हे गौओ ! हमको पुष्ट करो । तुम हमारे कृश और रोगी शरीर को सुन्दर बनाओ। तुम कल्याणमय शब्द करने वाली हो, हमारे घर को कल्याणकारी बनाओ हे गौओ ! यज्ञ मण्डप में तुम्हारा महान् अन्न ही यश प्राप्त करता है ।६। हे गौओ ! तुम संतानवती होओ सुन्दर घास खाओ और सुख प्राप्य तलाव आदि का स्वच्छ जल पीओ । तुम्हारा स्वामी चोर न हो हिंसक तुम्हारा शासन न करे । परमात्मा का काल रूप अस्त्र तुमसे दूर ही रहे ।७। हे इन्द्र ! तुम्हारे बल के लिए गौओं की पुष्टि स्वीकार हो और गौओं में गर्भ धारण करने वाले बैलों का बल स्वीकार हो ।८।(५)

सूक्त २९

(ऋषि—भारद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—इन्द्रः । छन्द - त्रिष्टुप् पंक्तिः, उष्णिक्)

इन्द्रं वो नरः सख्याय सेपुर्महो यन्तः सुमतये चकानाः ।
महो हि वज्रदाता हस्तो अस्ति महामु रण्वमवसे यजध्वम् ।।१
आ यस्मिन्हस्ते नर्या मिमिक्षुरा रथे हिरण्यये रथेष्ठाः ।
आ रश्मयो गभस्त्योः स्थूरयोराध्वन्नश्वासो वृषणो युजानाः ।।२
श्रिये ते पादा दुव आ मिमिक्षुर्धृष्णुर्वज्री शवसा दक्षिणावान् ।
वसानो अत्कं सुरभि दृशे कस्वर्ण नृतविपिरो बभूथ ।।३
स सोम आमिश्लतमः सूनो भूद्यस्मिन्पक्तिः पज्यते सन्ति धानाः ।
इन्द्रं नरः स्तुवन्तो ब्रह्मकारा उक्था शंसन्तो देववाततमाः ।।४

न ते अन्तः शवसो धाय्यस्त वि तू बावधे रोदसी महित्वा ।
आ ता सूरि पृणाति तूतुजानो यूथेवात्सु समीजमान ऊती ॥५
एवेदिन्द्रः सुहव ऋष्वी अस्तूती हिरिशिप्रः सत्वा ।
एवा हि जातो असमात्योजाः पुरू च वृत्रा हनति नि दस्यू न्॥६॥१

हे मनुष्यो ! तुम्हारे ऋत्विग्गण मैत्री भाव से इन्द्र की सेवा करते हैं वे श्रेष्ठ स्तोत्रों का उच्चारण करते हैं । उनकी बुद्धि सुन्दर तथा उदार है, क्योंकि हाथ में वज्र धारण करने वाले इन्द्र महान् धन देते हैं, इसलिए रक्षा के निमित्त उन महान् इन्द्र का पूजन करो ।१। जिस इन्द्र के द्वारा मनुष्यों का हित करने वाला धन एकत्र है,जो इन्द्र रथ पर आरूढ़ होते हैं जिनके हाथों में रश्मियाँ नियमित रहती हैं, जिन्हें सेचन समर्थ अश्व रथ में जुड़कर वहन करते हैं, उन इन्द्र की हम स्तुति करते हैं ।२। हे इन्द्र ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए भरद्वाज तुम्हारे चरणों में अपनी सेवा भेट करते हैं तुम अपने पराक्रम से शत्रुओं को हराते हो और वज्र धारण करते हो । तुम्हीं श्रोताओंको धन प्रदान करने वाले हो । हे सब में प्रमुख इन्द्र ! तुम सब के दर्शन के लिये सुन्दर और सदा चलने योग्य रूप धारण करके सूर्य के समान घूमते हो ।३। अभिषुन होने पर सोम को भले प्रकार मिश्रित किया गया है,उसके तैयार होने पर पकाने योग्य परोडास का पाक लिया जाता है । भुने हुए जौ हव्य के लिए तैयार होते हैं । हवि रूप अन्न के तैयार करने वाले ऋत्विग्गण स्तोत्रों से इन्द्र की स्तुति करते हैं वे स्तोत्र उच्चारण करते हुए इन्द्र का सामीप्य करते हैं ।४। हे इन्द्र ! तुम्हारे बल का पार नहीं पाया जाता । आकाश और पृथिवी उस महान बल से डर जाती है । जैसे गौओं का पालने वाला जल से गौओं को तृप्त करता है, वैसेही स्तुति करने वाली तृप्तिदायक हवियों द्वारा हम विधिवत् यज्ञ करते हुए तुम्हें तृप्त करते हैं । वे हरी नासिका वाले महान् इन्द्र इस प्रकार मख में आहूत किये जा सकते हैं । इन्द्र स्वयं पधारें या न पधारें तो भी स्तुति करने वालों को धन प्रदान करते हैं । इस प्रकार महान पराक्रम वाले इन्द्र प्रकट होकर अनेकों वृत्र जैसे राक्षसों और शत्रुओं का संहार कर डालते हैं ।।६।।

सूक्त ३०

(ऋषि–भरद्वाजो बाहस्पत्यः । देवता—इन्द्रः । छन्द–त्रिष्टुप् पंक्तिः उष्णिक्)

भूय इद्वावृधे वीर्याय एको अजुर्यो दयते वसूनि ।
प्ररिरिचे दिव इन्द्रः पृथिव्या अर्धमिदस्य प्रति रोदसी उभे ॥१
अधा मन्ये वृहदसुर्यमस्य यानि दाधार नकिरा मिनाति ।
दिवेदिवे सूर्यो दशतो भूद्वि सद्मान्युर्दिया सुक्रतुर्धात ॥२
अद्या चिन्नू चित्तदपो नदीनां यदाभ्यो अरदो गातुमिन्द्र ।
नि पर्वता अद्मसदो न सेदुस्त्वया दृलहानिसक्रतो रजांसि ॥३
सत्यमित्त त्वावां अन्यो अस्तीन्द्र देवो न मर्त्यो ज्यायान् ।
अहन्नहिं परिशयानमर्णोऽवसृजो अपो अच्छा समुद्रम् ॥
त्वमपो वि दुरो विषूचीरिन्द्र दृलहमरुजः पर्वतस्य ।
राजाभवो जगतश्चर्षणीनां साकं सूर्यं जनयन् द्यामुषासम् ॥५।२

वृत्र आदि राक्षसों का हनन कार्य करने के निमित्त इन्द्र पुनःउत्तेजित हुए हैं । वे श्रेष्ठ एवं अजर इन्द्र स्तुति करने वालोंको धन दें । इन्द्र आकाश पृथिवी का अतिक्रमण करते हैं । इन्द्र का अर्द्ध भाग सपूर्ण आकाश पृथिवी के बराबर है ।१। अभी हम इन्द्रकी शक्ति की स्तुति करते हैं । वह शक्ति असुरों को दग्ध करने में समर्थ है । इन्द्र जिन कर्मों के धारण करने वाले हैं उन्हें रोकने में कोई भी समर्थ नहीं है। वे नित्य प्रति वृत्र द्वारा ढके हुए सूर्य को दर्शन करने योग्य बनाते हैं। इन श्रेष्ठ कर्मा इन्द्र ने ही लोकों को विस्तृत किया है ।२। हे इन्द्र ! पूर्व के समान आज तुम्हारा नदियों को प्रवाहमान रखने वाला कार्य जारी है । नदियोंके प्रवाहित होनेके लिए तुमने मार्ग निर्मित किया है भोजन के लिए बैठे हुए मनुष्य के समान पर्वत भी तुम्हारी आज्ञासे स्थिर होकर बैठे हैं। हे श्रेष्ठकर्मा इन्द्र ! सभी लोकों को तुमने ही स्थिर किया है ।३। हे इन्द्र अन्य कोई देवता तुम्हारे समान नहीं है,यह नितान्त सत्य है । तुम्हारे समान कोई मनुष्य भी नहीं

है। तुमसे बढ़कर कोई देवता या मनुष्य नहीं है, यह भी नितान्त सत्य ही है। जल-राशि को ढक कर शयन करने वाले वृत्र का तुमने वध किया था जल-राशि-को समुद्र में गिरने के लिये छोड़ा था।४। हे इन्द्र ! वृत्र द्वारा ढके हुए जल को सब ओर बहने के लिए तुमने छोड़ा था तुमने मेघ के बन्धनों को काट डाला। सूर्य, स्वर्ग और उषा को एक समय में ही प्रकाशित करने वाले, तुम अखिल विश्व के स्वामी होओ।५। (२)

सूक्त ३१

(ऋषि–सुहोत्र, । देवता इन्द्रः । छन्द-त्रिष्टुप् पंक्तिः, शक्वरी)

अभूरे को रयिपते रयीणामा हस्तयोरधिथा इन्द्र कृष्टीः ।
वि तोके अप्सु तनये च सूरेऽवोचन चर्षणयो विवाचः ॥१
त्वद्भियेन्द्र पार्थिवानि विश्वाच्युता चिच्च्यावयन्ते रजाँसि ।
द्यावाक्षामा पर्वतासो वनानि विश्वं दृलहं भयते अज्मन्ना ते ॥२
त्वं कुत्सेनाभि शुष्णमिन्द्रा शुष युध्य कयवं गविष्टौ ।
दश प्रपित्वे अध सूर्यस्य मुषायश्चक्रमविवे रपांसि ॥३
त्व शतान्यव शम्बरस्य पुरो जघन्थाप्रतीनि दस्योः ।
अशिक्षो यत्र शच्या शचीवो दिवोदासाय सुन्वते ।
सुतक्रे भरद्वाजाय गृणते वसूनि ॥४
स सत्यमत्वन्महते रणाय रथमा तिष्ठ तुविनृम्ण भामम् ।
याहि प्रपथिन्नवसोप मद्रिक्प्र च श्रुत श्रावय चर्षणिभ्यः ॥५।३

हे वैभव के प्रदानकर्त्ता इन्द्र ! तुम ही धनों के मुख्य स्वामी हो तुम अपने भुजबल से प्रजाओं के धारण करने वाले हो। मनुष्यगण पुत्र शत्रु के जीतने वाले पौत्र एवं वृष्टि उद्देश्य से तुम्हारी विभिन्न स्तुतियां करते हैं।१। हे इन्द्र ! तुम्हारे डर से अन्तरिक्ष में उत्पन्न जल गिरने योग्य न होने पर भी मेघ द्वारा गिराये जाते हैं। हे इन्द्र ! आकाश, पृथिवी, पर्वत, वृक्ष तथा सभी स्थावर जंगम जीव तुम्हारे आगमन से भयभीत होते हैं।२। हे इन्द्र ! 'कुत्स' की सहायता के लिय तुमने 'शुष्ण' से युद्ध किया था।

युद्ध में तुमने 'कुयव' को मारा था । तुमने संग्राम में रथ के पहिए का हरण किया, उस समय से सूर्य का रथ एक ही पहिए का रह गया पापी राक्षसों का तुमने बध किया था ।३। हे इन्द्र ! तुमने 'शम्बर' नामक राक्षस के सौ पुत्रों को ध्वस्त किया था । हे मेधावी इन्द्र ! तुमने सोम अभिषुत करने वाले 'दिवोदास' को तथा स्तुति करने वाले भरद्वाज को धन दिया था ।४। हे अजेय वीरों वाले एवं अत्यन्त धन वाले इन्द्र ! तुम भीषण युद्ध के लिये अपने विकराल रथ पर चढ़ो। हे श्रेष्ठ मार्गगामी इन्द्र! तुम अपने रक्षा साधनों सहित हमारे सामने आओ । हमको सब मनुष्यों में प्रसिद्ध करो ।।५५।। (३)

सूक्त ३२

(ऋषि — सुहोत्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द—पङ्क्तिः, त्रिष्टुप्)

अपुर्व्या पुरुतमान्यस्मै महे वीराय तबसे तुराय ।
विरप्शिने वज्रिणे शन्तमानि वचांस्यासा स्थविराय तक्षम् ।।१
स मातरा सूर्येणा कवीनामवासयद्रु जदद्रि गृणानः ।
स्वाधीभिर्ऋक्वभिवशान उदुस्रियाणामसन्नि दानम् ।।२
स वह्निभिर्ऋक्वभिर्गोषु शश्वन्मितज्ञुभिः पुरुकृत्वा जिगाय ।
पुरः पुरोहा सखिभिः सखीयन्दृलहा रुरोज कविभिःकविःसन् ।।३
स नीव्याभिर्जरितारमच्छा महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः ।
पुरवीराभिर्वृषभ क्षितीनामा गिर्वणः सुविताय प्र याहि ।।४
स सर्गेण शवसा तक्तो अत्यैरप इन्द्रो दक्षिणतस्तुराषाट् ।
इत्था सृजाना अनपावृदर्थं दिवेदिवे विविषुरप्रमृष्यम् ।।५।४

महान् शत्रुहन्ता, वेगवान् स्तुत्य, वज्रधारी एवं बढ़े हुए इन्द्र के निमित्त हमने अपने मुख से सुविस्तृत सुखप्रद एवं अपूर्व स्तोत्रों का उच्चारण किया है ।१। मेधावी अङ्गिराओं के लिए इन्द्र ने स्वर्ग और पृथिवी को सूर्य के प्रकाशसे प्रकाशित किया और उन अङ्गिराओं द्वारा स्तुत होकर

पर्वतों को चूर कर डाला । स्तुति करने वाले अङ्गिराओं के द्वारा बारम्बार याचना करने पर इन्द्रने गौओं को बन्धन से छुड़ा दिया ।२। उन बहु-कर्मा इन्द्र ने यज्ञ करने वाले अङ्गिराओं से मिलकर शत्रुओं को हराया तथा राक्षस-नगरियों को ध्वस्त किया ।३। हे स्तुति द्वारा उपास्य एवं अभीष्टों के पूर्ण करने वाले इन्द्र! तुम महान् अन्न, बल और बहुत बछड़े वाली युवती बढ़वागो सहित अपने स्तोताओं को सुखी करने के लिये उनके सामने पधारो ।४। दुष्टों को वशीभूत करने वाले इन्द्र सदा अपने बल से गमन शील तेज के द्वारा सूर्य के दक्षिणायन होने पर जल को छोड़ते हैं । इस प्रकार जल-राशि उस सुशांत समुद्र में नित्य प्रति गिरती है, जिससे वह फिर नहीं लौटती ॥५॥ [४]

सूक्त ३२

(ऋषि—शुनहोत्रः । देवता-इन्द्रः । छन्द—पंक्तिः)

य ओजिष्ठ इन्द्र तं सु नो दा मदो वृषन्स्वभिष्टिर्दास्वान् ।
सौवश्व्यं यो वनवत्स्वश्वो वृत्रा समत्सु सासहदमित्राम् ॥१
त्वां हीन्द्रावसे विवचो हवन्ते चर्षणयः शूरसातौ ।
त्वं विप्रेभिर्वि पणीरशायस्त्वोत इत्सनिता वाजमर्वा ॥२
त्वं ताँ इन्द्रोभयां अमित्रांदासा वृत्राण्यार्या च शूर ।
वधीर्वनेव सुधितेभिरत्कैरा पृत्सु दर्षि नृणां नृतम ॥३
स त्वं न इंद्राकवाभिरूती सखा विश्वायुरविता वृधे भूः ।
स्वर्षाता यद्ध्वयामासि त्वा युध्यंतो नेमधिता पृत्सु शूर ॥४
नूनं न इन्द्रापराय च स्या भवा मृलीक उत नो अभिष्टौ ।
इत्था गृणतो महिनस्य शर्मन्दिवि ष्याम पार्ये गोषतमाः ॥५।६

हे कामनाओं की वर्षा करने वाले इन्द्र ! तुम हमको सुन्दर स्तुति करने वाला हव्यदाता एक पुत्र दो । वह श्रेष्ठ घोड़े पर चढ़कर युद्ध में सुन्दर घोड़ों वाले विरुद्धाचारी शत्रुओं को पराजित करे ।१। हे इन्द्र !

स्तुति रूप वाणी वाले मनुष्य, युद्धमें रक्षा के निमित्त तुम्हें बुलाते हैं तुमने आङ्गिराओं के साथ पणियों को मारा था,तुम्हारा उपासक तुम्हारा आश्रय प्राप्त करता हुआ अन्न पाता है ।२। हे वीर इन्द्र ! तुम दस्यु और आर्य दोनों प्रकार के शत्रुओं को दण्ड देते हो। जैसे काठ के काटने वालाकुल्हाड़ी के वृक्षों को काटता है, वैसे ही युद्ध क्षेत्र में तुम भले प्रकार प्रयुक्त हथियारों से शत्रुओं को काटते हो ।३। हे इन्द्र ! तुम सब ओर जाने वाले हो । तुम अपने उत्तम रक्षा-साधनों से हमारे ऐश्वर्य के बढ़ाने वाले सखा रूप होओ । अपने पुरुषों सहित संग्राम करने वाले हम धन प्राप्ति के लिए तुम्हें बुलाते हैं ।४। हे इन्द्र ! तुम इस समय तथा अन्य समयों में हमारे होओ । हमारी अवस्था के अनुसार हमको सुख दो । इस प्रकार के हम स्तोता गोओं के इच्छुक होकर तुमारे उज्ज्वल सुख में रहें । इन्द्र ! तुम महान् हो ।।५।।

[५]

सूक्त ३४

(ऋषि—शुनहोत्रः । देवता –इन्द्रः । छन्द–त्रिष्टुप्)

सं च त्वे जग्मुर्गिर इन्द्र पूर्वीवि च त्वद्यन्ति विभ्वो मनीषाः ।
पुरा नूनं च स्तुतय ऋषीणां पस्पृध्र इन्द्रे अध्युक्थार्का ।।१
पुरुहूतो यः पुरुगूर्त ऋभ्वां एकः पुरुप्रशस्तो अस्ति यज्ञैः ।
रथो न महे शवसे युजानो स्माजिरिन्द्रो अनुमाद्यो भूत् ।।२
न यं हिंसन्ति धीतयो न वाणोरिन्द्रं नक्षन्तादभि वधयन्तीः ।
यदि स्तोतारः शत यत्सहस्रं गृणन्ति निर्वणस शं तदस्मै ।।३
अस्मा एतद्दिव्यं र्चेव मासा मिमिक्ष इन्द्रे न्ययामि सोमः ।
जनं न धन्वन्नभि स यदापः सत्रा वावृधुर्हवनानि यज्ञैः ।।४
अस्मा एतनमह्याङ्गूषमस्मा इन्द्राय स्तोत्रं मतिभिरवाचि ।
असद्यथा महति वृत्रतूर्यं इन्द्रो विश्वायुरविता वृधश्च ।।५।६

हे इन्द्र ! तुममें अगणित स्तोत्र मिलते हैं । तुमसे स्तुति करने वालों की प्रशंसा काफी होती है । पूर्व समय में तथा अब भी ऋषियों में स्तोत्र साधना और मन्त्रादियुक्त इन्द्र के पूजन में परस्पर स्पर्धा होती है ।१।

LIBRARY
No..........
Shri Shri Ma A... mayee Ashram
BANARAS

हम सदा इन्द्र को प्रसन्न करते हैं। वे बहुतों के द्वारा बुलाए गए, महान्, अद्वितीय एवं यजमानों द्वारा भले प्रकार पूजित हैं। हम रथ के समान इन्द्र के प्रति प्रीतियुक्त होकर लाभ के लिये सदा उनकी स्तुति करें ।२। कर्म और सम्पन्नता का विधान करने वाले स्तोत्र इन्द्र के सामने जाँय। कर्म और स्तुतियां इन्द्र को बाध्य नहीं करतीं। सौ हजार स्तुति करने वाले स्तुत्य इन्द्र की स्तुति करते हुए उनकी स्तुति करते हैं ।३। इस यज्ञ दिवस में स्तोत्र के समान पूजा सहित इन्द्र के लिए मिश्रित सोमरस उपस्थित है। जैसे मरुभूमि के लिए गमन करने वाला जल प्राणियों का पालन करता हैं, वैसे ही हवियों के साथ अर्पित स्तोत्र इन्द्र की वृद्धि करते हैं ।४। सर्वत्र गमनशील इन्द्र भीषण युद्ध में हमारे रक्षक और समृद्धि के करने वाले हों। इसलिये स्तुति करने वालों के स्तोत्र आग्रह सहित इन्द्र के निमित्त उच्चारित होते हैं ॥५॥

सूक्त ३५

(ऋषि—नरः । देवता—इन्द्रः । जन्द्र—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

कदा भुवन्रक्षयाणि ब्रह्म कदा स्तोत्रे सहस्रपोष्यं दाः ।
कदा स्तोमं वामस्योऽस्य राया कदा धियः करसि वाजरत्नाः ॥१
कर्हि स्वित्तदिन्द्र यन्नृभिर्नॄन्वीरान्वीलयासे जयाजीन् ।
त्रिधातु गा अधि जयासि गोष्विन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे ॥२
कर्हि स्वित्तदिन्द्र यज्जरित्रे विश्वप्सु ब्रह्म कृणवः शविष्ठ ।
कदा धियो न नियुतो युवासे कदा गोमघा हवनानि गच्छाः ॥३
स गोमघा जरित्रे अस्वश्चन्द्राः वाजश्रवसो अधि धेहि पृक्षः ।
पीपिहीषः सुदुघामिन्द्र धेनुं भरद्वाजेषु सुरुचो रुरुच्याः ॥४
तमा नूनं वृजनमन्यथा चिच्छूरो यच्छक्र वि दुरो गृणीषे ।
मा निररं शुक्रदुघस्य धेनोराङ्गिरसान्ब्रह्मणा विप्र जिन्व ॥५।७

हे इन्द्र ! तुम रथारूढ़ हो। तुम्हारे स्तोत्र कब पहुंचेंगे ? मुझ स्तोता को तुम सहस्र पुरुषों युक्त गोऐं कब प्रदान करोगे ? मुझ स्तुति करने वाले

स्तोता को धन से कब पुरस्कृत करोगे ? तुम हमारे यज्ञादि कर्मों को अन्न से कब सुशोभित करोगे ? ।१। हे इन्द्र ! तुम हमारे पुरुषों से शत्रुओं के पुरुषों को और हमारे पुत्रों से शत्रुओं के पुत्रों को कब मिलाओगे ? रण-क्षेत्र में तुम हमको कब विजय-लाभ कराओगे ? तुम गमनशील शत्रुओं से दूध दही और घृतादि धारण करने वाली गौओं को कब जीतोगे ? हे इंद्र! हमको धन-प्राप्ति कब कराओगे ? ।२। हे इंद्र ! स्तुति करने वाले को तुम कब विविध प्रकार के अन्न दोगे ? तुम कब अपने यज्ञ में स्तोत्र को सुसङ्गत करोगे ? तुम स्तुति करने वालों को कब गो प्रदान करने के योग्य बनाओगे ? ।३। हे इंद्र ! तुम गौ प्रदान करने वाला, अश्वों द्वारा प्रसन्न करने वाला और बल से प्रसिद्ध अन्न हम भरद्वाज वंशीय स्तोताओं को प्रदान करो । तुम अन्नों को और सरलता से दुहने योग्य गौओं को पुष्ट करो । वे गौऐं जिससे सुन्दर कान्ति वाली हों, तुम वैसी ही कृपा करो तुम अत्यन्त पराक्रमी और शत्रु का संहार करने वाले हो । हम स्तोता इस प्रकार की स्तुति करते हैं । हे इन्द्र ! तुम श्रेष्ठ पदार्थों के देने वाले हो हम तुम्हारे स्तोत्र का उच्चारण करने में पीछे नहीं हटते । हे इन्द्र ! तुम अङ्गिराओं को अन्न द्वारा प्रसन्न करो ।५। [७]

सूक्त ३६

(ऋषि—नरः । देवता—इन्द्रः । छन्द–त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

सत्रा मदासस्तव विद्यन्या सत्रा रायोऽध ये पार्थिवासः ।
सत्रा वाजानामभवो विभक्ता यद्देवेषु भारयथा असुर्यम् ॥१
अनु प्र येजे जन ओजो अस्य सत्रा दाधरे अनु वीर्याय ।
स्यमगभे दुघयेऽर्वते च क्रतुं वृञ्जन्त्यपि वृत्रहत्ये ॥२
तं सध्रीचीरूतयो बृष्ण्यानि पौंस्यानि नियुतः सश्चुरिन्द्रम् ।
समुद्रं न सिन्धव उक्थशुष्मा उरुव्यचस गिरि आ विशन्ति ॥३
स रायस्खामुप सृजा गृणानः पुरुश्चन्द्रस्य त्वमिन्द्र वस्वः ।
पतिर्बभूथासमो जनानामेको विश्वस्य भुवनस्य राजा ॥४

स तु श्रुधि श्रुत्या यो दुवोयुर्द्यौर्न भूमाभि रायो अर्यः ।
असो यथा नः शवसा चकानो युगेयुगे वयसा चेकितानः ॥५॥८

हे इन्द्र ! तुम्हारा सोम पीने से उत्पन्न हुआ आह्लाद हमारे लिए कल्याणकारी होता है । तीनों लोकों में स्थित तुम्हारा धन अवश्य ही सबका मंगल करने वाला है । हे इन्द्र ! तुम सत्य ही अन्न प्रदान करने वाले हो । तुम देवताओंसे अधिक बल धारण करने वाले हो ।१। वीरत्व लाभ के निमित्त यजमान इन्द्र को पुरोभाग में धारण करते हुए इंद्रके बल की विशेष प्रकार पूजा करते हैं । वे शत्रुओं के दलों के रोकने वाले तथा उनका हनन करने वाले और उन पर आक्रमण करने वाले इंद्र वृत्र को मारेंगे, इसीलिए यजमान उनकी सेवा करते हैं ।२। मरुद्गण सुसङ्गत होकर इंद्र की सेवा करते हैं और वीर्य, बल एवं रथ में जुड़ने वाले उनके घोड़े भी इन्द्र की सेवा करते हैं । जैसे नदियां समुद्र में प्रवेश करती हैं, वैसे ही उपासना रूप एवं बल से युक्त स्तुतियां इंद्र से मिलती हैं ।३। हे इन्द्र स्तुति की जाने पर तुम बहुतोंको अन्न प्रदान करने और गृह दिलाने वाले अन्नको प्रवाहित करो । तुम सब प्राणियोंके मुख्य स्वामी तथा सभी उत्पन्न जीवों के एक-मात्र ईश्वर हो ।४। हे इन्द्र ! तुम सुनने योग्य स्तोत्रों को सुनो । हमारी सेना की कामना करते हुए सूर्य के समान, शत्रुओं के धनके जेता बनो । हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त बली हो । तुम हर समयमें स्तुति होकर और हव्यरूप अन्न से प्रकाशमान होकर पहले के समान ही हमारे पास रहो ।५। [८]

सूक्त ३७

(ऋषि—भारद्वजो बार्हस्पत्यः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप् पंक्तिः,)

अर्वाग्रथं विश्ववारं त उग्रेन्द्र युक्तासो हरयो वहन्तु ।
कीरिश्चिद्धि त्वा हवते स्वर्वानृधीमहि सधमादस्ते अद्य ॥१
प्रो द्रोणे हरयः कर्माग्मन्पुनानास ऋज्यन्तो अभूवन् ।
इन्द्रो नो अस्य पूर्व्यः पपीयाद् द्युक्षो मदस्य सोम्यस्य राजा ॥२
आसस्राणासः शवसानमच्छेन्द्रं सुचक्रे रथ्यासो अश्वाः ।

अभि श्रव ऋज्यन्तो वहेयुर्नू चिन्नु वायोरमृतं वि दस्येत् ॥३
वरिष्ठो अस्य दक्षिणामियर्तीन्द्रो मघोनां तुविकूर्मितमः ।
पया वज्रिवः पारयास्यहो मघा च धृष्णो दयसे वि सूरीन् ॥४
इन्द्रो वाजस्य स्थविरस्य दातेन्द्रो गीर्भिर्वर्धतां वृद्धमहाः ।
इन्द्रो वृत्रं हनिष्ठो अस्तु सत्वा ता सूरिः पृणति तूतुजानः ॥५।९

हे इन्द्र ! तुम्हारे रथ में योजित अश्व हमारे सामने आवें । भरद्वाज तुम्हें आहूत करते हैं । हम तुम्हारे साथ पुष्ट होते हुए वृद्धि को प्राप्त हों ।१। हमारे यज्ञ में सोमरस प्रवाहित होता है । वह कलश में जाता है । हर्षदायक सोम के स्वामी इस सोम को पीवें ।२। रथ में योजित अश्व बलशाली इन्द्र को हमारे सामने लावें । सोम रूप हवि को वायु नष्ट न करें । इसके गुणहीन होनेसे पूर्व ही इन्द्र उसका पान करें ।३। हविर्वान यजमान को बलवान इन्द्र धन देते हैं । हे वज्रिन ! तुम पाप को नष्ट करो तुम्हारे दान से हमें धन और पुत्र प्राप्त हों ।४। इन्द्र श्रेष्ठ अन्न और बल दें वे हमारी स्तुतियों से प्रवृद्ध हों । शत्रुहन्ता इन्द्र शत्रुओं को मारें और हमें सभी धन दें ।५।

[९]

सूक्त ३८

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—इन्द्रः । छन्दः—त्रिष्टुप्)

अपादित उदु नश्चित्रतमो महीं भर्षद् द्युमतीमिन्द्रहूतिम् ।
पन्यसीं धीतिं दैव्यस्य यामञ्जनस्य रातिं वनते सुदानुः ॥१
दूराच्चिदा वसतो अस्य कर्णा घोषादिन्दृस्य तन्यति ब्रुवाणः ।
एयमेन देवहूतिर्ववृत्यान्मद्र्यगिन्द्रमियमृच्यमाना ॥२
तं वो धिया परमया पुराजामजरमिन्द्रमभ्यनूष्यर्कैः ।
ब्रह्मा च गिरो दधिरे समस्मिन्महाँश्च स्तोमो अधि वर्धदिन्द्रे ॥३
वर्धाद्य यज्ञ उत सोम इन्द्रं वर्धाद् ब्रह्म गिर उक्था च मन्म ।
वर्धाहैनमुषसो यामन्नक्तोर्वर्धान्मासाः शरदो द्याव इन्द्रम् ॥४
एवा जज्ञान सहसे असामि वावृधानं राधसे च श्रुताय ।

महामुग्र मवसे विद्र नूनमा विवासेम वृत्रतूर्येषु: ॥५॥१०

अद्‌भुत इंद्र सोम पान करें । वे हमारे आह्वान को सुनें । यजमान के यज्ञ में इंद्र स्तुति और हव्य ग्रहण करें ।१। इंद्र के दोनों कान स्तोत्र सुनने को दूर से भी आते हैं उस समय स्तोता उच्च स्वर से स्तुति करते हैं । हमारी स्तुतियी इंद्र को हमारे सामने लावें ।२। हे इंद्र ! तुम प्राचीन और अक्षुण्ण हो । हम तुम्हारी स्तुति करते हैं । स्तोत्र और हव्य इंद्र में ही लीन होते हैं । स्तोत्र वृद्धि को प्राप्त होता है ।३। यज्ञ और सोमरस जिन इंद्र को बढ़ाते हैं हव्य, स्तुति और पूजन जिन इंद्रको प्रवृद्ध करते है, जिन्हें दिन और रात की गति बढ़ाती है और जिन्हें मास, दिन और संवत्सर बढ़ाते है, हे इंद्र ! ऐसे तुम अत्यन्त बलवान् हो हम आज धन, यश, रक्षा और शत्रु हनन कर्म के लिए तुम्हारी सेवा करते हैं ।४-५। [१०]

सूक्त ३९

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्य: । देवता—इन्द्र: । छंद—त्रिष्टुप्, पंक्ति:)

मन्द्रस्य कवेर्दिव्यस्य वह्नेर्विप्रमन्मनो वचनस्य मध्व: ।
अपा नस्तस्य सचनस्य देवषो युवस्व गृणते गोअग्रा: ॥१
अयमुषान: पर्यद्रिमुस्रा ऋतधीतिभिर्ऋतयुग्यजान: ।
रुजरुग्ण वि वलस्य सानुं पणींर्वचोभिरभि योधदिन्द्र: ॥२
अयं द्योदयदद्युतो व्यक्तूदोषा वस्ता: शरद इन्दुरिन्द्र ।
इम केतुमदधुर्नू चिदह्नां शुचिन्जमन उवसश्चकार ॥३
अयं रोचयदरुचो रुचनोय वासयद् व्यृतेन पूर्वी: ।
अयमीयत ऋतयुग्भिरश्व: स्वर्विदा नाभिना चर्षणि प्रा: ॥४
नू गृणानो गृणते प्रत्न राजनिष: पिन्व वसदेयाय पूर्वी: ।
अप ओषधीरविषा वनानि घा अर्वतो नृनृचंस रिरोहि ॥५॥११

हे इन्द्र ! हमारे सोम का पान करो । वह सोम फल देने वाले, हर्ष प्रदायक और दिव्य हैं । हे इन्द्र हमें श्रेष्ठ अन्न दो ।१। अंगिराओं को साथ ले इन्द्रने पर्वतमें छिपी गौओं के उद्धार के लिए पणियों को पराजित

किया ।६। हे इन्द्र ! इस सोम ने रात्रि, दिवस और वर्ष सबको तेज दिया । देवताओं ने इसी सोम को दिवस के केतु रूप से स्थापित किया । सोम ने अपने तेज उषाओं को प्रकाशित किया ।३। सूर्यात्मक इन्द्र ने अन्धकार युक्त लोकों को प्रकाशित किया और अपनी दीप्ति से उषाओं को भी तेजोमयी बनाया । यह इन्द्र मनुष्यों को अभीष्ट फल प्रदान करते हैं । इन्होंने स्तोत्र द्वारा योजित अश्वों वाले धनयुक्त रथ पर चढ़ कर गमन किया ।४। हे इन्द्र ! तुम स्तोता को अपरिमित धन प्रदान करो जल, औषधि, अश्व, गौ और मनुष्यादि दो ।।५।। [११]

सूक्त ४०

(ऋषि-भरद्वाजो वार्हस्पत्यः । देवता-इन्द्रः । छन्द–त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

इन्द्र पिब तुभ्यं सुतो मदायावस्य हरी वि मुचा सखाया ।
उत प्र गाय गण आ निषद्याथा यज्ञाय गृणते वयो धाः ।।१
अस्य पिब यस्य जज्ञान इन्द्र मदाय क्रत्वे मदाय अपिबो विरप्शिन् ।
तमु ते गावो नर आपो अद्रिरिन्दु समह्यन्पीतये समस्मै ।।२
समिद्ध अग्नौ सुत इन्द्र सोम आ त्वा वहन्तु हरयो वहिष्ठाः ।
त्वायता मनसा जोहवीमीन्द्रा याहि सुविताय महे नः ।।३
आ याहि शश्वदुशता ययाथेन्द्र महा मनसा सोमपेयम् ।
उप ब्रह्माणि शृणव इमा नोऽथा ते यज्ञ स्तान्वे वयो धात् ।।४
यदिन्द्र दिवि पार्ये यदृग्धयद्वा स्वे सदने यत्र वासि ।
अतो नो यज्ञमवसे नियुत्वान्त्सजोषा:
पहि गिर्वणो मरुद्भि ।।५।।१२

हे इन्द्र ! तुम्हारे हर्ष के लिए जो सोम निष्पन्न हुआ है उसे पीओ अपने अश्वों को रथ में योजित करो और यज्ञ के पास छोड़ स्तोताओं के मध्य विराजो । हमारी स्तुतियों के साथी होकर स्तोता को अन्न प्रदान करो ।१। हे इन्द्र ! तुमने उत्पन्न होते ही जैसे सोम पान किया, वसे ही अब भी करो । गौऐं, ऋत्विज् अभिषण प्रस्तर आदि सब तुम्हारे लिए एकत्र हुए हैं ।२। हे इन्द्र ! अग्नि प्रदीप्त हुए हैं, सोम का अभिषव हुआ है । तुम्हारे अश्व यहां लावें । हम तुम्हारा मन से आह्वान

यहाँ लावें । हम तुम्हारा मन से आह्वान करते हैं । तुम हमें समृद्ध करने को आगमन करो ।३। हे इन्द्र ! सोमपान के लिए तुम अनेक बार आये हो । इस समय सोम पान के लिए यज्ञ में आगमन करो और हमारी स्तुति सुनो । यह यजमान इस सोम को तुम्हारी पुष्टि के निमित्त अर्पित करते हैं ।४। हे इन्द्र ! तुम जहाँ कहीं हो, वहीं से मरुद्गण के सहित आओ और हमारे यज्ञ का पालन करो ।।५।। [१२]

सूक्त ४१

(ऋषि–भारद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता–इन्द्रः । छन्द–त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

अहेलमान उप याहि यज्ञं तुभ्य पवन्त इन्दवः सुतासः ।
गावो न वज्रिन्त्स्वमोको अच्छेन्द्रा गहि प्रथमो यज्ञियानाम्।।१
या ते काकुत्सुकृता या वरिष्ठा यया शश्वपित्बसि मध्व ऊर्मिम् ।
तया पाहि प्र ते अध्वर्युरस्थात्सं ते वज्रा वर्तंतामिन्द्र गव्युः ।
एष द्रप्सो वृषभो विश्वरूप इन्द्राय वृष्णे समकारि सोमः ।
एतं पिब हरिवः स्थातरुग्र यस्वोशिषे प्रदिवि यस्ते अन्नम ।।३
सुतः सोमः असुतादिन्द्र वस्यानय श्रेयाञ्चिकितुषे रणाय ।
एत तितिव उप याहि यज्ञ तेन विश्वास्तविषीरा पृणष्व ।।४
ह्वयामसि त्वेन्द्र याह्यर्वाङर ते सोमस्तन्वे भवाति ।
शतक्रतो मादयस्या सुतेषु प्रास्माँ अब पृतना प्रविक्षु ।।५।१३

हे इन्द्र ! तुम हमारे यज्ञ में आगमन करो । अभिषुत सोम तुम्हारे लिये रखा है । वज्रिन ! गौएं जैसे गोष्ठ में जाती हैं, वैसे ही सोम कलश में जाता है । यज्ञीय देवताओं में प्रमुख इन्द्र ! तुम यहाँ आओ ।१। हे इन्द्र ! तुम जिस जिह्वा से सोमरस का सदा पान करते हो, उसी से हमारे सोम-रस को पीओ । सोम वाला ऋत्विज तुम्हारे सम्मुख उपस्थित है । हे इन्द्र ! तुम्हारा वज्र शत्रुओं को मारे ।२। इन्द्र के लिए यह अभीष्टवर्षक सोम अभिषुत हुआ है । हे इन्द्र ! तुमने जिस सोमरस पर शासन किया, जिसे तुम अन्न रूप मानते हो, उसी सोमरस का पान करो ।३। हे इन्द्र निष्पन्न सोम अशोधित सोम से अत्यन्त

श्रेष्ठ है । तुम्हें वह हर्ष प्रदान करता है । यज्ञ के साधन रूप इस सोमके पास आगमन करो और इससे अपने शरीर के सब अवयवों की वृद्धिकरो ।४। हे इन्द्र ! हम तुम्हें आहूत करते हैं । तुम हमारे समक्ष आगमन करो, यह सोम तुम्हारे देह के लिए पर्याप्त हो । तुम इसके द्वारा आनन्द प्राप्त करते हुए हम सबकी रक्षा करो ।।५।। [१३]

सूक्त ४२

(ऋषि–भारद्वाजो वार्हस्पत्य- । देवता—इन्द्रः । छन्द–उष्णिक् अनुष्टुप्)

प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर ।
अरङ्गमाय जग्मयेऽपश्चाद् दघ्वने नरे ।।१
एमेनं प्रत्येतन सोमेभि सोमपातमम् ।
अमत्रेभिर्ऋजीषिणमिन्द्रं सुतेभिरिन्दुभिः ।।२
यदी सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूषथ ।
वेदा विश्वस्य मेधिरो धृषतन्तमिदेषते ।।३
अस्मा अस्मा इदन्धसोऽध्वर्यो प्र भरा सुतम् ।
कुवित्समस्य जेन्यस्य शर्धतोऽभिशस्तेरवस्परत् ।।४।१४

हे ऋत्विजो ! इन्द्र के लिये सोम रस अर्पित करो । वे यज्ञ के स्वामी, सर्वगंता और सबके जानने वाले हैं । सर्वप्रथम गमनशील हैं ।१। हे ऋत्विजो ! तुम सोम-रस के सहित सोमपायी इन्द्र के समक्ष उपस्थित होओ । निष्पन्न सोमरस से परिपूर्ण पात्र के सहित आओ ।२। हे ऋत्विजो ! तुम तेजोमय और निष्पन्न सोमरस के सहित इन्द्र की सेवा में पहुंचो । इन्द्र तुम्हारी कामना के ज्ञाता हैं । वे तुम्हारे अभीष्ट को पूर्ण करते हुए, शत्रु को मारते हैं ।३। हे ऋत्विजो ! इन्द्र को अभिषुत सोमरस अर्पित करो । वे इन्द्र हमारे सभी दुर्घर्ष शत्रुओं के क्रोध से हमें बचावें ।।४।। [१४]

सूक्त ४३

(ऋषि–भरद्वाजो वार्हस्पत्यः । देवता–इन्द्रः । छन्द—उष्णिक्)

यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयः ।

अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ।।१
यस्य तीव्रसुतं मदं मध्यमन्त च रक्षसे ।
अयं स सोम इन्द ते सुतः पिब ।।२
यस्य गा अन्तरश्मनो मदे दृलहा अवासृजः ।
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ।।३
यस्य मन्दानो अन्धसो माघोनं दधिषे शवः ।
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ।।४।१५

हे इन्द्र ! तुमने जिस सोम-रस के पीने की कामना में दिवोदास के लिये शम्बर को पराभूत किया, वही सोम-रस तुम्हारे लिए निष्पीड़ित हुआ है तुम इसी का पान करो ।१। हे इन्द्र ! जब सोमरस यज्ञ के तीनों सवनों में अभिषुत होता है तब तुम इसे ग्रहण करते हो । यह सोम तुम्हारे निमित्त ही संस्कृत हुआ है, इसका पान करो ।२ । हे इन्द्र ! यह वही सोम अभिषुत हुआ है जिसे पीकर तुमने पर्वत में छिपी हुई गौओं को मुक्त किया था । तुम इसका पान करो ।३। हें इन्द्र ! तुम जिस सोमरूप अन्न के रस को पीकर आनन्दित होते हो और असाधारण शक्ति से युक्त हो जाते हो वही सोम तुम्हारे निमित्त निष्पीड़ित हुआ है । तुम इसका पान करो ।।४।। [१५]

सूक्त ४४ [चौथा अनुवाक]

(ऋषि--शयुर्बार्हस्पत्यः । देवता—इन्द्रः । छन्द—अनुष्टुप्, उष्णिक, पंक्ति त्रिष्टुप्)

यो रयिपो रयिन्तमो यो द्युम्नैर्द्युम्नवत्तमः ।
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ।।१
यः शग्मस्तुविशग्म रायो दामा मतीनाम् ।
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ।।२
येन वृद्धो न शवसा तुरो न स्वाभिरूतिभिः ।
सोमः सुतः इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मद ।।३

त्यमु वो अप्रहण गृणीषे शवसस्पतिम् ।
इन्द्रं विश्वासाह नर महिष्ठविश्वचर्षणिम् ।।४
यं वर्धयंतीद्गिरः पतिं तुरस्य राधसः ।
तमिन्वस्य रोदसी देवी शुष्मं सपर्यंतः ।।५।१६

हे इन्द्र ! तुम ऐश्वर्यवान् और सोम रक्षक हो। जो सोम अत्यन्त ऐश्वर्यवान् और तेज से यशस्वी है, वही इस समय अभिषुत हुआ है । वह तुम्हें हर्ष प्रदान करता है ।१। हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त बल वर्द्धक सोम की रक्षा करने वाले हो । जो सोम तुम्हें हर्ष प्रदान करता और स्तोताओं को वैभवशाली बनाता है वह सोम अभिषुत होकर तुम्हें हर्ष प्रदान करता है ।२। हे इन्द्र ! तुम सोम रूप अन्न की रक्षा करने वाले हो। तुम जिस सोम को पीकर बल धारण करते और मरुद्गण को साथ लेकर शत्रुओं को मारते हो, वही सोम अभिषुत होकर तुम्हें हर्ष प्रदान करता है ।३। हे यजमानो ! जो इन्द्र उपासकों पर कृपा करने वाले, बल के अधिपति, संसार के जीतने वाले यज्ञादि कर्मों के स्वामी श्रेष्ठ दाता और सब के देखने वाले हैं, उन्हीं इन्द्र की हम स्तुति करते हैं ।४। हमारी स्तुतियों से इन्द्र का शत्रु के धन को हर लेने वाला बल बढ़ता है उस बल की सेवा द्युलोक और पृथिवी करती है ।५। [६]

तद्व उक्थस्य बर्हणेन्द्रायोपस्तृणीषणि ।
विपो न यस्योतयो वि यद्रोहन्तिः सक्षितः।।६
अविदद् दक्ष मित्रो नवीयान्पपाना देवेभ्यो वस्यो अचैत् ।
ससवान्स्तौलाभिर्धौतरीभिरुरुष्या पायुरभवत्सखिभ्यः ।।७
ऋतस्य पथि वेधा अपायि श्रिते मनांसि देवासो अक्रन्
दधानो नाम महो वचोभिर्वपुर्दृशये वेन्यो व्यावः ।।८
द्युमत्तमं दक्षं धेह्यस्मे सेधा जनानां पूर्वीररातीः ।
वर्षीयो वयः कृणुहि शचीभिर्धनस्य सातावस्माँ अविड्ढि।।
इन्द्र तुभ्यमिन्मघवन्नभूम वयं दात्रे हरिवो मा वि वेनः ।

नकिरापिर्ददृशे मत्यंत्रा किमङ्ग रध्रचोदनं त्वाहुः ॥१०॥१७

हे स्तोताओ ! इन्द्र के निमित्त अपने स्तोत्र को प्रवृद्ध करो, क्योंकि इन्द्र तुम्हारे रक्षक हैं ।६। यज्ञादि कर्मों में कुशल यजमानों की बातों को इन्द्र भले प्रकार जानते हैं । हे सोम के रस पीने वाले इन्द्र स्तोताओं के रक्षक होते हैं ।७। जो सोम यज्ञकर्म में पिया जाता है, उसी सोम को ऋत्विग्गण इन्द्र को आकृष्ट करने के लिए प्रस्तुत करते हैं । वही विस्तीर्ण देह वाले, शत्रु पराभवकारी इन्द्र हमारी स्तुति के कारण हमारे अभिमुख हों ।८। हे इन्द्र ! तुम हमें तेज और बल दो । अपने अत्रुओं को दूर भगाओ । तुम हमें प्रचुर अन्न प्रदान करो, धन का उपभोग करने के लिए हमारे देह की रक्षा करो ।९। हे इन्द्र हम तुम्हें हवि प्रदान करते हैं । तुम हमारे विरुद्ध मत होना । हम तुमसे अन्य किसी को अपना मित्र नहीं समझते । यदि तुम्हारी ऐसी महिमा नहीं होती तो तुम 'धनदाता' क्यों कहे जाते ? ।१०। [१७]

मा जस्वने वृषभ नो ररीथा मा ते रेवतः सख्ये रिषाम ।
पूर्वीष्ठ इन्द्र निष्षिधो जनेषु जह्यसुष्वीन्प्र वृहापृणतः ॥११
उदभ्राणीव स्तदयन्नियर्तीन्द्रो राधांस्यश्व्यानि गव्या ।
त्वमसि प्रदिवः कारुधाया मा त्वादामान आ दभन्मघोनः ॥१२
अध्वर्यो वीर प्र महे सुतानामिन्द्राय भर स ह्यस्य राजा ।
यः पूर्व्याभिरुत नूतनाभिर्गीर्भिर्वावृधे गृणतामृषाणाम् ॥१३
अस्य मदे पुरु वर्पांसि विद्वानिन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघान ।
तुम प्र होषि मधुमन्तमस्मै सोमं वीराय शिप्रिणे पिबध्यै ॥१४
पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं हन्ता वृत्र वज्रेण मन्दसानः ।
गन्ता यज्ञं परावतश्चिदच्छा वसुर्धीनामरिता कारुधायाः ॥१५॥१८

हे इन्द्र! तुम कामनाओं के वर्षक हो तुम हमें हिंसक राक्षसों के आधीन मत करना । तुम धनवान् हो हम तुम्हारी मित्रता में रह कर दुःख न पावें । तुम्हारे कर्म में शत्रु गण अनेक विघ्न उपस्थित करते हैं जो सोमा-

भिषव कर्म नहीं करते, अथवा जो तुम्हें हवि नहीं देते, तुम उन्हें नष्ट कर डालो ।११। जैसे गर्जनशील परिजन्य मेघ के उत्पत्तिकर्त्ता हैं, वैसे ही इन्द्र स्तोताओं के देने के लिए अश्व और गायें उत्पन्न करने वाले हैं। हे इन्द्र ! तुम स्तोताओं के रक्षक हो। धनवान् व्यक्ति तुम्हारे हव्यदि प्रदान कर्मों में न लग कर कभी मिथ्याचरण न करने लगें ।१२। हे ऋत्विजो !' तुम उन्हीं महान् कर्मा इन्द्र के लिए सोम सिद्ध करो क्यों कि यह सोम के अधिपति हैं । यह इन्द्र स्तोताओं के प्राचीन तथा अभिनव स्तोत्रों द्वारा वृद्धि को प्राप्त होते हैं ।१३। ज्ञानवान इन्द्र ने सोम-पान द्वारा हर्षित होकर विपरीत आचरण करने वाले अनेक शत्रुओं का बध किया है ।१४। इन्द्र इस निष्पीड़ित सोम को पीकर हर्षित हों और वज्र द्वारा वृत्र को मारें । वे इन्द्र स्तुतियों के रक्षक, यजमान के पालक और गृह-प्रदाता हैं। वे हमारे यज्ञ में दूर देश से भी आगमन करें ।१५। [१८]

इदं त्यत्पात्रमिन्द्रस्य प्रितमृतमपा य ।
मत्सद्यथा सौमनसाय देव व्यंस्मद् द्वेषो युयवद्व्य्ंहः ।।१६
एना मन्दानो जहि शूर पत्रून्जामिमजामिं मघवन्नमित्रान् ।
अभिषेणां अभ्या देदिक्षानान्पराच इन्द्र प्र मृणा जही च ।।१७
आसु ष्मा मघवन्निन्द्र पृत्स्व स्मभ्यं महि वरिवः सुग कः ।
अपां तोकस्य तनयस्य जेष इन्द्र सूरीन्कृणुहि स्मा नो अर्धम् ।।१८
आ त्वा हरयो वृषणो युजाना वृषरथासो वृषरश्मयोऽत्याः ।
अस्मत्राञ्चो वृषणो वज्रवाहो वृष्णे मदाय सुयुजो वहन्तु ।।१९
आ ते वृषन्वृषणो द्रोमणस्थुर्घृतप्रुषो नोमयो मदन्तः ।
इन्द्र प्र तुभ्यं वृषभिः सुतानां वृष्णे भरन्ति वृषभायसोमम् ।।२०।१९

इन्द्र के पान योग्य और प्रिय सोम को इन्द्र इस प्रकार पीवें कि हर्षित होकर हमारे अनुकूल हों और हमसे पाप को और शत्रु को दूर भगावें ।१३। हे इन्द्र ! तुम पराक्रमी हो । सोम-पान द्वारा हर्षित होकर हमसे विरोध करने वाले दुष्टों को नष्ट कर डालो। तुम हमारे सामने आये

हुए शत्रुओं को पीछे लौटाओ ।१७। हे इन्द्र ! इस सम्पूर्ण युद्ध में हमें अपरमित धन प्राप्त कराओ तुम हमें विजय प्राप्ति में समर्थ करो । पुत्र पौत्रादि तथा जल-वृष्टि द्वारा समर्थ करो ।१८। हे इन्द्र ! तुम्हारे अश्व कामनाओं के पूर्ण करने वाले, रथ के वहन करने वाले, वृष्टिकारक, वेगवान्, नित्य युवा और वज्र के वहन करने वाले हैं। वे तुम्हें सोमपानार्थ हमारे यज्ञ में ले आवें ।१९। हे इन्द्र ! तुम कामनाओं की वर्षा करने वाले हो । तुम्हारे अश्व समुद्र की तरंगों के समान उल्लसित होते रथ में योजित हैं ऋत्विग्गण तुम्हारे लिए अभिषुत सोम-रस अर्पित करते हैं ।२०। [१९]

वृषासि दिवो वृषभः पृथिव्या बृषा सिन्धूनां वृषभःस्तियानाम् ।
वृष्णो त इन्दुर्वृषभ पीपाय स्वादू रसो मधुपेया वराय ।।२१
अयं देवः सहसा जायमान इन्द्रेण युजा पणिमस्तभायत् ।
अयां स्वस्य पितुरायुधानीन्दुरमुष्णादशिवस्य मायाः ।।२२

अयमकृणोदुषसः सुपत्नीरयं सूर्ये अदधाज्ज्योतिरन्तः ।
अयां त्रिधातु दिवि रोचनेषु त्रितेषु विन्ददमृत निगूलहम् ।।२३
अयां द्यावापृथिवी वि ष्कभायदयं रथमयुनक्सप्तरश्मिम् ।
अयां गोषु शच्या पक्वमन्तः सोमो दाधार दशयन्त्रमुत्सम् ।।२४।२

हे इन्द्र ! तुम नदियों को जल से पूर्ण करने वाले और प्राणियों के अभीष्ट को सिद्ध करने वाले हो । यह मधु के समान मधुर सोमरस तुम्हारे लिये प्रस्तुत है ।२१। इन्द्र के साथ जल लेकर इस तेजस्वी सोम ने पणि का बल पूर्वक प्रतिरोध किया था । इसी सोम ने गौओं के हरणकर्त्ता असुरों के आयुधों और माया को नष्ट कर दिया था ।२२। सोम ने ही सूर्य को तेजस्वी बनाया । इसी ने सूर्य मण्डल को ज्योतिमान् किया । इसी ने तीनों लोकों में स्थित स्वर्ग से तीन प्रकार के अमृत को और सप्त-रश्मि वाले रथ को जोता, इसी ने गौओं में अनेक धारों वाले दुग्ध प्रस्त्रवण कर्म को स्थापित किया ।२४। [२०]

सूक्त ४५

(ऋषि–शंयुर्बार्हस्पत्यः । देवता—इन्द्रः । छन्द–गायत्री उष्णिक्, अनुष्टुप्)

य आनयत्परावतः सुनीती तुवश यदुम् । इन्द्र स नो युवा सखा ।।१
अविप्रे चिद्वयो दधदनाशुना चिदर्वता । इन्द्रो जेता हितं धनम् ।।२
महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः । नास्य क्षीयन्त ऊतयः ।।३
सखायो ब्रह्मवाहसेऽर्चत प्र च गायत । स हि नः प्रमतिर्मही ।।४
त्वमेकस्य वृत्रहन्नविता द्वयोरसि । उतेदृशे यथा वयम् ।।५।२१

जो तुर्वश और यदु को दूर देश से लाये थे, वे इन्द्र हमारे मित्र हों ।१। जो इन्द्र का स्तोता नहीं है, वह भी इन्द्र से अन्न पाता है । वे अश्वारूढ़ होकर शत्रुओं की सम्पत्ति को जीत लेते हैं ।२। इन्द्र की स्तुतियां विविध प्रकार की हैं । उनका रक्षा का वचन कभी असत्य नहीं होता ।३। हे मित्रो ! उन इन्द्र की स्तुति करो, उन्हीं का पूजन करो । वही हमें श्रेष्ठ धन प्रदान करने वाले हैं ।४। हे वृत्रहन्ता इन्द्र ! तुम स्तोताओं की रक्षा करते हो । तुम ही हमारी रक्षा करो ।।५।। [२१]

नयसीद्वति द्विषः कृणोऽयुक्थशसिनः । नृभिः सुवीर उच्यते ।।६
ब्रह्माणं ब्रह्मवाहसे गीर्भिःसखायमृग्मियम् । गां न दोहसे हुवे ।।७
यस्य विश्वानि हस्तयोरूचुर्वसूनि निद्विता । वीरस्य पृतनाषहः ।।८
वि दलहानि विदद्रिवो जनानां शचीपते । वृह माया अनानत ।।९
तुम त्वा सत्य सोमपाइन्द्र वाजानां पते । अहूमहिश्रवस्यवः ।।१०।२२

हे इन्द्र! वैरियों को दूरकर, स्तोताओं को समृद्ध करो । तुम सुन्दर अपत्य प्रदाता हो । इसलिए तुम्हारी स्तुति की जाती है ।६। धेनु के समान अपने अभीष्टों को दुहने के निमित्त मैं इन्द्र का आह्वान करता हूं ।७। शत्रुओं के हराने वाले इंद्र के हाथों में दिव्य और पार्थिव सम्पत्ति है—यह ऋषिगण कहा करते हैं ।८। हे वज्रिन् ! तुम शत्रु-

नगरों के ध्वंसक हो और उनकी माया के भी नाशक हो ।९। हे सोमपाये, हे इन्द्र ! हम अन्न की कामना करते हुए तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥१०॥ [२२]

तमु त्वा यःपुरासिथ यो वा नूनं हिते धने। हव्यःस श्रुधी हवम्॥११
धीभिरर्वद्भिरवती वाजां इन्द्र श्रवाय्यान् ।
त्वया जेष्म हितं धनम् ॥१२
अभूरु वीर गिर्वणो महां इन्द्र धने हिते । भरे वितन्तसाय्यः ॥१३
या त ऊतिरमित्रहन्मक्षू जवस्तमासति । तयानो हिनुही रथम्॥१४
स रथेन रथीतमोऽस्माकेना भियुग्वना ।
जेषि जिष्णो हित धनम् ॥१५।२३

हे इन्द्र ! तुम जैसे प्राचीन-काल में आह्वान-योग्य थे, वैसे ही अब भी शत्रुओं के धन की प्राप्ति के लिए आहूत किये जाते हो। तुम हमारे आह्वान को सुनो ।११। हे इन्द्र ! तुम हमारी स्तुति से प्रसन्न होओ। हम तुम्हारे अनुकूल होने पर शत्रु-धन के जीतने वाले हों ।१२। हे इन्द्र ! तुमने शत्रुओं के धन की प्राप्ति के लिये शत्रुओं पर विजय पाई है ।१३। हे इंद्र ! तुम अत्यन्त वेग वाले हो । तुम शत्रु को जीतने के लिये उसी वेग से रथ को चलाओ ।१४। हे इंद्र ! तुम अपने शत्रु-जेता रथ के द्वारा शत्रुओं की सम्पत्ति पर विजय प्राप्त करो ॥१५॥ [२३]

य एक इत्तमुष्टुहि कृष्ठीनां विचर्षणिः। पपतिर्जज्ञे वृषक्रतुः ॥१६
यो गृणतामिदासिथापिरूती शिवः शखा। स त्व न इन्द्र मृलय ।।१७
धिष्व वज्र गभस्त्यो रक्षाहत्याय वज्रिवः। सासहीष्टा अभि स्पघः।१८
प्रत्नं रयीणां युजं सखाय कीरिचोदनम् । ब्रह्मवाहस्तमं हुवे ॥१९
स हि विश्वानि पार्थिवाँ एको वसूनि पत्यते ।
गिर्वणस्तमो अध्रगु ॥२०।२४

जो इन्द्र ! मनुष्यों के स्वामी होंकर प्रकट हुए हैं और जो सबके देखने वाले हैं, उन इन्द्र को स्तवन करो ।१६। हे इन्द्र ! तुम सुखदाता

और रक्षक मित्र हो । तुमने हमारी स्तुति पर मित्रता की थी । अब भी हमें सुख देने वाले होओ ।१७। हे वज्रिन् ! तुम असुरों के निमित्त वज्र धारण करते हो और प्रतिस्पर्द्धियों को हराते हो ।१८। जो इन्द्र धनदाता, मित्र, आह्वान योग्य और स्तोताओं को उत्साह देने वाले हैं, मैं उन इन्द्र को आहूत करता हूं ।१९। जो इन्द्र स्तुति वन्दना करने योग्य हैं वे सब पार्थिव धनों के अधीश्वर हैं ॥२०॥ [२४]

सू नो नियुद्भिरा पृणं काम वाजे भिरश्विभि ।
गोमद्भिर्गोपते धृषत् ॥२१
तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने । शंयद् गव न शाकिने ॥२२
न घा वसुर्नि यमते दाअषाजस्य गोमतः । यत्सोमिपु श्रवद्गिरः॥२३
कुवित्सस्य यहि व्रज्र गोमन्तं दस्युहा गमत् ।
शचीभिरप नो वरत् ॥२४
इमा उ त्वा शतक्रतोऽभि प्र णोनुर्वुगिरः ।
इन्द्र वत्सं न मातरः ॥२५।२५

हे गौओं के स्वामी ! तुम हमारी कामनाओं को असंख्य गौ अश्व आदि से पूर्ण करो ।२१। हे स्तोताओ ! गौ के लिए तृण जैसे सुख देता है, वैसे ही सोम के संस्कार होने पर इन्द्र की स्तुति भी सुख देने वाली होती है । तुम शत्रु जेजा इन्द्र का यश गाओ ।२२। इन्द्र जब स्तुतियों को सुनते हैं, तब गौओं सहित अन्न देने में नहीं रुकते ।२३। कुवित्स के असंख्य गौओं वाले गोष्ठ में जब इन्द्र पहुंचे तब उन्होंने अपनी बुद्धि से ही गौओं प्रकट कर दिया ।२४। हे इन्द्र ! गोऐं जैसे अपने बछड़ों की ओर को बारम्बार जाती हैं, वैसेही यह स्तुतियाँ भी बारम्बार तुम्हारी ओर गमन करती हैं ॥२५॥

दूणाशं सख्यं तव गौरसि वीर गव्यते । अश्वो अश्वायते भव ॥२६
स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे । न स्तोतारं निदे करः ॥२७
इमा उ त्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः। वत्सं गावो न धेनवः॥२८
पुरूतमं पुरूणां स्तोतृणां विवाचि । वाजेभिर्वाजिताम् ॥२९
अस्माकमिन्द्र भूतु ते स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः ।
अस्मान्राये महे हिनु ॥३०

अधि बृबुः पणीनां वर्षिष्ठे मूर्धन्नस्थात् ।
उरुः कक्षो न गाङ्ग्यः ॥३१
यस्य वायोरिव द्रवद्भद्रा रातिः नो सहस्रिणी ।
सद्यो दानाय मंहते ॥३२
तत्सु नो विश्वे अर्यं आ सदा गृणन्ति कारवः ।
बृबुं सहस्रदातमं सूरिं सहस्रसातमम् ॥३३।२६

हे इन्द्र ! तुम्हारा बंधुत्व नष्ट नहीं होता । तुम गौ, अश्व की कामना वालों को इच्छित देते हो ।२६। हे इन्द्र ! तुम सोम रस द्वारा अपने को तृप्त करो । अपने उपासक को निन्दाकारी दुष्ट के आधीन मत करना ।२७। हे इंद्र ! पयस्विनी गौऐं जैसे बछड़ों के पास जाती हैं, वैसे ही सोमाभिषव होने पर हमारे स्तोत्र तुम्हारी ओर गमन करते हैं ॥२८॥ स्तोताओं के असंख्य स्तोत्र तुम्हें शत्रुओं का नाश करने वाला बल प्रदान करें ।२९। हे इन्द्र ! हमारे स्तोत्र तुम्हारी ओर गमन करें । तुम हमारी ओर अपने महान् धन को प्रेरित करो ।३०। बृबु ने गङ्गा के उच्च कगारों के समान, प्राणियों के मध्य उच्च स्थान पर अधिष्ठान किया ॥३१॥ मैं धन चाहता हूं । बृबु ने मुझे एक सहस्र गौऐं तुरन्त प्रदान की थीं ।३२। सहस्र गौओं का दान करने वाला बृबु की स्तुति करते हुए हम सदा उसकी प्रशंसा किया करते हैं ॥३३। [२६]

सूक्त ४६

(ऋषि–शंयुर्बार्हस्पत्यः । देवता–इन्द्र प्रगाथं वा । छन्द–अनुष्टुप्,
बृहती, गायत्री पंक्तिः)

त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥१
स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया महः स्तवानो अद्रिवः ।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥२
यः सत्राहा विचर्षणिरिन्द्रं तं हूमहे वयम् ।
सहस्रमुष्क तुविनृम्ण सत्पते भवा समत्सु नो वृधे ॥३

बाधसे जनान् वृषभेव मन्युना घृषौ मीलह ऋचीषम ।
अस्माकं बोध्यविता मताधने तनूष्वप्सु सूर्ये ॥४
इन्द्र ज्येष्ठ न आ भरं ओजिष्ठं पपुरि श्रवः ।
येनेम चित्र वज्रहस्त रोदसी ओभे सुशिपप्राः ॥५॥२७

हम स्तोता तुम्हें अन्न के निमित्त आहूत करते हैं। तुम साधु-जन की रक्षा करने वाले हों । शत्रु को जीतने वाले को जैसे तुम प्रचुर धन प्राप्त कराते हो, वैसे ही हमारी स्तुति से प्रसन्न होकर हमें गौ और रथवाहक अश्व दो, क्योंकि तुम शत्रुओं को नष्ट करने में समर्थ हो ।२। शत्रु-हन्ता इन्द्र का हम आह्वान करते हैं। हे इन्द्र ! संग्राम भूमि में हमें समृद्ध करो ।३। हे इन्द्र ! तुम ऋचा में कहे अनुसार रूप वाले हो। तुम घोर संग्राम में शत्रुओं पर वृषभ के समान आक्रमण करो और हमारे रक्षक होओ । हम सन्तान सहित बहुत समय तक सूर्य दर्शन करते हैं ।४। हे इन्द्र ! तुम स्वर्ग और पृथिवी के पोषक हो । तुम हमारे पास अत्यन्त बल बढ़ाने वाला श्रेष्ठ धन लाओ ।५। [२७]

त्वामुगमवसे चर्षणीसिह राजन्देवेषु हूमसे ।
विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसोऽमित्रान्त्सुषहान्कृधि ॥६
यदिन्द्र नाहूषीष्वां ओजो नृम्णं च कृष्टिषु ।
यद्वा पञ्च क्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या ॥७
यद्वा तृक्षौ मघवन् द्रुह्यावा जने यत्पूरो कच्च वृष्ण्यम् ।
अस्मभ्यं तद्रिरीहि स नृषाह्येऽमित्रान्पृत्सु तुर्वणे ॥८
इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत् ।
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥९
ये गव्यता मनसा शत्रु मादभुरभिप्रघ्नन्ति धृष्णुया ।
अध स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनुपा अन्तमो भव ॥१०॥२८

हे इन्द्र ! शत्रु से रक्षा के लिए तुम्हें आहूत करते हैं । तुम सबसे बली और शत्रुजेता हो । सब राक्षसों को हमसे दूर कर विजय प्राप्त

हे इन्द्र ! जो बल और धन तथा अन्न मनुष्यों में विद्यमान हैं, वह हमें प्राप्त कराओ ।७। हे इन्द्र ! युद्ध में हम शत्रुओं पर विजय पावें । तुम तक्षु द्राह्य और पुरु का समस्त बल हमें दो ।८। हे इन्द्र ! हविदता यजमानों को और मुझे शीत, ताप, वर्षा से सुरक्षित रखने वाला घर दो और शत्रुओं के सब हिंसक आयुधों को मुझसे दूर रखो ।९। हे इन्द्र ! जिन्होंने गौऐं छीनने के लिए हम पर शत्रु के समान आक्रमण किया उनसे रक्षा करने को आओ ।१०।] २८]

अध स्मा नो वृधे भवेन्द्र नायमवा युधि ।
यदन्तरिक्षे पतयन्ति पर्णिना दिद्यवस्तिग्मूर्धानः ॥११
यत्र शूरासस्तन्वो वितन्वते प्रिया शर्म पितॄणाम् ।
अध स्मा यच्छ तन्वे तने च छर्दिरचित्तं यावय द्वेषः ॥१२
यदिन्द्र सर्गे अर्वतश्चोदयासे महाधने ।
असमने अध्वनि वृजिने पथि श्येनाँ इव श्रवस्यत ।१३
सिन्धूरिव प्रवण आशुया यतो यदि क्लोशमनु ष्वणि ।
आ ये वयो न वर्वृतत्यामिषि गृभीता बाह्वोर्गवि ॥१४।२९

हे इन्द्र ! धन दो । शत्रु के आक्रमण करने पर उनके वाणों को हमारे वीर रोकते हैं, तुम उनकी रथ-क्षेत्र में रक्षा करना ।११। शत्रु के आक्रमण के कारण जब लोग अपने पैतृक स्थानों को छोड़कर भागते हैं, उस समय तुम हमें और हमारी सन्तान को रक्षार्थ कवच प्रदान करना और शत्रुओं को भगाना ।१२। जब महायुद्ध हो तब तुम हमारे अश्वादि को श्येन के समान क्षेत्र में ले जाना ।१३। अश्व भय से हिनहिनाते हैं, फिर भी वे नदियों के समान संग्राम भूमि में गौओं की प्राप्ति के लिए बारम्बार दौड़ते हैं ।१४। [२९]

सूक्त ४७

(ऋषि—गर्गः । देवता—सोमः, इन्द्रः, रथः, दानस्तुति, दुन्दुभिः । छन्द—त्रिष्टुप् पंक्तिः, बृहती, गायत्री)

स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम् ।

उतो न्वस्य पपिवांसमिन्द्रं न कश्चन सहत आहवेषु ॥१
अयं स्वादरिह मदिष्ठ आस तस्येन्द्रो वृत्रहत्ये ममाद ।
पुरूणि यश्चौत्ना शम्बरस्त वि नवति नव च देह्यो हन् ॥२
अयं मे पीत उदियर्ति वाचमयं मनीषामुशतीमजीगः ।
अयं षलु वीरमिमीत धीरो न याभ्यो भुवनं कच्चनारे ॥३
अयं स यो वरिमाण पृथिव्या वर्ष्माणं दिवो अकृणोदयं सः ।
अयं पीयूषं तिसृषु प्रवत्सु सोमो दाधारोवन्तरिक्षम् ॥४
अयं विदच्चित्रदृशीकमणं शुक्रसद्मनामुषसामनीके ।
अयं महान्महता स्कम्भनेनीद् द्यामस्तभ्नाद् वृषभो मरुत्वान्॥५।३०

यह सोम सुमधुर और रसयुक्त हैं । इन्द्र इसे पीते हैं । उनके सामने रणक्षेत्र में ही कोई नहीं टिकता ।१। इस यज्ञ में पीने के पश्चात् सोम ने शक्ति प्रदान की और वृत्र नाश के लिए वल दिया । शम्बर के निन्यानवे नगरों को भी नष्ट किया ।२। यह सोमरस मेरे वाक्य को स्फूर्तिमय बनाता है यह इच्छित बुद्धि देता है । इसी सोम ने स्वयं पृथिवी, दिवस, रात्रि, जल और औषधि की रचना की है ।३। इसी सोम ने पृथिवी को विस्तृत और स्वर्ग को दृढ़ किया है । इसी ने औषधि, जल और गौ में रस उत्पन्न किया । इसी ने अन्तरिक्ष को धारण किया है ।४। उषा के पूर्व यही सोम सूर्य की ज्योति को प्रकट करता और मरुद्गण के साथ स्वर्ग लोक धारण करता है ।५।   [३०]

धृषत्पिब कलशे सोममिन्द्र वृत्रहा शूर समरे वसुनाम् ।
माध्यन्दिने सवन आ वृषस्व रयिस्थानो रयिमस्मासु धेहि ॥६
इन्द्र प्र णः पुरएतेव पश्य प्र नो नय प्रतरं वस्यो अच्छ ।
भवा सुपारो अतिपारयो नो भवा सुनीतिरुत वामनीतिः ॥७
उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्वर्वज्ज्योतिरभयं स्वस्ति ।
ऋष्वा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप स्थेयाम शरणा बृहन्ता ॥८
वरिष्ठे न इन्द्र वन्धुरे धा वहिष्ठयोः शतावन्नश्वयोरा ।

इषमा वक्षीषां वर्षिष्ठां मा नस्तारीन्मघवन्रायो अर्यः ॥९
इन्द्र मृल मह्यं जीवातुमिच्छ चोदयधियमयसो न धाराम् ।
यत्किञ्चाहं त्वायरिदं वराभि तज्जुषस्व कृधि मा देववन्तम्॥१०।३१

हे इन्द्र ! धन के लिए आरम्भ किए युद्ध में तुम शत्रुओं को मारो । इस कलश में रखे सोम रस का पान करो। हे धन के पात्ररूप इन्द्र ! हमें धन प्रदान करो ।६। हे इंद्र ! तुम मार्ग-रक्षक के समान आगे बढ़ कर हमको देखना और धन लेकर आना। तुम शत्रु से हमारी रक्षा करो और हमें इच्छित धन में प्रतिष्ठित करो ।७। हे इन्द्र ! तुम ज्ञानी हो ! हमें विस्तीर्ण लोक में बाधाओं से निकाल कर ले जाओ भुजाओं पर रक्षा के निमित्त आश्रित हुए हैं ।८। हे इन्द्र ! तुम अपने विस्तृत रथ पर हमें चढ़ाओ तुम हमारे लिए श्रेष्ठ अन्न प्राप्त कराओ । अन्य कोई धनी धन से हमसे न बढ़ सके ।९। हे इन्द्र मेरा मङ्गल करो । मेरी आयु वृद्धि के लिए प्रसन्न होओ । मेरी प्रार्थना को ग्रहण करो । सब देवता मेरे रक्षक हों ।१०। [३१]

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवे हवे सुहव शूरमिन्द्रम् ।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति ना मघवा धात्विन्द्रः ॥११
इन्द्रः सुत्रामा स्ववां अयोभिः सुमलीको भवतु विश्ववेदा ।
बाधतां देषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥१२
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववां इन्द्रो अस्मे आराच्चिद द्वेषः सनुतयुंयोतु ॥१३
अ त्वे इन्द्र प्रवतो नोर्मिर्गिरो ब्रह्माणि नियुतो धवन्ते ।
उरू न राधः सवना पुरूण्यपो गा वज्रिन्युवसे समिन्दून् ॥१४
कईं स्तवत्कः पृणात्को यजाते यभुग्रमिमघवा विश्वहावेत् ।
पादविव प्रहरन्नमन्यं कृणोति पूर्वमपरं शचीभिः ॥१५।३२

इन्द्र शत्रुओं से रक्षा करने वाले और अभीष्ट पूर्ण करने वाले हैं । सब कर्मोंमें समर्थ उन्हीं इन्द्र का यज्ञों में आह्वान करता हूं। वे इन्द्र मेरी

वृद्धि करें ।११। ऐश्वर्यवान् इन्द्र अपने रक्षा-साधनों से हमारा कल्याण करते हैं, वह हमारे शत्रुओं को मारकर हमारा भय दूर करते हैं । उनके प्रसन्न होने पर हम अत्यन्त बलवान बनें ।१२। उन इन्द्र के हम कृपा-पात्र हों । हमारे रक्षक हमारे बैरियों को दूर ले जांय ।१३। हे इन्द्र ! नीचे की ओर जाने वाले जल के समान तुम्हारी ओर स्तुतियां और सोम गमन करते हैं । तुम जल, दूध और सोम-रस को भले प्रकार मिश्रित करते हो ।१४। कौन मनुष्य इन्द्र की स्तुति करने में समर्थ है ? इन्द्र अपनी शक्ति को स्वयं जानते हैं । जैसे मार्गगामी पुरुष के गमनकाल में पैर आगे पीछे होते हैं, वैसे ही इन्द्र अपने बुद्धि-बल से स्तोता को आगे पीछे रहने वाला करते हैं ।।१५।। [३२]

श्रृण्वे वीर उग्रमुग्रं दमायन्नन्यमन्यमतिनेनीयमानाः ।
एधमानद् विलुभयस्य राजा चोष्कूयते विश इन्द्रा मनुष्यान् ।।१६
परा पूर्वेषां सख्या वृणक्ति वितर्तुराणो अपरेभिरेति ।
अनानुभूतिरवधून्वानः पूर्वीरिन्द्र शरदस्तर्तरीति ।।१७
रूपंरूपं प्रतिरूपो वभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय ।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शत दश ।।१८
युजानो हरितो रथे भूरि त्वष्टेह राजति ।
को विश्वाहा द्विषतः पक्ष आसत उतासीनेषु सूरिषु ।।१९
अगव्यूतिक्षेत्रमागन्म देवा उर्वी सती भूमिरंहूरणाभूत् ।
बृहस्पते प्र चिकित्सा गविष्टावित्था सते
जरित्र इन्द्र पन्थाम् ।।२०।३३

इन्द्र शत्रु का दमन करते और स्तोता के स्थान को परिवर्तित करते हैं । वे अपने पराक्रम के लिये प्रसिद्ध हैं । वे ऐश्वर्यवान् इंद्र रक्षा के निमित्त अपने उपासकों को बारम्बार आश्वस्त करते हैं ।१६। इन्द्र, अपनी उपासना न करने वालों को न त्याग कर अपने उपासकों के पास रहते हैं ।१७। इन्द्र के तीन रूप पृथक्-पृथक् प्रकट होते हैं । वे अनेक रूप धारण कर यजमानों के पास जाते हैं । इन इंद्र के रथ में सहस्र अश्व योजित

होते हैं ।१८। अपने रथ में अश्वों को योजित कर इन्द्र तीनों लोकों में प्रकट होते हैं । प्रतिदिन कौन-सा स्तोता अन्य स्तोताओं के मध्य आकर उनकी रक्षा करता है ? ।१९। हे देवताओ ! हम गौओं से हीन देश में आ पहुंचे हैं । विस्तीर्ण पृथिवी दस्युओं को भी आश्रय प्रदान करती है । हे बृहस्पते ! तुम हमें गौओं की खोज में प्रेरित करो । हे इन्द्र ! अपने मार्ग से हटे हुए उपासक को श्रेष्ठ मार्ग पर लाओ ।।२०।। [३३]

दिवेदिवे शदृशीरन्यमर्द्धं कृष्णा असेधदप सद्मनो जाः ।
अहन्दासा वृषभो वस्नयन्तोदव्रजे वर्चिनं शम्बरं च ।।२१
प्रस्तोक इन्नु राधसस्त इन्द्र दश दश कोशयीर्दश वाजिनोऽदात् ।
दिवोदासादतिथिग्वस्य राधः शाम्बरं वसु प्रत्यग्रभीष्म ।।२२
दशाश्वान्दश कोशान्दश वस्त्राधिभोजना ।
दशो हिरण्यपिण्डान्दिवोदासादसानिषम् ।।२३
दश रथान्प्रष्टिमतः शतं गा अथर्वभ्यः । अश्वथः पायवेऽदात् ।।२४
महि राधो विश्वजन्यं दधानान् भरद्वाजान्त्साञ्जंयो
अभ्ययष्ट ।।२५।३४

सूर्यात्मक इंद्र दिन में प्रकाश कर, अन्धकार को नष्ट करते हैं । इंद्र ने शम्बर और वर्चो नामक दस्युयों को मारा था ।।२१।। हे इन्द्र ! तुम्हारे स्तोताओं को प्रस्तोक ने दश स्वर्ण कोश और दस अश्व दिये थे । अतिथिग्व ने शम्बर के जिस धन को जीता था, वही धन हमने दिवोदास से प्राप्त किया है ।२२। दिवोदास से मैंने दश स्वर्ण-कोश, दश अश्व, अस्त्र और अभीष्ट अन्न सहित सोने के दस पिंड प्राप्त किये हैं ।।२३।। वायु के लिये मेरे भ्राता अश्वत्थ ने अश्वों सहित दश रथ तथा अथर्वाओं को एक सौ गौऐं दी ।२४। सबके हित के लिए भरद्वाज के पुत्र ने सब धन ग्रहण किये और सृजय के पुत्र ने उसका पूजन किया ।।२५।।
[३४]

वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः ।
गोभिः सन्नद्धो असि वीलयस्वास्थाता ये जयतु जेत्वानि ।।२६

दिवस्पृथिव्या पर्योज उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतं सहः ।
अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रं हविसा रथं यज ॥२७

इन्द्रस्य वज्रो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः ।
सेमां नो हव्यदातिं जुषाणो देव रथ प्रति हव्या गृभाय ॥२८

उप श्वासय पृथिवीमुत द्याँ पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत् ।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूरं राद्दवीयो अप सेध शत्रून् ॥२९

आ क्रन्दय बलमोजो न आ धा निः ष्टनिहि दुरिता बाधमानः ।
अप प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुना इत इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीलयस्व ॥३०

आमूरज प्रत्यावर्तयेमाः केतुमद् दुन्दुभिर्वावदीति ।
सदश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥३१।३५

हे रथ ! तुम्हारे अवयब दृढ़ हों । तुम हमारी रक्षा करने वाले मित्र होओ । तुम पर चढ़ने वाला वीर रणक्षेत्रों में बिजय पाने वाला हो ।२६। हे ऋत्विजो ! तुम रथ के लिए हव्य दो । यह रथ दिव्य और पार्थिव सारों से निर्मित हुआ है यह जल के समान वेग वाला वज्र के समान दृढ़ है ।२१। हे दिव्य रय ! हमारे यज्ञ में प्रमन्नता पूर्वक हवि ग्रहण करो। तुम मरुद्गण के आगे चलने वाले,मित्र गर्भ के रूप, वरुण के नाभि रूप और इंद्र के वज्र के समान हो।२०। हे दुन्दुभे ! तुम अपने शब्द से आकाश पृथिवी को गुंजित करो । तुम इन्द्र और अन्य सब देवताओं की अनुगामिनी होकर हमारे शत्रुओं को दूर कर दो ।२९। हे दुन्दुभे ! हमें बल प्रदान करो। हमारे शत्रुओं को रुलाओ,तुम्हारे घोर शब्द से शत्रु कांप उठें । हमारा अनिष्ट कर हर्षित होने वालों को भगादो । तुम इन्द्र की मुष्टिका के समान होकर हमें दृढ़ बनाओ ।३०। हे इंद्र ! सब गौओं को हमें प्राप्त कराओ । यह दुन्दुभि घोषणा रूप उच्च स्वर करनी है । हमारे वीर अश्वों पर सवार हैं । हे इद्र ! हमारे रथी और सैनिक युद्ध को जीतें ॥३१॥

[३५]

सूक्त ४८

(ऋषि—शंयुर्बार्हस्पत्य । देवता—अग्नि: मरुत: मरुतो लिङ्गोक्ता वा पूषा पृश्निर्द्यावाभूमी । छन्द—बृहती, जगती, त्रिष्टुप, अनुष्टुप्, उष्णिक्)

यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शसिषम् ॥१
ऊर्जो नपातं स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये ।
भुवद् वाजेष्वविता भुवद्वृध उत त्राता तनूनाम् ॥२
बृषा ह्यग्ने अजरो महान्विभास्यर्चिषा ।
अजस्रेण शोचिषा शोशुचच्छुचे सुदीतिभि: ॥३
महो देवान्यजसि यक्ष्यानुषक्तव क्रत्वोत दंसना ।
अर्वाचः सी कृणूह्यग्नेऽवसे रास्व वाजीत वंस्व ॥४
यमापो अद्रयो वना गर्भमृतस्य पिप्रति ।
सहसो यो मथितो जायते नृभि: पृथिव्या अधि सानवि ॥५।१

हे स्तोताओ ! अग्नि की बारम्बार स्तुति करो वे सर्वद्रष्टा, मित्र के समान अनुकूल और अविनाशी हैं ।१। हम हव्यवाहक अग्नि को हवि देते हैं । वे रणक्षेत्रमें हमारी रक्षा करें, हमारे पुत्रों की रक्षा करें और तुम्हारी समृद्धि करें ।२। हे अग्ने ! तुम अभीष्टदायक, महान् एवं तेजस्वी हो । तुम अपने प्रकाश से हमें भी प्रकाशित करो ।३। हे अग्ने ! तुम देवताओं के लिये यज्ञ करने वाले हो । अत: हमारे यज्ञ में भी देवताओं को हवि दो अपनी बुद्धि और कर्म के द्वारा हमारे रक्षक देवताओं को यहां लाओ । तुम हमें अन्न दो और हमारे हव्य का भक्षण करो ।४। हे अग्ने ! तुम यज्ञ के गर्भ रूप हो । तुम्हें सोम में मिश्रित करने वाले जल, अभिषवण प्रस्तर और अरणि को पुष्ट करते हैं । ऋत्विजों द्वारा तुम्हारा मन्थन होता है तब तुम पृथिवी के अत्यन्त श्रेष्ठ स्थान यज्ञ में उत्पन्न होते हो ।५। [१]

आ यः पप्रौ भानुना रोदसी उभे धूमेन धावते दिवि ।
तिरस्तमो ददृश ऊर्म्यास्वा श्यावास्वरुषो वृहषा
श्यावा अरुषो बृषा ॥६

बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा ।
भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ्य रेवन्नः शुक्र दीदिहि
द्युमत्पावक दीदिहि ॥७
विश्वासां गृहपतिर्विशामसि त्वमग्ने मानुषीणाम् ।
शतं पूर्भिर्यविष्ठ पाह्यंहसः समेद्धारं शतं हिमाः
स्तोतृभ्यो ये च ददति ॥८
त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय ।
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥९
पर्षि तोकं तनयं पर्तृभिष्ट्वमदब्धैरप्रयुत्वभिः ।
अग्ने हेलांसि दैव्या युयोधि नोऽदेवानि ह्वरांसि च ॥१०॥२

जो अग्नि अपने तेज से स्वर्ग और पृथिवी को परिपूर्ण करते हैं जो धुंए के साथ अन्तरिक्ष में उठते हैं वे अग्नि रात्रि के अंधकार को दूर करते हैं । वही तेजस्वी अग्नि कामनाओं की वर्षा करने वाले हैं ।६। हे अग्ने ! तुम हमारे भ्राता भरद्वाज द्वारा प्रदीप्त होकर हमें धन दो ।७। हे अग्ने ! तुम गृह स्वामी हो, मैं तुम्हें सौ हेमंत ऋतुओं तक प्रदीप्त करूंगा । तुम पाप से मेरी रक्षा करो और अपने स्तोत्रा अन्न देने वाले यजमान की भी रक्षा करो ।८। हे अग्ने ! तुम हमारे प्रति धन प्रेरित करो और हमारे पुत्रादि को यशस्वी बनाओ ।९। हे अग्ने ! हमारे पुत्र-पौत्रादि का पालन करो । हमारे प्रति देनताओं को जो क्रोध हो अथवा मनुष्यों को रोष हो उसे दूर करो ।१०। [२]

आ सखायः सबर्दुघां धेनुमजध्वमुप नव्यमा वचः ।
सृजध्वमनपस्फुराम् ॥११
या शर्धाय मारुताय स्वभानवे श्रवोऽमृत्यु धुक्षत ।
या मृळीके मरुतां पुराणां या सुम्नैरेवयावरी ॥१२
भरद्वाजायाव धुक्षत द्विता ।
धेनुं च विश्वदोहसमिषं च विश्वभोजसम् ॥१३
तं व इन्द्रं न सुक्रतुं वरुणमिव मायिनम् ।
अर्यमणं न मन्द्रं सृप्रभोजसं विष्णुं न स्तुष आदिशे ॥१४

हे बन्धुओ ! अपने स्तोत्रों के सहित पथस्विनी गौ के पास आगमन करो ? फिर उसे इस प्रकार छुड़ाओ जिससे उसकी हानि न हो ।११। जो धेनु मरुद्गण की रक्षा के लिए दुग्ध रूप अन्न देती है जो स्वाधीन तेज वाली और वृष्टि के जलों के साथ सुख की वर्षा करती हुई अन्तरिक्ष में विचरण करती है, उसी गौ के पास जाओ ।१२। हे मरुद्गण ! भरद्वाज को पयश्विनी गौ और यथेष्ट अन्न के साथ मङ्गल प्रदान करो ।१३। हे मरुद्गण ! इन्द्र के कर्मों का तुम अनुष्ठान करते हो, वरुण के समान स्तुत्य हो । विष्णु के समान धनदाता होने से मैं तुम्हारी धन के लिए स्तुति करता हूं।१४। मरुद्गण हमें असंख्य धन प्राप्त करावें ।१५। हे पूषन् ! मेरे पास आगमन करो। शत्रुओं को व्यथित करो मैं भी तुम्हारा यश-गान करता हूं ।१६।

[३]

त्वेष शर्धो न मारुतं तेनिष्वण्यनर्वाणं पूषणं श यथा शता ।
सहस्रा कारिषच्चर्षणिभ्य आँ आविगूलहा वसू करत्सुवेदा नो
वसू करत् ॥१५
आ मा पूहन्नुप द्रव शंसिषं नु ते अपिकर्णं आघृणे ।
अघा अर्यो अरातयः ॥१६
मा काकम्बीरमुद्वृहो वनस्पतिमशस्तोर्वि हि नीनशः ।
मोत सूरो अह एवा चन ग्रीवा आदधते वेः ॥१७
दृतेरिव तेऽवृकमस्तु सख्यम् ।
अच्छिद्रस्य दधन्वतः सुपूर्णस्य दधन्वतः ॥१८
परो हि मर्यैरसि समो देवैरुत श्रिया ।
अभिख्यः पूषन् पृतनासु नस्त्वमवा नूनं यथा पुरा ॥१९
वामी वामस्य धूतयः प्रणीतिरस्तु सूनृता ।
देवस्यं वा मरुतो मर्त्यस्य प्रयज्यवः ॥२०
सद्यश्चिद्यस्य चर्कृतिः प रिद्यां देवो नैति सूर्यं ।
त्वेष शवो दधिरे नाम यज्ञियं मरुतो वृत्रहं शव
ज्येष्ठं वृत्रहं शव ॥२१
सकृद्ध द्योरजायत सकृद्भूमिरजायत ।

पृश्न्या दुग्धं सकृत्पयस्तदन्यो नानु जायते ॥२२।४

हे पूषन् ! वनस्पति का नाश मत करना । मेरे निंदकों को मारो । मेरे शत्रु मुझे व्याघ के सामन न बाँध सकें ।१७। हे पूषन् ! तुम्हारी मित्रता सदा बनी रहे ।१८। हे पूषन् ! तुम धन में सब देवताओं के समान हो युद्ध में हम पर अनुग्रह दृष्टि रखना । पहले जसे तुमने हमारी रक्षा की थी वैसे ही अब भी रक्षा करो ।१९। हे मरुद्गण! तुम्हारी जो वाणी यजमानों को इच्छित घन प्रदान करती है, वही वाणी हमारा पथ प्रदर्शन करे।२०। सूर्य के समान ही मरुद्गण के सब कार्य अन्तरिक्ष में व्याप्त होते हैं । वे मरुद्गण पूजनीय ओर शत्रु हननकारी बल धारण करते हैं ।२१। स्वर्ग ओर पृथिवी एक बार ही उत्पन्न हुए मरुद्गण की माता गो से एक बार ही दूध दुह गया । वस समय अन्य कुछ उत्पन्न नहीं हुआ ।२२। [४[

सूक्त ४९

(ऋषि—ऋजिश्वा । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः उष्णिक् जगती)

स्तुषे जान सुव्रतं नव्यसीभिर्गीभार्भिर्मित्रावरुणा सुम्नयन्ता ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्तु सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्निः ॥१
विशोविश ईड्यमध्वरेष्वदृप्तक्रतुमरतिं युवत्योः ।
सिवः शिशुं सहसः सूनुमिग्न यज्ञस्य केतुमरुष यजध्यै ॥२
अरुषस्य दुहितरा विरूपे स्तृभिरन्या पिपिशे सूरो अन्या ।
मिथस्तुरा विचरन्तो पावके मन्म श्रुतं नक्षत ऋच्यमाने ॥३
प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा वृहद्रयि विश्वावारं रजप्राम् ।
द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविःकविभियक्षसि प्रयज्यो ॥४
स मे वपुश्छदयदश्विनोर्यो रथो विरुक्मान्मनसा युजानः ।
येन नरानासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयायत्मने च ।५।५

मैं अभिनव स्तोत्र द्वारा मित्रावरुण की स्तुति करता हूँ । वे इस यज्ञ में हमारे आह्वान को सुनें ।१। अग्नि प्रत्येक यज्ञ में पूजनीय हैं, वे निरहङ्कार स्वर्ग पृथिवी के स्वामी, यज्ञ के ध्वज रूप हैं, उन अग्नि का यजन करने की यजमान को प्रेरणा करता हूँ ।२। सूर्य की दो कन्याएं दिन और रात्रि हैं । इनमें से एक सूर्य के द्वारा प्रकाशित और दूसरी नक्षत्रों द्वारा दमकती है, यह दोनों हमारी स्तुति को सुनें ।३। हमारी स्तुतियां वायु देवता के समक्ष गमन करें ।३। हे अश्वों के स्वामी मरुतो ! तुम स्तोता को धन द्वारा बढ़ाओ ।४। मन के द्वारा योजित अश्विद्वय का रथ मेरे देह की रक्षा करे । हे अश्विद्वय ! तुम उसपर चढ़ कर स्तोता का अभीष्ट पूर्ण करने को आओ ।।५।। [५]

पर्जन्यवाता वृषभा पृथिव्याः पुरीषाणि जिन्वतमप्यानि ।
सत्यश्रुतः कवयो यस्य गीर्भिर्जगतः स्थातर्जगदः कृणुध्वम् ।।६
पावीरवी कन्वा चित्रायुः सरस्वती वीरपत्नी धिय धात् ।
ग्नाभिरच्छिद्रं शरण सजोषा दुराधर्षं गृणते शर्मं यसत् ।।७
पथस्पथः परिपतिं वचस्या कामेन कृतो अभ्यानलर्कम् ।
स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा धियं धियं सीषधाति प्र पूषा ।।८
प्रथमभाजं यशसं वयोधां सुपाणिं देवं सुगभस्तिमृभ्वम् ।
होता यक्षध्यजतं पस्त्यानामग्निस्त्वष्टारं सुहवं विभावा ।।९
भुवनस्य पितरं गीर्भिराभी रुदं दिवा वर्धया रुद्रमक्तौ ।
वृहन्तमृष्वमजरं सषुम्नमृधग्घुवेम कविनेषितासः ।।१०।६

हे पर्जन्य और वायो ! तुम अन्तरिक्ष से जल प्रेरित करो । हे मरुद्गण ! जिस पर तुम प्रसन्न होते हो उसके सभी मनुष्य समृद्ध होते हैं ।६। विचित्र गमन वाली देवी सरस्वती हमारे यज्ञानुष्ठान का निर्वाह करें । वे प्रसन्न होकर देवांगनाओं सहित स्तोता को श्रेष्ठ घर और कल्याण दें ।७। हे स्तोता ! पूषा-देव के समक्ष जाओ वे हमें सुवर्ण शृङ्ग वाली गौएं दें और सब कार्यों को सम्पन्न करें ।८। जो त्वाष्टादेव प्रसिद्ध अन्नदाता, सुन्दर हाथ वाले, महान् और आह्वानीय हैं,

अग्निदेव उन्हीं त्वष्टा का यज्ञ करें।९। हे स्तोता! अपने श्रेष्ठ स्तोत्रों से रुद्र को प्रसन्न करो। उन्हें दिन में और रात में भी प्रबुद्ध करो ।।१०।।

[६]

आ युवानः कवयो यज्ञियासो मरुतोवरस्थाम् । गन्तगृणतो
अचित्रं चिद्धि जिन्वथा वृधन्त इत्था नक्षन्तो नरो अङ्गिरस्वत्।।११
प्र वीराय प्र तवसे तुरायाजा यूथेव पशुरक्षिरस्तम् ।
स पिस्पृशति तन्वि श्रुतस्य स्तृभिर्न नाकं वचनस्य विपः ।।१२
यो रजांसि विममे पार्थिवानि त्रिश्चिद्विष्णुर्मनवे बाधिताय ।
तस्य ते शर्मन्नु पदद्यमाने राया मदेम तन्वा तना च ।।१३
तन्नोऽहिर्बुध्न्यो अभ्दिरर्कैस्तत्पर्वतस्तत्सविता चनो धात् ।
तदोषधीभिरभि रतिषाचो भगः पुरन्धिर्जिन्वतु प्र राये ।।१४
नू नो रयिं रथ्यं चर्षणिप्रां पुरवीरं मह ऋतस्य गोपाम् ।
क्षय दाताजरं येन जनान्स्पृधो अदेवीरभि च क्रमाम विश
आदेवीरभ्य श्नवाम ।।१५।७

हे मरुद्गण! जहाँ यजमान यज्ञ करता है, वहां आगमन करो। तुम वृष्टि जल से वनों की वृद्धि करो।११। गौओं के झुण्ड को जैसे ग्वालिया शीघ्र चलाता है वैसे ही मरुद्गण की ओर अपने स्तोत्र को भेजो। जैसे अन्तरिक्ष नक्षत्रों द्वारा शोभित है,वैसे ही मरुद्गण स्तोता की स्तुति से अपने देह को सुशोभित करते हैं।१२। जिन विष्णु ने त्रिपाट पराक्रम से लोकों को नाप लिया था, वह तुम्हारे द्वारा दिए घर में आकर निवास करें और हम धन आदि से युक्त हों।३। हमारे स्तोत्रों से स्तुत अहिर्बुध्न पर्वत और सविता हमें जल और अन्न प्रदान करें। विश्वेदेवा और भग देवता भी अन्न धन दें।१४। हे विश्वेदेवो! तुम हमें रथ, अनुचर, पुत्रादि तथा घर और अन्न दो, जिससे हम शत्रुओं को हरावें और देवोपासकों को आश्रय दें ।।१५।। [७]

५०सूक्त [पाँचवां अनुवाक]

(ऋषि—ऋजिश्वा । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

हुवे वो देवीमदितिं नमोलिमृ लोकाय वरुणं मित्रमग्निम् ।
अभिक्षदामर्यमणं सुशेवं त्रातृन्देवान्त्सवितारं भग च ॥१
सुज्योतिष सूर्य दक्षापतृनागस्त्वे सुमहो वीहि देवान् ।
द्विजन्मानो य ऋतसापः सत्यः स्ववंन्तो यजता अग्निजिह्वाः॥२
उत द्यावापृथिवी क्षत्रमुरु वृहद्रोदसी शरणं सुषुम्ने ।
महस्करथो वरिवो यथा नोऽस्मे क्षयाय धिषणे अनेहः ॥३
आ नो रुदस्य सूनवो नमन्तामद्या हूतासो वसवोऽधृष्टाः ।
यदीगर्भे महति वा हितासो बाधे मरुतो अह्वाम देवान् ॥४
मिम्यक्ष येषु रोदसी नु देवी सिषक्ति पूषाअभ्यर्धयज्वा ।
श्रुत्वा हव मरुतो यद्ध साथ भूमा रेजन्ते अध्वनि मुविक्ते ॥५।८

हे देवताओ ! अदिति, वरुण, मित्र, अग्नि, अर्यमा, सविता, भग तथा अन्य सब देवताओं का हम आह्वान करते हैं ।१। हे सूर्य ! तेजस्वी देवताओं को हमारे अनुकूल बनाओ । स्वर्ग और पृथिवी पर उत्पन्न देवता यज्ञ से प्रीति करने वाले धनी और अग्निरूप जिह्वा वाले हैं ।२। हे द्यावापृथिवी ! हमें बल और धन दो । हम ऐश्वर्यवान् हों हमारे घर से पाप को दूर करदो ।३। रुद्र पुत्र मरुद्गण ! हमारे आह्वान पर आवें । वे विपत्ति में हमारे सहायक हों ।४। हे मरुद्गण ! आकाश-पृथिवी तुम से सश्लिष्ट हैं, स्तोताओं को समृद्धि देने वाले पूषा तुम्हारी सेवा करते हैं तुम जब हमारे आह्वान पर आते हो, तब समस्त प्राणी कम्पित होते हैं ।।५।। [८]

अभि त्यं वीर गर्वणसमर्चेन्द्र ब्रह्मणा जरितर्नवेन ।
श्रवदिद्धवमुप च स्तवानो रासद्वाजां उप महो गृणानः ॥६
ओमातमापा मानुवीरमृक्त धात तोकाय तनयाय शं योः ।
यूयं हि ष्ट भिषजो मातृतमा विश्वस्य स्थातुर्जजतो जनित्रीः ॥७

आ नो देवः सविता त्रायमाणो हिरण्यपाणिर्यजतो जगम्यात् ।
यो दत्रवां उषसो न प्रतीकं व्यूर्णुते दाशुषे वार्याणि ।।८
उत त्वं सूनो नो अद्या देवां अस्मिन्नध्वये ववृत्याः ।
स्यामहं ते सदामिद्रातौ तव स्यामग्नेऽवसा सुवीरः ।।९
उत त्या मे हवमा जग्म्यातं नासत्या धीभिर्युवमङ्ग विप्रा ।
अत्रिं न महस्तमसोऽमुमुक्तं तूर्वतं नरा दुरितादभीके ।।१०।९

हे स्तोता ! इन्द्र की स्तुति करो । वे इन्द्र हमारे आह्वान को सुनकर हमें अन्न दें ।६। हे जलो ! तुम मनुष्यों को मङ्गल करने वाले हो । तुम हमारे पुत्र-पौत्रों की रक्षा करने वाला अन्न दो । तुम श्रेष्ठ उपचारक और देह धारियों को उत्पन्न करने वाले हो ।७। जो सविता यजमान को काम्य धन देते हैं, वे हिरण्यपाणि हमारे यहाँ पधारें ।८। हे अग्ने ! देवताओं को हमारे यज्ञ में लाओ । मैं तुम्हारी अनुकूलता को सदा जानूँ और तुम्हारे द्वारा रक्षित श्रेष्ठ पुत्र पौत्रादि से सम्पन्न होऊँ ।९। हे अश्विद्वय ! तुम मेरे स्तोत्रों के पास आओ । तुमने जैसे अत्रि को अन्धकार से मुक्त किया वैसे ही हमें दुख से मुक्त करो ।१०। [८]

ते नो रायो द्युमतो वाजवतो दातारो भूव नृवतः पुरुक्षोः ।
दशस्यन्तो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता अप्या मृलता च देवाः।। ११

ते नो रुद्रः सरस्वती सजोषाः मीलहुष्मन्तो विष्णुर्मृलन्तु वायुः ।
ऋभुक्षा वाजो दैव्यो विधाता पर्जन्यावाता पिप्यतामिष नः ।।१२

उत स्य देवः सविता भगो नोऽपां नपादवतु दानु पप्रिः ।
त्वष्टा देवेभिर्जनिभिः सजोषां द्यौर्देवेभिः पृथिवी समुद्रैः ।।१३

उत नोऽहिर्बुध्न्यः श्रृणोत्वज एकपात्पृथिवी समुद्रः ।
विश्वे देवा ऋतावृधो हुवानाः स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु।।१४

एवा नपातो मत तस्य धीभिर्भरद्वाजा अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
ना हुतासो वसयोऽधृष्टा विश्वे स्तुतासो भूता यजत्राः ।।१५।१०

हे देवगण ! हमें पुत्रादि से युक्त धन दो । आदित्य, वसु, रुद्र, मरुद्गण हमारी कामना पूर्ण कर सुखी करें ।११। रुद्र, सरस्वती, विष्णु वायु, ऋभुक्षा, श्येन और विधाता हमारा मंगल करें । पर्जन्य और वायु हमारे अन्न की वृद्धि करें ।१२। दानशील अग्नि हमारे रक्षक हों। समान रूप से प्रसन्न हुए त्वष्टादेव, स्वर्गलोक और समुद्रों सहित पृथिवी हमारी रक्षा करें ।१३। आज एक पाद, अहिबुंध्न, पृथिवी और समुद्र हमारी स्तुति सुनें। यज्ञ कर्म को सम्पन्न करने वाले और स्तुति विश्वेदेवा हमारी रक्षा करें ।४। भरद्वाज वंशज ऋषि देवताओं की स्तुति करते हैं। देवताओ ! तुम अजेय, गृहदाता हो। तुम देव-पत्नियों सहित पूजे जाते हो ।।१५।।

५१ क्तसू

(ऋषि—ऋजिश्वा । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः उष्णिक, अनुष्टुप्)

उदु त्यच्चक्षुर्महि मित्रयोरां एति प्रिय वरुणयोरदब्धम् ।
ऋतस्य शुचि दशतमनीक रुक्मो न दिव उदिता व्यद्यौत् ।।१
वेद यस्त्रीणि विदथान्येषां देवानां जन्म सनुतरा च विप्रः ।
ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन्नभि चष्टे सूरो अर्य एवान् ।।२
स्तु उ वो मह ऋतस्य गोपनदितिं मित्रं वरुणं सुजातान् ।
अर्यमणं भगमदब्धधीतीनच्छा नीचे सधन्यः पावकाम् ।।३
रिशादसः सत्पतींरदब्धान्मोह राज्ञः सुवसनस्य दातृन् ।
यूनः सृक्षत्रान्क्षयतो दिवो नन।दित्यान्याम्यदिति दुवोयु ।।४
द्यौष्पितः पृथिवि मातरध्रूगग्ने भ्रातर्वसवो मृलता नः ।
विश्व आदित्या अदिते सजोषा अस्मभ्य शर्म बहुल वि यन्त।।५।११

सूर्य की प्रसिद्ध और मित्रावरुण की प्रिय ज्योति अन्तरिक्ष के अलंकार के समान सुशोभित है।१। जो सूर्य तीनों लोकों के ज्ञाता, ज्ञानी और देवताओं के प्राकट्य् के जानने वाले हैं वे सूर्य मनुष्यों के सत्यासत्य के देखने वाले और उपासकों के अभीष्टों को पूर्ण करने वाले हैं ।२। अदिति,

मित्र, वरुण, अर्यमा और भग की मैं स्तुति करता हूं । उनके कार्य संसार का पवित्र करने वाले हैं ।३। हे अदिति पुत्रो ! तुम सज्जनों के पालक और दुर्जनों का त्याग करने वाले हो । तुम घर देने वाले और ऐश्वर्यवान् हो । मैं अदिति की भी शरण में जाता हूं ।४। हे वसुगण ! स्वर्ग, पृथिवी और अग्नि के सहित तुम हमारा मङ्गल करो । हे अदिति और आदित्यो ! तुम हमारा कल्याण करो ।५। [११]

मा नो वृकाय वृक्ये समस्मा अघायते रीरधता यजत्राः ।
यूयं हि ष्ठा रथ्यो नस्तनूनां यूयं दक्षस्य वचसो वभूव ॥६
मा व एनो अन्यकृतं भुजेम मा तत्कर्म वसवो यच्चयध्वे ।
विश्वस्य हि क्षयथ विश्वदेवाः स्वयं रिपुस्तन्वं रीरिषीष्ट ॥७
नम इदुग्रं नम आ विवासे नमो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।
नमो देवेभ्यो नम ईश एषां कृत चिदेनो नमसा विवासे ॥८
ऋतस्य वो रथ्यः पूतदक्षानृतस्य पस्त्यसदो अदब्धान् ।
ताँ ना नमोभिरुरुचक्षसो नृन्विश्वान्व आ नमे महो यजत्राः ॥९
ते हि श्रेष्ठवचसस्त उ नस्तिरो विश्वानि दुरिता नयन्ति ।
सुक्षत्रासोवरुणोमित्रोअग्निऋंतधीतयो वक्मराजसत्याः ॥१०।२२

हे देवगण ! तुम हमें वृक-वृकी को मत सौंपना । तुम हमारे देह, बल और वाणी के प्रेरक हो ।६। हे देवताओ ! हम किसी के पाप से दुःख न भोगें । हे वसुगण ! तुम्हारी असहमति वाले अनुष्ठान को हम न करें । हे विश्वदेवो ! शत्रु की देह नष्ट हो जाय ।७। स्वर्ग और पृथिवी को नमस्कार ने धारण कर रखा है । देवगण भी नमस्कार के वश में हैं । अतः मैं अपने पापों का प्रायश्चित करने के अभिप्राय से नमस्कार करता हूं ।८। हे देवगण ! मैं नमस्कार पूर्वक झुक रहा हूं । तुम यज्ञ के नेता, बली, यज्ञगृह में वास करने वाले और महिमा से सम्पन्न हो ।९। वे तेजस्वी हैं, वे हमारे पापों को दूर करें । वरुण, मित्र और अग्नि सत्य कर्म वालों के पक्ष में रहते हैं ।१०। [१२

ते न इन्द्रः पृथिवी क्षाम वर्धन् पूषा भगो अदितिः पञ्च जनाः ।
सुशर्माणः स्ववसः सुनीथा भवन्तु नः सुत्रात्रासः सुगोपाः ॥११
नू सद्मान दिव्यं नंशि देवा भारद्वाज सुमतिं याति होता ।
आसानेभिर्यजमानो मियेधैर्देवानां जन्म वसूयुर्ववन्द ॥१२
अप त्या वृजिन रिपुं स्तेमग्ने दुराध्यम् ।
दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम् ॥१३
ग्रावाणः सोम नो हि कं सखित्वानाय वावशुः ।
जही न्यत्रिणं पणि वृको हि षः ॥१४
यूयं हि ष्ठा सुदानव इन्द्रज्येष्ठा अभिद्यवः ।
कर्ता नो अध्वन्ना सुग गोपा अमा ॥१५
अपि पन्थामगन्महि स्वस्तिगामनेहसम् ।
येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु ॥१६।१३

इन्द्र, पृथवी, पूषा, भग, अदिति और पञ्चजन हमारे गृह की वृद्धि करें वे अन्नदाता, सुखदाता और आश्रयदाता होकर रक्षा करें ।११। यह भरद्वाज शीघ्र ही सुन्दर घर पावें । हवि देने वाले ऋषि यजमानों सहित धन कीं कामना से देवताओं की स्तुति करते हैं ।१२। हे अग्ने ! तुम कुटिल शत्रुओं को भगाओ और हमारा मङ्गल करो ।१३। हे सोम तुम पाणि को मारो। यह अभिषव करने वाले तुम्हारी मित्रता की कामना करते हैं ।१४। हे इन्द्रादि देवताओ ! तुम दाता और तेजस्वी हो। तुम मार्ग में हमारी रक्षा करो ।१५। जिस सरल मार्ग पर चलने से शत्रु की पराजय और हमको धन-लाभ होगा, उसी पर हम आ गये हैं ।१६। [१३]

सूक्त ५२

(ऋषि–ऋजिश्वा । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द–त्रिष्टुप्, पंक्तिः,
गायत्री, जगती)

नतद्दिवा न-पृथिव्यानु मन्ये न यज्ञेन नोव शर्मीभिराभिः ।
उब्जन्तु तं सुभ्वः पर्वतासो नि हीयतामतियाजस्य यष्टा ॥२

अति वा यो मरुतो मन्यते नो ब्रह्म वा यः क्रियमाणं निनित्सात् ।
तपूं षि तस्मै वृजिनानि सन्तु ब्रह्मद्विषमभि तं शोचतु द्यौः ।।२
किमङ्ग त्वा ब्रह्मणः सोम गोपाँ किमङ्ग त्वाहुरभिशस्तिपां नः ।
किमङ्ग नः पश्यसि निद्यमानान् ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य ।।३
अवन्त मामुषसो जायमना अवन्तु मा सिन्धवः पिन्वमानाः ।
अवन्त मा पर्वतासो ध्रुवासोऽवन्तु मा पितरो देवहूतौ ।।४
विश्वादानीं सुमनस स्याम पश्यम नु सूर्यमुच्चरन्तम् ।
तथा करद्वसुपतिर्वसूनां देवाँ ओहानोऽवसागमिष्ठः ।।५।१४]

मैं इसे देवताओं के योग्य नहीं समझता । यह मेरे द्वारा किये जाते यज्ञ की या अन्य यज्ञों को भी तुलना न कर सकेगा । अतः सभी महान् पर्वत उस अतियाज को दुखः दें और उसके ऋत्विज् भी दीन हो जांय ।१। हे मरुद्गण ! जो व्यक्ति हमारे स्तोत्र की निन्दा करे उसका अनिष्ट हो और स्वर्ग उस ब्राह्मण द्वेषी को जलावे ।२। हे सोम ! तुम मन्त्र रक्षक क्यों कहे जाते हो ? तुम्हें निन्दा से बचाने वाला क्यों कहा जाता है ? हमारे निन्दित होने पर तुम निरपेक्ष क्यों देखते रहते हो ? तुम अपने व्यथित करने वाले आयुध को ब्राह्मणों से द्वेष करने वाले पर चलाओ ।३। उषाऐं नदियाँ, अचल पर्वत और देव-याग में उपस्थित देवता और पितर सब मेरे रक्षक हों ।४। हम सदा सूर्योदय को देखें । देवताओं के लिए हव्य वहन करने वाले अग्नि हमें इस योग्य करें ।५। [१४]

इन्द्रो नेदिष्ठमवसागमिष्ठः सरस्वती सिन्धुभिः पिन्वमाना ।
पर्जन्यो न ओषधीभिमयोभुरग्निः सुशंसः सुहव पितेव ।।६
विश्वे देवास आ गत शृणताम इम हवम् । एदं बर्हिनि षीदत ।।७
यो देवा घृतस्नना हव्येन प्रतिभूषति तं विश्व उप गच्छथ ।।८
उप नःसूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये । सुमृलीका भवन्तु नः ।।९
विश्वे देवा ऋतावृध ऋतुभिर्हवनश्रुतः । जुषन्तां युज्य पयः।।१०।१५

सरस्वती नदी रक्षार्थं हमारी ओर आवें । औषधियाँ सहित पर्जन्य हमें

सुख दें । अग्नि स्तुत्य और आह्वानीय हों ।६। हे विश्वेदेवो ! मेरे आह्वान को श्रवण करते हुए इन कुशाओं पर विराजमान होओ ।७। हे देवगण ! जो घृतयुक्त हव्य द्वारा तुम्हें आहुति देता है, उसके पास आओ ।८। अविनाशी विश्वेदेवता हमारी स्तुति सुनकर हमारा कल्यान करें ।९। यज्ञ की वृद्धि करने वाले विश्वेदेवा अपने-अपने भाग के अनुसार दुग्ध ग्रहण करें ।१०।   [१५]

स्तोत्रमिन्द्रा मरुद्गणस्त्वष्टृमान् मित्रो अर्यमा ।
इमा हव्या जुषन्त नः ।११
इमं नो अग्ने अध्वर होतर्वयुनशो यज । चिकित्वान्दैव्यं जनम्।।१२
विश्वे देवाः शृणुतेमं हव मे ये अन्यरिक्षे य उपा द्यपि ष्ठ ।
ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यास्मिन्वर्हिषि मादयध्वम् ।१३
विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञिया ऊभे रोदसी अपां नपाच्च मन्म ।
मा वो वचांसि परिचक्ष्याणि वोच सुम्नेष्विद्वो अन्तमा मदेम ।।१४
ये के च ज्मा महिनो अहिमाया दिवो जज्ञिरे अपां मधस्थे ।
ते अस्मभ्यमिषये विश्वमायुः क्षप उस्रा वारवस्यन्तु देवाः ।।१५
अग्नीपर्जन्यावक्तं धियं मेऽस्मिन्हवे सुहवा सुष्टुतिं नः ।
इलामन्यो जनयद् गर्भमन्यः प्रजावतीरिष आ धत्तमस्मे :।१५
स्तीर्णे वर्हिषि समिधाने अग्नौ सूक्तेन महा नमसा विवासे ।
अस्मिन्नो अद्य विदथे यजत्रा विश्वे देवा हविषि मादयध्वम्।।१७।१

मरुद्गण के साथ इन्द्र, त्वष्टा के साथ मित्र और अर्यमा हमारी हव्य-युक्त स्तुतियों को स्वीकार करें ।११। हे अग्ने ! देवताओं में जो प्रमुख हैं, उनके निमित्त यज्ञ करो ।१२। हे विश्वेदेवा ! तुम पृथिवी, स्वर्ग या अन्तरिक्ष में जहाँ भी हो वहीं से हमारा आह्वान श्रवण करो। तुम सब कुशों पर बैठकर सोम पीकर प्रसन्न होओ ।१३। हे विश्वेदेवा ! स्वर्ग पृथिवी और जल के पौत्र अग्नि हमारी स्तुति सुनें। तुम जिस स्तोत्र से सहमत न हो, उसे हम न कहें । हम तुम्हारे आत्मीय हो कर सुख पावें ।१४। तीनों लोकों में प्रकट होने वाले देवगण हमको

और हमारे पुत्रादि को अन्न प्रदान करें ।१५। हे अग्नि और पर्जन्य ! हमारे यज्ञ के रक्षक होओ । हमारी स्तुति सुनो ! तुममें से एक अन्नदाता और दूसरे सन्तान दाता हो । अतः हमें अन्न और सन्तान दो ।१६। हे विश्वेदेवो ! अग्नि के दीप्त होने और कुश पर हमारे हव्य और नमस्कारों से तृप्त होओ ॥१७॥ [१६]

सूक्त ५३

(ऋषि भारद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—पूषा । छन्द—गायत्री, अनुष्टुप्)

वयसु त्वा पथस्पते रथं न वाजसातये । धिये पूषन्नयुज्महि ॥१
अभि नो नर्यं वसु वीरं प्रयतदक्षिणम् । वाम गृहपतिं नय ॥२
अदित्सन्तं चिदाघृणे पूषन्दानाय चोदय । पणोश्चिद्वि म्रदा मनः॥३
वि पथो वाजसातये चिनुहि वि मृधो जहि । साधन्तामुग्र नो धियः॥४
परि तृन्धि पणीनामारया हृदया कवे । अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥५।१७

हे पूषन् ! हम तुम्हें कर्म के लिए और अन्न के लिए रथ के समान अपने सामने करते हैं ।१। हे पूषन् ! मनुष्यों का हितैषी, दानी एक गृहस्थ हमारे यहाँ भेजो ।२। हे पूषन् ! लोभ को दानशील बनाकर उसके हृदय की कठोरता मिटाओ ।३। हे पूषन् ! अन्न लाभ के लिये मार्गों को सरल करो । चोर आदि को नष्ट करो, यज्ञों को सम्पन्न करो ।४। हे पूषन् ! पणियों के हृदयों को चीर कर हमारे वश में करदो ॥५॥ [१७]

वि पूषन्नारया तुद पणोरिच्छ हृदि प्रियम् । अथेमस्मभ्यं रधन्य॥६
आ रिख किकिरा कृणु पणीनां हृदया कवे । अथेमस्मभ्यं रधन्य॥७
याँ पूषन्ब्रह्मचोदनीमारां विभर्ष्याघृणे ।
तया समस्य हृदयमा रिख किकिरा कृणु ॥८
या ते अष्ट्रा गोओपशाघृणे पशुसाधनी । तस्यास्ते । सुम्नमीमहे॥९
उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत ।
नृवत् कृणुहि वीतये ॥१०।१८

हे पूषन् ! पणियों के हृदयों को विदीर्ण करो । उनके हृदय में सद्भाव जाग्रत कर मेरे आधीन कर दो ।३। हे पूषन् ! दस्युओं के

हृदय की कठोरता कम करते हुए उन्हें हमारे आधीन करो ।७। हे पूषन् ! अन्नप्रेरक प्रतोद धारण कर उसके कृपणों के हृदयों की कठोरता न्यून करो ।८। हे पूषन् ! तुम अपने जिस अस्त्र से पशुओं को हाँकते हो, उसी अस्त्र से हम अपने हित की याचना करते हैं ।९। हे पूषन् हमारे यज्ञादि कर्म के लिए गौ, अश्व, भृत्य और अन्न प्राप्त कराओ ॥१०॥ [१८]

सूक्त ५४

(ऋषि–भारद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता–गुण । छन्द–गायत्री)

स पूषन् विदुषा नय यो अञ्जसानुशासति । यं एवेदमिति ॥१
समु पूष्णा गमेमहि यो गृहाँ अभिशासति । इम ईवेति च ब्रवत् ॥२
पूष्णश्चक्रं न रिष्यति न कोशोऽव पद्यते । नो अस्यव्यथते पविः॥३
यो अस्मं हविषाविधन्न न पूषाणि मृष्यते । प्रथमो विन्दते वसु॥४
पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्ववंतः । पूषा वाज सनोतु नः ॥५।१९

हे पूषन् ! जो हमें मार्ग दिखावे और हमारे अपहृत धन को प्राप्त करावे ऐसे पुरुष से हमारी भेंट कराओ ।१। खोए हुए पशुओं का गोष्ठ बनाने वाले पुरुष से पूषा हमें मिलावे ।२। पूषा का चक्र नष्ट नहीं होता उसकी धार कभी भी भौंतरी नहीं होती ।३। जो यजमान पूषा को हवि देता है, पूषा उसका किंचित भी अनिष्ट नहीं करते. वह पुरुष उनसे धन प्राप्त करता है ।४। पूषा हमारी गौओं और अश्वों की रक्षा करें और हमें अन्न प्रदान करें ॥५॥ १९]

पूषन्ननु प्र गा इहि यजमानस्य सुन्वतः । अस्माकं स्तुवनामत ॥६
म किर्नेशन्माकीं रिपन्माकीं स शारि केवटे अथारिष्टाभिरागहि॥७
शृण्वन्त पूषण वयमिर्यमनष्टवेदसम् । ईशानं राय ईमहे ॥८
पूषन्तव व्रते वयं न निष्येम कदाचन । स्तोतरस्त इह स्मसि ॥९
परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम् । पुनर्नो नष्टमाजतु॥१०।२

हे पूषन् ! यजमान की गौओं और स्तोत्रमयी स्तुतियों का अनुसरण करो ।६। हे पूषन् ! हमारा गौ-धन विनष्ट न हो । यह

गर्त में न गिरें। तुम इन्हें अहिंसित रखते हुए सायंकाल इन्हीं के साथ लौटें ।७। पूषा हमारी स्तुतियों को सुनकर हमारी दरिद्रता को दूर करते हैं। हम उनसे धन माँगते हैं ।८। हे पूषन् ! यज्ञ के अवसर पर हम हिंसित न हों। हम तुम्हारी स्तुति करते हुए पूर्ववत् सुरक्षित रहें ।९। पूषा हमारे गौ-धन को कुमार्ग से बचावें ।वे हमारे अपहृत गौ-धन को लौटा लावें ॥१०॥ [२०]

सूक्त ५५

(ऋषि–भारद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता–पूषा । छन्द—गायत्री)

एहि वां विमुचा नपादाघृणे सं सचावहै । रथीर्ऋतस्य नो भव॥१
रथीतम कपर्दिनमीशान राधसो महः । रायः सखायमीमहे ॥२
रायो धारास्याघृणे वसो राशिरजाश्व । धीवतोधीवतः सखा ॥३
पूषणं न्वजाश्वमुप स्तोषाम वाजिनम् । स्वसुर्यो जार उच्यते ॥४
मातुर्दिधिषुमब्रव स्वसुर्जारः शृणोतु नः । भ्रातेन्द्रस्य सखा मम ॥५
आजासः पूषणं रथे निशृम्भास्ते जनश्रियम् ।
देव वहन्तु बिभ्रत ॥६॥२१

हे पूषन् ! तुम्हारा स्तोता मेरे पास आवे, हम दोनों मिलकर तुम्हें अपने यज्ञ का नेता बनावें ।१। हम महारथी पूषा से धन की याचना करते हैं ।२। हे छाग-वाहन ! तुम धन के प्रवाह रूप हो और स्तोता के मित्र हो ।३। हम उन्हीं पूषा की स्तुति करते हैं, जिन्हें लोग ऊषा का स्वामी कहते हैं ॥४॥ रात्रि माता के स्वामी पूषा की हम स्तुति करते हैं। वे उषापति सूर्य इन्द्र के भ्राता और हमारे मित्र हों ।५। रथ में योजित छाग पूषा के रथ को वहन करते हैं वे उन्हें यहाँ लावें ॥६॥ [२१]

सूक्त ५६

(ऋषि–भारद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—पूषा । छन्दः–गायत्री, उष्णिक्)

य एनमादिदेशति करम्भादिति पूषणाम् । न तेन देव आदिशे ॥१
उत घा स रथीतमः सख्या सत्पतिर्युजा । इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते॥२

उतादः परुषे गवि सूरश्चक्रं हिरण्यम् । न्यैरयद्रथीतमः ॥३
यदद्य त्वा पुरुष्टुत ब्रवाम दस्र मन्तुमः । तत्सु नो मन्म साधय ॥४
इमं च नो गवेषणं सातये सीषधो गणम् । आरात् पूषन्नसि श्रुतः॥५
आ ते स्वस्तिमीमह आरे अघामुपावसुम् ।
अद्या च सर्वतातये श्वश्च सर्वतातये ॥६।२२

घृतयुक्त अन्न के सहित पूषा की जो स्तुति करता है, उसे अन्य देवताओं की स्तुति करने की आवश्यकता नहीं होती ।१। महारथी इन्द्र अपने मित्र पूषा की सहायता से बैरियों को मारते हैं ।।२।। सूर्य के हिरण्यमय रथ के चक्र को पूषा ठीक चलाते हैं ।३। हे पूषन् ! हम जिस धन के लिए तुम्हारी स्तुति करते हैं, वह हमें दो ।४। हे पूषन ! आज और कल के अनुष्ठानों में हम उसी रक्षाकी कामना करते हैं, जो पाप से दूर और नितांत समीप है ।।६।। [२२]

सूक्त ५७

(ऋषि—भारद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—पूषा । छन्द—त्रिष्टुप्, जगती)

इन्द्रा नु पूषणा वयं सख्याय स्वस्तये । हुवेम वाजसातये ॥१
सोममन्य उपासदत्पातवे चम्वोः सुमम् । करम्भ मन्य इच्छति ॥२
अजा अन्यस्य वह्नयो हरी अन्यस्य सम्भृता ।
ताभ्यां वृत्राणि जिघ्नते ॥३
यदिन्द्रो अनयद्रितो महीरपो बृषन्तमः । तत्र पूषाभवत्सचा ॥४
तां पूष्णः सुमतिं वयं वृक्षस्य प्र वयामिव । इन्द्रस्य चा रभामहे॥५
उत्पूषणं युवामहेऽभीशूँरिव सारथिः । मह्या इन्द्र स्वस्तये ॥६।२३

हे इन्द्र और पूषन ! हम अपनी मङ्गल-कामना करते हुए तुम्हारी मित्रता चाहते और अन्न-लाभ के लिये आहुत करते हैं ।१। तुममें से इन्द्र सोम पीने के लिए और पूषा सत्तू युक्त अन्न के लिये जाते हैं ।२। इनमें पूषा के वाहन छाग और इन्द्र के वाहन अश्व हैं । इन्द्र अपने उन्हीं

अश्वों पर जाकर वृत्र का हनन करते हैं ।३। जब इन्द्र महावृष्टि करते हैं तो पूषा सहायता देते हैं ।४। पूषा और इन्द्र की कृपापूर्णं रक्षा पर हम उसी प्रकार आश्रित हैं, जैसे सुदृढ़ वृक्ष की शाखा पर रह सकते हैं ।५। सारथि जैसे लगाम को खींचता है, वैसे ही अपने मङ्गल के लिए पूषा और इन्द्र को अपनी ओर आकर्षित करते हैं ।६। [२३]

सूक्त ५८

(ऋषि—भारद्वाजो बार्हस्पत्यः देवता—पूषा । छन्दः—त्रिष्टुप्, जगती)

शुक्रं ते अन्यद्यजत ते अन्यद्विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि ।
विश्वा हि माया अवसि स्वधावो भद्रा ये पूषन्निह रातिरस्तु ॥१
अजाश्वः पशुपा वाजपस्त्यो धियञ्जन्वो भुवने विश्वे अर्पितः ।
अष्ट्रां पूषा शिथिरामुद्वरीवृजत् सञ्चक्षाणो भुवना देव ईयते ॥२
यास्ते पूषन्नावो अन्तः समुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति ।
ताभिर्यासि दूत्यां सूर्यस्य कामेन कृत श्रवऽइच्छमानः ॥३
पूषा सुबन्धुर्दिव आ पृथिव्या इलस्पतिर्मघवा दस्मवर्चाः ।
य देवासो अददुः सूर्यायै कामेन कृत तवसं स्वञ्चम् ॥४।२४

हे पूषन ! तुम उज्ज्वल वर्ण वाले हो और रात्रि केवल यज्ञ योग्य है। इस प्रकार दिन और रात्रि दोनों ही विपरीत रूप वाले हैं। हे पूषन्! तुम सूर्य के समान प्रकाशित हो क्योंकि तुम दाता और ज्ञानी हो। तुम्हारा कल्याण को वहन करने वाला दान प्रकट हो। १। जिन पूषा का वाहन छाग है, जो पशुओं के पालने करने वाला है और जो स्तोताओं को प्रीति प्रदान करते हैं, तथा सभी लोकों के ऊपर स्थापित हैं, वही पूषा सूर्य रूप से सब प्राणियों को प्रकाशित करते हुए अन्तरिक्ष में गमन करते हैं ।२। हे पूषन् ! तुम्हारी सभी नौकाएँ अन्तरिक्ष में चलती हैं उनके द्वारा तुम दूत कार्य करते हुए हवि कामना करते हो। स्तोता तुम्हें हव्यदान द्वारा प्रसन्न करते हैं ।३। पृथिवी और स्वर्ग के श्रेष्ठ बन्धु पूषा अन्नों के स्वामी हैं। वे ऐश्वर्यशाली और सुन्दर गमन वाले हैं। ४। [२४]

सूक्त ५९

(ऋषि–भरद्वाजो बार्हस्पत्य: । देवता—इन्द्राग्नी । छन्द–बृहती, अनुष्टुप्, उष्णिक्)

प्र नू वोचा सुतेषु वां वीर्या मानि चक्रथः ।
हतासो वां पितरा देवशत्रव इन्द्राग्नी जीवथो युवम् ॥१
बलित्था महिमा वामिन्द्राग्नी पनिष्ठ आ ।
समानो जनिता भ्रातरा युवं यमाविहेहमातरा ॥२
ओकिवांसा सुते सचाँ अश्वा सप्ती इवादने ।
इन्द्रान्वग्नी अवसेह वज्रिणा वयं देवा हवामहे ॥३
य इन्द्राग्नी सुतेषु वां स्तवत्तेष्वृतावृधा ।
जोषवाक वदतः वज्रहोषिणा न देवौ भसथश्चन ॥४
एन्द्राग्नी को अस्य वां देवौ मर्तश्चिकेतति ।
विषूचो अश्वान्युयुजान ईयत एकः समान आ रथे ॥५।२५

हे इन्द्राग्ने ! सोमाभिषव होने पर हम तुम्हारे बल का वर्णन करते हैं। देवताओं से द्वेष करने वाले राक्षसों को तुमने मार डाला। तुम अविनाशी हो। १ । हे इन्द्राग्ने। तुम्हारे सभी कर्म यथार्थ और विस्तृत हैं तुम्हारे एक ही पिता हैं। २। हे इन्द्राग्ने ! अश्व जैसे तृणों की ओर जाते हैं, वैसे ही तुम सोमाभिषव की ओर गमन करते हो। हम तुम्हें अपनी रक्षा के लिए इस यज्ञ में आहूत करते हैं। ३। हे इन्द्राग्ने ! जो सोमाभिषव के पश्चात कुत्सित रूप से तुम्हारी स्तुति करते हैं, तुम उनका सोम नही पीते। ४। हे इन्द्राग्ने ! जब तुम दोनों एक रथ पर आरूढ़ होकर गमन करते हो, तब कौन तुम्हारे इस कार्य को जान सकेगा ?। ५। [२५]

इन्द्राग्नी अपादियं पुर्वागात्पद्भ्य: ।
हित्वी शिरो जिह्वया वावदच्चरत्त्रिंशत्पदा न्यक्रमीत् ॥६
इन्द्राग्नौ आ हि तन्वते नरो धन्वानि बाह्वो ।

मा नो अस्मित्महाधने परा पक्त्ं गविष्टबु ।।७
इन्द्राग्नी तपन्ति माया अर्यो अरातयः।
अप द्वेषांस्य कृतं युयुतं सूर्यादिधि ।।८
इन्द्राग्नी युवोरपि वसु दिव्यानि पार्थिवा ।
आ न इह प्र यच्छतं रयिं विश्वायुपोषसम् ।।९
इन्द्राग्नी उक्थवाहसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता ।
विश्वाभिर्गीर्भिरा गतमस्य सोमस्य पीतये ।।१०।२६

हे इन्द्राग्ने ! बिना पाँव की यह उषा प्राणियों के शीर्ष स्थान को उत्तेजित कर उनकी जिह्वा से उच्च वाणी प्रकट करती हुई वर्तती है । ८ । हे इन्द्राग्ने ! वीर पुरुष अपने धनुष को फलाते हैं । तुम गौओं की खोज वाले कार्य में हमें मत त्याग देना । ७ । हे इन्द्राग्ने ! जो शत्रु हमें व्यथित करते हैं उन्हें दूर करो और उन्हें सूर्य-दर्शन भी मत होने दो । ८ । हे इन्द्राग्ने ! तुम दिव्य और पार्थिव सब धनों के स्वामी हो । अतः हमें समस्त धन प्रदान करो । ९ । हे इन्द्राग्ने ! हमारे सोम पान के लिए आओ, क्योंकि तुम स्तुति युक्ति आह्वान के सुनने वाले हो । १० ।   [२०]

सूक्त ६०

(ऋषि—भरद्वाजो वार्हस्पत्यः । देवता— इन्द्राग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्
गायत्री, पंक्तिः, अनुष्टुप्)

श्नथद्वृत्रमुत सनोति वाजमिन्द्रा यो अग्नी सुहुरी सपर्यात् ।
इरज्यन्ता वसव्यस्य भूरेः सहस्तमा सहसा वाजयन्ता ।।१
ता योधिष्टमभि गा इन्द्र नूतमप स्वरुषसो अग्न ऊलहाः ।
दिशः स्वरुषस इन्द्र चित्रा अपो गा युवसे नियुत्वान् ।।२
आ वृत्रहणा वृत्रहभिः शुष्मैरिन्द्र यात नमोभिरग्ने अर्वाक् ।
युव राधोभिरकवेभिरिन्द्राग्ने अस्मे भवतमुत्तमेभिः ।।३
ता हुवे योयरिदं पप्ने विश्व पुरा कृतम् । इन्द्राग्नी न मर्धतः ।।४

उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे । ता नो मृलात ईदृशे॥५।२७

अन्न की कामना करते हुए जो महान् ऐश्वर्य के स्वामी और शत्रु-हन्ता इन्द्राग्नि की उपासना करते हैं वे अन्न पाते और शत्रुओं को मारते हैं। १ । हे इन्द्राग्ने ! तुमने सूर्य और उषा के लिए युद्ध किया। हे इन्द्र ! तुमने दिशा,गौ,उषा, सूर्य, और जल को जगत के साथ जोड़ा । हे अग्ने ! तुमने भी यही कार्य किये हैं । २ । हे इन्द्राग्ने ! शत्रु का हनन करने वाले बल के सहित आगमन करो । तुम श्रेष्ठ धन सहित प्रकट होओ ।३। जो इन्द्राग्नि अपने स्तोता को नहीं मारते और जिनके वीर कर्म प्रशंसित हैं, मैं उन्हीं इन्द्राग्नि को आहूत करता हूँ ।४। हम इन्द्राग्नि को आहूत करते हैं, वे हमें युद्ध मे सफल करें । ५ । [२६।

हतो वृत्राण्यार्या हतो दासानि सत्पती । हतो विश्वा अप द्विषः॥६
इन्द्राग्नी युवामिमेभि स्तोमा अनूषत । पर्वत शम्भुवा सुतम् ॥७
या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषेनरा । इन्द्राग्नी ताभिरागतम्॥८
ताभिरा गच्छतं नरोपेदं सवनं सुतम् । इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥९
तमीलिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत् ।
कृष्णा कृणोति जिह्वया ॥१०।२८

वे इन्द्राग्नि सज्जनों की रक्षा और दुर्जनों के उपद्रव को नष्ट करते हैं उन्होंने सब वैरियों को मारा है । ६ । हे इन्द्राग्नि ! यह स्तोता तुम्हारी स्तुति करते हैं, तुम निष्पन्न सोम का पान करो ।७। हे इन्द्राग्ने ! हव्य-दाता के लिए उत्पन्न अश्वों पर आरूढ़ होकर आगमन करो । ८ । हे इन्द्राग्ने ! तुम सोम पान के लिए हमारे सवन में आगमन करो । ९ । हे स्तोता ! जो अग्नि अपनी शिखा से जङ्गलों को ढक लेते हैं, तुम उन्हीं अग्नि का स्तवन करो । १० । ।२०]

य इद्ध आविवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः । द्युम्नाय सुतरा अपः॥११
ता नो वाजवतीरिष आशून्पिपृतमर्वतः । इन्द्रामग्निं च वोलहवे॥१२
उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्या उभा राधसः सह मादयध्ये ।

उभा दातारविषां रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम् ॥१३
आ नो गव्येभिरश्व्यैर्वसव्यै रुप गच्छतम् ।
सखायौ देवौ सख्याय शम्भुवेन्द्राग्नी ता हवामहे ॥१४
इन्द्राग्नी शृणुत हवं यजमानस्य सुन्वतः ।
वीतं हव्यान्मा गत पिबतं सोम्यं मधु ॥१५।२९

जो अनुष्ठाता इन्द्र के लिए अग्नि में हवि डालते हैं, इन्द्र उनके लिए जल-वृष्टि करते हैं ।११। हे इन्द्राग्ने ! हमें बलकारी अन्न प्रदान करो । द्रुत वेग वाला अश्व भी दो ।१२। हे इन्द्राग्ने ! मैं तुम-दोनों को यज्ञ द्वारा और हव्य द्वारा आहूत करता हूं तुम अन्नदाता हो, अन्न लाभ के लिए तुम्हारा आह्वान करता हूं ।१३। हे इन्द्राग्ने ! तुम गौ, अश्व और अपरिमित सम्पत्ति के सहित हमारे अभिमुख होओ । हम तुम्हें बुलाते हैं ।१४। हे इन्द्राग्ने ! सोम वाले यजमान की स्तुति सुनकर हव्य की इच्छा करते हुए सोम पान करो ।१५। [२९]

सूक्त ६१

(ऋषि—भारद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—इन्द्रः । छन्द—जगती,
गायत्री पंक्तिः)

इयमददाद्रभसमृणच्युतं दिवोदासं वध्र्यश्वाय दाशुषे ।
या शश्वन्तमाचखादावसं पणिं ता ते दात्राणि तविषा सरस्वति ॥१
इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत्सानु गिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः ।
पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः सरस्वतीमा विवासेम धीतिभिः ॥२
सरस्वति देवनिदो नि बर्हय प्रजां विश्वस्य बृसयस्य मायिनः ।
उत क्षितिभ्योऽवनीरविन्दो विषमेभ्यो अस्रवो वाजिनीवति ॥३
प्र णो देवी सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । धीनामवित्र्यवतु ॥४

यस्त्वा देवि सरस्वत्युब्रूते धने हित । इन्द्रं न वृत्रतूर्ये ॥५।३०

सरस्वती ने हविदाता वध्र्यस्व को दिवोदास नामक पुत्र प्रदान किया । उन्होंने अदानशील पणि का शोधन किया । हे सरस्वती, तुम्हारे दान विस्तृत हैं ।१। यह सरस्वती पर्वत के तटों को अपनी लहरों से तोड़ती हैं । हम उन्हीं की सेवा करते हैं ।२। हे सरस्वती ! तुमने देव निन्दकों और त्वष्टा के पुत्र को मारा और मनुष्यों को भूमि देकर जल वृष्टि की ।३। अन्नवती सरस्वती रक्षा करने वाली हैं, वे हमें भले प्रकार तृप्त करें ।४। इन्द्र के समान तुम्हारी भी जो स्तुति करता है, वही पुरुष धन प्राप्ति वाले संग्राम में जाता है । तुस उसकी रक्षक होओ ।५। [३०]

त्वं वेवि सरस्वत्यवा वाजेषु वाजिनि । रदापूषेव नः सनिम् ॥६
उत स्या नः सरस्वतीं घोरा हिरण्यवर्तनिः ।वृत्रघ्नी वष्टि सुष्टुतिम्॥७
यस्या अनन्तो अह्रुतस्त्वेषश्चरिणुरर्णवः । अमश्चरति रोरुवन् ॥८
सा नो विश्वा अतिद्विषः स्वसॄरन्या ऋतावरी । अतन्नहेव सूर्यः ॥९
उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा ।
सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥१०।३१

हे सरस्वती ! तुम युद्ध रक्षा करो । पूषा के समान हमें धन दो ।६। शत्रु का नाश करने वाली, रथारूढ़ा सरस्वती हमारे श्रेष्ठ स्तोत्र की रक्षा करें ।७। इन सरस्वती का रथ वेगवान जल शब्द करता हुआ जाता है ।८। सूर्य जैसे दिन को लाते हैं वैसे ही सरस्वती विजय लेकर अपनी अन्य भगिनियों सहित आती हैं ।९। सरस्वती की प्राचीन ऋषियों ने सेवा की थी वह हमारी स्तुति के योग्य हों ।१०। [३१]

आपप्रुषी पार्थिवान्युरु रजो अन्तरिक्षम् । सरस्वती निदस्पातु ॥११
त्रिषधस्था सप्तधातुः पञ्च जाता वर्धयन्ती । वाजेवाजेहव्याभूत् ॥१२
प्र या महिम्ना महिनासु चेकिते द्युम्नेभिरन्या अपसामस्पतमा ।

रथइव बृहती विम्वने कृतोपस्तुत्या चिकितुषा सरस्वती ॥१३
सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो माप स्फरीः पयसा मा न आ धक् ।
जुषस्व नः सख्या वेश्या च मा त्वक्षेत्राण्यरणानि गन्म ॥१४॥३२

जिन सरस्वती ने स्वर्ग पृथिवी को तेज से पूर्ण किया है, वे हमें निंदकों से बचावें ।११। सप्त नदियों वाली सरस्वती संग्राम में आह्वान् करने योग्य होती हैं ।१२। यशवती, नदियों में श्रेष्ठ, गुणवती सरस्वती विद्वान् स्तोता की स्तुति के योग्य हैं ।१३। हे सरस्वती ! हमें महान् धन दो । हमें हीन या पीड़ित मत करो । हमारा बन्धुत्व स्वीकार करो। हम निकृष्ट स्थान को प्राप्त न हों ।१४। [३२]

॥ चतुर्थ अष्टक समाप्तम् ॥

पञ्चम अष्टक

प्रथम अध्याय

सूक्त ६२

(ऋषि—भारद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—अश्विनौ । छंद—पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

स्तुषे नरा दिवो अस्य प्रसन्ताश्विना हुवे जरमाणो अर्कैः ।
या सद्य उस्रा व्युषि ज्मो अन्तान्युयूषतः पर्युरू वरांसि ॥१
ता यज्ञमा शुचिभिश्चक्रमाणा रथस्य भानुं रुरुचू रजोभिः ।
पुरू वरांस्यमितामिनापो धन्वान्यति याथो अज्रान् ॥२
ता ह त्यद्वर्तिर्यदरध्रमुग्रेत्था धिय ऊहथुः शश्वदश्वैः ।
मनोजवेभिरिषिरैः शयध्यै परि व्यथिर्दाशुषो मर्त्यस्य ॥३
ता नव्यसो जरमाणस्य मन्मोप भूषतो युयुजानसप्ती ।
शुभं पृक्षमिमूर्जं वहन्ता होता यक्षत्प्रत्नो अध्रुग्युवाना ॥४
ता वल्गू दस्रा पुरुशाकतमा प्रत्ना नव्यसा वचसा विवासे ।
या शंसते स्तुवते शम्भविष्ठा बभूवतुर्गृणते चित्रराती ॥५।१

शत्रुओं के हराने वाले अश्विद्वय रात्रि का अंधकार मिटाते हैं। मैं उन्हें स्तुति करता हुआ, बलवान् हूं ।१। यज्ञ में गमन करने वाले अश्विद्वय अपने तेजों को निर्मित करते हुए. अपने अश्वों को मरुभूमि से पार ले जाते हैं ।२। हे अश्विद्वय ! तुम मन के समान वेग वाले अश्वों के द्वारा स्तोताओं को स्वर्ग की प्राप्ति कराओ । हविदाता यजमान की हिंसा करने वाले को घोर निद्रा में निमग्न करो ।३। वे अश्विद्वय स्तोता की सुन्दर स्तुतियों के पास आगमन करें । द्वेषशून्य प्राचीन अग्नि उनका यजन करें ।४। जो स्तुति करने वालों को सुख देते हुए विविध प्रकार का धन देते हैं, उन्हीं अश्विनीकुमारों की मैं स्तुति करता हूं ।५। [१]

ता भुज्युं विभिरद्भ्यः समुद्रात्तुग्रस्य सूनुमूहथू रजोभिः ।
अरेणुभिर्योजनेभिर्भुजन्ता पतत्रिभिरर्णसो निरुपस्थात् ।।६

वि जयुषा रथ्या यातमद्रिं श्रुतं हवं वृषणा वाध्रिमत्याः ।
दशस्यन्ता शयवे पिप्यथुर्गामिति च्यवाना सुमतिं भूरण्यू ।।७

यद्रोदसी प्रदिवो अस्ति भूमा हेळो देवानामुत मर्त्यत्रा ।
तदादित्या वसवो रुद्रियासो रक्षोयुये तपुरघं दधात ।।८

य ईं राजानावृतुथा विदधद्रजसो मित्रो वरुणश्चिकेतत् ।
गम्भीराय रक्षसे हेतिमस्य द्रोघाय चिद्वचस आनवाय ।।९

अन्तरैश्चक्रैस्तनाय वर्तिर्द्युमता यात नृवता रथेन ।
सनुत्येन त्यजसा मर्त्यस्य वनुष्यतामपि शीर्षा ववृक्तम् ।।१०

आ परमाभिरुत मध्यमाभिर्नियुद्भिर्यातमवमाभिरर्वाक् ।
ह्ळहस्य चिद्गोमतो वि व्रजस्य दुरो वर्तं गृणते चित्रराती ।।११।२

हे अश्विद्वय ! तुमने ही भुज्यु को रथयुक्त अश्वों द्वारा समुद्र से निकाला ।६। हे अश्विद्वय ! रथ के मार्ग में अड़े हुए पर्वत को तोड़ो । तुम पुत्र की कामना वाली का आह्वान सुनो । स्तोता की बन्ध्या गौ को पयस्विनी बनाओ ।७। द्यावापृथिवी, आदित्यगण, वसुगण, मरुद्गण और अश्विनीकुमारों के उपासकों के प्रति देवताओं का जो भीषण क्रोध हो उस क्रोध को राक्षस-हनन के कार्य में प्रयुक्त करो ।८। जो यजमान भुवनपति अश्विनीकुमारों की उपासना करता है उसे मित्रावरुण जानते हैं वह यजमान वीर राक्षसों पर आयुध चलाने में समर्थ होता है ।९। हे अश्विनी कुमारो ! तुम सारथीयुक्त रथ पर आरूढ़ होकर अपत्य प्रदान के लिये आओ और अपने क्रोध से मनुष्यों के लिए विघ्न उपस्थित करने वालों का सिर काटो ।१०। हे अश्विनीकुमारो ! तुम हमारे अभिमुख होओ । सम्पन्न गोष्ठ का उद्घाटन करो । मुझे दिव्य धन दो । मैं तुम्हारी स्तुति करता हूं ।।११।। [२]

सूक्त ६३

(ऋषि—भारद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—इन्द्रः अश्विनौ । छन्द—बृहती,
पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

क्वत्या वल्गू पुरुहूताद्या दूतो न स्तोमाऽविदन्नमस्वान् ।
आ यो अर्वाङ् नासत्या ववर्त प्रेष्ठा ह्यसथो अस्य मन्मन् ॥ १
आरं पृ गन्तं हवनायास्मै गृणाना यथा पिबाथो अन्धः ।
परि ह त्यद्वर्तितर्याथो रिषी न यत्परो नान्तरस्तुतुर्यात् ॥२
अकारि वामन्धसो वरीमन्नस्तारि बर्हिः सुप्रायणतमम् ।
उत्तानहस्तो युवयुर्ववन्दा वां नक्षन्तो अद्रय आञ्जन् ॥३
ऊर्ध्वो वामग्निरध्वरेष्वस्थात्प्र रातिरेति जूर्णिनी घृताची ।
प्र होता गूर्तमना उराणोऽयुक्त यो नासत्या हवीमन् ॥४
अधि श्रियै दुहिता सूर्यस्य रथं तस्थौ पुरुभुजा शतोतिम् ।
प्र मायाभिर्मायिना भूतमत्र नरा नृतू जनिमन्यज्ञियानाम् ॥५॥३

जहाँ अश्विद्वय निवास करें, वहां हवियुक्त पन्द्रहवाँ स्तोम उन्हें दूत की तरह प्राप्त करे । इसी स्तोम ने अश्विद्वय को मेरी ओर किया । हे अश्विनीकुमारो ! तुम स्तुति से प्रसन्न होतेहो ।१। हे अश्विनीकुमारो ! हमारे आह्वान के प्रति आओ । सोम पान कर हमारे घर की शत्रु से रक्षा करो । शत्रु हमारे घर को दूर या पास से भी नष्ट न कर सकें ।२। हे अश्विद्वय ! यह अभिसुत सोम तुम्हारे लिए है । कुश बिछाये गये हैं, मैं स्तोता स्तुति कर रहा हूं ।३। हे अश्विद्वय ! तुम्हारे यज्ञ के निमित्त अग्नि ऊँचे उठते हैं । जो स्तोता तुम्हारा स्तोत्र करता है वह अनेक कर्म करने में समर्थ होता है ।४। हे अश्विद्वय ! सूर्य पुत्री ने तुम्हारे रथ को सुशोभित किया था । तुम देवताओं की प्रज्ञा के नेतृत्व करने वाले होओ ॥५॥ [३]

युवं श्रीभिर्दर्शता भिराभिः शुभे पुष्टिमूहथुः सूर्यायाः ।
प्र वां वयो वपुषेऽनु पप्तन्नक्षद्वाणी सुष्टुता धिष्ण्या वाम् ॥६
आ वां वयोऽश्वासो वहिष्ठा अभि प्रयो नासत्या वहन्तु ।

प्र वां रथो मनोजवा असर्जीषः पृक्ष इषिधोः अनुपूर्वीः ।।७
पुरु हि वां पुरुभुजा देष्णं धेनुं न इष पिन्वतमसक्राम् ।
स्तुतश्च वां माध्वी सुष्टुतिश्च रसाश्च ये वामनु रातिमग्मन् ।।८
उत म ऋज्रे पुरयस्य रघ्वी सुमीलहे शतं पेरुके च पक्का ।
शाण्डो दाद्धिरणिनः स्मद्दिष्टीन् दश वशासो अभिषाच ऋष्वान् ।।९
यं वां शता नासत्या सहस्राश्वानां पुरुपन्था गिरे दात् ।
भरद्वाजाय वीर नू गिरे दाद्धता रक्षांसि पुरुदंससा स्युः ।।१०
आ वां सुम्ने वरिमन्त्सूरिभिः ष्याम् ।।११।४

हे अश्विद्वय ! तुम सूर्या की शोभा के लिए पुष्ट होओ । तुम्हारे अश्व भी शोभा के लिए अनुगमन करते हैं । तुम्हें स्तुतियाँ व्याप्त करें ।६। हे अश्विद्वय ! वहनशील तुम्हारे अश्व तुम्हें अन्न की ओर लावें, तुम्हारा रथ अन्न के निमित्त प्रेरित हुआ है ।७। हे अश्विदय ! तुम अपरिमिति धन वाले हो । हमें स्थिरमना गौ और अन्न दो । तुम्हारे निमित्त स्तोता, स्तोत्र और तुम्हारे लिए सोम रस भी उपस्थित है ।८। मेरे पास शीघ्र गामिनी दो बडगौऐं, समीढ़ की सौ गौऐं, पेरुक के पके हुए अन्न हैं । शाण्डा राजा ने अश्विद्वय के स्तोताओं को सुन्दर दस रथ प्रदान किये और शत्रु का नाश करने वाले वीर पुरुष भी दिये ।९। हे अश्विद्वय ! तुम्हारे स्तोता को पुरुपन्था राजा ने शत सख्यक और सहस्र सख्यक अश्व दिये । हे अश्विद्वय ! भरद्वाज को भी शीघ्र दो और राक्षसों को नष्ट करो ।१०। हे अश्विनीकुमारो ! मैं विद्वानों सहित श्रेष्ठ मङ्गलमय धन से सुशोभित होऊँ ।११। [४]

सूक्त ६४

(ऋषि—भारद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—उषा । छन्दः-त्रिष्टुप्, पंक्ति)

उदु श्रिय उषसो रोचमाना अस्थुरपां नोर्मयो रुशन्तः ।
कृणोति विश्वा सुगान्यभूदु वस्वी दक्षिणा मघोनी ।।१
भद्रा ददृक्ष उर्विया वि भास्युत्ते शोचिर्भानवो द्यामपप्तन् ।

आविर्वक्षः कृणुषे शुम्भसानोषो देवि रोचमाना महोभिः ॥२
वहन्ति सीमरुणासो रुशन्तो गावः सुभगामुर्विया प्रथानाम् ।
अपेजते शूरो अस्तेव शत्रून् बाधते तमो अजिरो न वोलहा ॥३
सुगोत ते सुपथा पर्वतेष्ववाते अस्तरसि स्वभानो ।
सा न आ वह पृथुमान्नृष्वे रयिं दिवो दुहितरिषयध्यै ॥४
सा वह योक्षभिरवातोषो वरं वहसि जोषमनु ।
त्व दिवो दुहितर्या ह देवी पूर्वहतौ महना दर्शता भूः ॥
उत्ते वयश्चिद्वहतेरपप्तन्नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ ।
अमा सते वहसि भूरि वाममुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ॥६॥५

उज्ज्वल वर्ण वाली उषाऐं जल-तरङ्गों के समान उठती हैं यह उषा सब स्थानों को सरलता में जाने योग्य बनाती हैं। यह उषा धन ऐश्वर्य वाली हैं ।१। हे उषे ! तुम मंगलमयी दिखाई देती हो तुम्हारी रश्मियाँ सुशोभित हो रही हैं । तुम सुन्दर शोभामयी होकर प्रकाश प्रदान कर रही हो ।२। रश्मियाँ उषा को वहन करती हैं शत्रुओं को दूर करती हैं ।३। हे उषे ! तुम स्वयं प्रकाशित हो । पर्वत और वायु-शून्य प्रदेश भी तुम्हारे लिए सुगम मार्ग हैं । तुम हमें काम्य धन प्रदान करो ।४। हे उषे ! तुम अश्वों पर धन वहन करती हो । तुम पूजनीया हो । मुझे धन प्रदान करो ।५। हे उषे ! चिड़ियाऐं तुम्हारे प्रकट होने पर घोंसला छोड़ती हैं, उसी समय अन्नोपार्जन करने वाले उठते हैं तुम हविदाता को धन प्रदान करती हो ।६। [५]

सूक्त ६५

(ऋषि—भारद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—उषा । छन्दः, पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

एषा स्या नोः दुहिता दिवोजाः छितीरुच्छन्ती मानुषीरजीगः ।
या भानुना रुशता राम्यास्वज्ञायि तिरस्तमसश्चिदक्तून् ॥१
वि तद्ययु ररुद्ययुग्भिरश्वैश्चित्र भान्त्युषसश्चन्द्ररथाः ।

अग्रं यज्ञस्य बृहतो नयन्तीर्वि ता बाधन्ते तम ऊर्म्यायाः ।।२
श्रवो वाजमिषमूर्जं वहन्तीर्नि दाशुष उषसो मर्त्याय ।
मघोनीर्वीरवत्पत्यमाना अवो धात विधते रत्नमद्य ।।३
इदा हि वो विधते रत्नमस्तीदा वीरायदाशुषः उषासः ।
इदा विप्राय जरते यदुक्था निष्म मावते वहथा पुराचित् ।।४
इदा हि त उषो अद्रिसानो गोत्रा गवामङ्गिरसो गृणन्ति ।
व्यर्केण बिभिदुर्ब्रह्मणा च सत्या नृणामभवद्दे वहूतिः ।।५
उच्छा दिवो दुहितः प्रत्नवन्नो भरद्वाजवदिधते मघोनि ।
सुवीरं रयिं गृणते रिरीह्युरुगायमधि धेहि श्रवो नः ।।६।६

दीप्तिमयी रश्मियों से युक्त हुई उषा अन्धकार को मिटाती और प्राणियों को प्रकाश देती है ।१। महान् यज्ञ की सम्पादिका उषा अपने लाल अश्वों से गमन करती हुई शोभा पाती है । यह रात्रि के अन्धकार को मिटा देती है ।२। हे उषाओ ! तुम हविदाता को बल, यश, अन्न और रस प्रदान करती हो । तुम धनवती और श्रेष्ठ गमन वाली हो । तुम हम सेवकों को पुत्रादि युक्त अन्न-धन प्रदान करो ।३। हे उषाओ ! अङ्गिराओं ने तुम्हारी कृपा से गौओं को खोला और स्तुति द्वारा अन्धकार मिटाया । उनकी स्तुति सत्य फल वाली हुई ।५। हे उषे ! अन्धकार नष्ट करो । भरद्वाज के समान मुझ स्तोता को भी धन और अन्न दो ।।६।।

सूक्त ६६

(ऋषि-भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—मरुतः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

वपुर्नु तच्चिकितुषे चिदस्तु समानं नाम धेनु पत्यमानम् ।
मर्तेष्वन्यद्दोहसे पीपाय सकृच्छुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः ।।१
ये अग्नयो न शोशुचन्निधाना द्विर्यत्त्रिर्मरुतो वावृधन्तः ।
अरेणवो हिरण्ययास एषां साकं नृम्णैः पौंस्येभिश्च भूवन् ।।२
रुद्रस्य ये मीळहुषः सन्ति पुत्रा यांश्चो नु दाधृविर्भरध्यै ।

विदे हि माता महो महीषा सेत्पृश्निः सुभ्वे गर्भमाधात् ।।३
न य ईषन्ते जनुषोऽया न्वतः सन्तोऽवद्यानि पुनानाः ।
निर्यद् दुह्रे शुचयोऽनु जोषमनु श्रिया तन्वमुक्षमाणाः ।।४
मक्षू न येषु दोहसे चिदया आ नाम धृष्णु मारुतं दधानाः ।
न ये स्तौना अयासो मह्ना नू चित्सुदानुरव यासदुग्रान् ।।५।७

मरुद्गण के समान स्थिर प्रीति करने वाला, विद्वान्, स्तोता के समीप आविर्भूत हो। वह अन्तरिक्ष में जल क्षरित करता हुआ पृथिवी में दोहन के लिए प्रवृद्ध होता है।१। जो अग्नि के समान तेजस्वी, इच्छानुसार वृद्धि को प्राप्त और सुवर्णालङ्कारों से युक्त हैं,वे मरुद्गण धन-बल सहित आविर्भूत होते हैं।२। जिन रुद्र पुत्र मरुतों को धारण करने में अन्तरिक्ष समर्थ है, उनकी माता महिमामयी हैं। वे मनुष्यों की उत्पत्ति के लिए जल धारण करती हैं।३। जो यान पर न जाकर स्तोताओं के अन्तःकरण में निवास करते हुए पापों को नाश करते हैं, जो जल दोहन करते और अपने तेज से भूमि को आकर्षित करते हैं, जिनके निमित्त स्तोता मरुतात्मक स्तोत्र करके इच्छित फल पाते हैं, जो महिमामय और गमनशील हैं, उन मरुद्गण को दानी यजमान क्रोध-रहित करता है ।।४-५।। [७]

त इदुग्राः शवसा धृष्णुषेणा उभे युजन्त रोदसी सुमेके ।
अध स्मैषु रोदसी स्वशोचिरामवत्सु तस्थौ न रोकः ।।६
अनेनो वो मरुतो यामो अस्त्वनश्वश्चिद्यमजत्यरथीः ।
अनवसो अनभीशू रजस्तूर्वि रोदसी पथ्या याति साधन् ।।७
नास्य वर्ता न तरुता न्वस्ति मरुतो यमवथ वाजसातौ ।
तोके वा गोषु तनये यमप्सु स व्रजं दर्ता पार्ये अध द्योः ।।८
प्र चित्रमर्कं गृणते तुराय मारुताय स्वतवसे भरध्वम् ।
ये सहांसि सहसा सहन्ते रेजते अग्ने पृथिवी मखेभ्यः ।।९
त्विषीमन्तो अध्वरस्येव दिद्युत्तृषुच्यवसो जुह्वो नाग्ने ।
अर्चत्रयो धनुयो न वीरा भ्राजज्जन्मानो मरुतो अधृष्टाः ।।१०

तं बृधन्तं मारुतं भ्राजदृष्टिं रुद्रस्य सूनुं हवसा विवासे ।
दिवः शर्धाय शुचयो मनीषा गिरयो नाप उग्रा अस्पृध्रन् ॥११।८

वे मरुद्गण पराक्रमी हैं। द्यावापृथिवी के रथ के साथ घर्षक सेनाओं को योजित करते हैं। यह अन्य किसी की दीप्ति से तेजस्वी नहीं हैं ।६। हे मरुद्गण! तुम्हारा रथ पापशून्य है। इसे स्तोता चलाता है वह अश्वरहित सारथि-रहित और भोजन-रहित होता हुआ भी जल प्रेरक और इच्छित देने वाला होकर स्वर्ग, पृथिवी और अन्तरिक्ष में जाता है ।७। हे मरुद्गण! रणक्षेत्र में तुम जिसे बचाते हो, उसकी कोई हिंसा नहीं कर सकता। तुम जिसके पुत्रादि सहित रक्षक हो, वह शत्रुओं की गौओं को बाँट लेता है ।८। हे अग्ने! शत्रुओं के बल का तिरस्कार करने वाले जिन मरुद्गण से पृथिवी भी कांपती है, उन्हीं मरुतों के लिए हविरन्न प्रस्तुत करो ।९। यज्ञ के समान तेजस्वी मरुद्गण अग्नि शिखा के समान दीप्ति वाले, शत्रुओं को कँपाने वाले और तेजस्वी हैं ।१०। मैं उन्हीं रुद्रपुत्र मरुतों की स्तुति करता हूं। यही स्तुतियां उग्र होकर मरुद्गण के बल से समानता करने वाली होती हैं ।११। [८]

सूक्त ६७

(ऋषि–भारद्वाजो बार्हस्पत्यः। देवता–मित्रावरुणौः। छन्द-पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

विश्वेषां वः सतां ज्येष्ठतमा गीर्भिर्मित्रावरुणा वावृधध्यै ।
सं या रश्मेव यमतुर्यमिष्ठा द्वा जनां असमा बाहुभिः स्वैः ॥१
इयं मद्वां प्र स्तृणीते मनीषोप प्रिया नभसा बर्हिरच्छा ।
यन्तं नो मित्रावरुणावधृष्टं छर्दिर्यद्वां वरूथ्यं सुदानू ॥२
आ यातं मित्रावरुणा सुशस्त्युप प्रिया नमसा हूयमाना ।
सं यावप्नःस्थो अपसेव जनाञ्छ्रुधीयतश्चिद्यतथो महित्वा ।
अश्वा न या वाजिना पूतबन्धू ऋता यद् गर्भमदितिर्भरध्यै ।
प्र या महि महान्ता जायमाना घोरा मर्ताय रिपवे नि दीधः ॥४

विश्वे यद्वां मंहनामन्दमाना क्षत्रं देवासो अदधुः सजोषाः ।
वि यद्भूथो रोदसी चिदुर्वी सन्ति स्पशो अदब्धाशो अमूराः ॥५।९

हे मित्रावरुण ! तुम सर्वश्रेष्ठ को मैं स्तुतियों से बढ़ाता हूं तुम अपनी भुजाओं से मनुष्यों को संयत करते हो ।१ हे मित्रावरुण! हमारी यही स्तुति तुम्हें बढ़ाती है । तुम हमें शीत आदि से बचाने वाला घर दो ।२। हे मित्रावरुण ! हमारे आह्वान के प्रति आओ । जैसे कर्म में लगा व्यक्ति अन्न चाहने वालों को तुष्ट करता है, वैसे ही तुम भी करो ।३। अश्व के समान बली मित्रावरुण को अदिति ने धारण किया । हिंसकों की हिंसा करने वाले और जन्म से ही महान् हुए ।४। सभी देवताओं ने तुम्हारा यश-कीर्तन कर बल धारण किया । तुम आकाश-पृथिवी को परिभूत करने वाले और अहिंसित हो ॥५॥ [९]

ता हि क्षत्रं धारयेथे अनुद्यून् दृंहेथे सानुमुपमादिव द्योः ।
दृलहो नक्षत्र उत विश्वदेवो भूमिमातान्द्यां धासिनायोः ॥६
ता विग्रं धैथे जठरं पृणध्या आ यत्सद्म समृतयः पृणन्ति ।
न मृष्यन्ते युवतयोऽवाता वि यत्पयो विश्वजिन्वा भरन्ते ॥७
ता जिह्वया सदमेद सुमेधा आ यद्वां सत्यो अतरऋते भूत ।
तद्वां मिहित्व घृतान्नावस्तु युवं दाशुषे वि चयिष्टमंहः ॥८
प्र यद्वां मित्रावरुणा स्पूर्धन्प्रिया धाम युवधिता मिनन्ति ।
न ये देवास ओहसा न मर्ता अयज्ञसाचो अप्यो न पुत्राः ॥९
वि यद्वाच कीस्तासोभरन्ते शंसन्ति केचिन्निविदो मनानाः ।
आद्वां ब्रवाम सत्यान्युक्था नकिर्देवेभिर्यतथो महित्वा ॥१०
अवोरित्था वां छर्दिषो अभिष्टौ युवोर्मित्रावरुणावस्कृधोयु ।
अनु यद् गावः स्फुरानृजिप्यं धृष्णुं यद्रणे बृषणं युजनम् ॥११।१०

तुम अन्तरिक्षस्थ प्रदेश को दृढ़ता से धारण करते हो,तुम्हारे द्वारा ही मेघ अन्तरिक्ष और विश्वेदेवा हवि से तृप्त होकर पृथिवी और स्वर्ग में व्याप्त होते हैं ।६। तुम प्राज्ञ व्यक्ति सोम को उदर-पूर्ति के लिए धारण करते हो । जब ऋत्विज यज्ञ ग्रह को सम्पन्न करते हैं और तुम

जल भेजते हो तब नदियों में धूल नहीं भरती ।७। मेधावीजन वाणी द्वारा तुमसे जल की याचना करते हैं वैसे तुम्हारा उपासक यज्ञ में माया से विरक्त होता है, वैसे ही तुम्हारी महिमा है । तुम हविदाता के पाप को मिटाओ ।८। हे मित्रावरुण ! जो द्वेषी व्यक्ति तुम्हारे कर्म से बाधक होते हैं, जो व्यक्ति स्तोत्रशून्य हैं, उन्हें नष्ट कर डालो ।९। जब विद्वान पुरुष स्तुति करते हैं, तब महिमा वाले होकर अन्य देवताओं के साथ मत जाना ।१०। हे मित्रावरुण ! जब स्तुतियाँ की जाती हैं और सोम को उपस्थित किया जाता है, तब गृह-दान के लिए तुम आते हो और घर प्राप्त होता है ।११। [१०]

सूक्त ६८

(ऋषि—भारद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—इन्द्रः । छन्दः—त्रिष्टुप् पंक्तिः, उष्णिक्)

श्रुष्टी वां यज्ञ उद्यतः सजोषा मनुष्वद् वृक्तवर्हिषो यजध्यै ।
आ य इन्द्रावरुणाविषे अद्य महे सुम्नाय मह आववर्तत् ।।१
ता हि श्रेष्ठा देवताता तुजा शराणां शविष्ठा ता हि भूतम् ।
मघोनां महिष्ठा तुविशुष्म ऋतेन वृत्रतुरा सर्वसेना ।।२
ता गृणीहि नमस्येभिः शूषैः सुम्नेभिरिन्द्रावरुणा चकाना ।
वज्रेणान्यः शवसा हन्ति वृत्रं सिषक्त्यन्यो वृजनेषु विप्रः ।।३
ग्नाश्च यन्नरश्च वावृधन्त विश्वे देवासो नरां स्वगूर्ताः ।
प्रैभ्य इन्द्रावरुणा महित्वा द्यौश्च पृथिवि भूतमुर्वी ।।४
स इत्सुदानुः स्ववां ऋतावेन्द्रा यो वां वरुण दाशति त्मन् ।
इषा स द्विषस्तरेद्दास्वान्वंसद् रयिं रयिवतश्च जनान् ।।५।११

हे इन्द्र और वरुण ! यजमान के सुख के निमित्त जो अनुष्ठान किया जाता है, वही अनुष्ठान आज तुम्हारे लिए किया जा रहा है ।१। हे इन्द्र और वरुण ! तुम यज्ञ में धनदाता और श्रेष्ठ हो । वीरों में अधिक बलशाली

दाताओं में श्रेष्ठ, शत्रु-हिंसक और सब सेनाओं और ऐश्वर्यों से सम्पन्न हो ।२। हे स्तोता ! इन्द्र और वरुण की स्तुती करो । उनमें से इन्द्र वृत्र-हन्ता हैं और वरुण प्रजा की रक्षा के लिए बलवान होते हैं ।३। हे इन्द्र और वरुण ! जब स्तोता तुम्हें बढ़ाते हैं तब तुम अत्यन्त महिमा वाले होकर उनके स्वामी बनते हो । हे विस्तीर्ण स्वर्ग और पृथिवी ! तुम भी इनके स्वामी होओ ।४। हे इन्द्र और वरुण ! तुम्हें हवि देने वाला यजमान दानी, धनी और यज्ञ-कर्म वाला होता है । वह शत्रु से रक्षित रहता हुआ धन और सम्पत्तियुक्त पुत्र पाता है ।५। [११]

यं युवं दाश्वराय देवा रयिं धत्थो वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।
अस्मे स इन्द्रावरुणावपि ष्यात्प्र यो भनक्ति वनुषामशस्तीः ॥६
उत नः सुत्रात्रो देवगोपाः सूरिभ्य इन्द्रावरुणा रयिः ष्यात् ।
येषां शुष्मः पृतनासु साह्वान्प्र सद्यो द्युम्ना तिरते ततुरिः ॥७
न न इन्द्रावरुणा गृणाना पृङ्क्तं रयिं सौश्रवसाय देवा ।
इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्धोऽपो न नावा दुरिता तरेम ॥८
प्र सम्राजे वृहते मन्म नु प्रियमर्च देवाय वरुणाय सप्रथः ।
अयं य उर्वी महिना महिव्रतः क्रत्वा विभात्यजरो न शोचिषा ॥९
इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतं सोमं पिवतं मद्यं धृतव्रता ।
युवो रथो अध्वरं देववीतये प्रति स्वसरमुप याति पीतये ॥१०
इन्द्रावरुणा मधुमत्तमस्य बृष्णः सोमस्य वृषेथाम् ।
इन्द्रं वामन्धःपरिषिक्तमस्मे आसद्यास्मिन्वर्हिषि मादयेथाम्॥११।१२

हे इन्द्र और वरुण ! तुम हविदाता को जो धन देते हो, वही शत्रु द्वारा फैलाये गये अपयश को दूर करने वाला धन हमें दो ।६। हे इन्द्र और वरुण ! हम तुम्हारे स्तोता हैं । तुम्हारा जो धन देवताओं द्वारा रक्षित है, वही हमें मिले । हमारा बल शत्रुओं को पराभूत करने वाला और उनका तिरस्कार करने वाला हो ।७। हे इन्द्र और वरुण ! हमें श्रेष्ठ अन्न के लिए धन दो । तुम महान् हो । हम तुम्हारे बल की

प्रशंसा करते हैं । हम नौका द्वारा तरने के समान ही पापों से तरें ।८। जो वरुण महान् कर्म वाले, महिमामय, तेजस्वी और जरा-रहित हैं तथा जो द्यावापृथिवी को व्याप्त करते हैं उन्हीं वरुण के लिए विस्तृत स्तुति करो ।९। हे इन्द्र और वरुण ! तुम सोमपायी हो अतः इस वर्षकारी सोम का पान करो । हे व्रतधारी, मित्रावरुण देवताओं को पीने के निमित्त तुम्हारा रथ यज्ञ की ओर गमनशील है ।१०। हे इन्द्र और वरुण ! तुम इस श्रेष्ठ सोम का पान करो । तुम्हारे लिए यह सोम रूप पात्र में उँडेला गया है । अतः इस यज्ञ में बैठकर सोम-पान द्वारा हर्षित होओ ।११।

[१२]

सूक्त ६९

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—इन्द्राविष्णुः । छन्द—त्रिष्टुप्, उष्णिक्)

सं वां कर्मणा समिषा हिनोमीन्द्राविष्णु अपसस्पारे अस्य ।
जुषेथां यज्ञ द्रविणं च धतमरिष्टैर्नः पथिभिः पारयन्ता ।।१
या विश्वासां जनितारा मतीनामिन्द्राविष्णु कलशा सोमधाना ।
प्र वां गिरः शस्यमाना अवन्तु प्र स्तोमासो गोयमानासो अर्कैं ।।२
इन्द्राविष्णू मदपती मदानामा सोम यातं द्रविणो दधाना ।
स वामञ्जन्त्वक्तुभिर्मतीनां सं स्तोमासः शम्यमानस उक्थैं ।।३
आ वामश्वासो अभिमातिषाह इन्द्राविष्णु सधमादो बहन्तु ।
जुषेथां विश्वा हवना मतीनामुप ब्रह्माणि शणुत गिरो मे ।।४
इन्द्राविष्णु तत्पनयाय्य वां सोमस्य मद उरु चक्रमाथे ।
अकृणुतमन्तरिक्ष वरीयोऽप्रथतं जीवसे नो रजांसि ।।५
इन्द्राविष्णू हविषा वाबधानाग्राना नमसा रायहव्या ।
धृतासूती द्रविणं धत्तमस्मे समुद्रः स्था कलशः सोमधानः ।।६
इन्द्राविष्णू पिबत मध्वो रम्य सोमस्य दस्रा जडरं पृणेथाम् ।
आ वामन्धांसि मदिराण्यग्मन्नुप ब्रह्माणि शृणुतं हवा मे ।।७
उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न हरा जिग्ये कतश्चनैनोः ।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम् । ८।३

हे इन्द्र और विष्णु ! में यह स्तोत्र और हव्य तुम्हारी ओर प्रेरित करता हूं । इसके पश्चात् तुम यज्ञ का सेवन करो । तुम हमें उपद्रव-रहित मार्ग से ले जाते हो, अतः धन प्रदान करो ।१। हे इन्द्र और विष्णो ! तुम स्तुतियों के कारण रूप हों । तुम्हें स्तुतियाँ प्राप्त हों । स्तोताओं से गाने योग्य स्तोत्र भी तुम्हें प्राप्त हों ।२। हे इन्द्र और विष्णो ! तुम सोमों के स्वामी हो ! तुम धन-दान करते हुए सोमों के सामने आओ । स्तोत्र, उक्थों के सहित तुम्हें बढ़ावें ।३। हे इन्द्र और विष्णो ! हिंसकों के हराने वाले अश्व तुम्हें वहन करें । तुम स्तुतियों का सेवन करते हुए मेरे निवेदन पर ध्यान दो ।४। हे इन्द्र और विष्णो ! सोम का हर्ष उत्पन्न होने पर तुम प्रदक्षिणा करते हो । तुमने अन्तरिक्ष का विस्तार किया है । हमारे जीवन के लिए लोकों को प्रसिद्ध किया है ।५। हे इन्द्र और विष्णो ! तुम सोम से प्रवृद्ध होते हो । यजमान तुम्हें नमस्कार युक्त हव्य देते हैं । अतः तुम हमें धन प्रदान करो । तुम कलश के और समुद्र के समान पूर्ण हो ।६। हे इन्द्र और विष्णो ! तुम सोम-पान से अपना उदर भरो । तुम्हारे पास हर्षकारी सोम गमन करे । तुम मेरी स्तुति सुनो ।७। हे इन्द्र और विष्णो ! तुम अजेय हो, तुम में से कभी कोई पराजित नहीं हुआ । तुमने जिस पदार्थ के लिए राक्षसों से स्पर्द्धा की, वह अपरिमित होते हुए भी तुम्हें प्राप्त हो गया ।८। [१३]

LIBRARY
No............
Shri Shri Ma Anandamayee Ashram
BANARAS.

भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठतम धर्मग्रन्थ

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं श्रीराम शर्मा आचार्य द्वारा सम्पादित

१-चारों वेद ८ जिल्दों में—

ऋग्वेद ४ खण्ड	२७)	यजुर्वेद १ खण्ड	६)७५
अथर्व वेद २ खण्ड	१३)५०	सामवेद १ खण्ड	६)७५

२-१०८ उपनिषद् (३ खण्ड)	२३)२५

३-षट् दर्शन (६ जिल्दों में)

वेदान्त दर्शन	४)	सांख्य दर्शन	४)
योग दर्शन	४)	वैशेषिक दर्शन	४)
न्याय दर्शन	४)	मीमांसा दर्शन	५)

४-२० स्मृतियां २ खण्ड —	१५)

पुराण

५-शिव (२ खण्ड)	१५)	वायु (२ खण्ड)	१५)
विष्णु (२ खण्ड)	१५)	अग्नि (२ खण्ड)	१५)
मार्कण्डेय (२ खण्ड)	१५)	गरुड़ (२ खण्ड)	१५)
हरिवंश (२ खण्ड)	१५)	भविष्य (२ खण्ड)	१५)
पद्म (२ खण्ड)	१५)	देवीभागवत (२ खंड)	१५)
लिङ्ग (२ खण्ड)	१५)	वामन (२ खण्ड)	१५)
मत्स्य (२ खण्ड)	१५)	ब्रह्मवैवर्त (२ खंड)	१५)
कूर्म (२खण्ड)	१५)	ब्रह्म (२ खण्ड)	१५)
स्कन्द (२ खण्ड)	१५)	नारद (२ खण्ड)	१५)
सूर्य १ खण्ड)	७)५०	कल्कि (१ खण्ड)	७)७५

६-विष्णु रहस्य	७)५०	१६-छान्दोग्योपनिषद्	३)
७-शिव रहस्य	७)५०	१७-बृहदारण्यकोपनिषद्	३)
८-तन्त्रमहाविज्ञान २ खण्ड	१५)	१८-पञ्चदशी	१२)
९-योग वासिष्ठ (२ खण्ड)	१८)	१९-ज्ञानेश्वरी गीता	७)५०
१०-२४ गीता (२ खण्ड)	१५)	२०-पंचतंत्र	६)
११-मंत्रमहाविज्ञान ४खण्ड	२४)	२१-मंत्र शक्ति से रोग निवारण	४)७५
१२-उपासना महाविज्ञान	७)५०		
१३-हस्तरेखामहाविज्ञान	८)		
१४-गृह्य सूत्र संग्रह	७)५०		
१५-वैदिक मंत्र विद्या	६)		

संस्कृति संस्थान, ख्वाजाकुतुब, बरेली (उ०प्र०)।

इन मूल्यों में परिवर्तन हो गया है।

नया सूची पत्र देखें।

[illegible] प्रेस, बरेली।